एम.ई.सी.-07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

श्रम अर्थशास्त्र 1

एम.ई.सी.-07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

श्रम अर्थशास्त्र 1

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य
निदेशक,
विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

प्रोफेसर डी.डी. नरूला
मानद वरिष्ठ अध्येता
विकास अध्ययन संस्थान जयपुर

डॉ. श्याम नाथ
फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़., नई दिल्ली

प्रो. अमिताभ कुन्डु
सी.एस.आर.डी.
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर ए.के. सिंह
गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज
लखनऊ

डॉ. प्रमोद वर्मा
इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट
अहमदाबाद

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक)
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. जे.जे. शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठों के लेखक

डॉ. रजनी सिन्हा (1,4)
जयपुर (राजस्थान)

डॉ. आर.आर. प्रसाद (2,7)
निदेशक शोध
आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली

डॉ. एस. लक्ष्मी (3)
रीडर, अर्थशास्त्र
भारतीदशन विश्वविद्यालय
तरुचिरापल्ली

डॉ. रेनु त्यागी (5,20)
अर्थशास्त्र विभाग
एल.डी.ए.के. कॉलेज
मावना, मेरठ (उ.प्र.)

डॉ. गोपाल सिंह (6)
राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय
कोटा (राज.)

डॉ. कैलाश सरूप (8)
रीडर, अर्थशास्त्र
एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. रश्मि हंस (9,17,18)
वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशस्त्र विभाग
जे.डी.बी.एम., पी.जी. कॉलेज
आनन्द बाग, कानपुर (उ.प्र.)

श्री राजेन्द्र कुमार (10)
मानविकी विभाग
रीजनल इंजीनियरिंग कॉलेज, कुरुक्षेत्र

डॉ. असलम महमूद (11,12,13)
सह-आचार्य, क्षेत्रीय विकास अध्ययन केन्द्र
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. सुषमा हंस (14,19)
रीडर, अर्थशास्त्र विभाग
पी.जी.साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद (उ.प्र.)

श्रीमती मालती वशिष्ठ (15)
सेवानिवृत्त वरिष्ठ व्याख्याता
मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

श्री अब्दुल कादर कुरैशी (16)
व्याख्याता, अर्थशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय, बारां (राज.)

सम्पादक

डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा
सहायक आचार्य,
अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

डॉ. एम.के. घड़ोलिया
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति

प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली
निदेशक

प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा
निदेशक

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - सितम्बर, 2008

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड-1

श्रम अर्थशास्त्र

इकाई- 1	श्रम की अवधारणा	10–26
इकाई- 2	श्रम अर्थशास्त्र, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व	27–35
इकाई- 3	श्रम बाजार	36–50
इकाई- 4	श्रम की पूर्ति अवधारणा	51–66
इकाई- 5	श्रम की मांग एवं श्रम की मांग के सिद्धान्त	67–78
इकाई- 6	श्रम की उत्पादकता	79–88
इकाई- 7	विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में श्रम समस्याएँ	89–98
इकाई- 8	बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी	99–114
श्रम शक्ति संरचना एवं जन शक्ति योजना		
इकाई- 9	जनसंख्या संरचना और जनशक्ति नियोजन	115–123
इकाई- 10	भारतीय वैज्ञानिक पुनर्गठन और स्वचालिता के संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन एवं रोजगार	124–134
इकाई- 11	तकनीकी द्वैतवाद तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अनौपचारिक क्षेत्र का विकास	135–144
इकाई- 12	श्रम की गतिशीलता एवं प्रवास	145–154
इकाई- 13	नियोजन हेतु श्रम की मांग एवं आपूर्ति के प्रक्षेपण की विधियां	155–166
इकाई- 14	रोजगार सृजन कार्यक्रम	167–203
मजदूरी सिद्धान्त एवं नीति		
इकाई- 15	मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त	204–238
इकाई- 16	संस्थागत व सौदाकारी सिद्धान्त	239–253
इकाई- 17	मजदूरी ढाँचा और मजदूरी भिन्नता	254–262
इकाई- 18	मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ	263–287
इकाई- 19	विकासशील देशों में मजदूरी नीति : न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी , पर्याप्त मजदूरी	288–302
इकाई- 20	भारत में न्यूनतम मजदूरी	303–316

खण्ड परिचय

इस खण्ड में हम अपना ध्यान मुख्य रूप से श्रम बाजार से सम्बन्धित शक्तियों जैसे-श्रम की पूर्ति, श्रम की मांग, श्रम की उत्पादकता एवं रोजगार से जुड़े हुए पहलुओं पर केन्द्रित करेंगे ।

प्रथम इकाई में श्रम की अवधारणा अर्थात् श्रम का अर्थ, परिभाषा, श्रम के प्रकार एवं श्रम की समस्याओं के साथ-साथ इसके महत्व की विवेचना करेंगे । इस इकाई में श्रम को उत्पादन साधन के रूप में परिभाषित किया गया है ।

द्वितीय इकाई में श्रम अर्थशास्त्र का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्च का विवेचन किया गया है । इस इकाई विभिन्न क्षेत्रों जैसे-बागान, संचार, बन्दरगाह, खान आदि में रोजगार की समस्याओं की चर्चा की गई है । संक्षेप में महिला एवं बाल श्रम का परिचय भी यहाँ दिया गया है ।

तृतीय इकाई श्रम बाजार पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है । इस इकाई में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि विकासशील देशों में श्रम बाजार की कुछ विशिष्टताए होती हैं। इसी संदर्भ में भारत में श्रम बाजार पर हुए अनुसन्धानात्मक अध्ययनों के निष्कर्षो का यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया गया है ।

चतुर्थ इकाई में श्रम बाजार का महत्चपूर्ण घटक श्रम की पूर्ति एवं इसे निर्धारित करने वाले तत्वों का विवेचन किया गया है । इसमें श्रम के पूर्ति वक्र के आकार एवं अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म एवं उद्योग के पूर्ति वक्रों को स्पष्ट करने के साथ-साथ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति वक्र को स्पष्ट किया गया है ।

इकाई पाँच में बाजार के दूसरे महत्वपूर्ण घटक श्रम की मांग की चर्चा की गई है । श्रम की पूर्ति की भांति श्रम की अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक मांग को स्पष्ट किया गया है । इसमें पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिताओं में बाजार संतुलन की व्याख्या की गई है ।

इकाई छः में श्रम की उत्पादकता का अर्थ व इसकी माप करने की विधियों को स्पष्ट किया गया है । श्रम की उत्पादकता के निर्धारक तत्वों का संक्षिप्त परिचय भी इस इकाई की विषय-वस्तु है ।

सातवी इकाई में श्रम समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है । विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में श्रम की विभिन्न विशिष्टताओं को स्पष्ट कर इस इकाई में श्रम समस्या के कारणों पर प्रकाश डाला गया है ।

आठवीं इकाई में बेरोजगारी व अर्द्ध-रोजगार की स्थितियों की चर्चा की गई है । इस इकाई में बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी घटकों की चर्चा करने के बाद इसे दूर करने के लिए किए गए सरकारी उपायों पर प्रकाश डाला गया है ।

इकाई 9 में जनसंख्या संरचना एवं जनशक्ति नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की चर्चा की गई है । किसी भी देश के आर्थिक विकास में जनसंख्या की संरचना एवं प्राकृतिक साधनों की अहम् भूमिका होती है । व्यवसायिक संरचना में प्राथमिक क्षेत्र से द्रितीयक क्षेत्र एवं तृतीयक क्षेत्र में हस्तान्तरण विकास हस्तान्तरण विकास का प्रतीक माना जाता रहा है ।

इकाई 10 में तकनीकी परिवर्तन के परिणाम स्वरूप रोजगार पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की गई है । इस इकाई मे विवेकीकरण (Rationalisation) एवं स्वचालित (Automation) के अर्थ को स्पष्ट करने के बाद भारत में रोजगार की स्थिति चर्चा की गई है।

इकाई 11 विकासशील देशों में जनाधिक्य की समस्या ने तकनीकी द्वेतनाद को जन्म दिया है । एक तरफ ग्रामीण अथवा अनौपचारिक क्षेत्र है तथा दूसरी तरफ औपचारिक अथवा शहरी क्षेत्र । दोनों क्षेत्र की अपनी-अपनी विशिष्ट समस्याएं हैं इस इकाई में उन्हीं की चर्चा की गई है ।

इकाई 12 में श्रम की गतिशीलता एवं प्रवास प्रक्रिया के कारणों एवं प्रभावों की चर्चा की गई है । इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लेविस, टोडेरों के मॉडल को भी स्पष्ट किया गया है।

इकाई सख्या 13 नियोजन हेतु श्रम का अनुमान लगाने हेतु प्रक्षेपण की विभिन्न विधियों के अन्तर्गत प्रवृति पद्धति, प्रतीपगमन पद्धति एव आगत निर्गत पद्धति को स्पष्ट किया गया है । अन्तिम इकाई 14 में सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए विभिन्न कार्यक्रमों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

इकाई सख्या 15 में पूर्ण प्रतियोगिता, अपूर्ण प्रतियोगिता द्वि-पक्षीय एकाधिकार मॉडल के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण सिद्धान्तों की विवेचना की गई है । सर्वप्रथम पूर्ण प्रतियोगिता। मॉडल में श्रम के माग एवं पूर्ति वक्रों का निरूपण कर संतुलन द्वारा मजदूरी निर्धारण तंत्र को स्पष्ट किया ग्या है । इसमें फर्म का अल्पकालीन एव दीर्घकालीन साम्य भी स्पष्ट किया गया है । इसके बाद अपूर्ण प्रतिरोगिता की विभिन्न स्थितियों जैसे-श्रम के विक्रय में एकाधिकार परन्तु क्रय मे पूर्ण प्रतियोगिता, इसके विपरीत श्रम के विक्रय में पूर्ण प्रतियोगिता परन्तु क्रय में एकाधिकार द्वि-पक्षीय एकाधिकार की विवेचना की गई है । इस इकाई में मजदूरी निर्धारण के फूलेनर मॉडल एवं कार्टर मॉडल को भी समझाया गया है ।

इकाई 16 में मजदूरी निर्धारण का संस्थागत व सौदागरी सिद्धान्त की चर्चा की गई है। इस सिद्धान्त में मजदूरी निर्धारण में श्रमिकों की व्यक्तिगत व सामूहिक सौदेबाजी की शक्तियों के महत्व को स्वीकार किया गया है । इसके साथ ही मजदूरी निर्धारण में सरकार द्वारा कानूनी नियमपन की व्यवस्था को भी स्वीकार किया गया है । इसमें श्रमिकों की सौदेबाजी सम्बन्धी विभिन्न मॉडलों की व्याख्या भी की गई है । सामूहिक सौदेबाजी की सफलता की शर्तो का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है ।

इकाई 17 में हमारे द्वारा अनुभव की जाने वाली प्रमुख समस्या मजदूरी भिन्नता की चर्चा की गई है । यह भिन्नता विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाले मजदूरों में हो सकती है अथवा लिंग के आधार पर स्त्री या पुरूषों की मजदूरी में हो सकती है अथवा क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी मजदूरियों में हो सकती है । मजदूरी भिन्नता के कई कारण हो सकते हैं इन्हीं कारणों का विवेचन प्रस्तुत इकाई में विस्तार से किया गया है ।

इकाई 18 में मजदूरी भुगतान पद्धतियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । समयानुसार मजदूरी में (Time wages system) में मजदूरी निर्धारण का आधार श्रमिक द्वारा कारखाने में

व्यतीत किए गए समय से होता है । समय को मजदूरी दर से गुणा कर भुगतान किया जाता है। मजदूरी भुगतान की एक अन्य पद्धति कार्यानुसार भुगतान है । इसमें भुगतान का निर्धारण व्यय किए गए समय से नहीं वरन् कार्य से होता है । इन दोनों प्रणालियों के अपने-अपने गुण दोष हैं । इसके अलावा इस इकाई में विभिन्न प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों की चर्चा की गई ।

इकाई 19 में विकासशील देशों में मजूदरी नीति तथा इस सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी एव पर्याप्त मजदूरी सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट किया गया है । मजदूरी नीति से आशय वैधानिक अथवा सरकारी कार्यवाही से है जो शासन द्वारा अपनाई जाती है ।

इस खण्ड की अन्तिम इकाई सख्या 20 में भारतवर्ष में न्यूनतम मजदूरी की चर्चा की गई है । न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण करने हेतु सरकार किसी उद्योग में दूसरे उद्योगों के समान मजदूरी प्रदान कर सकती है, अथवा जीवित रहने लायक मजदूरी निर्धारित कर सकती है, अथवा उद्योगों की भुगतान क्षमता को ध्यान में रखकर इसका निर्धारण किया जा सकता है । सामान्यत: उच्च मजदूरी की मांग श्रमिकों द्वारा की जाती है जबकि उद्योगपति भुगतान करने की क्षमता पर मजदूरी देना चाहते हैं । इस इकई में विभिन्न उद्योगों तथा राज्य में न्यूनतम मजदूरी तथा राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी अवधारणाओं ज़ी चर्चा की गई है । संक्षेप में इस इकाई में भारत में बोनस की समस्या का भी उल्लेख किया गया है ।

इकाई 1
श्रम की आवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 श्रम का अर्थ

1.3 श्रम के प्रकार

1.3.1 उत्पादक व अनुत्पादक श्रम

1.3.2 कुशल व अकुशल श्रम

1.3.3 शारीरिक व मानसिक श्रम

1.4 श्रेय की विशेषताएं

1.5 श्रम समस्याएं

1.6 श्रम का महत्व

1.7 श्रम व श्रम अर्थशास्त्र

1.8 कार्य की अवधारणा व क्षेत्र

1.8.1 कार्य के घण्टे अधिक होने के दुष्परिणाम

1.9 रोजगार की-अवधारणा व क्षेत्र

1.10 श्रम उत्पादन के साधन के रूप में

1.10.1 उत्पादन के साधन के रूप मे श्रम का महत्व

1.10.2 उत्पादन के साधन के रूप में श्रम के महत्व के कारण

1.10.3 श्रम उत्पादन के अन्य, साधनों से अधिक महत्वपूर्ण या भिन्न है।

1.11 बेरोजगारी की समस्या

1.11.1 बेरोजगारी के प्रकार

1.11.2 बेरोजगारी की प्राकृतिक दर

1.12 सारांश

1.13 शब्दावली

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तक

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 उद्देश्य

श्रम उत्पादन का एक सक्रिय साधन है । उत्पत्ति का पैमाना छोटा हो अथवा बड़ा श्रम की सहायता के बिना उत्पादन सम्भव नही हो सकता । आधुनिक युग में आर्थिक विकास के संदर्भ में जब एक देश या देशों का अध्ययन किया जाता है तो श्रम एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है चाहे वह देश कृषि प्रधान हो अथवा उद्योग-प्रधान । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ❖ जान सकेंगे कि श्रम का क्या अभिप्राय है?
- ❖ श्रम की विशेषताएं एवं उत्पादन के साधन के रूप में क्या महत्व है ?
- ❖ समझ सकेंगे कि श्रम की अवधारणा से जुड़े अन्य मुद्दे कौन -कौन सै है ?

1.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र मैं उत्पादन के तीन साधनों (श्रम, भूमि, पूंजी) में श्रम सं अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । कोई भी शारीरिक व मानसिक कार्य जो आर्थिक दृष्टिकोण से किया गया हो या जिस कार्य को करने के बदले में आर्थिक प्रतिफल प्राप्त होता है उसे श्रम कहते है । जैसे - डाक्टर, वकील, इन्जीनियर, प्राध्यापक, दुकानदार, व्यवसायी, नाई, धोबी इत्यादि कोई भी श्रमिक जिसे कार्य करने के बदले आर्थिक भुगतान प्राप्त है उसे श्रम कहते है । इसमें वे लोग नहीं आते है जो कार्य के बदले में आर्थिक भुगतान नहीं लेते है या जिनका कार्य जीविका कमाने के लिए नहीं किया जाता है जैसे - घर में काम करने वाली महिलाएँ अपने बच्चों को पड़ाने वाला पिता व स्कूल वाले बच्चे व बुजुर्ग व्यक्ति इत्यादि.।

1.2 श्रम का अर्थ

प्रो. मार्शल के अनुसार - "श्रम का अर्थ मनुष्य के आर्थिक कार्यो से है, चाहे वे शारीरिक हो अथवा मानसिक ।"

पीगू कें अनुसार - "वह पारिश्रमिक (या सेवा) जिसे द्रव्य द्वारा मापा जाता है श्रम कहलाता है ।"

उत्पादन के साधन के रूप में श्रम का सबसे अधिक महत्व है । क्योंकि उत्पादन के तीन साधनों में श्रम ही सजीव व सक्रिय साधन है । जिसे अल्पकाल व अल्पकाल काल में परिवर्तित करके उत्पादन की मात्रा (पूर्ति) व बाजार की माँग में सामन्जस्य पैदा किया जा सकता है । श्रम के सजीव व सक्रिय साधन होने के कारण उत्पादन की गुणात्मकता तथा मात्रा को प्रभावित करता है ।

उत्पादन के इस महत्वपूर्ण मानवीय संसाधन 'श्रम' का अत्यधिक महत्व इसलिए भी है कि यही उत्पादन करता है व इसी के लिए उत्पादन किया जाता या उत्पादक व उपभोक्ता दोनों ही यह स्वयं है । एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह अलग नहीं किया जा सकता ।

उत्पादन के इस साधन श्रम को हम निम्न तीन श्रेणियों में है :-

1. कुशल श्रम,
2. अर्द्ध कुशल श्रम,
3. अकुशल श्रम

श्रम का व्यापक अर्थ लेते समय समस्त श्रम शक्ति या जन शक्ति को सम्मिलित करके ही उत्पादन के साधन के रूप में लिया जाता है जो उत्पादन में लगी है या लगने में तत्पर है ।

1.3 श्रम के प्रकार

श्रम के तीन प्रकार होते है । 1. उत्पादक व अनुत्पादक श्रम, 2. कुशल व अकुशल श्रम, 3. शारीरिक मानसिक श्रम

1.3.1 उत्पादक व अनुत्पादक श्रम

किसी भी प्रकार के किए गए श्रम जिससे उत्पादक होती है उसे उत्पादक श्रम कहते है जिस उत्पादन को कीमत में मापा जा सके उसे उत्पादक श्रम कहते है । जिस श्रम में उत्पादन नहीं होता है या जिसे कीमत में न मापा जा सके उसे अनुत्पादक श्रम कहते है । जैसे ग्रहणियों का कार्य कीमत से मापा नहीं जा सकता वह अनुत्पादक श्रम है.। **प्रो. मार्शल** के अनुसार - "जो प्रयत्न उपयोगिता का सृजन करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होता है उसे उत्पादक श्रम कहेंगे ।"

प्रो. थामस ने 'उपयोगिता सृजन' के स्थान पर 'मूल्य सृजन' वाक्यांश का प्रयोग किया है क्योंकि कई कार्यों की अधिक उपयोगिता होते हुए भी उसकी बाजार कीमत नहीं होती अत: वह अनुत्पादक श्रम है जैसे - माता द्वारा किया गया शिशु का कार्य ।

1.3.2 कुशल व अकुशल श्रम

कुशल श्रम से तात्पर्य उस श्रम से है जिसे कि विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता हों व श्रमिक प्रशिक्षित हो जैसे डाक्टर, इन्जीनियर कारीगर, नाई आदि । जबकि अकुशल श्रम वह है जिसमें प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है जैसे - कारीगर के कुली बेलदार, चपरासी, चौकीदार, घरेलू नौकर आदि । अकुशल श्रमिकों की मजदूरी हमेशा कम होती है क्योंकि प्रशिक्षण के अभाव में अकुशल श्रमिकों की पूर्ति अधिक होती है ।

1.3.3 शारीरिक व मानसिक श्रम

मानसिक श्रम से अभिप्राय दिमाग द्वारा कार्य करने पर जिसे पारिश्रमिक मिलता हो जैसे - डाक्टर, इन्जीनियर, वकील, प्राध्यापक आदि शारीरिक श्रम से अभिप्राय शारीरिक कार्य द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त होता हो व श्रम. जैसे कारीगर, बेलदार, नाई, धोबी आदि ।

1.4 श्रम की विशेषताएँ

श्रम उत्पादन के अन्य साधनों से अलग एक महत्वपूर्ण विशेषता रखता है जो उत्पादन के अन्य साधनों में नहीं होती है ।

1. श्रम उत्पत्ति का सक्रिय साधन है ।

श्रम उत्पत्ति का सक्रिय साधन है क्योंकि उत्पादन के अन्य साधन कार्य प्रारम्भ नहीं कर सकते भूमि कितनी भी उपजाऊ हो वहाँ पूँजी के रूप में ट्रेक्टर बैल खाद आदि हो परन्तु उस पर कार्य श्रमिक द्वारा ही प्रारम्भ होता है उसी प्रकार उद्योगों में कार्य को प्रारम्भ श्रमिक द्वारा ही किया जाता है चाहे स्वचालित मशीनें हों ।

2. श्रम एवं श्रमिक में अन्तर नहीं है ।

उत्पत्ति के अन्य साथ भूमि पूँजी अपने स्वामी से अलग रहते है । जबकि श्रम श्रमिक के साथ ही रहता व श्रमिक से अलग नहीं होता है । जहाँ श्रमिक जाता है उसका श्रम उसके साथ ही रहता है ।

3. श्रम अधिक गतिशील है ।

भूमि की तुलना में तो श्रम गतिशील है ही किन्तु पूँजी की तुलना में भी अल्पकाल में श्रम अधिक गतिशील है । क्योंकि अल्पकाल एक मशीन के पूँजी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलना मुश्किल होता है । जबकि श्रम अल्पकाल व अति अल्पकाल में भी अधिक गतिशील है ।

4. श्रम नाशवान है।

श्रम नाशवान है । अत श्रम का संचय सम्भव नही है । उत्पादन के अन्य साधन भूमि व पूँजी का संचय हो सकते है । उनका उपयोग न होने पर उनका नाश नही होता जबकि श्रम नाशवान है । यदि श्रमिक एक दिन कार्य नहीं करता है तौ उसका श्रम संचय नही होता व नाश हो जाता है वह उस दिन का श्रम दूसरे दिन नहीं कर सकता है ।

5. श्रमिक की सौदा शक्ति दुर्बल होती है।

श्रमिक की सौदाशक्ति सेवायजक की तुलना में कमजोर होती है क्योंकि (A) श्रम नाशवान है इसका संचय नहीं हो सकता । (B) श्रमिक सेवायोजक की तुलना में गरीब होता है । (C) श्रम संगठनों का अभाव या कमजोर होने के कारण श्रमिक की सौदा शक्ति कमजोर हो जाती है । (D) शिक्षा व जागरूकता के अभाव के कारण भी श्रमिक की सौदा शक्ति कमजोर होती है ।

6. श्रम की पूर्ति बहुत धीरे-धीरे घटती बढ़ती है।

यदि किसी समय उद्योग में मन्दी हो जाने से श्रम की माँग कम हो जाय तो इसकी पूर्ति में शीघ्र ही कमी नहीं हो सकती वरना धीरे-धीरे होती है जबकि पूर्ति शीघ्र बढ़ाई भी नहीं जा सकती क्योंकि जो बालक आज पैदा होता है वह 15 साल बाद श्रम शक्ति में सम्मिलित होता है । अत: कुशल श्रमिक तैयार करने के लिए तकनीकी शिक्षा और 8-10 साल का समय की होती है ।

7. श्रमिक अपना श्रम बेचकर अधिक अनुभवी व कुशल होता है।

उत्पादन के अन्य साधन को काम में लेने सें घिसावट होती है । जैसे - भूमि में प्रयोग के बाद खाद डालना पड़ता है जबकि मशीनें टूटती व घिसती है जबकि श्रमिक कार्य करके कुशल व अनुभवी होता है । अत: उसका अनुभव उसके उत्पादन की गुणात्मकता को बढ़ाता है घटाता नहीं । जबकि उत्पादन के अन्य साधनों के प्रयोग के बाद उनके उत्पादन की गुणात्मकता घटती है । श्रम की बढ़ती है ।

8. श्रम में पूँजी का विनियोग, करके उसकी गुणात्मक में वृद्धि की जा सकती है।

उत्पत्ति के अन्य साधनों की भाँति श्रमिक को भी पूँजी के विनियोग से अधिक कुशल बनाया जा सकता है । उच्च शिक्षा, प्रशिक्षण, उचित पोषण, उच्च साधन सहन का स्तर इत्यादि

के द्वारा श्रम की गुणात्मकता को बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है । इसी कारण से श्रमिक को मानवीय पूँजी भी कहते है ।

9. श्रम की गुणात्मकता परिस्थितियों से प्रभावित होती है।

उच्च आय वर्ग के बच्चों के मानसिक विकास तीव्र व निम्न आय वर्ग का मानसिक विकास धीरे होता है क्योंकि सुविधाएँ जैसे - शिक्षा का स्तर सुविधायें (T.V. Cable, Phone) उसके मानसिक विकास को तीव्र व सोचने की शक्ति को प्रभावित करते है ।

10. श्रम की बुद्धि और निर्णय शक्ति दोनों उत्पादन को प्रभावित करती है ।

श्रमिक मनुष्य होने के कारण उनमें स्वाभाविक बुद्धि व तर्क शक्ति व निर्णय शक्ति है । अत: कार्य करते हुए वे इस मानवीय शक्ति का प्रयोग करता है जो कि उत्पादन के अन्य साधन नहीं कर सकते ।

1.5 श्रम समस्याएँ

किसी भी अर्थव्यवस्था का अगर अध्ययन किया जाय तो मात्र दो समस्याएँ है । जिनके समाधान के लिए अर्थव्यवस्थाएँ तत्पर होती है जैसे- आर्थिक विकास करना तथा आर्थिक विकास को बनाए रखना । अत: स्पष्ट है कि किसी देश के आर्थिक विकास में श्रमिक वर्ग की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण व निर्णायक होती है । इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पूँजी व भूमि का कोई महत्व नही है किन्तु पूँजी भूमि का उचित विनियोग करने का कार्य मानवीय शक्ति द्वारा ही होता है ।

प्रो. ब्लूम एवं नोरथ्रपके शब्दों में - "श्रम समस्याएँ प्रत्येक व्यक्ति की समस्याएँ है, वे समस्याएँ प्रत्येक उपभोक्ता, नियोक्ता एवं श्रमिक को प्रभावित करती है । श्रम समस्याओं के मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, कानूनी तथा आर्थिक पहलुओं के आधार पर आँका जाता हें । श्रम समस्याओं के समाधान के लिए मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, प्रशासनिक, वैधानिक, आर्थिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोणों को अपनाना तथा खोजना पड़ता है । श्रम अर्थ शास्त्र तथा श्रम समस्याओं का अध्ययन इन्हीं दृष्टिकोणों के बीच सामजस्य बैठाते हुए करना होता है इसलिए श्रम अर्थशास्त्र को अर्थशास्त्र से अलग नहीं किया जा सकता है ।"

श्रम समस्याओं का महत्व इसलिए है कि मानव या श्रमिक ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके लिए उत्पादन किया जाता है एवं जिसके द्वारा उत्पादन किया जाता है । श्रम समस्याओं का अध्ययन केवल अर्थशास्त्र का विषय न होकर अपितु अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, कानून शास्त्र यहाँ तक कि कई बार राजनीति शास्त्र व इतिहास का भी विषय हो जाता है । श्रमिकों की समस्याएँ चाहे इतिहास में हो या राजनीति द्वारा उनका स्वरूप राजनैतिक बन चुका है । श्रमिकों का मनोविज्ञानिक पहलू महत्व रखता है इससे सारा समाज प्रभावित होता है क्योंकि श्रम समस्याएँ ही मानव समस्याएँ है । किसी भी अर्थव्यवस्था का या समाज का लक्ष्य वहाँ के नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करना होता है । श्रम समस्याओं के विभिन्न पहलू निम्नांकित है -

1. मनोवैज्ञानिक पहलू

श्रम समस्याएँ मनोवैज्ञानिक समस्याएँ है समस्त पारस्परिक मानवीय क्रियाएँ ही श्रम समस्याएँ है । मानव की इच्छा, सम्मान, सुरक्षा, उन्नति यह समस्त समस्याएँ उसकी आर्थिक परिस्थितियों के साथ बदलती है ।

2. सामाजिक पहलू

श्रम समस्याएँ ही समाज की समस्याएँ है । अगर श्रमिक वर्ग गरीब बेरोजगार हो तो समाज का आर्थिक स्तर गिरता जाएगा । अत: समाज में विद्रोह अनैतिकता, झगड़े बढ़ेंगे । हम कह सकते है कि श्रम समस्याओं के आर्थिक व सामाजिक पहलू में बहुत सामंजस्य पाया जाता है ।

3. कानूनी पहलू

श्रम समस्याएँ ही कानूनों द्वारा हल करी जाती है । कानून जो कि व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए होते है या सरकारों द्वारा श्रमिकों के सामाजिक कल्याण के लिए बनाये जाते है । बालश्रम अधिनियम, न्यूनतम, मजदूरी अधिनियम, अधिनियम इत्यादि ।

4. आर्थिक पहलू

आर्थिक समस्यायें के केन्द्र बिन्दु है - 1. वेतन, 2. बोनस, 3. रोजगार की सुरक्षा, 4. सामाजिक सुरक्षा, 5. उन्नति के अवसर, 6. कार्य की दशाएँ, 7. रोजगार (बेरोजगारी) ।

ऊँचा वेतन होना श्रमिकों की काफी समस्याओं का समाधान होता है किन्तु इसके अलावा कई अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर भी श्रमिक का आर्थिक कल्याण, मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टी निर्भर करती है जिसमें बोनस, वेतन, रोजगार की सुरक्षा, उन्नति, कार्य की दशाएँ है । अगर उचित कार्य की दशाएँ नहीं होंगी तो श्रमिक की कार्य क्षमता पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है जो कि उत्पादन को भी प्रभावित करता है अगर रोजगार की सुरक्षा नहीं होगी तो भी मानसिक सन्तुष्टि नही होने से उत्पादन पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा । उपर्युक्त समस्त बिन्दु राजनैतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक व कानूनी समस्याओं कों जन्म देते है ।

इन श्रम समस्याओं का समाज से सीधा सम्बन्ध होता है अत: समाज के हर क्षेत्र में श्रम का महत्व और बढ़ जाता है ।

1.6 श्रम का महत्व

किसी देश की समृद्धि वहाँ के श्रम शक्ति पर चाहे अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान हो अथवा उद्योग प्रधान श्रम का महत्व बरकरार रहता है उत्पादन के साधन के रूप में श्रम का बहुत महत्व है श्रमिक में मानवीय तत्व इतने प्रधान होते है कि वे जिम्मेदारी उठा सकता है सहयोग कर सकता है लक्ष्य पूरा कर सकता है इन समस्त कार्यों को करने में श्रमिक की भावनाएँ आकाक्षाएँ है जो कि श्रम के महत्व को बढ़ाती है ।

श्रम के महत्व के कारण

श्रम के महत्व के कारण निम्न हैं :-

1. श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन है ।
2. श्रम बुद्धि से निर्णय ले सकता है ।
3. श्रमिक श्रम बेचकर अधिक कुशल होता है ।

4. श्रम अधिक गतिशील है ।

आज विश्व में सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन की गति तेज करने तथा अन्तिम रूप से आर्थिक समस्याओं से मुक्ति पाने के उद्देश्य से उत्पादन के सम्पूर्ण क्षेत्र में श्रमिकों की अधिक नजदीकी, सार्थक व उद्देश्य पूर्ण सहयोग प्राप्त करते के लक्ष्य के सम्बन्ध के रुप में श्रम का महत्व बढ़ता जा रहा है । वास्तव में किसी देश के लिए श्रम सम्बन्धी समस्याएँ व समाधान राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर महत्वपूर्ण होता है । इसे हम यों भी कह सकते है कि किसी भी भावी सम्पनता उस देश के विभिन्न उद्योगों व क्षेत्रों में लगे श्रम की गुणात्मकता पर ही निर्भर करती है ।

1.7 श्रम व श्रम अर्थशास्त्र

श्रम अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की एक प्रमुख शाखा के रूप में विकसित होता जा रहा है । प्रक्रिया में श्रम के कार्यो का एक विशेष अध्ययन होता है क्योंकि अर्थव्यवस्था में श्रम की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। श्रम अर्थशास्त्र में श्रम समस्याओं के वर्गीकरण एवं विश्लेषण एवं विश्लेषण तथा श्रमिक संघों के विकास एवं भूमिका के साथ श्रम बाजार की विशेषताओं का विवेचन होता है।" श्रम अर्थशास्त्र में अग्रलिखित महत्वपूर्ण क्षेत्रों का अध्ययन करना होता है - :

नियोजन (Manpower planning) श्रम संगठन (Labour organisation) श्रम सम्बन्ध (Labour Relation) सार्वजनिक नीति (Public Policy) मजदूरी नीति (Wages Policy) रोजगार सिद्धान्त (Employment Policy) सामूहिक सौदेकारी (Collective Bargaining Theory) सामाजिक सुरक्षा (Social Security) सामाजिक कल्याण (Social Welfare) श्रम संघ (Trade unions) कार्य की दशाएँ (working Conditions of Work) औद्योगिक सम्बन्ध (Industrial Relations) श्रम कानून (Labour legislation)

श्रम अर्थशास्त्र के क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए इसके निम्न दो पक्ष देखे जाते है 1. सैद्धान्तिक पक्ष 2. संस्थागत पक्ष सैद्धान्तिक पक्ष में सिद्धान्त को आधार पर अध्ययन करना व समस्याओं का समाधान निकालना है जबकि संस्थागत पक्ष में संस्था विशेष की परिस्थितियों के आधार पर अध्ययन करना व निर्णय लेना आता है ।

1.8 कार्य की अवधारणा व क्षेत्र

अर्थशास्त्र जब हम उत्पादन को बढ़ाने या आर्थिक विकास की बात करते है तो उत्पादन के साधन के रूप में श्रम की भूमिका महत्वपूर्ण है किन्तु उस श्रम को कितना कार्य दिया जाये या किस परिस्थितियों में कार्य कराया जाये यह भी महत्वपूर्ण हो जाता है ।

कार्य के घण्टे

श्रमिक द्वारा श्रम के दौरान कितने घण्टे काम करना या करवाना चाहिये यह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अधिक घण्टे तक काम करने में स्वाभावत: श्रमिक थकान हो जाती है तथा वह अपने कार्य के प्रति शिथिल हो जाता है व उसके स्वाथ्य व कार्यकुशलता पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त कार्य के घण्टे अधिक होने पर श्रमिक इधर उधर घूमने बहाने बनाने की या कामचोरी की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। साथ कार्य के घण्टे अधिक होने पर अनुपस्थिति की दर भी बढ़ जाती है । कार्य के घण्टे अधिक होने से परिवार के प्रति लापरवाही की स्थिति

पैदा होती है जो पारिवारिक समस्याओं को जन्म देती है । साथ ही मानसिक व शारीरिक मनोरंजन के लिए समयाभाव बना रहता है। थकान के कारण कम मात्रा में उत्पादन, श्रम व पूँजी में असामान्जस्य से उद्योगिक विवादों का जन्म होता है।

1.8.1 काम के घण्टे अधिक होने के दुष्परिणाम

काम के घण्टे अधिक होने के दुष्परिणाम निम्न लिखित है :-

1. कार्य के घण्टे व स्वास्थ्य

निरंतर कई घण्टे कार्य करते रहने से प्रत्येक व्यक्ति को थकान का अनुभव होता है जो कि उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। अगर हम इतिहास उठाकर देखें तो जागीरदार जमीदारों के द्वारा या उद्योगपतियों के द्वारा अधिक घण्टे कराने के कारण श्रमिक का स्वास्थ खराब होने के साथ उनकी मृत्यु तक हो जाती है कारखाना अधिनियम 1881 के अन्तर्गत केवल 7-12 साल तक के बच्चों के कार्य के घण्टे निर्धारित थे व ये घण्टे 9 थे । जिसमें 1 घण्टे विश्राम था ।

1891 कारखाना अधिनियम द्वारा महिलाओं के कार्य के घण्टे 11 थे । जिसमें 1.5 घण्टे विश्राम था । व्यस्क पुरुष के कार्य के घण्टे अधिक थे । अत: मन को एक वस्तु के रूप में देखा जाता था जिसे "वस्तु रूप धारणा" (Commodity Concept of Labour) के रूप में माना जाता है । इस अवधारणा का विरोध अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ILO द्वारा 10 मई 1944 एक विधेयक पास करके किया गया । जिसके द्वारा काम घण्टे एक वयस्क के लिए सामान्य उद्योगों में 8 घण्टे व 1 घण्टे का अवकाश रखा गया । काम की प्रकृति के आधार पर ये घण्टे कम, भी किये गये । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा 14 साल से छोटे बच्चों के कामकाज का विरोध किया जाता है । अधिक घण्टे काम करने का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है । अत: बालक द्वारा श्रम कराने से उसके विकास में बाधा आती है ।

2. कार्य के घण्टे व कार्य क्षमता

काम करने के घण्टों एवं कार्य क्षमता का गहरा सम्बन्ध है । अधिक समय तक काम करने से श्रमिकों की कार्यक्षमता घटती है । श्रमिक मन लगाकर काम नहीं कर सकेगा अत: श्रमिक के कार्य क्षमता के साथ कार्य की गुणात्मकता घटती जाती है जो कि श्रमिक अकुशलता की ओर ले जाती है ।

यहाँ तक कि समाजशास्त्री मानते है कि अधिक लम्बी अवधि तक कार्य करने से थकान के कारण श्रमिक मादक वस्तुओं का उपभोग करने लगते है व समाज में नैतिकता का ह्रास होता है ।

3. कार्य के घण्टे व उत्पादन

कार्य के घण्टे व उत्पादन का सीधा सम्बन्ध होता है । अगर कार्य के घण्टे बढ़ते जायेंगे तो उत्पादन की गुणात्मकता एक निश्चित कार्यविधि के बाद घटती जायेगी साथ निश्चित कार्य अवधि के बाद उत्पादन की मात्रा भी कम होती है । अगर किसी कार्य में ओवर टाइम की सुविधा है तो श्रमिक वास्तविक कार्य के घण्टों में लापरवाही करके ही ओवर टाइम पर कार्यरत रहता है ।

4. कार्य के घण्टे व औद्योगिक शांति

औद्योगिक शांति का काफी हद तक सम्बन्ध कार्य के घण्टे से पाया जाता है । निरन्तर कई घण्टा तक काम में व्यस्त रहने से थकान व निराशा व काम के प्रति ऊब या घृणा की स्थिति पैदा होती है । काम के प्रति उदासीनता पैदा करती है जो कम उत्पादन घटिया उत्पादन की स्थिति पैदा करती है । अधिक घण्टे काम करने से थकान व ऊब के कारण दुर्घटनाएँ बढ़ने की सम्भावनाएँ पैदा होती है, जिससे सेवायोजक का लाभ कम । अत: सेवायोजक असन्तुष्ट होंगे साथ ही अधिक काम के श्रमिक असन्तुष्ट होंगे दोनों तरफ असन्तुष्ट औद्योगिक अशांति को जन्म देती है ।

5. कार्य के घण्टे व अनुपस्थिति की दर

कार्य के घण्टे अधिक होने के कारण श्रमिकों की कार्य के प्रति अब बढ़ने व रुचि कम होने लगती है जो कार्य के प्रति कम रुचि होने से श्रमिक कार्य के प्रति उदासीन होकर कम से कतराता है या अनुपस्थित रहना चाहता है । साथ ही अस्वस्थ होने के कारण या अपने पारिवारिक कार्यों के लिए समयाभाव के कारण अनुपस्थिति रहता है ।

6. कार्य के घण्टे व श्रम व पूँजी में असामन्जस्य

कार्य के घण्टे अधिक होने से श्रम व पूँजी के बीच का सामन्जस्य घटने लगता है । श्रमिक कार्य के घंटों के समय से बातें करना, चाय पीना, मनोरंजन, हास्य विनोद करता है अत: मशीनें चालू रहती है या बेकार पड़ी रहती है । भूमि श्रम पूँजी के उपयोग का उचित दर न होने के कारण उत्पादन लागत बढती है या ज्यादा आती है । जो उत्पादक के लाभ को भी प्रभावित करती है वस्तु की कीमत को बढ़ाती है जो पूर्ण उद्योग को प्रभावित करती है ।

उपर्युक्त विवेचन को देखते हुए हम कह सकते है कि कार्य के घण्टों में कमी वृद्धि केवल मानवीय दृष्टिकोण से ही सही नही है वरन् सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से भी सही नहीं है ।

प्रो. पीगू के अनुसार - कुछ समय पश्चात् साधारण कार्य के घण्टे से अधिक कार्य के घण्टे यदि किसी भी उद्योग में लागू किये जाये तो वो राष्ट्रीय लाभाँश में बढ़ोतरी के स्थान पर कमी ही करेंगे ।"

1.9 रोजगार की अवधारणा व क्षेत्र

किसी देश में एक निर्धारित अवधि में किसी अर्थव्यवस्था में रोजगार की मात्रा से आशय उस अवधि में काम किये मानव घण्टों की संस्था से होता है । रोजगार पाने की इच्छा को सामान्य दैनिक कार्य घण्टों, पायी जाने वाली मजदूरी दरों और एक व्यक्ति की सामान्य स्वास्थ्य दरों के सम्बन्ध में देखना चाहिये । इन समस्त में सामान्यतया होने पर ही व्यक्ति रोजगार में होता है "मनुष्य को सामान्य रूप में व्यस्त रखने वाली क्रियाएँ, जिनका प्रतिफल मिलता है रोजगार कहलाती है । यह क्रियाएँ अवैधानिक व राष्ट्र विरोधी नही होनी चाहिये ।"

हर देश का हर स्वतन्त्र व कार्य करने योग्य व्यक्ति अपने कार्यशील जीवन के हर दिन कार्य करता है । अत: उत्पादन करता है उस उत्पादन कार्य पर ही उसकी आजीविका निर्भर करती है । जिसे हम उसका रोजगार कहते है ।

रोजगार की कुल श्रेणियों

रोजगार में लगे व्यक्ति के रोजगार को हम निम्न कई श्रेणियों में बाँट सकते है जो कि भारत में सामान्यत: प्रचलित है ।

1. स्थाई रोजगार

एक तरह के स्थाई रोजगार में लगे हुये श्रमिक कुल सुविधायें होती है जैसे - नियमित वेतन, आकस्मिक अवकाश (CL), विशेष छुट्टी (PL), प्रोविडेन्ट फन्ड(PF), अवकाश प्राप्ति पर धन सुविधा (GPF) ऋण लेने का अधिकार, सेवा सर्टिफिकेट अन्य कई ।

2. अस्थाई रोजगार

इन श्रमिकों को अस्थाई आधार पर लगाया जाता है अत: आवश्यकता या श्रमिक माँग समाप्त होने पर इन्हें उद्योग से निकाल दिया जाता है इनका कार्यकाल कम होता है कई उद्योगों में इन्हें कई प्रकार की सुविधाओं जैसे CL, PL दी जाती है । कई जगह यह सुविधाएँ नहीं दी जाती है । विशेषकर इन्हें प्रोविडेन्ट फन्ड की सुविधा नहीं दी जाती है ।

बदली श्रमिक

इस प्रकार के श्रमिक ज्यादातर स्थाई व अस्थाई श्रमिकों के बदले में रखे जाते है । जबकि श्रमिक किसी कारणवश छुट्टी लेते है तब बदली श्रमिक कार्य करते है ।

देश के सतत आर्थिक विकास के लिए देश की श्रम शक्ति का उचित प्रयोग करके ही हम विकास कर सकते है अत श्रम शक्ति का पूर्ण व उचित उपयोग श्रमिकों के उचित रोजगार की समस्या को जन्म देती है जिसके समाधान के लिए देशों में रोजगार केन्द्र खोले गए है जो कि श्रमिकों को रोजगार दिलाने में व श्रम शक्ति को उचित प्रयोग करने में सहायक होते है ।

1.10 श्रम उत्पादन के साधन के रूप में

जब हम अर्थशास्त्र में उत्पादन की बात करते है चाहे वह कृषि क्षेत्र हो अथवा उद्योग क्षेत्र या सेवा क्षेत्र उत्पादन के तीनों साधनों (भूमि श्रम व पूँजी) का महत्वपूर्ण स्थान होता है । अब हम उत्पादन एक साधन श्रम के महत्व का अध्ययन करेंगे । विश्व के प्रत्येक भाग में मनुष्य अपने श्रम से ही जीविकोपार्जन करते है । उदाहरण के लिए यदि फल की आवश्यकता है तो उसे तोड़ना होगा । यदि आवास की आवश्यकता है तो मकान का निर्माण कराना होगा । सिर्फ भूमि पर पूँजी रख देने से मकान नहीं बन सकता । जिन प्रदेशों में प्रकृति मेहरबान है या प्रकृति प्रदत्त पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वहाँ कम श्रम करने से कुछ काम चल सकता है । किन्तु श्रम के बिना आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है ।

1.10.1 उत्पादन के साधन के रूप में श्रम का महत्व

1. आदि काल में श्रम का महत्व

आदि काल से जब मानव के पास पूँजी नहीं थी । तब भी वह श्रम करके ही आजीविका कमाता था चाहे शिकार हो या कृषि । मानव ने शिकार करने के लिए बिना भूमि व पूँजी का प्रयोग करके अपनी आजीविका की पूर्ति करता था। वह पत्थर के औजार भी अपने श्रम करके ही बनाता था । उसके बाद आदि मानव ने श्रम में भूमि का संयोग करके कृषि प्रारम्भ

किया । धीरे-धीरे पशुओं को पूँजी के रूप में प्रयोग करके उत्पादन के तीनों साधनों का उचित उपयोग करना प्रारम्भ किया ।

उसके बाद जैसे जैसे मानव का विकास हुआ वैसे वैसे पूँजी का व भूमि का भी उत्पादन में महत्व बढता चला गया ।

2. मध्य काल में

जब हम 18 वीं शताब्दी का अध्ययन करते है तो यूरोप जो आज सबसे विकसित था, वहाँ भी श्रम का ही अधिक उपयोग करके ही उत्पादन होता था । उसी काल में भारत को देखें तो बड़े उद्योग नही थे । छोटे उद्योग यानी कुटीर उद्योग व कृषि उत्पादन जिसमें श्रमिक का व श्रमिक के कला कौशल का महत्व पूर्ण स्थान होता था । अत: हम कह सकते है कि जहाँ के श्रमिक जो कि अपने कार्य कौशल में कुशल थे वही राज्य या देश आर्थिक सम्पन्न देश माना जाता था । कुशल कारीगरों की कुशलता ही देश की आर्थिक सम्पत्ति व पूंजी थी । 1760 में औद्योगीकरण प्रारम्भ होने के बाद पूँजी का प्रभाव उत्पादन में बढ़ता चला गया ।

3. आधुनिक काल में श्रम का महत्व

जब हम आधुनिक व औद्योगिक काल में जब श्रम के महत्व की बात करते है तो उत्पादन में श्रम का महत्व हमेशा है व रहेगा । यह साबित होता है आज भी आधुनिक मशीनों को चलाने के लिए श्रमिक की आवश्यकता पड़ती है । हम चाहे विद्युत रेल की बात करें तो भी उसे चलाने के लिए या अब आधुनिक उद्योगों के उत्पादन में मशीनों को चलाने के लिए श्रमिक की आवश्यकता होती है ।

4. अति आधुनिक काल

अति आधुनिक काल में जब हम कम्पयूटर या स्वचालित मशीनों की व मोटरों की बात करते है तो उन्हें स्वचालन के लिए तैयार करने का कार्य श्रमिक द्वारा ही किया जाता है । कम्प्यूटर को Feed करने का कार्य या Operate करने का कार्य श्रमिक द्वारा ही किया जाता है । साथ ही आधुनिकतम तकनीकी के निर्माण कार्य में भी बड़े बड़े वैज्ञानिक व शौध कर्ता का श्रम ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । बाद में मशीनों के निर्माण का कार्य भी श्रम द्वारा होता है ।

1.10.2 उत्पादन के साधन के दर में श्रम के महत्व के कारण

1. आर्थिक विकास या सभ्यता के विकास क्रम

सभ्यता के विकास का पूर्ण श्रेय श्रम को जाता है । अत: हम कह सकते है कि जब तक मानव का अस्तित्व है वह पैदल से घोड़ा गाड़ी, ऊँट गाड़ी से बस, ट्रक से ट्रेन, हेलीकोप्टर, हवाई जहाज, राकेट बराबर विकास के लिए प्रयासरत रहेगा । विकास की आकांशा श्रमिक के श्रम के रूप में परिवर्तित होकर ही आर्थिक विकास को मूर्त रूप देती रहेगी क्योंकि भूमि व पूँजी की सम्पन्नता होने पर भी उस भूमि व पूँजी का प्रयोग श्रमिक द्वारा ही किया जाता है । अत: तभी भूमि पूँजी श्रम मिलकर उत्पादन के रूप में सामने आती है ।

2. उत्पादन की मात्रात्मक गुणात्मकता वृद्धि की चाह

अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में कृषि उद्योग, सेवा में सिर्फ उत्पादन करना महत्वपूर्ण नहीं है अपितु उत्पादन अधिकतम हो व उसकी गुणात्मकता भी अधिक हो । इस चाहे के कारण श्रम का महत्व बराबर बढ़ रहा है । मानव अधिक सुख की चाह में बराबर प्रयास रत रहता है । अत : वही श्रम उत्पादन में परिवर्तित होकर उसकी चाह पूरी करता है ।

3. बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति की व उच्च जीवन स्तर की चाह

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उत्पादन में वृद्धि करने के लिए श्रम का महत्व बराबर बढ़ता जा रहा है । सिर्फ बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति नहीं अपितु उनके जीवन स्तर को ऊँचा करने की चाह के कारण उत्पादन में वृद्धि करना व गुणात्मकता में वृद्धि श्रम के महत्व को बढ़ाता है ।

4. तीव्र औद्योगीकरण व आधुनिकीकरण की माँग

तीव्र औद्योगीकरण की माँग या आधुनिकीकरण के कारण भी श्रम का महत्व बराबर बढ़ता जाता है । मानव की अधिक से -,अधिक जानने, समझने, पाने की इच्छा की मानव को अधिक श्रम करने के लिए प्रेरित करती है । अपने उपलब्ध साधनों के द्वारा वह क्या उत्पादित कर सकता है वह कितना सुख भोग सकता है या कौन सा साधन खोज सकता है ? इसी चाह ने मानव को आज चाँद तक पहुँचा देने में सफलता दिलाई है । अपितु मंगल ग्रह तक की जानकारी प्राप्त करने या अधिक सीखने, जानने समझने, सुखी रहने के साधन जुटाने की चाह मानव को श्रम के लिए प्रेरित करती है । यही प्रेरणा आधुनिक औद्योगीकरण का परिणाम है । आज प्रत्येक देश आधुनिक सुख सुविधाएँ एकत्रित करने या उत्पादित करने की चाह रखते है । साथ ही आधुनिक सुविधाएँ अपने देशवासियों को देना चाहते है । इसी चाह में श्रमिक तत्पर होकर आधुनिक औद्योगीकरण में लगे हुए है ।

1.10.3 श्रम उत्पादन के अन्य साधनों से अधिक महत्वपूर्ण या भिन्न है

1. श्रम उत्पादन का एक सक्रिय साधन है ।

श्रम की उत्पादन के अन्य साधनों को क्रियाशील बनाता है । किसी मशीन को प्रारम्भ करने का कार्य श्रमिक द्वारा ही किया जाता है । भूमि में कृषि करने के लिए बीज बोने का कार्य हल चलाने का कार्य श्रमिक द्वारा ही होता है । जबकि श्रमिक को कार्य के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नही पड़ती । वह स्वयं ही क्रिया करता है व अन्य साधनों को सक्रिय करता है ।

2. श्रम में ही सोचने समझने की शक्ति या विवेक होता है।

श्रमिक ही उत्पादन का वह साधन है जो कि विवेक का प्रयोग कर सकता है । अगर उसे मशीन, में कोई खराबी नजर आ रही है या उत्पादन में कोई सुधार गुणात्मक या मात्रात्मक करता है तो यह सब कार्य सिर्फ श्रम ही करना है । मशीन स्वचालित होने के बाद भी जैसे उसे करने को कहा (Feed किया) जाय वही करती है वह विवेक का प्रयोग नहीं करती । जबकि श्रमिक विवेक के प्रयोग के कारण से ही उत्पादन के अन्य साधनों से अलग हो जाता है ।

3. श्रम में मानवीय भावनाएँ प्रधान है।

श्रम उत्पादन का वह साधन है जो मानवीय तत्वों की प्रधानता के कारण भिन्न है । इस पर भावनाओं का प्रभाव पड़ता है यदि श्रमिक के घर में कोई समस्या है तो उसके द्वारा किये गये कार्य पर उसका प्रभाव आता है । यदि श्रमिक किसी चिन्ता से ग्रस्त है या कार्य की परिस्थितियों अनुकूल नहीं है तो शारीरिक स्वास्थ्य पर व मन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव उसके कार्य को अवश्य प्रभावित करता है । साथ ही श्रमिक अन्य श्रमिकों व साथियों की भावनाओं के बारे में भी विचार करता है । उत्पादन के इस साधन की यह विशेषता ही इसे अन्य साधनों से अलग व विवेकशील व भिन्न बनाती है ।

4. श्रमिक ही उत्पादन का अन्तिम लक्ष्य या उपभोक्ता भी है।

श्रम उत्पादन का केवल उपादान या साधन मात्र ही नहीं है वरन् श्रम को उत्पादन का अन्तिम लक्ष्य भी कहा जाता है । उपभोक्ता के नाते जब श्रम उपभोग करता है तभी उत्पादन की मात्रात्मक व गुणात्मक पहलुओं का महत्व है अन्यथा उत्पादन की अवधारणा का कोई महत्व नहीं रह जाता है । उपभोक्ता के नाते श्रमिक की आर्थिक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, प्रशासनिक समस्याओं का समाधान में ही श्रमिक स्वयं व्यस्त रहता है।

हम कह सकते है कि श्रम उत्पादन के अन्य साधनों से भिन्न है और अधिक महत्वपूर्ण है । पूर्ण अध्ययन के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि आदि काल से अत्याधुनिक काल तक मानव ने उत्पादन कार्य बिना भूमि व पूँजी के अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करी है । जैसे आदि काल में श्रमिक के रूप में मानव ने आखेट करके ही अपनी आजीविका पत्थर के हथियारों द्वारा चलाई किन्तु श्रम का प्रयोग उसे तब भी करना पड़ता था । बाद में उसने श्रम के साथ भूमि का प्रयोग करके कृषि करके उत्पादन किया फिर पशुओं ने पूँजी के रूप में प्रयोग करके उत्पादन के, तीनों साधनों से उत्पादन किया । आज तक पूँजी के रूप को परिवर्तित करते हुए उत्पादन कार्य में लगा है किन्तु पूँजी के रूप को परिवर्तित करने यानी बैल हल को ट्रेक्टर तक लाने या ट्रेक्टर बेल के प्रयोग में बराबर श्रम का ही महत्वपूर्ण स्थान है ।

साथ ही आर्थिक विकास, आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण समस्त प्रक्रिया में श्रमिकों का उपभोक्ता वाला पहलू महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । श्रमिक का मानवीय पक्ष उत्पादन के तीनों साधनों में उत्पादन के इस साधन (श्रम) को अधिक महत्व देता आया है । इसी कारण आज राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम संघ व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की प्रधानता बनी हुई है देश या विश्व के आर्थिक सामाजिक राजनैतिक किसी भी नजरिये से श्रम का महत्व बढ़ता जा रहा है । नये औद्योगीकरण के युग में पूँजी का महत्व भी बढ़ता जा रहा है । आज बिना पूँजी के श्रम उत्पादन व विकास नही कर सकता । किन्तु पूँजी के महत्व का अभिप्राय यह कदापि नही है कि पूँजी के श्रम का महत्व कम या नगण्य है । श्रम का महत्व था व है व भविष्य में बराबर रहेगा ।

श्रम की व्याख्या करते समय श्रमिक जो कि रोजगार या काम (Work) का दूसरा नाम है । बेरोजगारी से जुड़ा हुआ है । इसलिए सिक्के के दूसरे पहलू को समझना आवश्यक हो जाता है क्योंकि पूर्ण कुशल बेरोजगार श्रमिक कुछ नहीं कर सकता है व समाज पर बोझ हो जाता है।

1.11 बेरोजगारी की समस्या

श्रम के महत्व का अध्ययन करते समय एक समस्या है जो बेरोजगारी की समस्या के रूप में. जन्म लेती है । ज्यादातर विकासशील व अविकसित देशों में जहाँ शिक्षा का स्तर व जीवन स्तर दोनों ही नीचा होता है बेरोजगारी वहाँ की मुख्य समस्या होती है ।

प्रो. पीगू के अनुसार - "किसी को तभी बेरोजगार कहा जा सकता है, जब उसे रोजगार प्राप्त करने की इच्छा तो होती है परन्तु रोजगार मिलता नही ।''

बेरोजगारी का अभिप्राय उस अवस्था सें है जिसमें देश में काम करते वाली आयु (15 - 16) के योग्य व समर्थ व्यक्ति बहुत संख्या में होते है और ऐसे व्यक्ति काम करना चाहते है परन्तु उन्हें प्रचलित मजदूरी पर काम प्राप्त नहीं हो पाता । जो व्यक्ति काम करने में अयोग्य है (जैसे बालक, वृद्ध, रोगी, अपाहिज) उन्हें रोजगार के लिए अयोग्य कहा जाता है वे बेरोजगार नही होते है इसी प्रकार जो व्यक्ति योग्य होते हुए भी काम नहीं करते (जैसे - जागीरदार, भिखारी, साधु-संन्यासी) इन्हें भी बेरोजगार नहीं कहा जाता है । क्योंकि वे काम करना नही चाहते है ।

बेरोजगार सिर्फ है। वो व्यक्ति होते है जो प्रचलित मजदूरी दरों पर निश्चित घण्टों तक काम करने को तैयार हो व सक्षम हो । अत: उन्हें काम न मिले ।

1.11.1 बेरोजगारी के प्रकार

1. ऐच्छिक बेरोजगारी

श्रम शक्ति में आने वाला वह वर्ग जो इच्छा से काम नहीं करना चाहता जैसे जागोरदारी, जमींदार, भिखारी, रईसी या सामाजिक प्रथा के कारण (घर की महिलाओं) को श्रम से दूर रखना इत्यादि ।

2. अनेच्छिक बेरोजगारी

अनेच्छिक बेरोजगारी कई प्रकार की है :-

(i) मौसमी बेरोजगारी

विशेष कर कृषि में मौसमी बेरोजगारी अधिक पायी जाती है ? कि कृषि में बुवाई व कटाई के समय अधिक श्रमिक कार्यरत होता है । अत: इसके बाद वह शहर आकर रोजगार ढूँढता है व काम न मिलने पर बेरोजगार रहता है ।

(ii) चक्रीय बेरोजगारी

आर्थिक चक्रों में उतार चढ़ाव या तेजी, मन्दी के कारण होने वाली चक्रीय बेरोजगारी होती है ।

3. तकनीकी बेरोजगारी

आधुनिक तकनीकी परिवर्तन के कारण जैसे आधुनिक मशीनों/कंप्यूटर आदि के कारण होने वाली तकनीकी बेरोजगारी होती है चाहे अल्पकालीन हो या दीर्धकालीन ।

1.11.2 बेरोजगारी की प्राकृतिक दर

बेरोजगारी की प्राकृतिक दर वह दर है जिस पर मुद्रा स्फिति स्थिर है । बेरोजगारी का प्राकृतिक दर श्रम शक्ति में संरचनात्मक परिवर्तनों से प्रभावित होती है । इस दर (v^*) पर फिलिप्स वक्र लम्बवत् (Vertical) हो जाता है ।

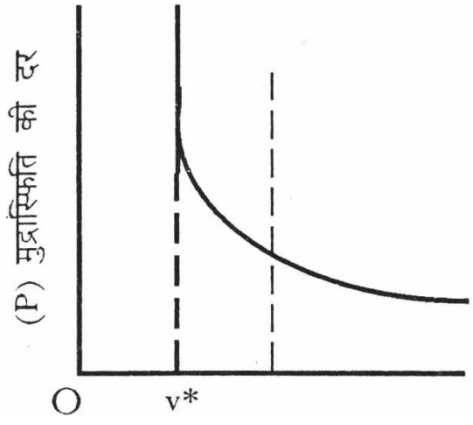

(v) बेरोजगारों की दर

रेखाचित्र - 1.1

इस दर को पूर्ण रोजगार स्तर की बेरोजगारी भी कहते है । उदाहरण के लिए यदि श्रम शक्ति में युवाओं तथा स्त्रियों के योगदान में वृद्धि होने से इस दर में भी वृद्धि होती है । दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि की प्राकृतिक दर श्रम शक्ति में भिन्न-भिन्न समूहों में विद्यमान बेरोजगारी औसत है ।

बेरोजगारी की प्राकृतिक दर को बेरोजगारी की समयावधि से भी परिभाषित किया जा सकता है । बेरोजगारी के समयावधि वह औसत समय है जब एक व्यक्ति बरोजगार रहता है यह समयावधि निम्न बातों पर निर्भर करती है ! :-

(1) श्रम बाजार का संगठन जैसे रोजगार संस्थाएँ, युवा रोजगार सेवाएँ आदि ।

(2) हम शक्ति का जनांकिक वर्गीकरण जैसे - भ्रम शक्ति में स्त्रियों तथा युवाओं का स्थान।

(3) बेरोजगारों द्वारा अच्छे रोजगार अवसरों की तलाश ।

(4) रोजगारों के प्रकार ।

(5) बेरोजगार श्रमिकों का व्यवहार ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि बेरोजगारी हमेशा एक गम्भीर सामाजिक समस्या नहीं है । क्योंकि एक बेरोजगार व्यक्ति अनेक बार अच्छे रोजगार अवसरो की तलाश के कारण स्वेच्छा से बेरोजगार रहता है इस प्रकार विकसित राष्ट्रों में स्वेच्छित बेरोजगारी होना स्वाभाविक है । जबकि विकासशील देशों में व्याप्त अनेच्छिक बेरोजगारी समस्या होती है यानि बेरोजगारी का स्वरूप ही महत्वपूर्ण है ।

इस बेरोजगारी की दर में कमी श्रम बाजार से संबन्धित नीतियों द्वारा ही सम्भव है । इस दर को नापना या अवधारित करना विकसित राष्ट्रों के लिए भी अत्यन्त कठिन है ।

1.12 सारांश

श्रम उत्पादन का एक सक्रिय एवं महत्वपूर्ण साधन है । श्रम मनुष्य का वह शारीरिक अथवा मानसिक प्रयास है जो अंशत या पूर्णत: कार्य से प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होने वाले सुख के अतिरिक्त अन्य किसी आर्थिक उद्देश्य से किया जाता है। श्रम के कई रूप है जैसे - उत्पादक - अनुत्पादक श्रम, कुशल-अकुशल श्रम, शारीरिक-मानसिक - श्रम आदि । श्रम में उत्पत्ति के साधनों मे भिन्न अपनी विशेषताएं है जैसे श्रम नश्वर है, यह उत्पादन का साधन व साध्य दोनों है, श्रमिक अपना श्रम बेचता है परन्तु अपने गुणों तथा व्यक्तित्व का स्वामी स्वंय बना रहता है, श्रम एवं श्रमिक को पृथक-पृथक नहीं किया जा सकता आदि । श्रम के साथ वस्तु की भांति व्यवहार नहीं किया जा सकता। अधिक कार्य के घण्टे का श्रम की कार्य शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। श्रमिक को चाहते हुए यदि रोजगार न मिले तो उसे बेरोजगार कहा जाता है। बेरोजगारी के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। बेरोजगारी की प्रकृतिक दर पर मुद्रा स्फीति स्थिर रहती है।

1.13 शब्दावली

1. श्रम	Labour
2. उत्पादक श्रम	Productive Labour
3. अनुत्पादक श्रम	Unproductive Labour
4. कुशल श्रम	Skilled Labour
5. अकुशल श्रम	Unskilled Labour
6. मानसिक श्रम	Mental Labour
7. शारीरिक श्रम	Physical Labour
8. बरोजगारी की प्राकृतिक दर	Natural Rate of Unemploment

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिन्हा, जे० पी०	श्रम अर्थशास्त्र एस० चांद एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली
के. पी. जैन	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा
ममोरिया एण्ड जैन	भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा
Mehrotra, S.N.	Labour Problems in india
Govt. of India,	INDIA, Reference Annual Publication Division, Delhi

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 श्रम की परिभाषा दीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

प्रश्न 2 उत्पादन साधन के रूप में श्रम के विशेषताओं का वर्णन कीजिए। क्या श्रम के साथ एक वस्तु की भांति व्यवहार किया जा सकता है ।

प्रश्न 3 श्रम के कार्य के घण्टे एवं उसकी क्षमता में क्या सम्बन्ध है ? क्या श्रम की विशेषताए उसकी मजदूरी को प्रभावित करती है ।

इकाई 2

श्रम अर्थशास्त्र : अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 श्रम अर्थशास्त्र का क्षेत्र

2.2.1 बागानों में रोजगार

2.2.2 संचार क्षेत्र में रोजगार

2.2.3 बन्दरगाहों में रोजगार

2.2.4 खानों में रोजगार

2.3 कार्यबल में महिलाएं

2.4 श्रम अर्थव्यवस्था का महत्व

2.5 बाल श्रम

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

श्रम अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए इसके अर्थ में क्षेत्र का सीमांकन करना आवश्यक है। अत : इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ❖ जान सकेंगे कि श्रम अर्थशास्त्र किसे कहते हैं?
- ❖ इसके क्षेत्र का सीमांकन कर सकेंगे
- ❖ समझ सकेंगे कि श्रम अर्थव्यवस्था के अध्ययन का क्या महत्व है ?

2.1 प्रस्तावना

व्यापक अर्थ में श्रम को मौद्रिक उद्देश्य के लिए हाथ के द्वारा या मस्तिष्क के द्वारा किए गए कार्य के रूप में परिभाषित किया जाता है । एस.सी. थामस के अनुसार - "श्रम में शारीरिक-मानसिक सभी मानवीय प्रयासों को सम्मलित किया जाता है, जो कि पारितोषिक की आकांक्षा में किये जाते है ।" जेवोंस के अनुसार - "श्रम में वे सभी शारीरिक एवं मानसिक प्रयास होते है, जो या आंशिक रूप से खुशी के अलावा कुछ वस्तु उस श्रम द्वारा प्रत्यक्षत: प्राप्त हो रही है ।" श्रम नियोक्ता द्वारा निर्धारण परिसर में वेतन या कार्य के लिये सेवा खरीदने एवं बेचने के इर्द-गिर्द केन्द्रित होती है । अत: श्रम शब्द का प्रयोग सामान्यत: या तो उन लोगों के लिए किया जाता है, जो प्रत्यक्षत: नियोक्ता को अपनी सेवायें बेचकर जीवित रहते है या जो सेवा बेचते है, उनकी सेवा में होते हैं ।

श्रम मुद्दे विश्व के लगभग सभी देशों में प्राथमिक महत्व के रहे है । क्योंकि विश्व जनसंख्या का अधिकांश भाग या तो श्रम बेच रहा है या खरीद रहा है या अपनी जीविका के

लिए श्रम पर निर्भर रहता है । तकनीकी विकास एवं औद्योकिगकरण के फलस्वरूप आत्म निर्भर उत्पादनकर्त्ता तथा स्वनियोजित श्रमिक तेजी से खत्म होते जा रहे है । इस कारण समाज में दो वर्गो की स्थापना हुई है ये है : - (i) नियोक्ता वर्ग एवं (ii) श्रमिक वर्ग

2.2 श्रम अर्थशास्त्र का क्षेत्र

अधिकांश पश्चिमी औद्योगिक देशों की अपेक्षा भारतीय श्रमिक वर्ग का अपना पृथक ऐतिहासिक उदभव को शहरी निवासियों, दस्तकारों एवं शहरी अर्थ व्यवस्था के अन्य सामाजिक वर्गो के रूप में देखा जा सकता है । जबकि भारत में यह तस्वीर भिन्न रही है । यद्यपि यहां वेतन भोगी वर्ग के उदभव की अपेक्षा आधुनिक औद्योगिकरण पहले आया है । किन्तु फिर भी श्रमिक वर्ग में अधिकांशत: वे दस्तकार एवं शिल्पकार रहे है, जिनके कि परम्परागत जीविकोपार्जन के स्त्रोत खत्म हो गये है । कोई वैकल्पिक स्त्रोत नही रहे है तथा जिन्हें खेती पर निर्भर होना पड़ा है । गैर कृषिगत परम्परागत क्षेत्र की जनसंख्या का कृषिगत क्षेत्र की तरफ अग्रेसित होना साथ ही जनसंख्या का बढ़ना, भूमि का बटवारा, अनुचित लगाव, भूराजस्व की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था तथा पूंजीपतियों द्वारा कृषक वर्ग का शोषण आदि सभी का यह परिणाम रहा है कि भारतीय इतिहास में पहली बार भूमिहीन सर्वहारा का उद्भव हुआ । ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामूहिक अधिकारों के हनन के साथ ही सामूहिक उद्यम की अनुपयुक्तता, लगान लेने वालों की संख्या में बढ़ोतरी, मुफ्त भूहस्तांतरण, कुटीर उद्योगों का पतन आदि के फलस्वरूप इस वर्ग की संख्या में वृद्धि हुई एवं भाड़े पर श्रम लेने के युग की शुरूआत हुई । यह खेतीहर श्रमिक स्थायी एवं आकस्मिक दोनों की तरह का रहा है । यह पहली कृषि फार्मों में पूर्ण एवं आंशिक रोजगार के रूप में अपने श्रम को देने लगे । 1961 में इनकी संख्या 189 लाख रही है, जो बढकर 1971 में 263 लाख तथा 1981 में 326 लाख हो गयी । आज यह श्रमशक्ति के 70 प्रतिशत भाग को जीविका प्रदान कर रही है ।

यह बढ़ी हुई कृषि श्रम शक्ति, जिसका कि आधार जातियों की पदसोपानियता पर था, औद्योगिक केन्द्रों में रोजगार प्राप्त नहीं कर पायी । भयंकर अकालों के समय, 1872-81 तथा 1891- 1901 के समय, इन ग्रामीणों को औद्योगिक केन्द्रों में जाने के लिए बाध्य होना पड़ा । किन्तु यह एक अस्थायी परिवर्तन था, क्योंकि उद्योग पर्याप्त तेजी नहीं बढ़ पाये थे । अत जब इन लोगों को यहां रोजगार नहीं मिला। तो ये वापिस अपने गॉवों की ओर लौटने लग गये।

भारत के औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक वर्षों में विस्थापित ग्रामीण जनों को 19 वीं सदी के मध्य के वर्षों में भारत सरकार के लोकनिर्माण विभाग द्वारा प्रारम्भ किये गये सड़क निर्माण, रेलवे एवं लोक भवनों के निर्माण कार्य में लगाया गया । इससे पहले भारतीय श्रमिकों के एक बहुत बड़े भाग को ब्रिटिश उपनिवेशों जैसे - दक्षिण अफ्रिका, मोरिशस एवं प्रशान्त तट के देशों तथा "प्रतिज्ञावद्ध श्रमिक" (Indentured Labour) व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ अन्य देशों में भेजा गया । किन्तु जब बागानों, खानों एवं कारखानों ने काम करना प्रारम्भ किया तो पिछली सदी के छठे एवं सॉतवे दशक में देश में कुछ प्रगति हुयी । इसके फलस्वरूप श्रमिक वर्ग की ध्यान आवश्यकता महसूस की जाने लगी । इस समय बम्बई के कारखानों में श्रमिकों की कमी महसूस की गयी । वेतनभोगी वर्ग जनता का सबसे नीचे का एवं सबसे दुभाग्यशाली

वर्ग था जिसको कि परम्परागत ग्रामीण समाज की सामाजिक पदसोपानियता में सबसे नीचे का दर्जा दिया गया था । ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से ही जर्जर आर्थिक दशाओं के फलस्वरूप लोग बाध्य होकर अपने पैतृक घरों को छोड़कर उन शहरों में रोजगार ढूढने चले गये, जहां कारखानें थे । "जहां रीति रिवाजों का स्थान समझौतो ने, सहयोग का स्थान प्रतियोगिता ने निकटस्त ग्रामीण पड़ोस का स्थान गैर वैयक्तिक सम्बन्धों एवं अलगाव ने ले लिया तथा संयुक्त परिवार द्वारा प्रदान की गयी सुरक्षा का स्थान व सुरक्षा नष्ट बेरोजगारी ने ले लिया ।"

यह वेतनभोगी वर्ग, जोकि ग्रामीण रीति रिवाजों के अत्याचारों तथा सामाजिक अन्याय एवं अक्षमता से मुक्त था, को इन "मिल टाउनों" में एक जैल श्रमिक की तरह देखा जाने लगा । इसके फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक असंतुलन के कारण उदभव हुई समस्या पैदा होने लगी । सामाजिक दृष्टि से मुख्य समस्या औद्योगिक समाजों में इनके स्तर से जुड़ी होती है । आर्थिक दृष्टि से यह स्वास्थ्य, आवास, समय, कार्य-दशाओं, लोककल्याण आदि समस्याओं से जुड़ी होती है । विपरीत कारखाना पर्यावरण आदि स्थितियाँ अधिकांश श्रमिकों को अपने गांव में रहने को ही बाध्य करती हे या जो कारखानों में कार्यरत है । उन्हें स्थायी या अस्थायी रूप से अपने घरो को लौटने के लिए बाध्य कर देती है ।

औद्योगिकीकरण के विकास विशेषकर प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान एवं बाद से दशाओं में परिवर्तन आया है । यह दो रूपों में अभिव्यक्त होता हें । प्रथम, भारत एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप में उभरा एवं द्वितीय भूमिहीन श्रमिकों में तेजी से वृद्धि हुई । फलत: इस श्रमिक वर्ग का अधिकांश भाग औद्योगिक केन्द्रों में जमा हो गया एवं वहां औद्योगिक वर्ग के रूप में स्थायी रूप से बस गया ।

भारतीय श्रमिक वर्ग की दशाओं में आये परिवर्तन को रेखांकित करते हुये रेगे समिति ने लिखा है कि जब "रोयल आयोग" ने श्रम पर उल्लेख किया कि भारत में सेवीवर्गी समूह न तो रूप से संगठित है और न ही उचित रूप से स्थापित है । इन आधुनिक वर्षो में सेवीवर्गी जनसंख्या का अधिकांश भाग औद्योगिक क्षेत्रों में केन्द्रित हो गया है, जिसके फलस्वरूप अधिकांश शहरों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का उदभव हुआ है, जो कि पहले की अपेक्षा आज शहरों में ज्यादा रहने को तैयार है । आपने न्यायोचित अधिकारों के लिए लड़ता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में अपनी जीविकोपार्जन में लगा रहता है । श्रमिक वर्ग उद्योग से जुड़े रहते है, जहां कार्य दशायें अच्छी हो वहां एक जगह से दूसरी जगह घूमते नहीं फिरते है । साथ वे अपने गांवों से भी सम्बन्ध बनाये रखते है । "लगभग इसी तरह की राष्ट्रीय श्रम आयोग की भी टिप्पणी रही है कि "औद्योगिक श्रमिक की स्थायीकरण की प्रवृति और ज्यादा मजबूत हुई है आज एक श्रमिक अपने पूर्वजों की अपेक्षा रूचियों एवं दृष्टिकोण में ज्यादा शहरी है । ग्रामीण सम्बन्ध में ग्राम्य आदर्श का विचार में पृष्ठ भूमि चला गया है । इस परिवर्तन के उत्तरदायी कारक निम्नलिखित रहे है -

1) नियोक्ताओं द्वारा औद्यौगिक श्रमिकों के हित में उठाये जाने वाले सकारात्मक कदम जैसे - नियमितता एवं उत्पादन पर प्रोत्साहित भुगतान ।

2) विभिन्न श्रम प्रावधानों के अन्तर्गत न्यूनतम सुविधाओं का होना तथा विभिन्न सामाजिक सुरक्षा कदम उठाये जाना ।
3) विभिन्न श्रेणी की नौकरियों का प्रादुर्भाव होना जैसे - कुशलता एवं अकुशल दोनों की तरह की नौकरियों की योजना । इसके परिणामस्वरूप शहरी परिवारों को युवावर्ग भी उद्योगों में काम पाने लगा ।

2.2.1 बागानों मे रोजगार

अर्थ व्यवस्था में बागान एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें श्रम की बहुत ज्यादा जरूरत पड़ता है तथा इनमें सारा श्रम शारीरिक होता है। बागानो चाय, काफी तथा रबड़ बागानों को लेते हैं, जो कि फसली क्षेत्र के 0.4 प्रतिशत क्षेत्र में फैले हुए हैं । ये मुख्यत उत्तरपूर्व एवं दक्षिण-पश्चिम तट के क्षेत्र फैले हुए है। घरेलू उपयोग "वृद्धि एवं इन उत्पादों के विदेशी बाजारों में विस्तार के कारण श्रमिकों की संख्या वृद्धि हुयी है । सन 1911 में बागान श्रमिकों की संख्या 7.4 लाख थी । सन 1921 यह 10 लाख एवं सन् 1961 में संख्या 12.2 लाख हो गयी सन 1971 में बागान श्रमिकों की संख्या का 8 लाख के लगभग अनुमान लगाया तथा 1981 में यह अनुमानतः 9 लाख रही तथा 1983 में 9.9 लाख 1986 में 7.9 लाख श्रमिक चाय में कार्यरत थे ।

बागानों में लगे श्रमिकों में जो स्वयं जीविकोपार्जन कर रहे है जो स्वयं कार्य पर निर्भर है उन्हीं को लिया गया है। अगर गैर-कार्य निर्भरों अर्थात् श्रमिकों पर निर्भर रहने वालों को गिना जाये तो बागान उद्योग पर निर्भर रहने वालो की जनसंख्या 5 मिलियन से कम नही होगी।

2.2.2 संचार क्षेत्र मे रोजगार

बागानों के बाद संचार समूह आता है, जिसमें रेलवे मुख्य नियोक्ता 1931 में परिवहन क्षेत्र के 28 लाख लोगों में से 636311 व्यक्ति केवल रेलवे में नियुक्त थे तथा अन्य विभिन्न प्रकार की अन्य ठेलागाड़ी, टांगा, इक्का आदि चलाने में लगे हुये थे । 1951 में परिवहन, संचार, गोदामों आदि में 20 लाख श्रमिक थे । जिनमें रेलवे परिवहन में 5.70 लाख थे तथा अन्य जल, पथ, वायु आदि परिवहन में लगे हुये थे । 1961 मे कुल 30 लाख लोग परिवहन, संचालन एवं गोदामों में लगे थे । 1971 मे यह संख्या 40 लाख थी । इनमें 196.1 में 11.6 लाख तथा 1971 में 13.7 लाख रेलवे में नियुक्त थे। 1981 में रेलवे में 15.7 लाख श्रमिक एवं 23 लाख आकस्मिक श्रमिक कार्यरत थे ।

2.2.3 बन्दरगाहों में रोजगार

बन्दरगाहों पर विभिन्न अभिकरणों जैसे - बन्दरगाह ट्रस्ट या बन्दरगाह आयुक्तों के द्वारा रोजगार प्रदान किया जाना है। साथ ही यहां रोजगार प्रदान करने वालो में कोयला प्रतिष्ठान, नौका मालिक, जहाज मरम्मत एवं रंगरोगन प्रतिष्ठान एवं ठेकेदार भी होते है । भारतीय श्रम सांख्यिकी 1977 (1979) पृ. 56, तथा भारतीय श्रम की पुस्तक 1987 के

अनुसार कलकत्ता बन्दरगाह सबसे ज्यादा श्रमिकों को प्रदान करता है । इसके बाद मुम्बई का नम्बर आता हैं । फिर चेन्नई, विशाखापटनम, मारमुगोवा तथा कांडला में श्रमिकों को रोजगार तुलनात्मक रूप से कम मिला है ।

2.2.4 खानों में रोजगार

रोजगार की दृष्टि से खनन एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है । खनन सम्पदा दृष्टि से भारत एक समृद्ध देश है । भारत में बिहार, उड़ीसा, पं. बंगाल, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा मध्य प्रदेश में महत्वपूर्ण खनन केन्द्र है । अत: इन क्षेत्रों में बहुत बड़ी संख्या में बाहर से, आकर काम करने वाले श्रमिक काम करते है । 1901 में खनन में 104.48 हजार श्रमिक कार्यरत थे जो 1950 में बढ़कर 305.24 हजार, 1960 में 652.06 हजार, 1976 में 748 हजार तथा 1983-84 में 773.96 हजार हो गए । यह उल्लेखनीय है कि 1901 से 1984 तक के सभी वर्षों में खानों के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों की संख्या अधिक थी तथा खानों के ऊपर काम करने वालों की संख्या कम थी ।

दुकानों एवं प्रतिष्ठानों मे रोजगार

प्रतिष्ठानों, रेस्तराओं, थियेटरों तथा दुकानों में भी श्रमिकों को रोजगार मिलता है । 1961 में इन स्थानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या 20.96 लाख थी । 1971 में यह 31.12 लाख, 1980 में यह 47.33 लाख रही है ।

2.3 कार्यबल में महिलायें

भारत के श्रम बाजार में बहुत सी शक्तियाँ महिलाओं की अपेक्षा पुरूषवर्ग को पक्षधर है। इनमें मुख्य निम्न है

1. महिलाओं के रोजगार के विरूद्ध सामाजिक पूर्वाग्रह
2. यह भावना कि महिला श्रमिकों के कार्य समय के दौरान एवं बाद में विशेष संरक्षण एवं सुविधायें प्रदान करनी होगी ।
3. कपास, जूट एवं रेशम वस्त्र उद्योगों आदि मे उन्नत तकनीक के, प्रयोग के फलस्वरूप काम स्वत होने लगा। फलन: महिलाओं को रोजगार से बाहर रहना पड़ा । साथ ही इन्हे जो शिक्षा मिलनी चाहिये, जो महिला श्रमिकों नही मिल रही है ।
4. रात की पारी में महिलाओं के रोजगार पर प्रतिबन्ध ।

उपर्युक्त बाधाओं के, होते हुए भी महिला रोजगार में वृद्धि हो रही है ।

विगत के साथ दशाओं में बहुत मामूली गिरावट के साथ भारत में कार्यशील जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक कृषि या उससे जुड़े पेशों में लगा हुआ है । हाँलाकि द्वितीयक क्षेत्र में लगे श्रमबल का प्रतिशत 1950 के उपरान्त बढ़ रहा है। किन्तु कुल संख्या 1901 की अपेक्षा कम ही रही है । तृतीयक क्षेत्र के पेशे में श्रम बल 16 प्रतिशत से अधिक रहा है । द्वितीय एवं वृद्धि क्षेत्र इस रफ्तार से आगे नहीं बढ़ रहे है कि वे अतिरिक्त भू-श्रमिकों को रोजगार दे सके । इसका तात्पर्य यह है कि ये क्षेत्र इतने पर्याप्त तेजी से विकसित नहीं हुए है कि वे प्राथमिक क्षेत्र मे हिस्सेदारी बांट सके।

2.4 श्रम अर्थशास्त्र का महत्व

देश की बदलती –औद्योगिक तस्वीर के साथ नये औद्योगिक शहरों का विकास एवं गतिविधियों की विविधता, श्रमिकों में औद्यौगिक सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । नये कार्यकारी वर्ग क्षेत्र अस्तित्व में आने लगे तथा पुराने विस्तृत होने लगे । राष्ट्रीय श्रम आयोग की टिप्पणी है कि - "हमारी मुलाकातें यह स्पष्ट करती है कि श्रमिकों के दैनिक जीवन में परिवर्तन आया है । जिसका हमें उल्लेख करना होगा । यद्यपि उनमें संख्यात्मक निश्चितता का आभाव है तथा वे कुछ आभास पर आधारित है फिर भी भारतीय परिदृश्य पर समग्र रूप से लिखने वाले सामाजिक पर्यवेक्षक के विविधताओं अध्ययनों से वे पुष्ट होती है । "भारतीय श्रमिक: वर्ग की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है -

1. औद्योगिक श्रम की सामाजिक रचना

प्रारम्भ में, कारखानों, खानों एवं बागवानों में मुख्यत: श्रम बल समाज के निम्नवर्ग दलित वर्ग एवं अभाग्यशाली वर्ग आता था । किन्तु आज श्रमिक अन्य समुदायों तथा जातियों जैसे - ब्राह्मण राजपूत, वैश्य, आदि से भी आ रहा है । इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय श्रम आयोग के मत का उल्लेख करना उपयुक्त होगा । "चाहे कोई भी कारण रहें हो श्रमिकों के मध्य एक व्यापक समानता की भावना विकसित हुयी है । साथ ही यह हमें एक तरफ पर्यवेक्षकों के समूहों के मध्य तथा दूसरी तरफ श्रमिकों के मध्य स्पष्ट दिखायी देती है । यद्यपि कुछ औद्योगिक शहरों में कम्पनी यातायात या मेडिकल - या मनोरंजन सुविधाओं के संदर्भ में अन्य स्टाफ सदस्यों के मध्य पायी जाने वाली विभिन्नताओं के प्रति भी श्रमिक सचेत हो रहे है । श्रमिक अपने बच्चों को अधिक से अधिक विद्यालयो या महाविद्यालयों में भेजने लगे हें । कई ऐसे उदाहरण है । जहाँ कारखानों के श्रमिकों के बने इंजिनियर, डॉक्टर, लेखाकार गया अध्यापक बनकर निकले है तथा इनकी संख्या बढ़ रही है । इन सभी ने एक प्रकार से सामाजिक सम्मिश्रण में योगदान दिया है ।

2. श्रमिक लिंग रचना.

प्रारम्भिक अवस्था में, कारखानों के कार्य स्थलों में मुख्यत पुरूषों की ही बहुतायत होती थी । किन्तु अब औद्योगिक कामों में, कुशल एवं अकुशल दोनों ही तरह के कामों में महिला श्रमिकों भी संख्या बढ़ रही है । प्रारम्भ में महिलायें मुख्यत: बागानों एवं वस्त्र उद्योग तक ही सीमित थी । किन्तु आज कारखानों में काम करने वाली मध्यम वर्ग की युवा लड़कियों की संख्या बढ़ रही है । यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि 1971 में कलकारखानो में 37000 तथा बागानों में 3, 77,000 महिलाएं काम करती थी उनकी संख्या बढ़कर 1986 में क्रमश. 471,000 तथा 407,000, हो गयी । महिला रोजगार के बारे राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना है कि "कुछ स्थितियों में तो काम करने की आर्थिक बाध्यता है, किन्तु बहुत सी अन्य स्थितियों में अपने जीवन स्तर कों सुधारने की आकांक्षा तथा पति-पत्नी दोनों काम करके कुछ अतिरिक्त वस्तुओं की प्राप्ति के कारण काम किया जाता हैं ।"

3. जनजातीय श्रम का उद्भव

औद्योगिक श्रम में जनजातीय श्रम की संख्या काफी हो गयी है । राष्ट्रीय श्रम आयोग की टिप्पणी रही है कि 19 वीं सदी के अंत में वन सम्पदा एवं कोयला मैगनीज तथा लौह अयस्क की खानों का शोषण के साथ जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी थी, वह स्वतंत्रता उपरान्त जनजातीय क्षेत्रों में कारखानों की स्थापना के साथ ओर तेज हो गयी । इस प्रक्रिया ने जनजातीय क्षेत्रों के शहरीकरण की ओर अग्रसित किया । उन्नत औद्योगिक प्रतिष्ठानों' के लिए भूमि अधिग्रहण की जो क्षतिपूर्ति दी गयी, उससे थे सन्तुष्ट नही थे । अतः ये परिवार विस्थापित हुए । वे यह चाहते थे कि उनके पुन: लोगों को उद्योगों में रोजगार मिले ।

4. सामाजिक सुरक्षा एवं लोककल्याण की सुविधायें

औद्योगिक श्रमिकों आज जो सामाजिक सुरक्षा एवं लोककल्याणकारी सुविधायें मिली हुयी है, विगत मे वें उन्हें प्राप्त नही थी । पहले कुछ सुविधायें थी भी तो वे या तो धर्मार्थ संस्थाओं द्वारा दी गयी या नियोक्ताओं की दया की देन थी । किन्तु औद्योगिक श्रमिक आज इन सुविधाओं का उपभोग एवं अधिकार: के रूप में कर रहा है । जव से ये सुविधायें वैधानिक प्रावधानों के तहत प्रदान की गयी, ये सुविधायें अधिकार बन गयी है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने लिखा है कि व्यापक जनसंख्या एवं अपर्याप्त स्त्रोतों के साथ लोककल्याणकारी राज्य जो सुविधायें प्रदान करता है, उनका वह उपयोग करता है, चाहे वे कल ही क्यों न हो । उसे सामाजिक सुरक्षा की सुविधा मिला हुयी है ।

5. सेवा सुरक्षा

भूत में, वैयक्तिक औद्योगिक श्रमिक की सेवा दशा बहुत सन्तोषजनक था । उसे नियोक्ता जब चाहे तब सेवा से मुक्त कर सकता था । किन्तु आज औद्योगिक श्रमिकों के एक बार सेवा में आने के बाद उसकी सेवायें ज्यादा सुरक्षित है । जैसा कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने लिखा है, "वह एक बार प्रवेश करने पर अपने रोजगार में सुरक्षित है । उसे न्यायोचित तरीके से सेवामुक्त नही किया जा सकता है उसे सेवामुक्ति या स्थायी छंटनी के विरूद्ध वैधानिक सुरक्षा मिली हुयी है ।"

6. धन प्राप्ति

राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा कहा गया है कि श्रमिक धन प्राप्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है । आज उसे अपने जीवन से सम्बन्धित बहुत सी सुविधायें मिली हुयी है । ये या तो कानूनों द्वारा प्रदान की गयी है या नये उद्योगों की स्थितियों द्वारा दी गयी सुविधाये होती हैं ।

7. उपभोग - प्रारूप

भारत के औद्योगिक श्रमिक की भोजन रूचियाँ तथा उपभोग प्रारूप में परिवर्तन आया है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने लिखा है कि "कई केन्द्रों पर श्रमिकों के घरों में प्रचलित उपभोग प्रारूपों महत्वपूर्ण परिवर्तन आया हैं । विज्ञान का अपेक्षा आज बना बनाया खाना सामान्य प्रचलन में हो गया है । बेकरिज का बहुत प्रयोग होने लगा है । पहुँच उन क्षेत्रों में भी हो गयी है, जहां कि गेहूँ एवं गेहूँ से बने खाद्य पदार्थ केवल उच्च वर्ग के लोगो के लिए ही सीमित होती थी ।" खाना पकाने की विधि बदल गयी है । लकड़ी एवं गोबर की जगह खाना बनाने में तेल, ईंधन, मिट्टी तेल तथा प्रेशर स्टोव काम में आने लगे है ।

8. जीवन एवं आवास दशायें

औद्योगिक श्रमिकों के लिए उन्नत आवास सुविधा प्रदान करने के लिए कारखानों के श्रमिकों हेतु रियायती दर की औद्योगिक आवास योजना बनायी गयी है । कोयला एवं अभ्रक खानों, बागानों एवं बन्दरगाहों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए लोककल्याण कोष की स्थापना की गयी है । किन्तु प्रदान किये गये मकान बहुत सीमित है दोनों श्रेणी के श्रमिकों को मकान उपलब्ध करवाने की दिशा में कम ही रही है । इस अल्प सुविधा के संदर्भ में भी राष्ट्रीय आयोग ने परिवर्तन का उल्लेख किया है । प्रथम स्थान पर उसने लिखा आज का औद्योगिक श्रमिक अपने आपको साफ रखने का प्रयास करता । इसके अतिरिक्त वास्तविक परिवर्तन घरो के अन्दर दिखायी देते है । मिट्टी के बर्तनों का स्थान एलुमेनियम एवं पीतल के बर्त्तनों ने ले लिया है । क्रोकरी का होना असामान्य बात नही रह गयी है । साथ ही फर्नीचर के उपकरण जैसे चारागाह, टेबल, मच्छरदानी भी मिलने लगी है । रेडियों/ट्रांजिस्टर, घड़ियों का होना आज केवल लोगों तक ही सीमित नहीं रह गया है ।

9. सामाजिक दृष्टिकोण

मनोरंजन ने एक भिन्न रूप ले लिया है । धार्मिक खेल एवं भजनों का स्थान एक भिन्न सामाजिक संदर्भयुक्त नाटकों ने ले लिया । प्रतियोगितायें, इन्डोर एवं आउटडोर खेल तथा राजनीतिक विषयों पर भाषण श्रमिकों को आकर्षित करने लगे है । "में पहले की अपेक्षा समुदाय की सहभागिता बढ़ी है । आज बच्चों को ईश्वर की देन नहीं माना जाता है । परिवार नियोजन को लोग अपनाने लगे है । आज श्रमिक की यह आदत बन गयी है कि अगर वह बीमार है तो अपना इलाज करवाने स्वयं जाता हैं ।

10. सामाजिक बाधाओं का दूर होना

सामाजिक बाधायें दूर हो गयी है । आज यह एक सामान्य बात हो गयी है कि एक जुलाह या बुनकर का बेटा-बेटी रसायन अथवा दवा उद्योग में अग्रिम पीढ़ी के साथ काम कर रहा है । जहां पहले उस अग्रिम पीढ़ी के बच्चों का कारखानों में मिलों में लिपिकीय या पर्यवेक्षण श्रेणी के अलावा कार्य को वर्जित माना जाता था । इस परिवर्तन का प्रभाव न केवल कार्य स्थल पर दिखायी देता है । वरन् यह घरों में दिखायी देने लगा है जहां कमाने वाले सदस्य अपने से वरिष्ठ लोगों के परिवारों से समानता स्थापित करने लगे है । अपने कार्य स्थल पर अपने साथियों में आपसी सामाजिक, मेल-जोल करने लगे है । राष्ट्रीय श्रम आयोग ने लिखा है कि "आधुनिक उद्योगों में काम करने के लिए श्रमिकों में जो उच्च कौशल एवं शैक्षणिक आवश्यकताओं की जरूरत होती है, उसने एवं अच्छे वेतन ने शारीरिक श्रमिकों एवं गैर शारीरिक श्रमिकों के परंपरागत भेदों को खत्म कर दिया है ।" अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चाहे जो कारण रहे हों श्रमिकों के, मध्य एक व्यापक समानता की भावना विकसित हुयी है। साथ ही यह एक तरफ पर्यवेक्षक समूह एवं दूसरी तरफ श्रमिकों के मध्य भी दिखायी देती है।

2.5 बाल श्रम

1946 में जब श्रम जाँच का उल्लेख किया गया था, उसकी अपेक्षा बालश्रम के प्रयोग में कमी आयी है । किन्तु आज भी यह कुछ रोजगारों में व्याप्त हॉलाकि इसका प्रयोग क्षेत्र एक

जगह से दूसरी जगह भिन्न-भिन्न पायी जाती है । बालश्रम मुख्यत: कृषि, बागान, दुकानों तथा अन्य छोटे एवं असंगठित क्षेत्रों में पाया जाता है । साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि हम यह नही कर सकते है कि उद्योगों के संग्रहित क्षेत्र भी तरह बालश्रम नहीं पाया जाता है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय श्रम आयोग: ने लिखा है कि अभ्रक खानों में बच्चे आज काम करते है । 1944-46 भी तुलना में कुल श्रम के अनुपात में यह आज बहुत कम है । असंगठित क्षेत्र में जिस तरह से बाल श्रमिकों का प्रयोग होता है, वह स्थिति चिन्ताजनक है । हर स्थिति में जहां जुलाहे मुख्य । जुलाह के साथ काम करते है । वहां उन जुलाहों के हाथ, स्कूल जाने की आयु में उसकी सहायता करते है ।" बच्चे मुख्य जुलाहा के कर्मचारी नहीं होते है, किन्तु वे कर्मचारियों सहायता करते है । उनसे जो कुछ पैसा मिल जाये, उसे वे ले लेते है । देश के भागों में गलीचा बुनवायी में तथा सब जगह बीड़ी उद्योग में बच्चों को लगाया जाता है ।

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

माइरस, सी.ए. : इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स इन इंडिया, 1958

रिचर्डसन, जे.एच. : एन इन्ट्रोडुक्शन टु दि स्टेडी ऑफ इन्डस्ट्रीयल रिलेशन्स, 1958

त्यागी, एस.पी. : लेबर इकोनोमिक्स एण्ड सोसियल वेल्फेयर, 199०

मामोरिया, सी.बी. एण्ड सतीश : डायनामिक्स ऑफ इंडरट्रीयल रिलेशन्स तृतीय संशोधित संस्करण, 1991

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रम अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं ? इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये ।
2. श्रम अर्थशास्त्र के क्षेत्र एवं महत्व का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये ।
3. श्रम अर्थशास्त्र के अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व पर विस्तृत लेख लिखिये ।

इकाई 3

श्रम बाजार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 श्रम बाजार के प्रतिरूप

3.2 श्रम बाजार की गतिशीलता

3.3 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में श्रम बाजार का द्वेतवाद

3.4 भारत में श्रम बाजार

3.4.1 कृषि क्षेत्र

3.4.2 कृषितर क्षेत्र

3.4.3 विशिष्ट समूह

3.4.4 स्थानीय श्रम बाजार

3.5 शब्दावली

3.6 निबन्धात्मक प्रश्न

3.7 संदर्भ सूची

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य निमांकित जानकारी प्राप्त करना है :

- o श्रमिक बाजार के प्रतिरूप –पूर्ण प्रतिस्पर्धा, एकाधिकार, और द्विपक्षीय एकाधिकार में मजदूरी निर्धारण ।
- o श्रमिक बाजार की गत्यात्मकता - श्रमिक बाजार की गत्यात्मकता के सम्बन्ध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गये विचार ।
- o कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिक बाजार का द्वैतवाद-कारण, विभिन्न स्वरूप
- o भारत में श्रमिक बाजार - मजदूरी के निर्धारक, रोजगार प्रतिरूप और के क्षेत्र, कृषतिर क्षेत्र, विशिष्ट समूहों और स्थानीय श्रमिक बाजार में बेरोजगारी की घटना ।

3.1 श्रम बाजार के प्रतिरूप :

श्रमिक बाजार के व्यवहार की 4 सामान्य स्थितियाँ है, जो कि मांग आपूर्ति वक्रों के ढाल पर आश्रित है । इन स्थितियों को रेखाचित्र 1 में प्रदर्शित किया गया ।

रेखाचित्र 3. 1 प्रतिस्पर्धा बाजार में मजदूरी निर्धारण का चित्रण है, जहॉ यह माना

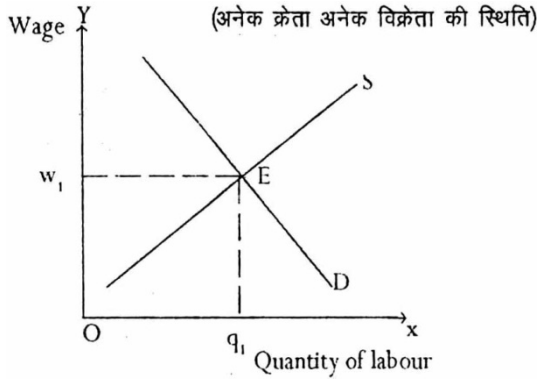

पूर्ण प्रतिस्प्रर्धा बाज़ार में मजदूरी निर्धारण

रेखाचित्र 3.1

जाता है कि श्रम के कई क्रेता और विक्रेता है । बिन्दु E पर, जहां मांग वक्र D और आपूर्ति वक्र S प्रतिच्छेछित होते है, मजदूरी-दर W1 और श्रमिक परिमाण Oq1 के सन्तुलन स्तर ज्ञात किये जाते है । रेखाचित्र 3.2 मजदूरी निर्धारण को इस स्थिति में प्रदर्शित करता है, जिसमें कि एकाधिकारवादी है जो कि श्रम-आपूर्ति को नियन्त्रित करता है । श्रम-बिन्दु को निर्धारित किया जाता है। अब मांग वक्र D के संगत बिन्दु a2 पर मजदूरी-दर निर्धारित किया जाता है जो कि बदले में मजदूरी दर W2 निर्धारित करता है । इन दो स्थितियों को तुलना से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि एकाधिकार के अधीन मजदूरी दर W1 पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अधीन मजदूरी दर W1 से अधिक होती है । एकाधिकार के अधीन श्रय आपूर्ति oq2 निमन्तर तथा पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अधीन यह oq1 उच्चतर होती है ।

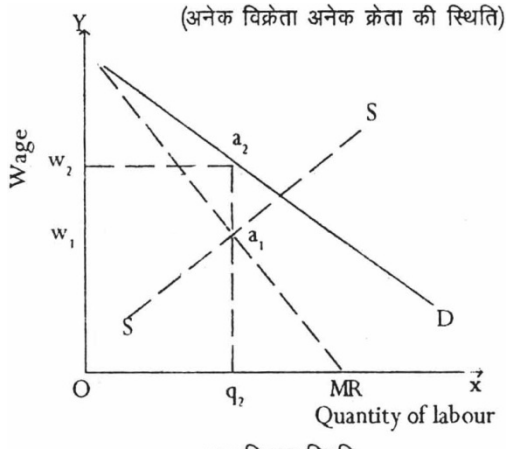

एकाधिकार स्थिति

रेखाचित्र 3.2

एक क्रेताधिकार के अधीन मजदूरी-निर्धारण रेखाचित्र 3.3 में द्वारा स्पष्ट किया गया है। एक क्रेताधिकारवादी स्थिति में एक क्रेता और कई विक्रेता होते है । श्रम की सीमांत लागत और उत्पाद की सीमांत आय (D=MR) के प्रतिच्छेदी बिन्दु b1 को ज्ञात किया जाता है। MC वक्र पर बिन्दु पर b1 के संगत आपूर्ति वक्र S पर बिन्दु B2 है, जे कि मजदूरी पर W3 और श्रम परिमाण oq3 निर्धारित करता है । एक क्रेताधिकार की तुलना में आपूर्त श्रम की मजदूरी

दर प्रतिस्पर्धा की स्थिति में अधिक होती है, एकाधिकार की अपेक्षा एक क्रेताधिकार में मजदूरी की दर कम होती है ।

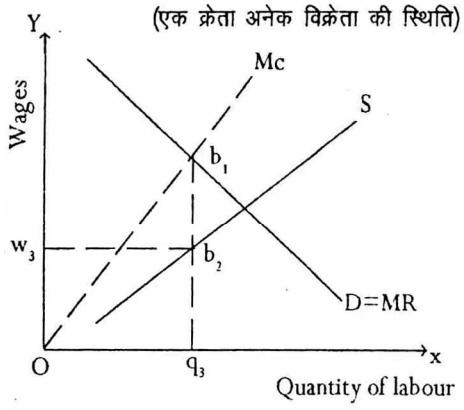

एक क्रेताधिकार की स्थिति
रेखा चित्र 3.3

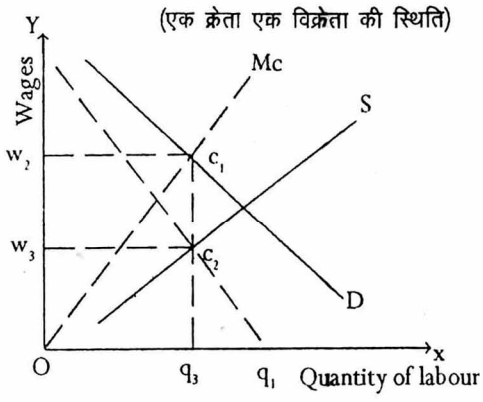

द्वि–पक्षीय एकाधिकार
रेखा चित्र 3.4

द्विपक्षीय एकाधिकार के अधीन मजदूरी और श्रम की मांग और आपूर्ति रेखाचित्र 3.4 में प्रस्तुत किया गया है । एकाधिकारवादी बिन्दु C1 पर सीमांत लागत और श्रम की मांग को समान रखने है, वे मजदूरी दर W2 और श्रम परिमाण oq3 को मजदूरी-दर W3 पर क्रय करना पसन्द करता है क्योंकि उसके लिए भी संगत बिन्दु C1 है, लेकिन, आपूर्ति वक्र में C1 का संगामी बिन्दु C2 है । अत: क्रेता परिमाण oq3 के लिए मात्र W3 मजदूरी दर अदा करने के लिए ही उद्यत है । स्पष्टत: जिस श्रम-परिमाण को मजदूरी W2 पर विक्रय करने के लिए एकाधिकारवादी तैयार है, उसी परिमाण को वह मजदूरी दर W3 पर क्रय करने के लिए तत्पर है । इसके परिणमस्वरूप, बेचे जाने वाले और खरीदे जाने वाले मजदूरी के परिणाम में समझौता होने के बावजूद दोनों प्रस्तावों के मध्य अन्तराल है, इसको सामान्यत अनिर्धारण स्थिति का मण्डल कहते है । ऐसी स्थिति में मजदूरी-दर का निर्धारण दो पक्षों की सापेक्ष रियायती सौदेबाजी की शक्ति द्वारा होता है।

3.2 श्रम बाजार की गतिशीलता :

श्रमिक/श्रम-बाजार की गतिशीलता का अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वार गये विचारों के अध्ययन से किया जा सकता है । क्लार्क कर द्वारा अभिव्यक्त विचार के अनुसार श्रम बाजार संरचना और गतिशीलता[2] में लगभग असीमित रूप से परिवर्तित होते है । प्रोफेसर कर[3] सामान्य श्रम बाजार के पाँच प्रतिरूप प्रस्तुत करते है ।

1. पूर्ण बाजार :- यह पूर्ण प्रतिस्पर्धा श्रम बाजार का प्रतिरूप है। इस बाजार के अभिलाक्षणिक गुण इस प्रकार है- स्वतन्त्र प्रवेश और निकास, पूर्ण ज्ञान, कई और विक्रेता, दुरभि संधि की अनुपस्थिति । मजदूरी बाजार जाब बाजार है और संसाधान- में उपभोक्ता का सर्वोच्च स्थान होता है । मांग और आपूर्ति बाजार की निकासी के लिए करते है तथा मजदूरी चालू रहती है ।

श्रम-बाजार का यह प्रतिरूप वास्तविक विश्व की कुछ अपूर्णताओ को देना है । कर्मचारी परस्पर भिन्न होते है संघों का अस्तित्व होता है किन्तु वे मजबूत होते । अकुशल कारीगर अपनी विकारीय सेवाओं के कारण असुविधाजनक स्थिति में होते है । फिर भी श्रम बाजार मजदूरी निर्धारण का प्रमुख निर्धारक होना है और कामगारों को गतिशील माना जाता हैं । अतिरिक्त समय भत्ता स्पर्धात्मक स्तर की ओर प्रवृत्त होता है, संसाधन विनिधान अधिकतम पर पहुंचता है औंर उपभोक्ता अपना प्रभुत्व बनाये रखता है ।

2. प्राकृतिक बाजार

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले और उसके बाद अर्थशास्त्रियों ने पाया कि इस बात के परीक्षण के लिए पर्याप्त सबूत है तथा यह कहना अधिक सही है कि किसी टकराव की अनुपस्थिति में मजदूरी दर के बड़े बिखराव के कारण मजदूरी दरें एक दूसरे के विपरीत होने के बजाय असमानता की ओर प्रवृत्त होती है । कामगार के जॉब के लिए बाजार कुपरिभाषित है । क्योंकि, वैकल्पिक जॉबों के विषय में उसका ज्ञान बहुत कम है । कामगार का विचार बाजार के विषय में ज्ञान की कमी और सीमित आमधारणा के कारण सीमित होते है । अब प्रभुता से मुक्त रूप से उपभोक्ता और नियोक्ता की होती है, मजदूरियां प्रतिस्प्रधात्मक स्तर पर समान रूप से तय नहीं होती और सर्वोत्तम रूप में संसाधनों का उपयोग नहीं होता जॉब के बाजार की संक्रिया मजदूरी तय नहीं करती । किन्तु, मजदूरियों को निश्चित करने की सीमायें तय करता है तथा इन सीमाओं के अन्तर्गत विशिष्ट मजदूरी स्तरों को प्रभावित करती है ।

3. संस्थागत बाजार

श्रम-बाजार के इस प्रतिरूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मजदूरी आन्दोलनों के स्त्रोत के रूप में संघों, नियोक्ताओं और सरकार की नीतियों को बाजार शक्ति परम्परागत क्रिया के लिए प्रतिस्थापित किया जाता है । मजदूरी बाजार और जॉब बाजार असंयुक्त अवस्था में अलग अलग चलते है । श्रमिक सीमित जॉब बाजार में रोजगार प्राप्त और बेरोजगार होते है । किन्तु मजदूरी बाजार बलात् तुलनाओं का चक्र होता है । मजदूरी-बाजारों की. अन्तर्सम्बन्धता के प्रमुख आधार के रूप में भौतिक गति को संस्थागत और नेतृत्व की तुलनाओं से प्रतिस्थापित किया जाता है । अब एकल मजदूरी बाजार की शक्तियों के बजाय नीतियों के परिणाम के रूप में अस्तित्व में है । संघों और नियोक्ता समूहों की नीतियों के साथ साथ उपभोक्ता-विकल्प संसाधन-आबंटन को परिवर्तित करते है ।

4. प्रबन्धित बाजार

श्रम-बाजार के इस प्रतिरूप को अभी अभी उन अर्थशास्त्रियों ने प्रस्तुत किया है जिनका विश्वास है कि वास्तविक विश्व-श्रम बाजार बहुत अपूर्ण है । आधारिक रूप में प्रस्तुत प्रबन्धित बाजार के दो प्रकार है । एक अनिवार्य व्यक्तिवाद है- व्यावसायिक संघों को दृढ़ता से सीमित करने या व्यावसायिक संघों के उन्मूलन और प्रबल ट्रस्ट विरोधी अभियोजनों द्वारा उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए श्रम बाजार को प्रतिस्पर्धा में लौटना चाहिए । प्रबन्धित बाजार का दूसरा प्रकार सामुहिक निर्धारण है । सामूहिक सौदेबाजी को सार्वजनिक अधिकारियों

द्वारा मजदूरी निर्धारण से प्रतिस्थापित कर मजदूरी-व्यवस्थापन होना चाहिए । दोनों स्थितियों में निजी नियन्त्रण को आंश्रिक या पूर्ण रूप में राज्य-नियन्त्रण प्रतिस्थापित करता है ।

संस्थागत बाजार सर्वाधिक सामान्य है । पाश्चात्य देशों में इसने पर्याप्त महत्व अर्जित किया है । इस बाजार के विश्लेषण को नव क्लासिकी प्रतिरूपों के विकल्प के रूप में देखा गया है, रेनॉल्डस के अनुसार श्रम बाजार के नव क्लासिकी प्रतिरूपों का मूल्यांकन उनकी भविष्यवाणियों और इन भविष्यवाणियों की घटनाओं से संगति के आधार पर किया जाना चाहिए । उनका यह भी कथन है कि सरलीकृत प्रतिरूप की सही आलोचना यह नहीं है कि वह गलत है बल्कि यह है कि वह सीमित और अपूर्ण है । "जिस सरल ढांचे के अन्तर्गत यह संक्रिया करता है, उसके कारण ऐसे कई पक्ष है जिनको यह प्रकाशित नही कर सकता ।" इस प्रकार रेनॉल्ड श्रम बाजार का अधिक जटिल प्रतिरूप प्रस्तावित करता है । इस प्रतिरूप के गुण इस प्रकार है-

1. श्रम-मांग बारम्बार विवर्तित होती है ।
2. श्रम-आपूर्ति विसमांगी है ।
3. श्रम-बाजार की सूचनायें अपर्याप्त है ।
4. श्रम-गतिशीलता सीमित है ।

उनके प्रतिरूप में कामगारों और जॉबों के प्रवाह और स्टॉक का समावेश किया गया है । इस प्रतिरूप को रेखाचित्र 3.5 में प्रस्तुत किया गया है ।

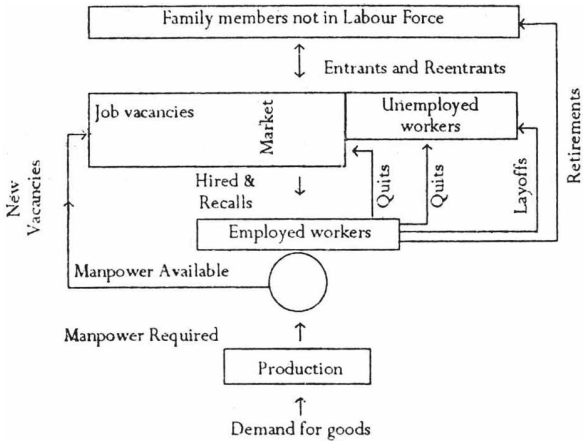

रेखाचित्र 3.5

अर्थव्यवस्था मे माल और सेवाओं की मांग श्रम की मांग को सदर्शित करती है । श्रम का स्त्रोत कुटुम्ब (परिवार के सदस्य) है । कामगारों का माँग और आपूर्ति की ओर से संचलन, त्यजन, कामबन्दी, अवकाश ग्रहण नव नियुक्तों के परिणाम स्वरूप जॉब-सर्जन और बेरोजगारी में पारस्परिक सम्बन्ध को अनुक्रम चार्ट में प्रस्तुत किया गया है । इस प्रतिरूप के प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. सामान्यत : बेरोजगार कामगार और जॉब रिक्तियाँ बड़ी संख्या में सह-अस्तित्व में होती है।

2. चार्ट में प्रवाह स्वतन्त्र न होकर परस्पर मजबूती से अन्तर्सम्बन्धित है । यह व्यवस्था इस अर्थ में निषेधात्मक प्रतिपुष्टि को प्रदर्शित करती है कि स्वयमेव ही बेरोजगारी; स्तर को बढ़ाने या कम करने के साथ बेरोजगारी उन दूसरे परिवर्तनों को लाती है जोकि बेरोजगारी को पूर्व स्तर में संचालित करने में प्रवृत्त है ।
3. बाजार से होकर लोगों के सकल प्रवाह की तुलना में बेरोजगार कामगारों और रिक्तियों के स्टॉक में निवल परिवर्तन बहुत कम है ।

ऐसे कई कारक है जो कि नियोक्ता के अन्वेषी व्यवहार को प्रभावित करते है तथा आन्तरिक श्रम बाजार का प्रत्यय और संगठन में विकसित चयन प्रक्रम । डनलॉप[6] के अनुसार आन्तरिक और बाह्य श्रम बाजारों के मध्य प्रत्यक्ष जुड़ाव ही घटना केवल पत्तनों पर ही होती हैं उनका यह भी कथन है कि ऐसे पत्तन बहुत सीमित है और कलान्तर में संगठन में परिवर्तन अथवा सामूहिक सौदेबाजी में व्यावहारिक परिवर्तन से परिवर्तित होते है । ऐसे नियम और प्रक्रम है जो कि संगठन में 'अन्त: जॉब गति को शासित करते है तथा उनके द्वारा आन्तरिक श्रम बाजार परिभाषित किया जाता है, लेकिन साथ ही, चयन प्रक्रम को विभेदक के रूप में ऐसे युक्तसंगत बनाया जाता है जो कि सापक्षेत: जो बमों अधिक उत्कृष्ट निष्पादन की योग्यता तथा आगे प्रशिक्षण की अभियोग्यता रखने वाले कर्मचारी के अनुकूल हो । नियोक्ता का व्यवहार कामगार के खोज से भी प्रभावित होता है । प्राकल्पित है कि "सामान्यत: कामगार के पास किसी एक समय में एक जॉब का प्रस्ताव होता है, जिसको वह स्वीकार अथवा स्वीकार करने के लिए बाध्य है ।" इसलिए उसको निर्णय के लिए कसौटी की आवश्यकता होती है कि उसको प्रस्ताव स्वीकार करना है अथवा अस्वीकार । इस कसौटी का निर्धारण निरन्तर बेरोजगारी के मूल्य को निरन्तर खोज के सम्भावित लाभ से तौलने पर किया जाता है ।

3.3 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं मे श्रम बाजार का द्वैतवाद

कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं में द्वैतवाद की उपस्थिति के कई कारक है । श्रमिक बाजार में द्वैतवाद के कारणों को सेन' ने अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है और वे इस प्रकार है-

1. श्रमिक की कार्य अधिमान्यतायें: श्रमिक वास्तव में दूसरे सेक्टरों की अपेक्षा किसी एक सेक्टर को तरजीह देता है, यथा भूमिधर के कृषि कार्य को शहरी क्षेत्र में रोजगार की अपेक्षा अधिमान्यता देना ।
2. श्रम आपूर्ति में अविभाज्यतायें : एक श्रमिक आधे समय अपने खेत में और आधे समय किसी उद्योग में कार्य करने को तरजीह दे सकता है किन्तु उद्योग की स्थिति की भौतिक समस्याओं और उसकी संगठनात्मक समस्याओं के कारण वह ऐसा नही कर सकता ।
3. परिवार की आय की भागीदारी का ह्रास: अपने फार्म से दूर होने की स्थिति में किसी व्यक्ति के परिवार की आय में उसकी भागीदारी का ह्रास अन्तर्भवित हो सकता है ।
4. श्रम विधि निर्माण और संघ का दबाव: यह संगठित और असंगठित सेक्टरों में मजदूरी के अन्तर की संस्थागत सीधे ही प्रस्तुत करता है ।

5. मजदूरी की अदायगी के लिए नियोक्ता का प्रोत्साहन: अनिश्चित परिस्थितियों के दबाव में, नियोक्ता श्रमिक के न्यूनतम दर पर भरती करने की अपेक्षा अधिक मजदूरी देने पर अधिक सुविधा की स्थिति में रहता है ।

कम विकसित आर्थिक व्यवस्थाओं में द्वैतवाद के विभिन्न स्वरूप मिलते है । यहां ऐसे तीन आदर्श प्रकारों यथा ग्रामीण श्रम बाजार, अनौपचारिक बाजार और संगठित औद्योगिक श्रम बाजार की व्याख्या की जा रही है ।

मजूमदार के अनुसार कम विकसित आर्थिक व्यवस्थाओं के ग्रामीण क्षेत्रों में दो श्रम बाजार औपचारिक और अनौपचारिक सेक्टर है । 'इन दोनों सेक्टरों में बुनियादी अन्तर इस विचार पर है कि किसी आशय अथवा किसी आशयों से औपचारिक सेक्टर में नियोजन संरक्षित होता हैं । जिससे कि सामान्यत : बाजार में जॉब ढूंढने वालों को इस सेक्टर में मजदूरी-स्तर और नियोजन शर्ते उपलब्ध नहीं होती । जब तक कि वे प्रवेश की रुकावट को किसी भी प्रकार से पार करने की व्यवस्था न कर दें । इस प्रकार का संरक्षण व्यावसायिक संघों, सरकारों अथवा दोनों के कार्यों से होत है । वे, आगे कहते है कि नियोजन में असंविदाकारी सम्बन्ध की कमी, जो कि सेक्टर के प्रमुख अंगों का गुण है, मजदूरी के उच्च प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करती है । सेक्टर में प्रवेश की आसानी के लिए यह अनुकूल है । 'आसान प्रवेश का विचार और परिवर्तनशील कार्य घंटे इस प्राकल्पना की ओर बढ़ाते है कि अनौपचारिक सेक्टर उन शहरी श्रम बाजार के प्रवासियों के लिए संक्रमण बिन्दु का कार्य करता है जो औपचारिक सेक्टर में घुसना चाहते है ।[10] उनके द्वारा निम्नलिखित सैद्धान्तिक बिन्दु दिये गये है[11] :-

1. निम्न रोजगार और कम औसत आमदनी अनौपचारिक सेक्टर के प्रमुख गुण होते हुए भी खुले बाजार की ऊँची दर नहीं है ।' अनौपचारिक सेक्टर में दो प्रकार के कार्मिक भागीदार है । एक समूह वह है जो कि अनौपचारिक सेक्टर का उपयोग अपने प्रतीक्षा काल में वित्तीय आवश्यकता के लिए करता है औपचारिक सेक्टर में जाने से पूर्व । दूसरा समूह (आगन्तुक) जो कि अनौपचारिक सेक्टर के नियोजन को अपने आप में पूर्ण मानता है ।

2. विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी संरचना के अन्तर की उपस्थिति के लिए कारण दिये है । कैन्नापैन कहते है कि कम विकसित आर्थिक व्यवस्था के ग्रामीण श्रम बाजार में, संरचना की विचारणीय विविधता है ।[12] उन्होंने कम विकसित देशों में मजदूरी संरचना विविधता की उपस्थिति के लिए निम्नलिखित कारण दिये है । अपेक्षाओं को अवसरों की के साथ समायोजित करना ।

3. औपचारिक सेक्टर में लचीले वेतनों अनुकूलनों के आरूप सामान्यत: सही नहीं होते क्योंकि यहां कठोरताओं और समायोजनाओ की समस्यायें होती है।

4. आधुनिक सेक्टर में नियोजन के लिए पंक्तियां बढ़ती है । शिक्षित और विशिष्ट कौशलों और अनुभवों के लिए दीर्घ प्रतीक्षायें अधिक गम्भीर होती है । साथ ही, दूसरे ग्रामीण जॉब पाने वालों के लिए सूचना में अन्तराल प्रावरोधी कारक लगते है । कन्नापन निष्कर्ष निकालते है कि, थोड़ी सी शंका है कि आधुनिक अर्थशास्त्र के परम्परावादी श्रम बाजार को आधारभूत रचनाओं

(कन्सूटक्टस) की व्यापक प्रयुक्ति और उपयोगिता है.... (यद्यिपि) निर्णय लेने की सत्ताओं की पहचान के लिए प्रयत्नों के शोधन और अनुकूलन की आवश्यकता होगी ।[13]

प्रतियोगी प्रतिरूप में ग्रामीण और शहरी आय में सन्तुलन लाने वाले समायोजनों की अपेक्षा टोडारो[14] इसके लिए ग्रामीण-शहरी देशान्तर को अधिक महत्व देते उनके अनुसार नगरीय वेतनों को अधोमुखी दिशा में अविकारी मानते हुए, नगरीय और ग्रामीण 'अपेक्षित आयों को समान किया जा सकता है, केवल जबकि नगरीय बेरोजगारी में वृद्धि परिणाम स्वरूप नगरीय जॉब की प्राथिकताओ में कमी आ जाये । टोडारो कहते है : यह परिसर है कि, निर्णायकों के रूप में प्रवासी उपलब्ध श्रम बाजार के सभी अवसरों के मध्य तथा नगरीय और ग्रामीण सेक्टरों ऐसा चयन करें जो कि श्वसन के अपेक्षित लाभों को अधिकतम बना सके । अपेक्षित लाभ को निम्नलिखित से नाप सकते है, (अ) ग्राम्य और नगरीय जॉब-अवसरों के मध्य वास्तविक आयों में अन्तर, (ब) नये प्रवासी को नगरीय जॉब प्राप्त होने की प्रायिक्ता ।

टोडारो कहते है कि प्रवासी स्थाई आय संगणना पर ध्यान देता है । प्रारम्भिक चरणों में प्रवासी कामगार के लिए जॉब प्राप्त करना सम्भव न हो, जिससे कि वह ग्रामीण सेक्टर की अपेक्षा नगरीय सेक्टर में अधिक आय कर सके । किन्तु कुछ समयावधि के बाद प्रवासी ग्रामीण सेक्टर की अपेक्षा अधिक आय प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है । अत : टोडारो के अनुसार जब तक प्रवासी के नियोजन क्षितिज की अपेक्षित शहरी आय की निवल धारा व वर्तमान मूल्य ग्रामीण आय से अधिक है, प्रवसन का निर्णय न्यायसंगत है ।[16]

टोडारो का निष्कर्ष है, चूंकि सम्भावित आयों को वेतनों और नियोजन की दोनों के ही द्वारा परिभाषित किया जाता है, यह केवल सम्भव ही नहीं है अपितु प्राथमिक भी है कि शहरी बेरोजगारी की आकारिक गति के अस्तित्व में रहने पर भी प्रवसन जारी रहे ।

3.4 भारत में श्रम बाजार

भारत में श्रम बाजार पर कई अनुसन्धानात्मक अध्ययन हुए है । इन अध्ययनों के जाँच परिणामों से स्पष्ट होता है कि द्वैतवादों के द्वारा सृजित श्रम बाजारों में अपूर्णतायें है । ये अध्ययन ग्राम्य सेक्टर, कृषितर सेक्टर, विशिष्ट समूहों यथा महिलाओं, पिछड़ी जातियों, उच्च योग्यताधारी मानव शक्ति एवं व्यावसायिक वेतनों के निश्चित पहलुओं की समस्याओं से सम्बन्धित है । अत : भारत में श्रम बाजार की गत्यात्मकता विभिन्न परिपार्श्वो और नियोजन तथा मजदूरियों पर उनके प्रभावों में देखी जा सकती है ।

3.4.1 कृषि क्षेत्र

कृषि के क्षेत्र में मजदूरियों और नियोजन का निर्धारण करने वाले कारक श्रम की मांग और उसकी आपूर्ति की बाजार शक्तियाँ है । पाण्डे[17] ने लिखा है कि बेरोजगारी की घटना कृषि की दृष्टि से कम विकसित कई राज्यों में बहुत निम्न है । इन्हीं राज्यों में निम्न मजदूरियों के कारण गरीबी की घटना बहुत अधिक है । वे परस्पर विरोधी केरल और पंजाब के मामलों को 'लेते है । केरल में, कृषक कामगार संघों की अत्यधिक सैन्य कार्यवाहियों से सारभूत मजदूरी बढ़ौतरियाँ हुयी है । इनके परिणाम स्वरूप भूमिहीनों में बेरोजगारी और गरीबी की अधिक

घटनाओं हुयी । इसके विपरीत, मशीनीकरण के कारण पंजाब में भूमिहीन श्रमिक उपलब्ध मानव-दिवसों के लिए लाभदायक रोजगार प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुए । अपने दूसरे अध्ययन में पाण्डे' ने कहा कि जिन जिलों में सिंचित भूमि में जनसंख्या का दबाव अधिक है, उनमें मजदूरी मांग चरों से प्रभावित होती है और जिन जिलों में भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम है, उनमें मजदूरी को आपूर्ति चर प्रभावित करते है । वे यह निष्कर्ष निकालते है कि कृषि श्रमिकों का निम्न मजदूरियों की समस्या स्वयं कृषि सेक्टर के विकास में निहित है ।

बर्दन' ने एन. एस. के 1973-74 तथा 1977-78 के आकड़ों से पश्चिमी बंगाल के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण आगर्तो, प्राथमिक शिक्षा और व्यस्त सूत्रों के साथ धनात्मक रूप से परिवर्तित होती है । यह पाया गया कि मजदूरियाँ उच्च आयु, बेरोजगारी की दर और सम्पत्ति विहीन परिवारों के अनुपात के साथ ऋणात्मक साहचर्य में है ।

3.4.2 कृषितर क्षेत्र

कृषितर क्षेत्र में नियोजन और बेरोजगारी का प्राक्कलन आधारभूत रूप में जनसंख्या गणना, उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण और प्रतिदर्श सर्वेक्षाणों से न्युत्पन्न होता है । इन अध्ययनों के जाँच निष्कर्ष आने दिये जा रहे है । कृष्णमूर्ति[20] नगरीय सेक्टर में बेरोजगारी के आकड़ों के प्राक्कलन में आतिशयोक्ति पायी । उन्होंने कहा कि सामान्यत : बेरोजगारी की दर अशिक्षित संवर्ग के लिए निम्न है । यह स्नातकों और ऊपर के लिए जरा उच्चतर तथा माध्यमिक संवर्ग के लिए उच्च है ।

'मित्रा' ने कृषितर सेक्टर में नियोजन के आरूप का अध्ययन किया । उनके अध्ययन जाँच के अनुसार कृषांतर सेक्टर में समुचित नियोजन में वृद्धि के लिए संघटित आम-परिवार का प्रभाव पड़ता है । विकास की प्रक्रिया के साथ, संगठित सेक्टर की अनुक्रिया द्वैतिक और तृतीयक सेक्टरों में बढ़ी हुयी नियोजन अक्सरों में थी । 'ब्रिमैन[22] के अनुसार अनौपचारिक सेक्टर की अवधारणा विश्लेषात्मक रूप से अपर्याप्त थी । उनका कहना है कि अनौपचारिक सेक्टर के सीमांकन का कोई भी प्रयास उत्पादन व्यवस्था की एकता और समग्रता की उपेक्षा करेगा । उन्होंने आगे कहा कि नगरीय व्यवस्था को दो भागों में बॉटने की अपेक्षा श्रम बाजार की खण्डित प्रकृति पर बल दिया जाना चाहिए । उन्होंने नगरीय श्रम शक्ति की प्रकृति के बोध के लिए सामाजिक वर्गों को कसौटी माना ।

3.4.3 विशिष्ट समुह

श्रम बाजार के चरों की गत्यात्मकता ने निश्चित रूप से विशिष्ट समूहों यथा महिलाओं, कमजोर वर्गो, अर्थव्यवस्था में उच्च योग्यताधारी मानव शक्ति के विरूद्ध विभेद को आगे बढ़ाया है । इन वर्गो के प्रति विभेद की उपस्थिति और अनुपस्थिति ज्ञात करने के लिए अनुसन्धान अध्ययन हुए है । चयनित ऐसे कुछ अध्ययनों के जाँच तथ्य आगे दिये जा रहे है ।

उच्च शिक्षा के बावजूद महिलाओं के प्रति विभेद हैं 'पटेल शाह' द्वारा अध्ययन निष्कर्ष इस प्रकार दिये गये है : - (अ) निम्न आय वर्ग में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का अनुपात

सार्थक रूप में अधिक है । स्व-नियोजन की अपेक्षा प्राइवेट सेक्टर में निम्न आय कोष्टक में जन संकुलन अपेक्षाकृत अधिक पाया गया । किन्तु सार्वजनिक सेक्टर में यह निम्न था । (स) 25 वर्ष से कम आयु-वर्ग में डिग्रीधारक पुरूष और महिलाओं की आयु संरचना में सार्थक अन्तर पाया गया । पच्चीस वर्ष से कम आयु वर्ग में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रमाणाधिक्य की व्याख्या इस कारक से हुयी है । लेकिन आयु संरचना ने सापेक्ष जनसंकुलन और उत्तरवर्ती आयु-समुहों में बढ़ते हुए जन संकुलन की व्याख्या नहीं की ।

'तिलक" के अनुसार कमजोर वर्ग के अन्तर्गत आने वाले महिलायें पिछड़ी जातियां, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग कई प्रकार के भेदभावों से ग्रसित है । यह अध्ययन 1977-78 में आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले में किया गया था । कार्य शक्ति के 10000 सदस्यों के प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा आकड़े एकत्रित किये गये थे । इस अध्ययन से भेदभाव के दो पहलू प्रकाश में आयें । अर्थात नियोजन में भेदभाव और मजदूरी में भेदभाव । इस अध्ययन के जांच तथ्य इस प्रकार है:

(1) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बेरोजगारी की घटना पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक थी ।

(2) उच्च शिक्षितों में बेरोजगारी की दर शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक थी,

(3) श्रम बाजार में कमजोर वर्गो के प्रति भेदभाव मजदूरी की दृष्टि से गुणार्थक पाया गया ।

'प्रसाद' द्वारा किये गये अध्ययनों से निम्नलिखित परिणाम सामने आये: है: शिक्षा के उद्भासन की तुलनीय लम्बाई के लिए, व्यावसायिक मानव शक्ति के विभिन्न संवर्गो में बेरोजगारी की अवधि सार्थक रूप हें भिन्न है । (ii) प्रत्येक संवर्ग मैं उच्चतर शैक्षिक निष्पादन के लिए बेरोजगारी की अवधि न्यून शैक्षिक नि:ष्पादन की अपेक्षा कम पायी गयी और (iii) पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को बेरोजगारी की अधिक लम्बी अवधि का सामना करना पड़ा ।

3.4.4 स्थानीय श्रम बाजार

स्थानीय श्रम बाजार से सम्बन्धित कई अनुसन्धान अध्ययन है । इनसे यह तथ्य प्रकाश में आया है कि इन बाजारों में मजदूरियों का निर्धारिण आपूर्ति चरों के द्वारा होता है । कुछ प्रमुख अध्ययनों के जाँच तथ्य इस प्रकार है : -

"जौहरी और मिश्रा" के अनुसार संस्थागत कारकों की अपेक्षा व्यक्तिगत कारण श्रम गतिशीलता के प्रारूप को प्रभावित करते है । उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी परिक्षेय में श्रम बाजार के उद्विकास के समानान्तर औद्योगिक संरचना का परिवर्धन होता है । श्रम बाजार के सबसे प्रमुख गुण नियोजन का स्थायित्व को परिक्षेय के अन्दर ही व्यवसाय के लिए प्राथमिकता है । कामगारों की अपेक्षाओ और गत्यात्मक व्यवहार में यथार्थवाद और व्यवसाय में सर्वोत्तम व्यवसाय की खोज पाये गये । दूसरे अध्ययन में जौहरी और मिश्रा" ने अभ्युपगम प्रस्तुत किया कि आयु, कौशल अनुभव जैसे कारक श्रम-आपूर्ति का विनियमन करते है, इसके कारण मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया पर इनको प्रभाव पड़ता है । इस अध्ययन का निष्कर्ष इस प्रकार है, ' 'इस प्रभासी अति अनियमित और अपसंरचित श्रम बाजार में मजदूरी-व्यवहार की कसी सीमा तक व्याख्या आयु, कौशल कामगार की वरीयता जैसे आपूर्ति चरों, की सहायता से

की गयी । ये चर दीर्घकालीन सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं की शक्तियों और उद्योग के प्रावैधिक आधार को परावर्तित करते है । ये मजदूरी निर्धारण के स्थायी किन्तु अदृश्य प्रभावों को उद्घाटित करते है ।

पपोला और सुब्रमण्यम्' ने अहमदाबाद के एक अध्ययन से स्पष्ट किग्रा कि मांग चरों ' के द्वारा मजदूरियों का निर्धारण होता है । इस अध्ययन ने दर्शाया कि विभिन्न उद्योगों के उन्हीं व्यवसायों में वेतनो का अन्तर है । उन्होंने इस घटना के लिए किसी सीमा तक अप्रतियोगी कारकों को पाया। इस अध्ययन में दिये गये आकड़ों से इस प्राक्कल्पना की पुष्टि होती है कि माँग सम्बन्धी चर' मिलकर उद्योगों में मजदूरी के अन्तरों के लिए उत्तम व्याख्या उपलब्ध करते है । किन्तु सभी चयनित व्यवसायों के लिए किसी एक चर को समान रूप से सार्थक नहीं पाया गया । इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि उच्च वेतन स्तर की इकाई निम्न वेतन स्तर की इकाई की अपेक्षा प्रत्येक व्यवसाय को उच्चतर वेतन दर से भुगतान करती है । इन अध्ययनकर्ताओं के अनुसार इकाइयों के अन्तर्गत व्यावसायिक वेतन दरों के कोटिकरण की प्रवृत्ति यह भी दर्शाती है कि व्यावसायिक विभेदकों को कुछ निश्चित आधार व्यवसाय, कौशल, शिक्षा, प्रशिक्षण और कार्यभार जैसे अभिलाक्षणिक गुणों में होता है । यह कहा गया है कि जब व्यावसायिक विभेदक प्रधान रूप से शैक्षिक और प्रशिक्षण की आवश्यकताओं से सह सम्बन्धित है और इस प्रकार विभिन्न व्यवसायों मैं कौशल, कुछ स्थितियों में श्रम बाजार की स्थिति भी किसी व्यवसाय को उच्च अथवा निम्न वेतन वाला बनाने में प्रभावी प्रतीत होते है ।

नाथ' द्वारा पूना के, उद्योगें के लिए किये गये एक अध्ययन में यह लिखा गया है कि वेतन आय के लिए सान्द्रता अनुपात ने एक उद्योग से दूसरे उद्योग में पर्याप्त असमानता को दर्शाया है । इस अध्ययन ने यह भी प्रकट किया कि उसी उद्योग में कौशल विभेदक विभिन्न व्यवसायों के लिए तात्विक रहे है । किन्तु अलग अलग व्यवसायों में विभेदक की सीमा इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी । इस विभेदक को प्रभावित करने वाले कारकों में इस अध्ययन के अनुसार, औद्योगिक इकाई का आकार और प्रभुक्त उत्पादन तकनीकें रही है । इस अध्ययन के अनुसार श्रमिक संघ आन्दोलन ठीक तरह से विकसित न हीं था और संघवाद का प्रभाव छोटी इकाइयों के अस्तित्व के कारण केवल नाम मात्र के लिए रहा है। 'सिंह' ने कानपुर के टैक्सिटाइल मिलों के मध्य, मजदूरी दरों की तुलना एवं अन्तरा-विभागीय विभेदको के विश्लेषण के लिए एक अध्ययन किया । इस अध्ययन के जांच तथ्य इस प्रकार है :- (i) उसी मिल के किसी एक विभाग मैं विभिन्न कामगार-संवर्गो में मजदूरियों में भारी अन्तर है । (ii) किसी विभाग में औसत मजदूरी दरों ने मिल के विभिन्न विभागों में महत्वपूर्ण अन्तर प्रदर्शित नहीं किये है । (iii) किसी मिल के विभिन्न विभागों में मजदूरी दरों ने स्पष्ट अन्तर नहीं दर्शाये है । ('iv') अलग-अलग मिलों और अलग विभागों में मजदूरी अन्तर के स्तरों में सार्थक अन्तर पाये गये । मजदूरी विभेदकों के लिए कामगारों और प्रबन्धनों द्वारा दिये गये कारणों में सार्थक अन्तर नहीं पाये गये । उदाहरणार्थ - कामगारों ने इन विभेदकों के लिए कौशल के स्तर, तनाव, थकान,

अनुभव और प्रशिक्षण को उत्तरदायी माना । दूसरी ओर, प्रबन्धनों का मानना था कि ये विभेदक कौशल के स्तर, तनाव, अनुभव, प्रशिक्षण दायित्व और कार्य के खतरों पर आधारित है।

3.5 शब्दावली

1. **श्रम (श्रमिक-):-** अर्थ-लाभ के लिए प्रयुक्त हस्त या मानसिक कार्य श्रम (श्रमिक) कहलाता है ।

2. **श्रम बाजार :-** इसका सम्बन्ध उन क्रियाओं से है जो किसी व्यवसाय के लिए श्रमिक के किराया या आपूर्ति से सम्बन्धित है । इस प्रक्रिया में यह भी शामिल है कि किन क्रियाओं के निष्पादन में किनको कितना भुगतान किया जाय ।

3. **पूर्ण प्रतियोगिता :-** एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार वह है जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं की बड़ी संख्या होती है । ये सभी बिना किसी कृत्रिम बाधाओं और किसी समय बाजार के पूर्ण ज्ञान के साथ क्रय और विक्रय में व्यस्त रहते है ।

4. **एकाधिकार :-** यह बाजार की एक ऐसी संरचना है जिसमें किसी जिस या सेवा के केवल एक विक्रेता कई क्रेताओं के साथ सौदा करता है । बेचने वाले का माल की मात्रा और उसके बेचान मूल्य पर पूर्ण नियन्त्रण होता है । माल को कोई प्रतिस्थानिक नहीं होता । उद्योग में इसका प्रविष्टि कई भारी बाधायें उपस्थित करती है । एकाधिकारी अधिकतम लाभ का प्रयास करता है । यह प्रतियोगी और अल्प तंत्रीय स्थितियों की अपेक्षा अधिक मूल्य और अधिक सीमित आपूर्ति निर्धारित करता है ।

5. **एक क्रेताधिकार :-** इसका सम्बन्ध उस बाजार स्थिति से है जिसमें किसी जिस अथवा सेवा का केवल एक क्रेता होता है । इसकी प्रयुक्ति ऐसी संस्थिति में होती है जहां क्रय में एकाधिकार तत्व हो ।

6. **द्विपक्षीय एकाधिकार :-** यह बाजार की वह स्थिति है जिसमें केवल एक ही उत्पादक एक ही क्रेता हो । दोनों अपने को एकाधिकारी मानते है ।

7. **आन्तरिक श्रम बाजार :-** यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें बाहरी श्रम बाजार में प्रविष्टि के बिना फर्म के ही अन्दर श्रम की माँग और आपूर्ति होते है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था में व्यवसाय रिक्तियों की पूर्ति वर्तमान नियुक्तियों की प्रोन्नति से की जाती है।

8. **बाह्य श्रम बाजार :-** इस बाजार व्यवस्था में किसी भौगोलिक अथवा व्यावसायिक परिसभाओं की क्रिया के गुच्छ उपलब्ध होते है, जिन्हें कि नये व्यवसायों में लिया जा सकता है। इनमें प्रवेश द्वार इनके लिए निर्बाध खुले रहते हैं ।

3.6 निबन्धात्मक प्रश्न।

1. श्रम बाजार के प्रतिरूपों पर टिप्पणी दीजिए ।
2. श्रम बाजार की गत्यात्मकता का क्या तात्पर्य है?
3. कम विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में श्रम-बाजार का द्वैतवाद है । क्या इस विचार से सहमत है?
4. वर्तमान भारत में श्रम बाजार की प्रकृति की व्याख्या कीजिए ।

3.7 संदर्भ सूची

1. Lipsey, Richard G., “An introduction to Positive Economics,” Weidenfeld and Nicolson, London, 1966, pp. 453-457, quoted in Pramod Verma, P. 129.
2. Kerr, Clark, “Labour A. Lester, Labor;Readings on Major Issues, Random House, New York, 1965, PP. 292-306, quoted in Pramod Vrma, P.131.
3. Clark Korr, “Labour Markets: Their Character and Consequences” in Industrial Relations research Association Proceeedings (1950).
4. Reynolds Lloyed G., Labour Economics and Labour Relations, Prentice-Hall, New Delhi, 1978, P. 109.
5. Ibid., pp. 110-113.
6. Dunlop, John T, “Job Vacancy Measures and Economic Analysis,” in The Measurement and Interpretation of Job Vacancies, New York, National Bureau of Economic Research, 1966, pp.27-48, quoted in Lloyd G. Reynolds, P.115.
7. Renolds, op. cit., P.121.
8. Sen, Amartya K., ‘’Employment Technology and Development,’’ Oxford University Press, Delhi, 1975, p.53-55, quoted in Pramod Verma, p.133.
9. Mazumdar, Dipak, ‘’Analysis of the Dual Labour Markets in Ldcs’’, in Subbiah Kannappan (ed.), Studies of Urban Labour Market Behavior in Developing Areas, International Institute for Labour Studies, Geneva, 1977, p.15, quoted in Pramod Verma, p.134.
10. Ibid., p.18, quoted in pramod Verma, p.134.
11. Ibid., quoted in pramod Verma, p.134.
12. Kannappan, Subbiah, ‘’Studies of Urban Labour Market Behavior in Developing Areas,’’ International Institute for Labour Studies, Geneva, 1977, p.9, quoted in pramod Verma, p.134.
13. Ibid., p.10, quoted in pramod Verma, p.134.
14. Todaro, ‘’Michael P., ‘’Internal Migration in Developing Countries,’’ ILO, Geneva, 1976, pp.28-36, quoted in pramod Verma, p.134.

15. Todaro, ''Internal Migration in Developing Countries,'' op.cit. pp.28-29, quoted in pramod Verma, p.134.
16. Ibid., p.31 quoted in Pramod Verma, p.135.
17. Pandey, S.M., ''Nature and Magnitude of Rural Unemployment in India'', Indian Journal of Industrial Relations, Vol. 10(2), October, 1974, pp.221-238, quoted in Pramod Verma, p.135.
18. Pandey, S.M., ''Wage Determination in Indian Agriculture: An Empirical Analysis'', Indian Journal of Industrial Relations, Vol. 9(1), July, 1973, pp.83-100, quoted in Pramod Verma, p.135.
19. Bardhan, P.K., ''Land, Labour and Rural Poverty,'' Oxford University Press, New Delhi, 1984, quoted in Pramod Verma, p.136.
20. Krishnamurthy, J., ''Some Aspects of Unemployment in Urban India'', Journal of Development Studies, Vol. 11(2), January, 1975, pp.11-19, quoted in Pramod Verma, p.136.
21. Mitra, Ashok K., ''Analysis of the Structure and Quantum of Non-Agricultural Employment in India'', Artha Vinjnana, Vol. 19(3), September, 1977, pp.213-232, quoted in Pramod Verma, p.136.
22. Breman, Jan, ''Dualistic Labour System? A Critic of Informal Concept Sector'' Economic and Political Weekly, Vol. 11(48), November 27, 1976, pp.1870-1876, quoted in Pramod Verma, p.136.
23. Patel, B.B. and S.P. Singh, ''Labour Market for Educated Women in India, Verification of Some Hypotheses on Discrimination'', Indian Journal of Labour Economics, Vol. 22(4), Jan, 1980pp.89-98, quoted in Pramod Verma, p.136.
24. Tilak, Jandhyala B.G., ''Educational and Labour Market Discrimination'', Indian Journal of Industrial Relations, Vol. 16(1), July, 1980, pp.95-114, quoted in Pramod Verma, p.137.
25. Prasad, K.V. Eswara,''Education and Unemployment of Professional Manpower in India'' Economic and Political Weekly, Vol. 14(20), May29, 1979, pp.881-887, quoted in Pramod Verma, p.137.
26. Johri, C.K. andV.N. Mixra,'' Regional Labour Mobility: Interoindustry Analysis'', Indian Journal of Industrial Relations, Vol. 8(2), October, 1972, pp.159-199, quoted in Pramod Verma, p.137.

27. Johri, C.K. andV.N. Misra,''Wage Payment Systems, Wage Differentials and Incomes Policy'', Indian Journal of Industrial Relations, Vol.9(1), July, 1973, pp. 39-68, quoted in Pramod Verma, p.137.
28. Ibid., p.53, quoted in Pramod Verma, p.137.
29. Papola, T.S. and K.K. Subramanian, "Wage Structure and Labour Mobility in a Local Labour," Sardar patel Institute of Economic and Social Reserche, Ahmdabad 1975, quoted in Pramod Verma p.137
30. Nath ,Rabindar ,"Wages Patterns and wages Structure in india Industries," Sterling, New Dehli, 1976, quoted in Pramod Verma p.138
31. Singh ,V.B., "Wages Patterns, Mobility and saving of Workers in India:"Astudy of Kanpur Textile Industry , Lalwani,Bombay,1973, quoted in Premed Verma p.138

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Anne Booth & R.M. Sundaram, "Labour Absorption in Agriculture, Theoretical Analysis and Empirical Investment ," Oxford University Press, Madras, 1984
2. Alan W.evans,"Urban Economis,An Introduction," Bansil Blackwell Ltd., Oxford,1985
3. Derek Robinsion, "Monetarism and the Labour Market," Clarendon Press Oxford, 1986
4. Lloyd G. Reynolds, S.H.Masters & C.H.Moser, "Economics of labour", Prentice-hall,Inc., Englewood Cliffs. New Jersey,1987.
5. Peter Fallon &Donald Verry, "the Economics of Labour Markets", Heritage Publishers, New Delhi,1989
6. Pramod Verma, " Labour Economics and Industrial Relations",Tata McGraw-Hill Publishing Company limited, New Delhi,1987
7. Lloyd G. Reynolds, "Labour Economics and labour Relations", Prentice- Hall of India, NewDelhi,1978
8. Lloyd G.Reynoldset. al, "Redings in Labours Economics and Labour Relations ", prentice-Hall, New Delhi,1986
9. Derek Carline et.al, "Labour Economics",Longman Inc., Newyoke, 1986

इकाई 4
श्रम पूर्ति की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 श्रम पूर्ति फलन

4.3 श्रम पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्व

4.4 श्रमपूर्ति वक्र

4.4.1 श्रमिक विशेष के लिए पूर्ति वक्र का निर्धारण

4.5 एक फर्म के लिए श्रम पूर्ति वक्र

4.5.1 फर्म का अल्पकाल व दीर्घकाल में पूर्ति वक्र

4.5.2 उद्योग का पूर्तिवक्र

4.6 समूर्ण अर्थव्यवस्था में श्रमपूर्ति

4.6.1 दीर्घकाल में श्रमपूर्ति वक्र का निर्धारण

4.6.2 अल्पकाल में श्रमपूर्ति वक्र का निर्धारण

4.7 श्रम पूर्ति में महिलाएं

4.8 महिलाओं की मजदूरी में अन्तर के कारण

4.9 भारत में महिला श्रम का मुख्य कार्यक्षेत्र

4.10 महिला श्रम व कार्य के घण्टे

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

किसी भी देश के लिए श्रम की पूर्ति की दशाओं का ज्ञान अतिआवश्यक है । श्रम की पूर्ति एक दुधारी तलवार है इसकी कमी जहाँ एक ओर देश के आर्थिक विकास। में बाधक है वही दूसरी ओर इसकी बहु लता भी कई समस्याओं को जन्म देती है । इस इकाई में श्रम पूर्ति की अवधारणा से आपका परिचय कराया जाएगा ।

4.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में उत्पादन का महत्वपूर्ण स्थान है । उत्पादन से विपणन, विनिमय व उपभोग होता है । किन्तु उत्पादन वस्तु कों उत्पादित करने में श्रम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । अत : श्रम के महत्व में श्रम पूर्ति की मात्रात्मकता व गुणात्मकता दोनों ही पहलू उत्पादन कों प्रभावित करते है । इस इकाई में श्रम की पूर्ति कों निर्धारित करनें वाले तत्वों का अध्ययन किया जाएगा । इसके अतिरिक्त अल्पकाल व दीर्घ काल में एक फर्म एवं सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था कें पूर्ति वक्रों से आपको अवगत कराया जाएगा ।

4.2 श्रम पूर्ति फलन

श्रम की पूर्ति विभित्र घटको पर निर्भर करती है गणितीय रूप में इस फलनात्मक सम्बन्ध को नियमानुसार व्यक्त किया जा सकता है ।

$S= f(W,Y_{1,}y_{2,}.....y_{10)}$

यहां S = श्रमपूर्ति , f = फलन, डब्ल्यू= मजदूरी,Y1,Y2,.....,Y10 = पूर्ति के विभिन्न निर्धारक घटक ।

4.3 श्रम पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्व

श्रम की पूर्ति मुख्य रूप से निम्नलिखित घटको पर निर्भर होती है ।

1. जनसंख्या

आधुनिक जनसंख्या का सिद्धान्त बताता है विकसित अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की वृद्धि अर्थव्यवस्था को प्रेरित करती है । क्योंकि जनंसख्या सीधी श्रम पूर्ति को नहीं बढ़ाती हैं । विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर 1% सें कम होती है, क्योंकि जन्म दर कम व मृत्यु दर भी कम होती है । जबकि विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि दर ज्यादा होनी है, क्योंकि विकासशील देशों में (जन्म दर अधिक व मृत्यु दर कम होती है इस कारण जनसंख्या की वृद्धि दर तीव्र होती है।)

2. कार्यशील जनसंख्या

किसी देश की जनसंख्या को मुख्य रूप सें दो वर्गों में विभाजित किया जाता है

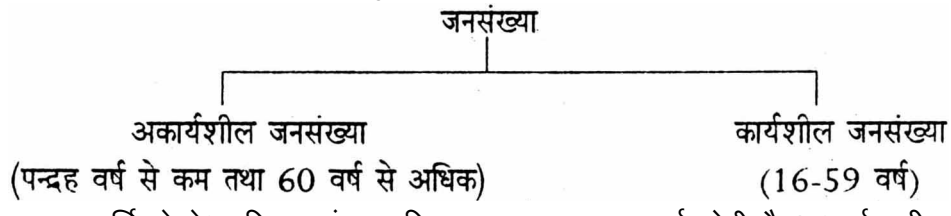

श्रम पूर्ति मे देश की जनसंख्या की बनावट बहुत महत्वपूर्ण होती है । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 15 -6० तक की जनसंख्या को ही कार्यशील जनसंख्या माना जाता है । भारत में भी कार्यशील जनसंख्या 15-6० की आयु वर्ग है । परन्तु यहाँ बालश्रम भी पाया जाना है ।

विकसित अर्थव्यवस्था मैं पूर्ण रोजगार की स्थिति के कारण समस्त कार्यशील जनसख्या कार्यरत होती है । विकासशील देशों में कार्यशील जनसंख्या भी दो भागों मैं बंट जाती है - (1) पूर्ण श्रमिक और (2) सीमान्त श्रमिक । पूर्ण श्रमिक वह होते है जिनको साल में 183 दिन या 6 महीने से अधिक काम मिलता है जबकि सीमान्त श्रमिक वे होते है जिनको साल मैं 183 दिन या 6 माह सें कम काम मिलता है ।

विकसित देशों में समस्त जनसंख्या का 50% कें लगभग भाग कार्यशील जनसंख्या होता है या श्रम पूर्ति करता है जैसे 1993 में अमेरिका मे 48% जापान में 50.8% जबकि भारत में 38% (मुख्य श्रमिक,+ सीमान्त श्रमिक) क्योंकि विकासशील देशों में गरीबी, बेरोजगारी व जनाधिक्य के कारण श्रमशक्ति कम होती है ।

3. श्रम शक्ति की भागीदारी व काम के घण्टे

श्रमिक कें द्वारा एक साल में कितने घण्टे व उसे जीवन काल में उसके द्वारा कितने घण्टे काम किया गया यह अर्थव्यवस्था की आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है जैसे - विकसित अर्थ व्यवस्था में श्रमिक रोजगार में है तो एक दिन में किये कार्य को साल भर व जीवन के काम में नापा जा सकता है । जबकि विकासशील अर्थव्यवस्था में बेरोजगार व सीमान्त श्रमिक भी पाये जाते है तथा श्रमशक्ति से उनकी भागीदारी कम घण्टे होती है । यह प्रत्येक देश की आर्थिक स्थिति व विकास पर निर्भर करता है ।

4. श्रमिक को प्रदान की गई मात्रात्मक व गुणात्मक सुविधाएँ

श्रमिकों को प्रदान की गई मात्रात्मक व गुणात्मक सुविधाओं का श्रमिक की उत्गदकता व श्रम पूर्ति पर सीधा प्रभाव पड़ता है । सामान्यतया मजदूरी दर व कार्य के घण्टे है दोनों श्रम पूर्ति को सीधा प्रभावित करते है । श्रमिक की श्रम पूर्ति इस बात पर भी निर्भर करती है कि श्रमिक साल में कितने दिन काम व कितने दिन (आराम) अवकाश प्राप्त करता है । क्योंकि कार्य के दिन कार्य के घण्टे व मजदूरी तीनों ही उसकी गुणात्मक को प्रभावित करते है । इसके अलावा अन्य सुविधाएँ जैसे - मनोरंजन, यातायात सुविधाएँ, आवास, बच्चों के लिए स्कूल, बोनस, श्रणसुविधा, रोजगार की सुरक्षा, अन्य सामाजिक सुरक्षाएँ चिकित्सा सुविधा, कार्य स्थल, को स्वस्थ व अच्छा पाया जाना हवा रोशनी की पूर्ण व्यवस्था आदि सुविधाएँ भी श्रम पूर्ति को प्रभावित करता है । इसके अलावा श्रम पूर्ति कार्य विशेष की प्रकृति पर भी निर्भर करती है जैसे - जोखिम उद्योगों (तेजाब उद्योग, काँच उद्योग आदि) में श्रम तुलनात्मक रूप से कम होती है।

5. आप्रावास (Immigration) और उत्प्रवास (Emigration)

विकसित देशों में जहाँ जनसंख्या की वृद्धि नहीं बराबर होती है । वहाँ पर सिर्फ आप्रावास ही श्रम पूर्ति को बढ़ाने में सहायक होता है जबकि अप्रवास विकसित देशों में कम होता है किन्तु विकसित देशों में आप्रवास पर रो होती है जैसा कि अमेरिका मे विश्व युद्ध के बाद आप्रवास पर कानूनी रोक लगाने के लिए अमेरिकन श्रम संगठनों ने अमेरिकन सरकर पर दबाव डाला उसके बाद आप्रावास पर रोक लगा दी गई (गैर कानूनी अप्रवास को छोड़ दिया जाय) क्योंकि श्रम बाजार के अन्दर श्रम पूर्ति (अप्रवास) पर कानूनी रोक लगाकर ही मजदूरी स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा पैदा की जा सकती ।

जबकि विकासशील देशों में आप्रावास महत्व पूर्ण नही होता है किन्तु बेरोजगारी की समस्या ही श्रम पूर्ति को प्रभावित किये रखती है । अत : मजदूरी में स्वतन्त्र प्रतिस्पद्धां सम्भव नहीं होती ।

6 जनसंख्या का सामाजिक व आर्थिक स्तर व राजनैतिक स्थितियाँ

सामान्यतया सामाजिक व आर्थिक स्तर एक सिक्के के दो पहलू की तरह जुड़े हुए है । क्योंकि ऊँचे आर्थिक स्तर के कारण व्यक्ति का सामाजिक स्तर स्वत : ऊँचा उठ जाता है । विकासशील देशों में श्रमिक का आर्थिक स्तर नीचा होने के कारण स्त्रियाँ वृद्ध बच्चे कार्य करने के लिए विवश हो जाते है ताकि पारिवारिक आय बढ़ सके जो कि श्रम पूर्ति को प्रभावित करते है ।

जबकि विकसित देशों मैं विकास के साथ-साथ आये सामाजिक परिवर्तन के कारण महिलाएँ बड़ी मात्रा में श्रम शक्ति का अंश बन गई है । अमेरिका में 60 के दशक के मध्य में श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी मात्र 40% था जो कि 80 के दशक के मध्य में 53% तक हो गई । इस परिवर्तन का मुख्य कारण आर्थिक नहीं था । जबकि सामाजिक कारण इस परिवर्तन के पीछे जिम्मेदार था जिनमें - (1) परिवार का बदलता रूप (या Size), (2) महिलाओं का बदलता परिवेश (3) कार्यशैली में आये परिवर्तन, आदि ।

4.4 श्रम पूर्ति वक्र निर्धारण

किसी भी अर्थव्यवस्था में उठती हुई अथवा एक ऊपर बढ़ती हुई श्रम पूर्ति रेखा (अर्थात् एक ऊंची कीमत या मजदूरी दर पर ज्यादा श्रमिकों की पूर्ति बढ़ना) श्रम बाजार में श्रम की सापेक्षिक कभी अथवा श्रम की एक बड़ी माँग की सूचक है । इसका अभिप्राय है कि एक स्वस्थ व गतिशील आर्थिक स्थिति है । जिस अर्थ व्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं की खपत बाजार' में हो जाती है । अत : वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिक की आवश्यकता बढ़ जाती है । श्रम की ऊपर चढ़ती हुई पूर्ति रेखा न केवल कम होने वाली बेकारी का सूचक है । वरन एक स्वस्थ व तेज आर्थिक क्रिया का भी सूचक है । श्रम की पूर्ति वक्र का ऊपर उठना विकसित अर्थव्यवस्था में ही पाया जाता है । विकसित अर्थव्यवस्था में ही प्रतिस्पर्द्धा प्रभाव व आय प्रभाव अपना प्रभाव दिखाते है ।

4.4.1 श्रमिक विशेष के लिए पूर्ति वक्र का निर्धारण

प्रतिस्पर्द्धा प्रभाव बनाम आय प्रभाव

जब हम श्रमपूर्ति में व्यक्तिगत श्रमिक विशेष का अध्ययन करते है तो एक महत्वपूर्ण मुद्दा सामने आता एंव कि ऊंची मजदूरी दर पर श्रमिक किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है । प्रत्येक व्यक्ति के पूरे जीवन काल में उसने कितने घण्टे काम किया। ऊंची मजदूरी दर का इस पर क्या प्रभाव होता है । रेख चित्र 4.1 में गया है- दर्शाया कि प्रत्येक मजदूरी दर पर श्रमिक के द्वारा किये गये काम के घण्टों को दर्शाया गया है कि किस प्रकार श्रम पूर्ति वक्र प्रारम्भ में दायी तरफ ऊपर उठती है । जो कि C बिन्दु के बाद बायी तरफ झुकना प्रारम्भ हो जाती है । हम देखते है कि उंची मजदूरी किस प्रकार श्रम पूर्ति को बढ़ाती है जैसे की चित्र में S बिन्दु से C बिन्दु तक दिखता है बाद में स्वत : ही श्रम पूर्ति को कम कर देती है ।

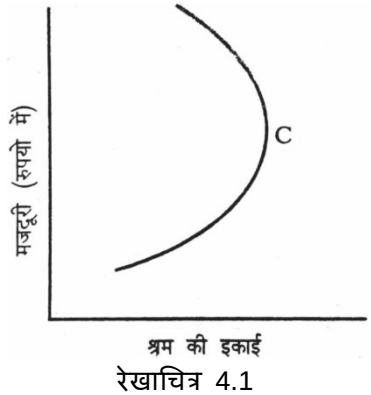

रेखाचित्र 4.1

अगर हम अपने आपको श्रमिक मानकर देखे तो स्पष्ट हो जायेगा कि प्रत्येक अधिक घण्टे या नये घण्टे (यानि 8 घण्टे से 9 वे 10 वे 11 वें घण्टे) 'काम करने पर हमें अधिक मजदूरी दर मिल रही है साथ ही काम के घण्टे चुनने के लिए हम स्वतन्त्र ही और हम अपने काम के मुख्य घण्टे (प्रारम्भ के 8 घण्टे ईमानदारी से काम किया हो या कामचोरी न की हो) काम किया हो तो हम पायेंगे कि हम दो अलग-अलग स्थिति में है । एक तरफ हमें अधिक काम करने का आकर्षण होगा क्योंकि काम का प्रत्येक घण्टा हमें अधिक महंगा होगा । अत: प्रत्येक आराम के घण्टे को हम उंची मजदूरी के कारण काम के घण्टे से प्रतिस्थापित करने को उत्सुक होंगे ।

किन्तु प्रतिस्थापक प्रभाव के विपरीत एक आय प्रभाव भी कार्य करता है । श्रमिक उसी मजदूरी पर अधिक अमीर होंगे । अधिक अमीर होने से अच्छे व अधिक कपड़े अच्छा भोजन व अधिक उपभोक्ता वस्तुएं खरीदेंगे । किन्तु इस स्थिति में एक समस्या होगी कि इन सब सुखों के साथ श्रमिक अधिक आराम को भी पसन्द करेंगे । इस समय श्रमिक आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न होने के कारण शनिवार को एक अतिरिक्त अवकाश वहन करने या लेने में सक्षम होंगे साथ ही एक अतिरिक्त सप्ताह सर्दी में व एक अतिरिक्त सप्ताह गर्मी में लेना चाहेंगे । यहां तक कि श्रमिक सेवानिवृत्ति भी कुछ वर्ष पूर्व लेना पसन्द करेगा ।

इस समय वह भी महत्वपूर्ण है कि प्रतिस्थापना प्रभाव व आय प्रभाव में क्या प्रभावशाली है या दोनों प्रभावों में सन्तुलन कहां होगा अगर दोनों प्रभाव एक दूसरे के असर को काटते है तो जैसा रेखा चित्र 4.2 मैं दर्शित है कि पूर्ति वक्र सीधा ऊपर की ओर उठेगा यानि C बिन्दु के बाद बेलोचदार हों जायेगा ।

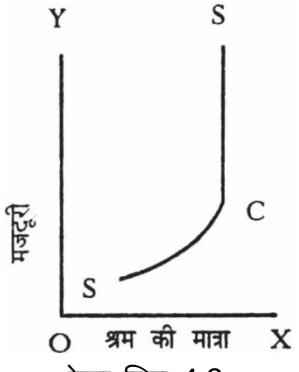

रेखा चित्र 4.2

किन्तु पूर्ति वक्र C बिन्दु के बाद बाई तरफ मुड़ेगा (जैसा चित्र 4.2 में है) या सीधा ऊपर जायेगा । (जैसा चित्र 4.2 में है) इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं है " यह श्रमिक विशेष की व्यक्तिगत आर्थिक परिस्थिति पर ही निर्भर करता है ।

C बिन्दु तक श्रम पूर्ति ऊंची मजदूरी दर के कारण ऊपर बढ़ती है यानी आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव पर भारी पड़ता है या प्रतिस्थापन प्रभाव C बिन्दु तक कमजोर व आय प्रभाव शक्तिशाली रहता है । किन्तु C बिन्दु के बाद चित्र 4.1 में आय प्रभाव कमजोर पड़ने लगता है व प्रतिस्थापन प्रभाव भारी पड़ने लगता है यानी एक स्तर के बाद ऊंची मजदूरी दर के बाद भी श्रमिक श्रम पूर्ति बढ़ाने के स्थान पर श्रम पूर्ति घटने लगती है । श्रमिक ऊंची मजदूरी के स्थान

पर पूर्ति घटने लगती है श्रमिक ऊंची मजदूरी पर काम करने के स्थान पर आराम पसन्द करने लगता है ।

रेखा चित्र 4.2 में ये दोनों प्रभाव एक दूसरे को काटने लगते है या एक दूसरे का प्रभाव कम करते है अथवा श्रम पूर्ति चक्र सीधा ऊपर की ओर जाता है या बेलोचदार हौ जाता है । श्रम पूर्ति वक्र एक स्थिति तक दायीं तरफ ऊपर की ओर बढ़ता है अत : C बिन्दु के बाद बाई ओर झुकने लगता है इसमें आय प्रभाव व प्रतिस्थापन प्रभाव के अलावा भी कोन से कारण ऐसा करने के लिए श्रमिक को मजबूर करते है जैसे, - (1) अधिक मजदूरी दर या ऊंची मजदूरी पर ऊंची दर की मात्रा श्रम पूर्ति को प्रभावित करती है । (2) अधिक उदारवादी या कल्याणकारी भुगतान श्रमपूर्ति को घटाते है या बढ़ाते है ।

अर्थशास्त्र इन मुद्दो को सार्वजनिक नीति व कानून के आधार पर सुलझाने की बात करते है । इस क्षैत्र के कई अध्ययन बताते है कि युवा पुरुष श्रमिकों के अध्ययन में श्रमपूर्ति वक्र C बिन्दु के बाद बायी ओर झुकता दिखता है किन्तु श्रमपूर्ति के अन्य जनांकिक वर्गो में श्रमपूर्ति वक्र बाई और झुकता नहीं पाया गया। याने अन्य जनंकिक वर्ग C बिन्दु के बाद कार्य नही करेंगे (अधिक ऊंची मजदूरी दर पर ज्यादा घण्टे काम नहीं करेंगे)

4.5 एक कर्म के लिए श्रम पूर्ति वक्र

एक फर्म के लिए श्रम पूर्ति की दर या वक्र इस पर भी निर्भर करता है कि फर्म में मजदूरी की दर क्या है इसके अलावा श्रमिकों को प्रकृति यानी फर्म मैं विशेष कुशलता के श्रमिक जैसे इन्जीनियर कम्पयूटर योग्यता के श्रमिक डाक्टर या अन्य की या अकुशल श्रमिक की मांग है। फर्म का आकार क्या है फर्म के उत्पादन की प्रकृति क्या है?

इसके अलावा आस-पास कें क्षेत्र (रीजन मैं) मिलने वाले श्रमिकों की मात्रा या श्रमिक गतिशीलता की दर फर्म श्रमिक के साथ किया जाने वाला व्यवहार व श्रमिक प्रतिष्ठान आदि एक फर्म में श्रमिक की पूर्ति को प्रभावित करते है।

4.5.1 कर्म का अल्पकाल व दीर्घकाल में पूर्ति वक्र

एक फर्म का अल्पकाल दीर्घकाल में श्रमपूर्ति को मजदूरी बढ़ाकर (W बढ़ाकर) बढ़ाया जा सकता है कि यदि फर्म A ने मजदूरी बढ़ाई है तो फर्म B,C,D आदि के श्रमिक फर्म A मैं आकर श्रम पूर्ति बढ़ायेंगे। अत: फर्म में श्रमपूर्ति के इस परिवर्तन को इस श्रमपूर्ति की लोच कहते है जिसको इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है। -

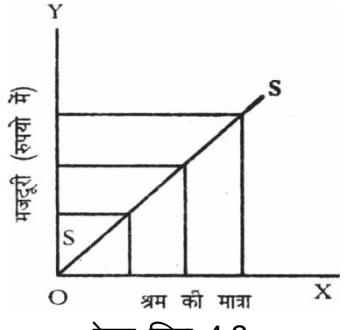

रेखा चित्र 4.3

$$\text{श्रम पूर्ति की लोच} = \frac{\text{श्रम पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन / प्रारम्भिक श्रम पूर्ति (\%)}}{\text{मजदूरी में परिवर्तन / प्रारम्भिक मजदूरी (\%)}}$$

$$e_s \frac{\frac{\Delta QL}{QL}}{\frac{\Delta W}{W}} = \frac{\Delta QL}{QW} \cdot \frac{W}{QL}$$

e_s = श्रम पूर्ति की लोच

ΔQL = श्रम पूर्ति में परिवर्तन

QL = प्रारम्भिक श्रमपूर्ति

ΔW = मजदूरी में परिवर्तन

W = प्रारम्भिक मजदूरी

रेखा चित्र 4.3 में हम देखते है कि मजदूरी (W) बढ़ने से. L (श्रम) पूर्ति। बराबर बढ़ रही है यानी श्रमिक फर्म फर्मA में आने को तैयार है ।

4.5.2 उद्योग का श्रम पूर्ति

जैसा कि सर्वविदित हैं कि एक उद्धोग कई फर्मो का समूह होता है जैसे सूती वस्त्र उद्योग उसमें कई सूनी वस्त्र की फर्मे होता है । एक उद्योग मैं श्रम पूर्ति क्षेत्रीय जनसंख्या।, के आधार पर निर्धारित नहीं होती यहां तक कि कुशल श्रमिकों की पूर्ति को मजदूरी कें आधार पर भी बढ़ाना अल्पकाल मैं सम्भव नही होता क्योंकि उस उद्योग के समस्त कुशल श्रमिक कार्यरत रहते है । उन्हीं श्रमिकों के कार्य के घण्टे व दिन बढ़ाकर पूर्ति को थोड़ा बढ़ाना ही सम्भव होता है जबकि दीर्घकाल में सब कुछ सम्भव होता है जैसे कि किसी फ्रिज या T.V बनाने वाली उद्योग श्रमपूर्ति को बढ़ाने में कम सफल होता है जबकि ऐसे विशिष्ट कुशलता के उद्योगों में श्रम पूर्ति उस उद्योग कें प्रशिक्षण केन्द्रों पर भी निर्भर करती है जैसे -ईजीनियरिंगग कालेज, नर्सीग कॉलेज, मेडीकल कालेज आदि जबकि ऐसे उद्योग जिनमें अकुशल श्रमिक कार्य कर सकते है जिससे पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है । इसके अलावा उद्योग में श्रमपूर्ति को प्रभावित ने वाले तत्व निम्न:-

1. जनसंख्या
2. अर्थव्यवस्था का आर्थिक स्तर (विकसित अथवा विकासशील)
3. दश मं अप्रवास का उत्प्रवास
4. उद्योग में मजदूरी की दर
5. उद्योग के श्रमिक की प्रशिक्षण लागत व प्रशिक्षण सुविधाएं ।
6. देश की सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति
7. उद्यान की प्रकृति
8. उद्योग की प्रतिष्ठा उद्योग में श्रमिक की प्रतिष्ठा

जनसंख्या अधिक होने पर प्रत्येक उद्योग मैं श्रम पूर्ति अधिक होगी । साथ ही यदि अर्थव्यवस्था विकसित है तो अप्रवास अधिक होगा साथ ही उद्योगों में मजदूरी दर ऊंची होगी देश उद्योग की प्रशिक्षण लागत वहन करने में सक्षम होगा । इसके अलावा अन्य तत्व जैसे - उद्योग की प्रकृति व प्रतिष्ठा भी उद्योग में श्रम पूर्ति को प्रभावित करती है ।

4.6 सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में श्रम पूर्ति

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में श्रमपूर्ति मुख्य रूप से देश की जनसंख्या ' वृद्धिदर व जनसंख्या की संरचना कें द्वारा निर्धारित होती है ।

4.6.1 दीर्घकाल मे श्रमपूर्ति वक्र का निर्धारण

दीर्घकाल मैं विकसित अर्थव्यवस्था मैं बेरोजगारी सिर्फ ऐच्छिक होती है अनैच्छिक नही विकसित अर्थव्यवस्था जागरूकता, पूजी, या योग्यता या शिक्षा सुविधाओं के अभाव में श्रमिक बेरोजगार नही रहता है और श्रमपूर्ति में लगा रहता है । विकसित अर्थव्यवस्था में कुशल श्रमिक अधिक होते है क्योकि विकास के कारण सेवा क्षेत्र में अधिक रोजगार उपलब्ध होते है कृषि प्रधान देश में कम प्रतिशत श्रमिक कार्यरत रहते है जैसे - 1994 के आधार पर भारत मैं 65% चीन में 64% जर्मनी में 4%; यू.के. 2% यू.एस.ए. 2% विकसित राष्ट्र में 5% से कम कृषि मैं यानि 95% श्रमिक उद्योग व सेवा क्षेत्र में कार्यरत होते है । इसके अलावा आर्थिक व सामाजिक कारण भी अर्थव्यवस्था की श्रमपूर्ति को प्रभावित करतें है जैसे भारत मैं महिलाओं से काम न कराने की प्रथा सामाजिक प्रतिष्ठा में आनी है जो श्रम पूर्ति को प्रभावित करती है जो कि एक सामाजिक करण है ।जबकि बाल श्रम एक आर्थिक करण है आर्थिक व सामाजिक करण अविकसित अर्थ व्यवस्थाओं में अधिक प्रभावी होते है जबकि विकसित आर्थाव्यवस्थाओ मे सामाजिक व आर्थिक कारण कम प्रभावी होने है ।

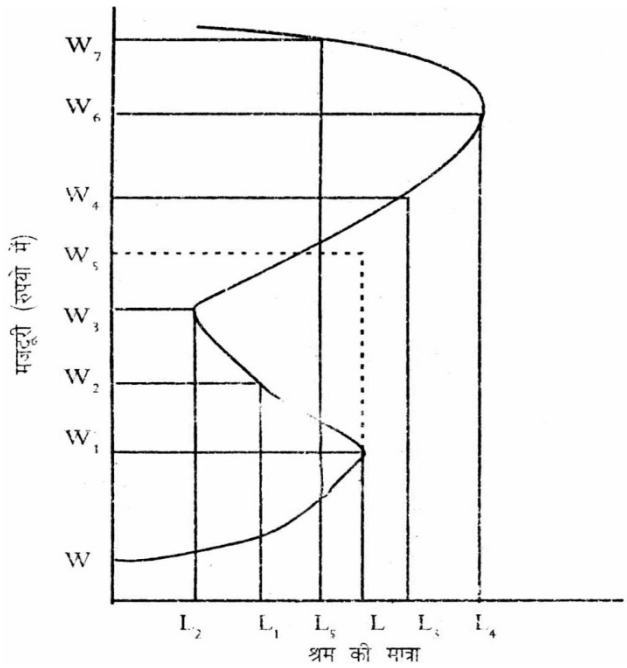

रेखा चित्र 4.4

दीर्घ काल मैं श्रम पूर्ति वक्र -लोचदार होता है क्योंकि जनसंख्या में. वृद्धि करके आज के शिशु को 15.20) साल बाद श्रम पूर्ति में लाया जा सकना है किन्तु विकास के बाद जनसंख्या की वृद्धि दर को भी अधिक नही बढ़ाया जा सकता है इसके लिए नागरिक तैयार नहीं होते है अत : आप्रवास रोकने के लिए श्रम संघ सरकारों पर दबाव बनाये रहते है ताकि श्रम पूर्ति बढ़ाने से मजदूरी कम न हो । फिर भी विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि व आप्रवास द्वारा बहुत कम मात्रा में श्रम पूर्ति को बढ़ाना सम्भव है ।

अल्पकाल में श्रमपूर्ति

विकसित अर्थव्यवस्था में सामान्यतया अल्पकालीन श्रमपूर्ति प्रचलित मजदूरी दर के बाद बेलोचदार होता है । ऐसा इसलिए होता है कि प्रचलित मजदूरी दर से ऊंची मजदूरी करने के बाद भी अर्थव्यवस्था में प्राप्त श्रमिकों की संख्या में किसी प्रकार की भी वृद्धि नहीं की जा सकती है । विकसित अर्थ व्यवस्था में औसत श्रमिकों को काम मिल जाता है जो कि प्रचलित मजदूरी पर कार्य करना चाहते है । इन विकसित देशों में अनुसीमान्त श्रमिकों को ही श्रम पूर्ति की तरफ खींचकर श्रमपूर्ति को बढ़ाना सम्भव होता है ।

(अनुसीमान्त श्रमिक = महिलाएं, बच्चे, वृद्ध जो कि सामान्यतया कार्य नहीं करते है ।)

ये अनुसीमान्त श्रमिक सामान्य मजदूरी दर पर कार्य करने को तैयार नहीं होते है । अत: युद्ध काल या अन्य विशेष परिस्थितियों में इन अनुसीमान्त श्रमिकों के श्रम पूर्ति में जाने में अत्यधिक मजदूरी देनी पड़ती है । अन्यथा श्रम पूर्ति को थोड़ा लोचदार बनाना भी सम्मव नहीं होता है।

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन करते समय श्रमिक गतिशीलता को 100% प्रभावी मानकर ही उपरोक्त स्थिति देखने को मिलती है किन्तु यदि किसी कारणवश गतिशीलता कम हो तो श्रमपूर्ति कहीं अधिक लोचदार व कहीं कम लोचदार पाई जाती है ।

4.6.2 अल्पकाल में श्रम पूर्ति वक्र का निर्धारण

जैसा कि रेखा चित्र 4.4 में स्पष्ट है कि अल्पकाल में भी OW मजदूरी दर तक कोई भी श्रमिक कार्य करने को तैयार नही होगा क्योंकि OW से कम मजदूरी में न्यूनतम स्तर पर जीवन यापन सम्भव नहीं होता है अत: श्रमिक OW मजदूरी से कम मजदूरी पर काम करने के स्थानपर आराम पसन्द करेगा व अपनी बचत को खर्च करके जीवन यापन करवा पसन्द करेगा । OW मजदूरी आने पर श्रमिक श्रम पूर्ति प्रारंभ हो जायेंगी बढ़ने लगेगी । जबकि OW मजदूरी होने पर समस्त श्रमिक (L) कार्य में आने लगेंगे किन्तु यदि मजदूरी रW से भी बढ़ाई जाय तो उस स्थिति में श्रमपूर्ति कम हो जायेगी या L से घटकर L1 हो जायेगी क्योंकि उचित जीवन स्तर के बाद आराम कों महत्व देने लगेगा किन्तु यदि मजदूरी और बढ़ा दी जाय W3 कर दी जाय तो श्रमिक और अधिक आराम व कम काम पसन्द करने लगेगा यानि श्रमिक पूर्ति घटकर L1 से घटकर L2 हों जायेगी या तो श्रमिक कम घण्टे काम करेंगे या परिवार में 2 के स्थान पर एक कार्य करेगा क्योंकि कम काम मे समान जीवन स्तर बना रहेगा । अगर मजदूरी को W3 से बढ़ाया जाय या W4 कर दी जाय तो श्रमिक अधिक उच्च जीवन स्तर व सुख सुविधाओं की तरफ आकर्षित होकर श्रमपूर्ति बढ़ायेगा यानि श्रमिक वापस श्रम पूर्ति बढ़ायेगा

W5 मजदूरी तक की श्रम पूर्ति उसी प्रकार बढ़ेगी कि एक और परिवर्तन बराबर मजदूरी बढ़ने से देखने को मिलेगा जो कि W5 से मजदूरी ऊंची होने पर आयेगा वह है कि मजदूरी W6 होने पर अनुसीमान्त श्रमिक पूर्ति (बच्चे बूढ़े, महिलाएं) बढ़ेगी जो कि L से भी ज्यादा L3 है मजदूरी ओर बढ़ने W6 होने पर समस्त अनुसीमान्त श्रमिक कार्य पर होगा व श्रम L4 हो जायेगी फिर हम देखते है कि मजदूरी और बढ़ाने पर W7 करनें हम श्रमपूर्ति को और बढ़ाने में सफल नहीं हो सकेंगे जबकि W7 मजदूरी श्रम पूर्ति को घटाकर L5 पर लें आयेगी क्योंकि और मजदूरी बढ़ने, पर उनका जीवन स्तर ऊंचा ही बना रहेगा व अनुसीमान्त श्रमिक फिर श्रम शक्ति सै बाहर हौ जायेंगे ।

इस प्रकार हम देखते है कि एक विकसित अर्थव्यवस्था में अल्प-काल में मजदूरी बडाकर हम श्रम पूर्ति को कुछ सीमा तक बड़ा सकतें है ।

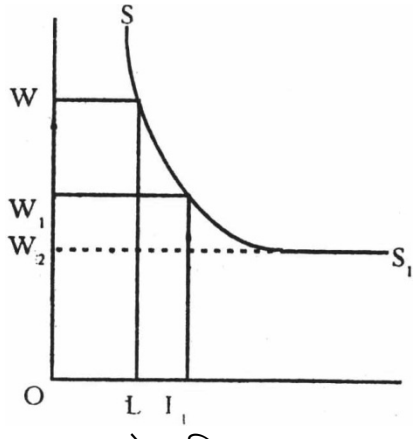

रेखा चित्र 4.5

एक अन्य स्थिति जिस अर्थव्यवस्था में विकास नहीं हुआ हो या पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में जहां जनसंख्या अधिक होती है वहां श्रम पूर्ति वक्र गिरती हुआ या नीचे की ओर झुकती हुआ होती है । श्रम पूर्ति रेखा (अर्थात् एक नीची कीमत पर ज्यादा श्रमिक पूर्ति जबकि ऊंची कीमत या कम श्रम पूर्ति पाई जाती है) मजदूरियों के बहुत ही नीचे स्तर पर श्रमिकों की एक बड़ी मात्रा में पूर्ति दर्शाती है अथवा श्रमिकों की माग की कमी (जो उत्पादित वस्तुओं की मांग की कमी) अथवा बेरोजगारी की स्थिति को दिखाती है जैसा कि रेखा चित्र 4.5 में दर्शाया गया है कि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में दीर्घकाल अथवा अल्पकाल दोनों में बेरोजगारी की स्थिति दिखती है इन देशों में मजदूरी की कमी के साथ श्रम पूर्ति बढ़ती है जैसे रेखा चित्र 5 में W से मजदूरी W1 होने पर श्रम पूर्ति बढ़कर L से L1 हो गई है जबकि W2, मजदूरी पर श्रमपूर्ति असीमित है या न्यूनतम मजदूरी पर असीमित श्रम पूर्ति, है क्योंकि अकुशल श्रमिक इतने ज्यादा बेरोजगार होने है कि न्यूनतम मजदूरी पर काम करने को तैयार होती है ऊंची मजदूरी पर श्रम की पूर्ति कम होने का कारण अधिक योग्य वं कुशल श्रमिको का अभाव होता है जैसे किसी तकनीकि कार्य के श्रमिक ऊंची प्रशिक्षण लागत कें कारण कम पूर्ति होती हुए जैसा चित्र में ऊंची मजदूरी W पर श्रम पूर्ति OL ही है ।

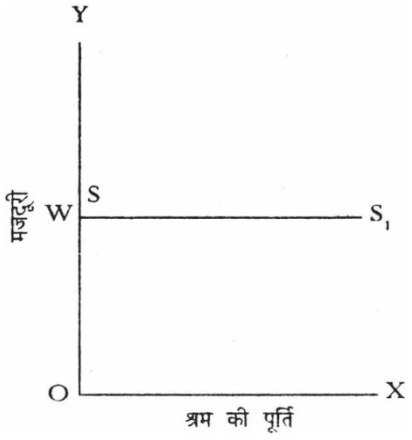

रेखा चित्र 4.6

विकसित व विकासशील या प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में श्रम पूर्ति वक्र एक पड़ी हुई रेखा के समान जैसा रेखा चित्र 4.6 मे दर्शाया गया है बिल्कुल बेलोचदार पाया जाता है ऐसा सिर्फ विकसित या प्रगतिशील्न व्यवस्थाओं में तब होता है जब कि अर्थव्यवस्था मैं मन्दी व्याप्त होती है किन्तु विकसित व प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में यह अति अल्पकाल मैं ही पाया जाता है जबकि मन्दी कें कारण उत्पादित मात्रा का क्रेता बाजार में उपलब्ध न होने के कारण श्रमिक रोजगार से निकाल दिये जाने है व बेरोजगारी होने से श्रम पूर्ति बढ़ जाती है । किन्तु पिछड़े देशों में भी यह मन्दी पर निर्भर होता है ।

जैसा कि रेखा चित्र 4.6 में OW मजदूरी पर असीमित श्रम पूर्ति है । पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं में बेलोचदार पूर्ति वक्र (अत्यधिक जनसंख्या के कारण बेरोजगार अनिपुण श्रमिक की ज्यादा पूर्ति) पायी जाती है किन्तु पिछड़ी अर्थव्यवस्थाएं जैसे विकास करती है स्थिति रेखा चित्र 4.6 सें 4.5 व 4.5 से 4.5 से 4.4 के समान श्रम पूर्ति वक्र विकास होने पर (Backworkd Banding) बाई और झुका हुआ हो जाता है किन्तु इस प्रक्रिया से अति दीर्घकाल लगता है ।

4.7 श्रम पूर्ति में महिलाएं

श्रम पूर्ति में महिलाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता चाहे अर्थव्यवस्था विकसित हो अथवा पिछड़ी हुई क्योंकि कुछ जनसंख्या का करीब 50% भाग महिलाओं का होता है । जबकि पुरुष व महिलाएं एक प्रकार की शिक्षा ग्रहण करे हुए है समान रूप से दो आंखे दो हाथ यानी शारीरिक समानता के साथ समान बुद्धि का स्तर (IQ and Aptitude) समान अनुभव समान सामाजिक स्तर समान कार्य के घण्टे होने के बावजूद 6० से 65% ही मजदूरी प्राप्त करती है ।

यह भेद हमें बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में भी देखने कों मिलता है जो महिला श्रम पूर्ति को प्रभावित करता है । अत : यह भेद समाज रूपी संस्था में पुराना समय सै चालू है ।

अगर हम सामाजिक व आर्थिक रूप से विकसित राष्ट्र अमेरिका में भी लिंग के आधार पर पाये जाने वाले मजदूरी भेद का अध्ययन करे तो पायेंगे कि महिलाओं के साथ वहां भी- भेद जाता हें जैसा कि तालिका 4.1 में दर्शाया गया है । साथ ही तालिका 4.2 में महिलाओं की

पुरुषों की तुलना मैं वार्षिक आय की दर को दर्शाया गया है । अमेरिका में कॉलेज स्नातक महिला की आय पुरुष हाई स्कूल स्नातक के बराबर पाई जाती है ।

तालिका 4.1

अमेरिकन श्रम बाजार में खण्ड विभाजन

व्यवसाय	**महिलाओं का %**	
(A) ऊंची मजदूरी दर के व्यवसाय	**1970**	**1981**
1. इन्जीनियरिंग टेकनीकल	2.9	17.8
2.सेल्स एजेन्ट होलसेल	6.4	17.2
3. स्टाक एण्ड बॉड सेल्स	8.6	17.2
4. मेनेजर्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटर्स	11.6	28.4
(B) नीची मजदूरी दर के व्यवसाय	**1970**	**1981**
1. नर्स एण्ड एडेंडस	84.6	84.4
2. हेयर ड्रेसर्स एण्ड ब्यूटीशियन्स	90.4	84.9
3. चाइल्ड केयर वकर्स आउट साइड होना	93.2	86.7
4. स्वंडर्स एण्ड -सिटिचस	93.8	96.7
5. प्रोक्टिकल नर्सेज	96.3	97.7

तालिका 4.2

पुरुष व महिलाओं की वार्षिक आय की दर (प्रतिशत मे)

	(1970 मे)	
(समूह)	**पुरुष**	**महिलाएं**
श्वेत	100	49
जापानी अमेरिकन	99	52
चाइनीज अमेरिकन	85	45
भारतीय अमेरिकन	68	42

इसी प्रकार का भेद हमें भारत में भी देखने को मिलता है किन्तु भारत मजदूरी मे अन्तर असंगठित क्षेत्र में (अकुशल श्रमिक) ही पाया जाना है । हमारे देश भारत मैं क्षेत्र में लिंग के आधार पर मजदूरी में अन्तर नहीं पाया जाता है । जैसा कि अमेरिका में संगठित व असंगठित दोनों क्षेत्रों में पाया जाता है ।

परम्पराओं के आधार पर भारतीय नारी मिट्टी मैं काम करने यानी खेत में व हस्तकरघा और घरेलू कार्य से जुड़ी हुई है किन्तु बदलते परिवेश ने उसे फैक्ट्री व घर से बाहर काम के लिए मजबूर किया है । साथ ही महिला अर्द्धकुशल व अकुशल क्षेत्रों में श्रमिक के रूप में कार्य करती है । अधिक सरकारी नीतियों के संरक्षण व शिक्षा व ट्रेनिग के प्रसार से महिलाएं संगठित क्षेत्र में भी काफी देखने को मिलती है किन्तु फिर भी महिला श्रम शक्ति का बढ़ा भाग आज भी असंगठित क्षेत्र में ही पाया जाता है ।

भारत में असंगठित क्षेत्र जैसे मकान बनाने का कार्य में कुली व बेलदार की मजदूरी में या घरेलू नौकरी की मजदूरियों में अन्तर देखने को मिलता है । किन्तु समान शिक्षा, अनुभव कार्य क्षमता के बाद संगठित क्षेत्र मे मजदूरी में अन्तर भारत में नही पाया जाता है जिसका मुख्य कारण भारत मै संविधान 16(1) तथा 16 (2) में पुरुषों व महिलाओं को बिना किसी भेद-भाव के रोजगार के सम्बन्ध में बराबर मौका का अधिकार देते है और ऐसे ही सार्वजनिक नीति का निर्देशक सिद्धान्त 39 (अ) है ।

इनमें महिलाओं सें रोजगार में लिंग भेद न किया जाए इसका व्यवस्था है ।

4.8 महिलाओं की मजदूरी में अन्तर के कारण

(1) कार्य क्षमता की कमी

सामान्यतया पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का शारीरिक क्षमता कम पाई जाता है इस कारण प्रत्येक कार्य में महिलाएं पूर्णतया सक्षम नहीं होती है । अत : इस कमी कें कारण मजदूरी में अन्तर पाया जाता है ।

(2) सुरक्षा पर अतिरिक्त व्यय

कुछ ईश्वर प्रदत्त व कुछ सामाजिक कारणों से महिलाएं समाज में सुरक्षित नहीं पाई जाती है । उन्हें रात्रि में अतिरिक्त सुरक्षा की आवश्यकता होती है । अत : सेवायोजकों की लागत बढ़ जाती है इस कारण से मजदूरी में भेद पाया जाता हें ।

(3) प्रसूति लाभ व शिशु सदन का कानूनी दायित्व

विशेष कर प्रसूति लाभ व शिशु सदन से सम्बन्धित कानूनी व्यवस्थाओ के कारण भी सेवायोजक की लागत बढ़ जाती है । प्रसूति काल मैं उत्पादक को उत्पादन भी प्राप्त नहीं होता साथ ही दूसरे श्रमिक को रखकर उत्पादन पर दुगना व्यय होता है । शिशु छोटा होने पर माता के कार्य के बीच मैं दूध पिलाना आदि अवकाश के कारण उत्पादकता कम देती है ।

(4) स्थायित्व का अभाव या अनुपस्थिति दर का ऊंचा होना

सामान्यतया महिला श्रम में स्थायित्व का अभाव है क्योंकि प्रसूति काल व बच्चों के पालन पोषण के साथ ही महिला शादी होने से स्थान परिवर्तन के कारण व्यवसाय छोड़कर चली जानी है और पति के स्थानान्तरण के साथ महिलाएं भी अपने व्यवसाय को या तो छोड़कर चली जाती है या उनकी उपस्थिति कम हों जाती है तथा वे ज्यादा समय अवकाश पर रहती है जो कि सेवायोजक कें लिए समस्या बन जाता है ।

(5) आय का प्रमुख साधन नही

स्त्रियां सामान्यतया अपनी नौकरी से अपनी पारिवारिक आमदनी में कुछ थोड़ी सी वृद्धि कर लेने अथवा अपना शौक पूरा करने का साधन मानती है । अत : उन्हें कितनी मजदूरी मिल रही है, के प्रति ज्यादा चिन्तित नहीं होती है ।

(6) श्रम संघों का व्यवहार

वास्तव में श्रम संगठनों मैं महिला श्रमिक सदस्य 15-20% पायें जाते है।, अत : श्रम संगठन उनकी समस्याओं पर विशेष ध्यान नही देते है ।

4.9 भारत में महिला श्रम का मुख्य कार्यक्षेत्र

देश में महिला श्रम कें मुख्य कार्य क्षेत्र निम्न है -

(1) कारखाना उद्योग

कारखाना उद्योग में महिलाएं अधिकतर खाद्यान्न, काटन, जिंग प्रेसिंग, तम्बाखू, बीड़ी, अलोह धातु, कागज, रासायनिक पदार्थ, लकड़ी, सूती, रेशमी, ऊनी, जूट ।टेक्सटाइल, धान, दाल मिल आदि में कार्यरत है ।

(2) बागानों में महिला श्रम

बागानों मैं महिला श्रमिकों को काफी मात्रा मे रोजगार प्राप्त है । चाय, काफी, रबर बागानों में अधिकतर महिलाएं कार्यरत है । क्योंकि चाय की पत्तियां तोड़ने का कार्य पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं कें कोमल हाथ सुगमता व शीघ्रता से करते है ।

(3) बीड़ी उधोग में महिला श्रम

बीड़ी उद्योग मुख्यतया मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल में है किन्तु अन्य राज्यों में भी गाये जाने है । यह मौसमी उद्योग है जब महिलाएं खेती कें कार्य से निवृत या मुक्त होती है उस समय वे बीड़ी उद्योग में कार्य करती है

(4) चावल दाल मिलों में महिला श्रम

भारत मैं ज्यादातर बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु अन्य राज्यों में जहां चावल ज्यादा पैदा होता है अथवा टालो का उत्पादन ज्यादा होना है मुख्यतया महिला श्रमिक इन उद्योगों मैं कार्यरत पाई जाती हें ।

(5) खेती व फलों के बागों में महिलाएं

पूरे भारत वर्ष में महिलाएं सारे साल कार्य करती है । बुवाई सें कटाई तक महिलाएं कार्य करती है । साथ ही फलों के बागों मे फलों को तोड़ने, पैक करनें में भी महिला श्रम कार्यरत रहता है। मुख्यतया इन उद्योगों के अलावा करीब प्रत्येक संगठित व असंगठित क्षेत्र में भारत में महिलाएं श्रम में संलग्न है । 1991 मैं जनगणना कें आधार पर महिला जनसंख्या की 22.69 महिलाएं श्रमिक रूप में रजिस्टर्ड पाई गई जो कि 91.4 मिलियन है ।

जो कुल महिला जनसंख्या 402.8 मिलियन (जम्मू कश्मीर छोड़कर) है । ज्यादातर महिला श्रमिक ग्रामीण है जो कि 87% करीब कृषि क्षेत्र में किसान व खेतिहर मजदूर के रूप मैं कार्यरत है।

शहरी क्षेत्र की महिलाओं ये करीब 80% महिलाएं दूसरे क्षेत्रों मैं लगी हुई है जो कि असंगठित क्षेत्र है । जैसे घरेलू बिल्डिंग कन्सट्रेक्शन पूर्ण श्रमिको में कुल महिला श्रमिक 64.27 मिलियन है (जौ कि 72% के आसपास है) पूर्ण महिला श्रमिकों का विभाजन नीचे, दिया गया है -

जैसा कि तालिका 4.3 से स्पष्ट है कि 80% के लगभग महिलाएं कृषि क्षेत्र में कार्यरत है बाकी 20% अन्य स्थानों पर कार्य करती है।

तालिका - 4.3

भारत में पूर्ण महिला श्रमिकों का विभाजन

महिला श्रमिक	मिलियन में	पूर्ण श्रमिक % में
(1) कृषक	22.22	34.57
(2) खेतिहर मजदूर	28.43	44.57
(3) पशु पालन, वन, मछलीपालन	1.32	2.05
(4) खानों में खनन में	0.21	0.32
(5) घरेलू कार्य	2.25	3.50
(6) अन्य उद्योग	2.45	3.81
(7) न्स्ट्रेक्शन कार्य	.42	0.65
(8) व्यापार व वाणिज्य	1.43	2.22
(9) यातायात, भण्डारण, संचार	0.20	0.31
(10) अन्य नोकरियां	5.31	8.26
कुल पूर्ण श्रमिक (महिलाएं)	64.27	-

जैसा कि तालिका 4.4 से स्पष्ट होता है कि 1971 मे कुल महिलाएं जो कार्यरत श्रमिक थी उनकी स्थिति में 1991 तक देखने में हमें कुछ सुधार दिखता जो कि अभी भी बहुत बहुत कम है जिस सुधरने की आवश्यकता है ।

तालिका 4. 4

भारत में श्रम में महिला भागीदारी की दर प्रतिशत मे

वर्ष	प्रकार	व्यक्ति	पुरुष	महिलाएं
1971	कुल	34.17	52.75	14.22
	ग्रामीण	35.33	53.78	15.92
	शहरी	29.61	48.88	7.18
1981	कुल	36.70	52.62	19.67
	ग्रामीण	38.79	53.77	23.06
	शहरी	29.99	49.06	8.31
1991	कुल	37.68	51.56	27.73
	ग्रामीण	40.24	52.50	27.20
	शहरी	30.44	48.95	9.74

4.10 महिला श्रम व कार्य के घण्टे

समय-समय पर कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत सर्वप्रथम 1991 के कारखाना अधिनियम द्वारा स्त्रियों के कार्य करने के घण्टे 11 निर्धारित किये गये जिसमें 1.5 घण्टा बीच मे विश्राम रखा गया । इसमें स्त्रियों के लिए रात्रि का कार्य निषिद्ध किया गया । नवम्बर 1945 में सातवें श्रम सम्मेलन में 48 घण्टे प्रति सप्ताह के सिफारिश की सिफारिश की गई

और उसके परिणाम स्वरूग 1946 में एक संशोधन करके एक अधिनियम पारित किया गया । तब सै निरन्तर चालू कारखानों मैं कार्य के घण्टे धटाकर अधिकतम प्रतिदिन सप्ताह 48 अथवा प्रति दिन 9 ओर मौसमी कारखाने में प्रति सप्ताह 54 अथवा प्रतिदिन 10 कर दिये । अत : कारखाना अधिनियम कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह 48 रखे व 1 घण्टे का रोज 6 दिन तक अवकाश का प्रावधान रखा । जबकि 7 दिन में एक दिन अवकाश का भी प्रावधान रखा गया जो कि महिलाओं कें लिए भी पुरुषों के समान वेतन समान कार्य के सिद्धान्त पर आधारित माना गया ।

जिसमें विशेष उद्योगों में या व्यवसायों में काम के घण्टे अलग (कम) हो सकते है किन्तु 48 घण्टे प्रति सप्ताह से अधिक नहीं । अत : उनमें लिंग के आधार को भेद-पीव नहीं होगा ऐसा प्रावधान रखा गया ।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्यशील एवं अकार्यशील जनसंख्या में दो स्पष्ट कीजिये।
2. पूर्ण श्रमिक, सीमान्त श्रमिक व अनुसीमान्त श्रमिक क्या होते है? स्पष्ट करिये।
3. श्रम पूर्ति वक्र का एक बिन्दु के पश्चात् बाई ओर क्यों झुकता है? ।
4. श्रम पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्व बताइये।,
5. पिछड़ा हुई अर्थ-व्यवसाओं में पूर्ति वक्र कम मजदूरी पर बेलोचदार व ऊंची मजदूरी पर कम श्रम पूर्ति क्यों दर्शाता है?
6. महिलाओं की मजदूरी[मैं अन्तर के कारण बताइये।
7. महिला श्रम के कार्यक्षेत्र बताइये।

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नाथूरामका, लक्ष्मी नारायण, भारतीय अर्थव्यवस्था, कालेज बुक हाउस,जयपुर

Samuelson, P.A. and W.Nordhaus! Economics

Mc Graw Hill Book Company, 1985

भगोलीवाल टी.एन, श्रम अर्थशास्त्र एवं औद्योगिक संबंध, साहित्य भवन, आगरा, 1985

इकाई 5

श्रम की मांग एवं श्रम की मांग के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 श्रम की मांग

5.2.1 श्रम की अल्पकालीन मांग

5.2.2 एक सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या उद्योग के लिए श्रम की मांग

5.2.3 दीर्घ काल में श्रम की मांग

5.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन स्तर पर मजदूरी एंव रोजगार

5.4 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में संतुलन

5.5 न्यूनतम मजदूरी

5.6 निबन्धात्मक प्रश्न

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन दशाओं सें अवगत कराना है जो श्रम की मांग को प्रभावित करती है । श्रम की मांग एक व्युत्पन्न मांग है । इस इकाई में आपको बाजार की विभित्र दशाओं के अन्तर्गत मजदूरी एवं रोजगार के निर्धारण से अवगत कराया जाएगा ।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विभित्र प्रतियोगिता दशाओं में मजदूरी एवं रोजगार स्तर का निर्धारण का रेखाचित्रों के माध्यम से विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई में लेखक की मान्यता है कि इन रेखा चित्रों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्ञान आप अब तक प्राप्त कर चुके

5.2 श्रम की मांग

श्रम की मांग प्रत्यक्ष मांग नहीं है वरण यह परोक्ष मांग है । वस्तुओं के उत्पादन' के कारण इसकी मांग हो जाती है अत : इस का मूल्य उस वस्तु के मूल्य पर निर्भर करता है जिसका इसके द्वारा उत्पादन किया जाता है । इस प्रकार मजदूरी श्रम की उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृति रखती है । उत्पादक श्रम को उसकी उत्पादकता के बराबर मजदूरी चुकाता है अर्थात् श्रम की उत्पादकता वह है जो वह उत्पादन करता है तथा उत्पादन के लिए प्रचलित मजदूरी है । यह किसी व्यवसाय विशेष का उदाहरण नहीं है वरण सभी उद्योगों के लिए है । अर्थात श्रम को प्रत्येक स्थान पर उसकी उत्पादकता के बराबर मजदूरी चुकाई जाती है ।

श्रम की मांग की प्रकृति नीति निर्धारण से सम्बन्धित है । सरकार की नीति प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से श्रम बाजार को प्रभावित करती है । मोद्रकी व राजकोषीय नीति या अप्रत्यक्ष रूप से श्रम की मांग को प्रभावित करती हैं । सरकार की शर्तों व स्तर का सरकार' की नीति

न्यूनतम मजदूरी कानून, द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है । इस प्रकार के अधिनियमों द्वार सरकार श्रम बाजार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है । यह श्रम को कम मजदूरी स्वीकार करने व नियोक्ता को कम मजदूरी देने से रोकती है ।

इस विषय पर विवाद इसलिए आरम्भ होता है कि श्रम की मांग का वक्र ऋणात्मक ढाल वाला होता है । यदि अधिनियम द्वारा न्यूनतम मजदूरी को बढ़ाया जाता है तो कुछ व्यक्तियों को रोजगार सें हटाना पड़ता है । जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है :-

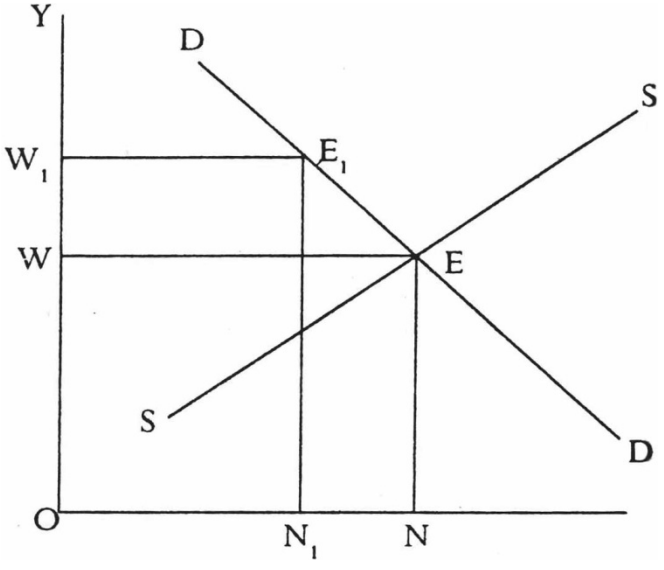

रेखाचित्र - 5.1

श्रम की मांग विश्लेषण करने में निम्नलिखित मान्यताएं है ।

1. श्रम की मांग की सभी इकाइयां समरूप है ।
2. समान मजदूरी दी जाती है ।
3. नकद भुगतान किया जाता है ।
4. अर्थव्यवस्था एक बन्द अर्थव्यवस्था है जहाँ श्रम आप्रावास व उत्प्रवास वर्जित है ।

रेखा चित्र 5.1 मे W बाजार में प्रचलित मजदूरी दर है । सरकार यदि न्यूनतम मजदूरी दर बढ़ाकर डबल्यू1 कर दे तो रोजगार N से घटकर N1 । स्तर पर आ जाता है ।

5.2.1 श्रम के अल्पकालीन मांग

श्रम की मांग की सिद्धान्त सामान्य रूप में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है जिसे एक फर्म कैं प्रारूप के रूप में दर्शाया जा सकता है । एक फर्म जो दो साधन श्रम व पूंजी की उपयोग करती है इन दो साधनों के विभिन्न संयोगों सें विभिन्न वस्तुओं की उत्पादन किया जा सकता है । वास्तविक उपयोग इन दो साधनों की प्रचुरता की सीमितता पर निर्भर करता है के एक फर्म किस प्रकार अधिकतम उत्पादन करती है ।

अल्पकाल का अभिप्राय उस अवधि से है जिसमें एक उत्पादक अपने स्थिर साधनों की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता किन्तु वह परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में परिवर्तन-कर सकता है जैसे श्रम की मात्रा एवं उत्पादन सामग्री आदि । इस प्रकार के प्रारूप में स्थिर

साधनों कें साथ श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो उत्पादन तो बढ़ता है किन्तु यह घटी हुई दर पर बढता है । हासमान प्रतिफल के नियम को जीवन के कई पहलुओं में देखा जा सकता है किन्तु इसे उत्पादन प्रक्रिया से सरलता से देखा जा सकता है ।

एक सरलतम उदाहरण के रूप में इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है माना कि एक व्यक्ति एक बड़ी शावल (गड्डा खोदने का औजार) से एक दिन में 100 फीट गड्डा खोद सकता है । दो व्यक्ति मध्यम श्रेणी की शवल से 150 फीट गड्डा खोद सकते है । तीन वक्ति छोटी शावल से 180 फीट गड्डा खोद सकते है । एवं चार व्यक्ति उससे भी छोटी शावल से 400 फीट गड्डा खोद सकतें है एवं इसी तरह शावल का आकार छोटा करते हुए व व्यक्तियों की संख्या बढ़ाते हुए । इस उदाहरण में स्थिर पूंजी अपरिवर्तनीय रहती है और अधिक श्रमिक लगाने पर प्रति श्रमिक स्थिर पूंजी घटती जाती है । इस प्रकार औसत उत्पादन घटता जाता है एक श्रमिक पर 100 इकाईयाँ दो श्रमिक पर 75 इकाईयों, तीन श्रमिक पर 60 इकाईया चार श्रमिक पर 50 ईकाइयाँ ।

$$\text{औसत उत्पादन} = \frac{\text{कुल उत्पादन}}{\text{श्रमिकों की संख्या}}$$

सीमांत उत्पादन वह है जो एक अतिरिक्त श्रमिक की इकाईयों को उत्पादन कार्य में लगाने पर कुल उत्पादन में वृद्धि होती है । जैसे प्रथम श्रमिक की सीमांत उत्पादन 100 इकाइयाँ है । द्वितीय श्रमिक की 50 इकाईयां, तृतीय श्रमिक की 30 इकाइयां, चतुर्थ श्रमिक का 20 इकाइयां आदि । कुल उत्पादन औसत उत्पादन व सीमांत उत्पादन कों रेखाचित्र 5.2 एवं 5.3 द्वारा दर्शाया गया है ।

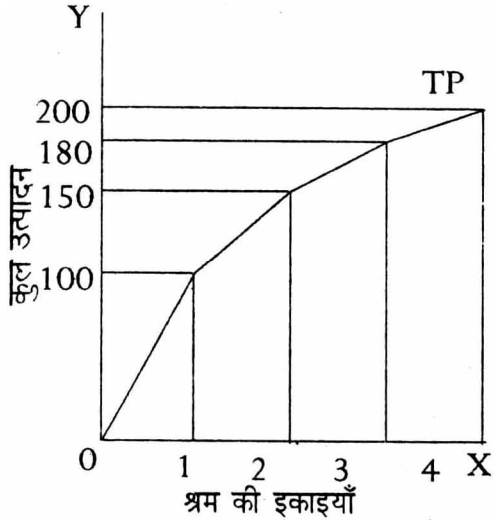

रेखा चित्र 5.2

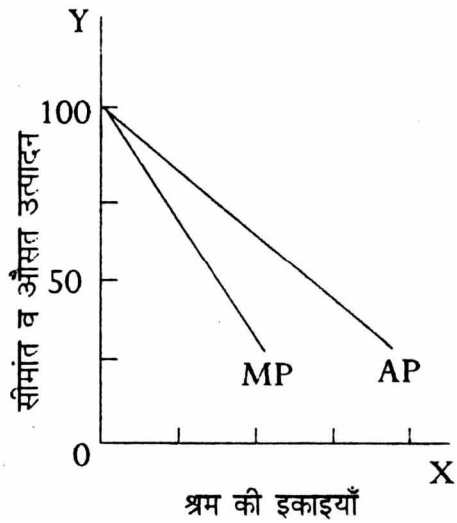

रेखा चित्र 5.3

तीनों उत्पादन वक्रों में घनिष्ठ सम्बन्ध है । कुल उत्पादन वक्र में निहित होता है कि औसत उत्पादन व सीमांत उत्पादन वक्र की किस प्रकार निरूपण किया जाय । एक अधिकतम लाभ कमाने वाला उत्पादक यह सोचेगा कि एक श्रमिक को लगाने से उसे जो अतिरिक्त आय प्राप्त होगी वह उस श्रमिक को चुकाई जानें वाली मजदूरी से अधिक है या नहीं यदि अधिक है तो वह अतिरिक्त श्रमिक लगायेगा अन्यथा नहीं । सीमांत उत्पादकता सारणी से उत्पादक को

यह ज्ञात होना है कि एक अतिरिक्त श्रमिक को कार्य पर लगाने से कितना उत्पादन प्राप्त होगा । किन्तु इससे उत्पादन का मूल्य ज्ञात नही होता है । का उत्पादन करनें के लिए उत्पादन व उत्पादन मूल्य कों गुणा करके कुल मूल्य को ज्ञात किया जा सकता है ।

संक्षेप में सीमांत आय उत्पाद सारणी ही श्रम की मांग सारणी होती है । चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई एक फर्म बाजार में प्रचलित मजदूरी दर को प्रभावित नही कर सकती, प्रत्येक फर्म को यह निर्णय लेना होता है कि उसे प्रचलित मजदूरी दर पर कितने श्रमिकों, को कार्य पर लगाना है । उत्पादक अपने उत्पादन ये श्रमिकों की संख्या तब तक बढ़ता चला जायगा जब तक कि सीमांत आय उत्पाद मजदूरी के बराबर न हों जाय ।

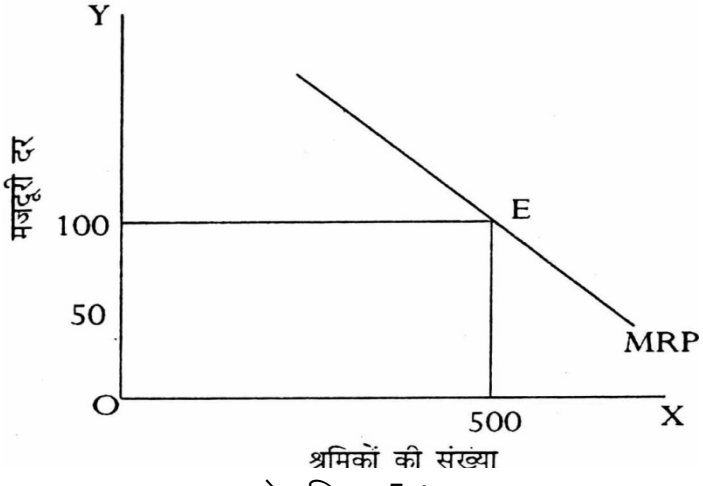

रेखाचित्र - 5.4

यह सत्य है कि यदि उत्पादक E बिन्दु से कम श्रमिकों. को अपने उत्पादन कार्य पर लगाता है तो वह लाभकारी स्थिति से वंचिन रहेगा क्योंकि वह उन श्रमिकों को कार्य पर नहीं लगा रहा है जिनका उत्पादन मूल्य उनकी मजदूरी से अधिक है । जबकि E बिन्दु खे बाद भी श्रमिकों को लगाता है तो उनका उत्पादन मूल्य उनकी मजदूरी से कम है । अत: वह हानि की ,स्थिति में रहेगा । इस प्रकार प्रचलित मजदूरी दर पर श्रमिक की सीमांत आय उत्पाद उसकी मजदूरी के बराबर रहेगा । प्रतियोगी बाजार में किसी भी फर्म का इतना अधिक उत्पादन नहीं है कि वह उत्पादन मूल्य को प्रभावित कर सके । अत : वस्तु का मूल्य स्थिर रहना है । सीमांत भौतिक उत्पाद क्यौ ऋणात्मक ढाल यह दर्शाता है कि श्रम की मांग वक्र भी ऋणात्मक है । श्रम कें मांग वक्र में उत्पादन तकनीकी व अन्य कई कारणों से परिवर्तन हो सकता है ।

5.2.2 एक संमूर्ण अर्थव्यवस्था का उद्योग के लिए श्रम की मांग

एक उद्योग के लिए श्रम की मांग प्रत्येक फर्म की श्रम की मांग अनुसूची का योग है। उनकी विशेषताएं की पूर्ववत ही रहती है । जैसे श्रम के मांग वक्र का ऋणात्मक ढाल । किन्तु कुछ तथ्य जिन्हें फर्म के स्तर पर नगण्य मान लिया जाता है । उद्योग के स्तर पर महत्वपूर्ण होने है । जैसे एक फर्म के स्तर पर उत्पाद की कीमत में परिवर्तन से रोजगार या उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु यदि उद्योग की सभी फर्मे श्रमिकों की संख्या में वृद्धि कर दें तो उत्पादन बढेगा और उत्पादन को बेचने के लिए इसकी कीमत मे कमी करनी पड़ेगी । इस प्रकार

श्रम की मांग वक्र सीमांन आगम वक्र नहीं हों सकता जैसे कि स्थिर कीमतों की मान्यता के साथ माना गया था । रोजगार बढ़ने के साथ कीमत में कमी होगी और सीमांत आगम वक्र बायीं और विवर्तित होगा जैसा कि रेखा चित्र 5.5 में स्पष्ट है ।

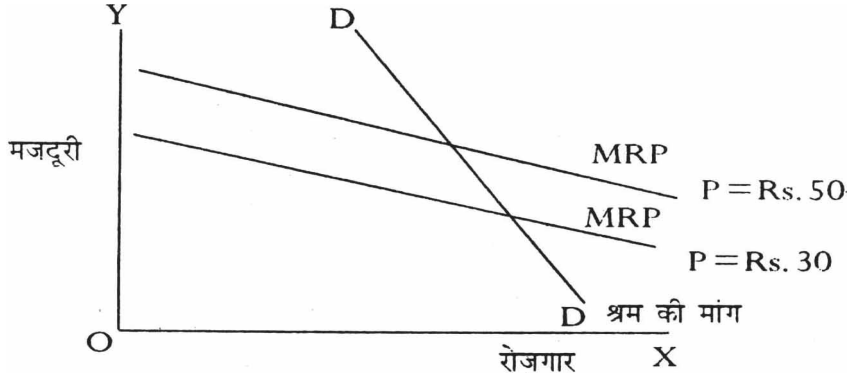

रेखा चित्र 5.5

इस प्रकार सीमांत उत्पाद वक्र में नीचे की और विवर्तन की परिणाम यह होगा कि उत्पादक श्रम को कम मजदूरी देना चाहेंगे जबकि श्रम संघ इनके मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि की मांग करेंगें जबकि मजदूरी में वृद्धि मजदूरों की संख्या में कमी कर देगी । श्रम के मांग वक्र की ढाल दर्शाता है कि यदि ढाल कम होगा तो मजदूरी में वृद्धि से अधिक श्रमिकों कों रोजगार से वंचित होना पड़ेगा जबकि ढाल अधिक होने पर श्रमिकों की संख्या में अपेक्षाकृत कमी कम होगी ।

5.2.3 दीर्घकाल में श्रम की मांग

दीर्घकाल वह काल है जिसमे संसाधनों की उचित रूप से आवटंन किया जा सकता है एवं पूंजी को भौतिक संयंत्रों के रूप में बदला जा सकता है ।

दीर्घकाल में मजदूरी में परिवर्तन के अनुरूप एक फर्म अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकती है । दीर्घकाल में मजदूरी बढ़ने के साथ ही फर्म श्रम का पूंजी से प्रतिस्थापना भी कर सकनी है । किन्तु जितना उत्पादन किया जाना है और मजदूरी में वृद्धि की जाती है तो रोजगार में कमी होगी । सामान्य रूप में अल्पकालीन कि तुलना मैं दीर्घकाल में श्रम के माप वक्र की ढाल कम होगा । इसे रेखाचित्र 5. 6 में दर्शाया गया है ।

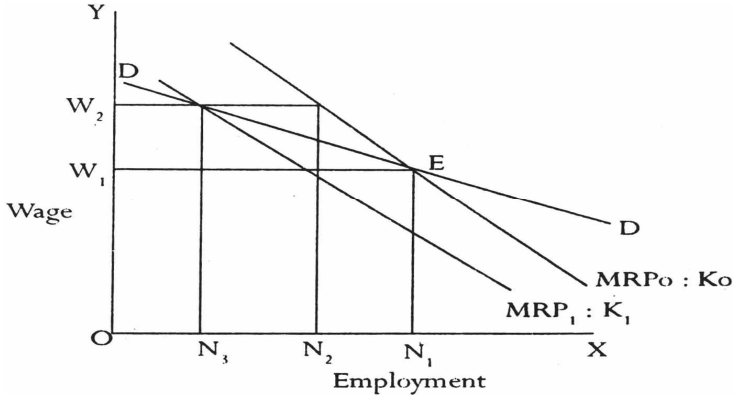

रेखाचित्र - 5.6

मानाकि आरंभ मे E बिन्दु पर W मजदूरी पर है और N1 रौजगार का स्तर है और उत्पादक KO पूंजी की मात्रा की उपयोग कर रहा है और सीमांत आय उत्पाद वक्र MRPo है अब मजदूरी दर में वृद्धि होती है और यह W_2 है तो उत्पादक रोजगार में कमी करेगा और अल्पकालीन मांगवक्र की दृष्टि से वह N_2 स्तर रखेगा किन्तु वह पुन : देखता है कि यह अनुकूलतम स्तर नहीं है और वह पूंजी की मात्रा मे कभी करेगा और पूंजी की स्तर K_1 रखेगा अब पूंजी में कमी होने से श्रम की उत्पादकता मे कमी होगी जिससे श्रम में और कमी करनी पडेगी इस प्रकार रोजगार की स्तर ।N_3 होगा । अत. दीर्घकाल में पूंजी व श्रम दोनों में परिवर्तन किया जा सकता है ।

5.3 पूर्ण पूतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन स्तर पर मजदूरी एवं रोजगार

श्रम बाजार में एक नियोक्ता कें लिए श्रम का पूर्तिवक्र पूर्णतया लोचदार होता है । और नियोक्ता जितने चाहें उतने श्रमिको को प्रचलित मजदूरी दर पर नियुक्त कर सकता है उसे मजदूरी में कोई वृद्धि या कमी करनें की आवश्यकता नहीं होती है । पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार होता है जैसा कि रेखाचित्र 5.6 में स्पष्ट है ।

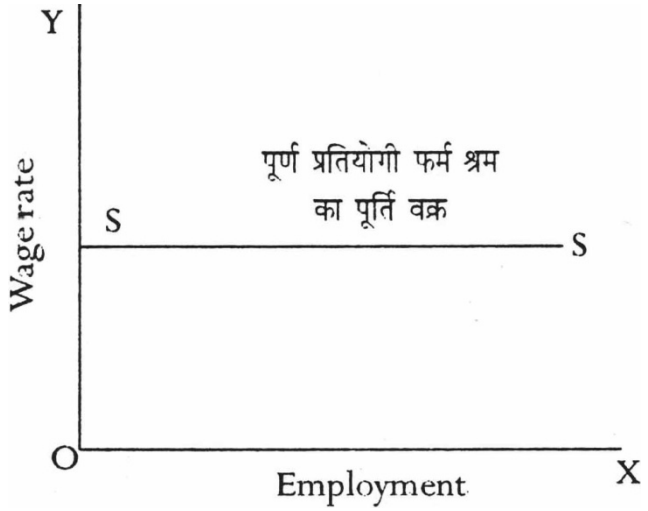

रेखाचित्र - 5.7

एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार में श्रम की मांग व पूर्ति वक्र का विश्लेषण रेखाचित्र 5.8 द्वारा दर्शाया जा सकता है । श्रम की पूर्ति वक्र एक फर्म के सम्बन्ध में वही होता है जो उसकी सीमांत उत्पाद वक्र अल्पकाल में होता है । मांग व पूर्ति वक्र के संतुलन बिन्दु P पर मजदूरी दर व रोजगार स्तर भी संतुलन की स्थिति में है ।

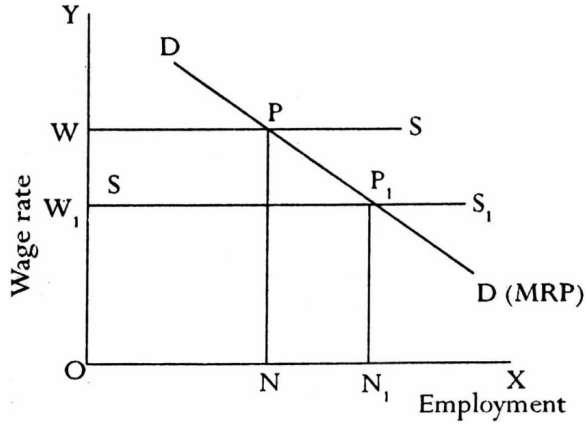

रेखाचित्र - 5.8

P बिन्दु एक स्थिर संतुलन है जिससे कम व अधिक मजदूरों को रोजगार पर नहीं लगाया जायगा। यदि अधिक मजदूरों को काम पर लगाया जायगा तो मजदूरी दर कम हो जायगी या श्रमपूर्ति के वृद्धि होती है तब भी मजदूरी दर में कमी होगी जैसे S_1 होने पर मजदूरी W_1 हो जाती है और रोजगार का स्तर त हो जाता है।

5.4 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में संतुलन

एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार मे सीमांत भौतिक उत्पाद को वस्तु की कीमत से गुण करके सीमांत आय उत्पाद ज्ञात करना आसान है किन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमांत आय उत्पाद ज्ञात करना जटिल है।

अपूर्ण प्रतियोगिता मैं एक अतिरिक्त इकाई को केवल कीमत मे कमी करके ही बेचा जा सकता है।

रेखाचित्र 5.9 में A से D तक बाजार की विभिन्न अवस्थाओं में श्रम की मात्रा में विश्लेषण किया गया है।

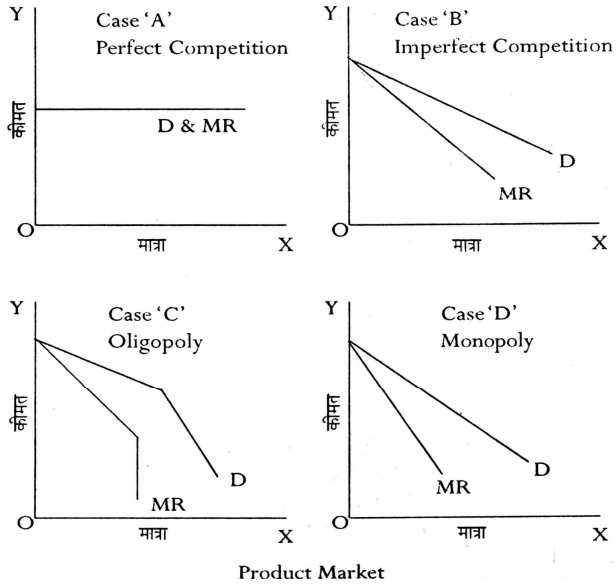

रेखाचित्र - 5.9

चित्र 5.9 A मे पूर्ण प्रतियोगिता कें अन्तर्गत श्रम की मांग 5-9 लोचदार है इस स्थिति में श्रम की सीमांत भोतिक उत्पादकता को वस्तु की कीमत से गुणा करके श्रम की सीमांत आय उत्पाद ज्ञान किया जा सकता है। 5.9 B में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति है जिसमें उत्पादक वस्तुओं में थोड़ी सी भिन्नता करके विक्रय करने है। इसमें सीमांत आय उत्पाद में बहुत तिर्व गति से कमी होती है।.चित्र 5.9 C में एक अत्याधिकार की स्थिति का वर्णन है। जहां मांग वक्र मुड़ा हुआ (Kinked) होता है। चित्र 5.9 D में एक एकाधिकारी का वर्णन। है इसमें श्रम की मांगवक्र कम लोचदार होता है।

उपर्युक्त चारों स्थितियों में श्रम की मांग वक्र आर्थिक रूप में सीमांत भौतिक उत्पादकता पर एक आर्थिक रूप में बाजार की स्थितियों एवं वस्तु की मांग की लोच द्वारा निर्धारित होता है। आधुनिक बड़े उद्योगों में अल्पाधिकारी अधिकतर दृष्टिगोचर होता है जैसे वहन, तम्बाकू, रबर टायर, इलेक्ट्रोनिक्स आदि। इन उद्योगों में वस्तु का मांग वक्र विकुचित होता है।

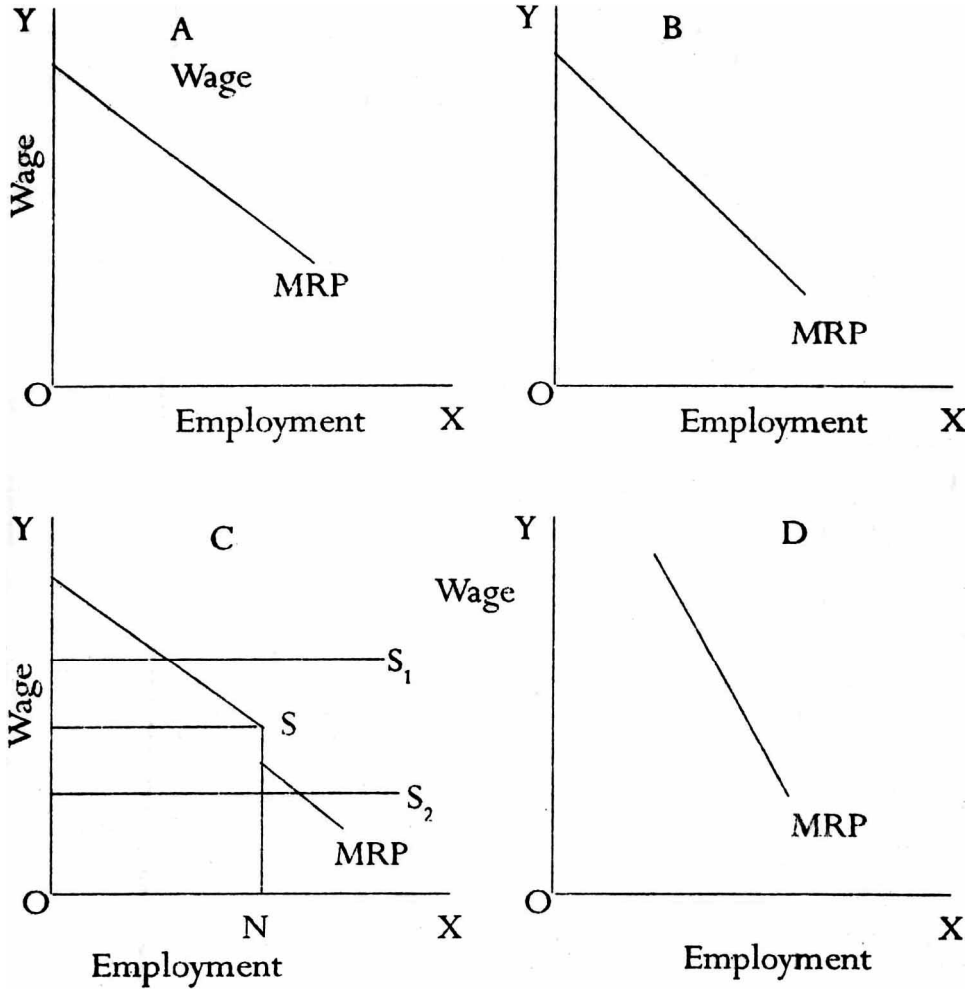

रेखाचित्र - 5.10

उपर्युक्त चित्र 5.10 C में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रम बाजार मे, पूर्ति वक्र एक पड़ी हुई रेखा के रूप में है। यदि वक्र S है तो MRP रेखा के टूटे हुए भाग को काटते हुए है और रोजगार का स्तर ON होगा। यदि पूर्ण वक्र में कमी का वृद्धि होती है किन्तु यह फिर भी MRP के टुटे हुए हिस्से सें गुजरता है तौ रोजगार के स्तर में कमी वृद्धि नहीं होगी किन्तु लाभ में कमी का वृद्धि हों सकती है। यदि पूर्ति वक्र S_1 हों जाय तो फर्म को रोजगार के कमी द्वारा अधिक लाभ होगा किन्तु पूर्तिवक्र S_2, होने पर रोजगार में वृद्धि किन्तु कीमत में कमी होगी। अल्पाधिकारी में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अल्पकाल में मजदूरी दर में परिवर्तन होने के बावजूद भी रोजगार स्तर में परिवर्तन आवश्यक नही होता है।

यदि कोई फर्म जो श्रमिकों कों रोजगार प्रदान करती है वह इतनी अधिक बडी है कि स्थानीय बाजार पर अपना महत्वपूर्ण अधिकार रखती है तो उसकी स्थिति एक क्रेताधिकार की होंगी एक अर्थशास्त्री के रूप में यह कहना पर्याप्त होगा कि इस फर्म को अपनी स्थिति के अनुसार मजदूरी में कमी या वृद्धि के दूरगामी प्रभावों का ज्ञान होता है एवं यह प्रतियोगी बाजार कीं अपेक्षा इस स्थिति मैं विभिन्न वैकल्पिक निर्णयों के प्रभावों के बारे मैं सजग रहती है ।

रेखाचित्र 5.11 में एक स्थानिक बाजार में बड़ी नियोक्ता फर्म रोजगार मे 5 या 10 प्रतिशत विस्तार करती है जिसके मजदूरी मे वृद्धि होती है । ऊपर की ओर धनात्मक ढाल वाला पूर्ति वक्र यह दर्शाना है कि यह अपूर्ण प्रातियोगिता की स्थिति है जिनमें मजदूरी दर पर एक फर्म का महत्वपूर्ण प्रभाव है । पूर्ण वक्र में ऊपर की ओर विवर्तित होने का अभिप्राय यह होगा कि रोजगार के स्तर में वृद्धि होगी । यह वृद्धि उसी क्षेत्र के अन्य उद्योगों से श्रमिकों के वहां आने पर होगी या अन्य क्षेत्रों से वहां श्रमिक आयेंगे अथवा कम उत्गदकता वाले श्रमिकों कौ रोजगार में लगाना पड़ेगा । यदि दूसरी स्थिति होती है तो मजदूरी का स्तर पूर्ववत बने रहने के बावजूद भी प्रति मजदूर मजदूरी लागत मे वृद्धि होगी ।

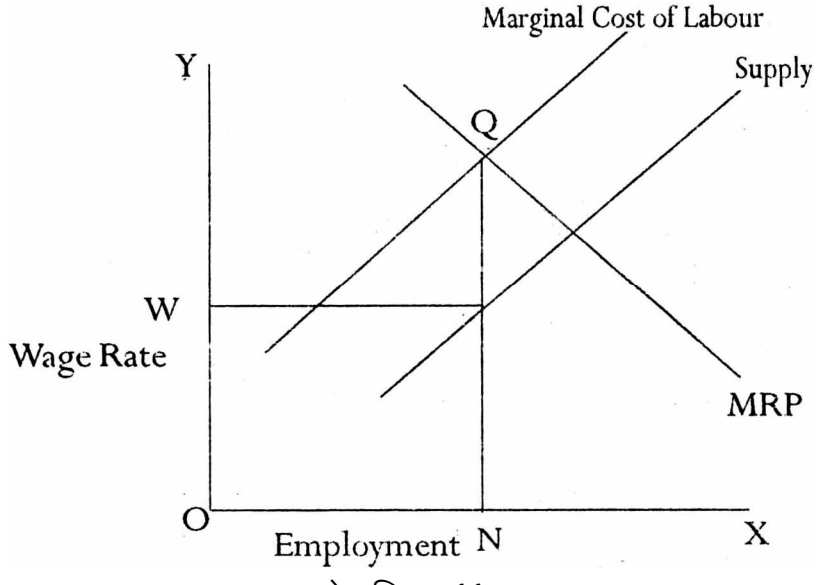

रेखाचित्र - 11

यदि नियोक्ता को यह ज्ञात है कि श्रम पूर्ण वक्र धनात्मक ढाल वाला है तो वे प्रतियोगी स्तर से कम रोजगार के स्तर पर रोक लगायेंगे ताकि उन्हे अधिकतम आय प्राप्त हो

सके । एक विवेकशील नियोक्ता ऐसा करनें का प्रयास करेगा क्योंकि उसे ज्ञात है कि सीमांत श्रमिक की सीमांत उत्पादकता उसको दी जाने वाली मजदूरी से कम है । मजदूरी के स्तर में वृद्धि होने का प्रभाव यह होगा कि अतिरिक्त श्रमिक कों ही बड़ी हुई मजदूरी नही देना पड़ेगा वरन् सभी श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि होगी ।

रेखा चित्र 5.11 में श्रम का पूर्तिवक्र व श्रम का सीमांत लागत वक्र दर्शाया गया है । सीमांत लागत वक्र यह दर्शाता है कि फर्म अतिरिक्त श्रम को कार्य पर लगाने पर जो मजदूरी चुकाती है वह कमी श्रमिकों को बड़ी हुई मजदूरी चुकाने के समान होती है । एक नियोक्ता के लिए रोजगार की उपयुक्त स्तर वह होगा जहां श्रम का सीमांत आय उत्पाद वक्र व पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हुए हों जिस बिन्दु पर पूर्ति वक्र व सीमांत आय उत्पाद वक्र एक दूसरे को काटते हुए होते है वह रोजगार में विस्तार करने के फलस्वरूप अतिरिक्त लागत उतनी ही होती है जितनी सीमांत श्रमिक द्वारा आय में वृद्धि होती है ।

इस स्तर पर रोजगार के स्तर को रोकने का परिणाम होगा फर्म की भावी आय में होनेवाली वृद्धि पर रोक । उस स्तर से अधिक रोजगार का विस्तार अर्थात अधिकतम संभाव्य ON रोजगार' के स्तर से अधिक वृद्धि से आय में कमी होगी । ON रोजगार के लिए मजदूरी दर OW होगी ।सीमांत आय उत्पाद व श्रम की सीमांत लागत द्वारा रोजगार निर्धारित होता है किन्तु मजदूरी दर पूर्तिवक्र द्वारा निर्धारित होती है जो कि रेखाचित्र 5.11 में बिन्दु से नीचे है।

एक अपूर्ण प्रतियोगिता की किसी भी दशा में रोजगार की स्तर पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा नीचा होता है । पूर्ण प्रतियोगिता मे श्रम की कीमत व सीमांत आय उत्पाद समान होता है जबकि . अपूर्ण प्रतियोगिता में रोजगार व मजदूरी का स्तर दोनों नीचे होते है ।

5.5 न्यूनतम मजदूरी

श्रम की मांग एवं रोजगार व मजदूरी के स्तर के निर्धारक तत्वों द्वारा न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण किया जा सकता है । न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण द्वारा श्रम की पूर्ति वक्र में कृत्रिम परिवर्तन करना है । रेखाचित्र 5. 12 में पूर्ति वक्र SL है एवं न्यूनतम मजदूरी दर OW होने पर श्रम का वास्तविक पूर्तिवक्र WRS होगा क्योंकि OW सें कम मजदूरी देना अवैधानिक होगा ।

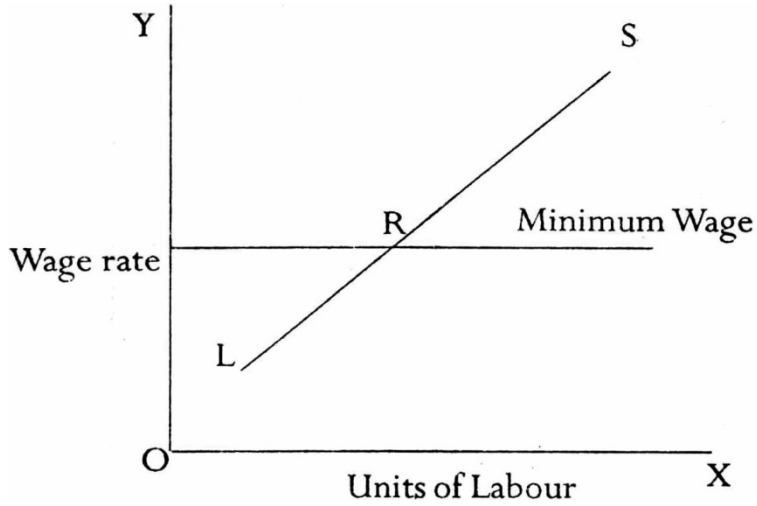

रेखाचित्र - 5.12

न्यूनतम मजदूरी का रोजगार के स्तर पर भी प्रभाव पड़ सकता है जिस रेखाचित्र 5.13 में दर्शाया गया है ।

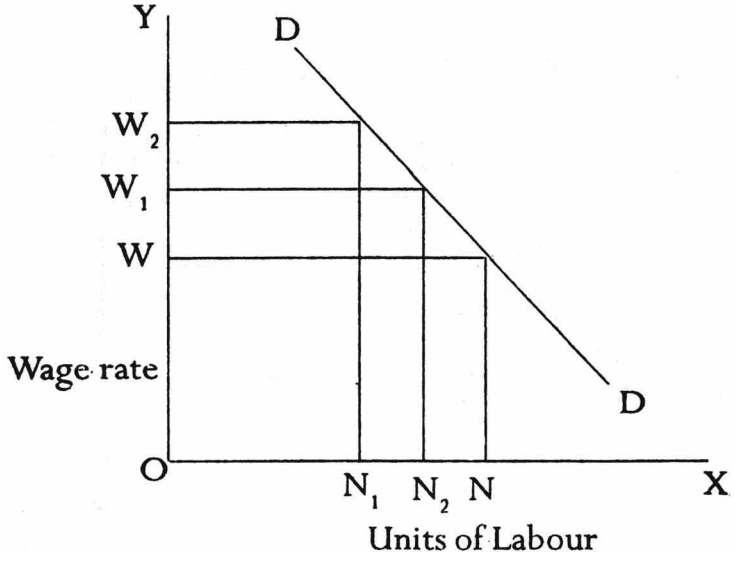

रेखाचित्र - 5.13

रेखाचित्र - 5.13 न्यूनतम मजदूरो कों श्रम की मांग पर प्रभाव के रूप मे दर्शाया गया है।यदि QW मजदूरी दर है तो रोजगार की स्तर ON रहता है अब यदि न्यूनतम मजदूरी OW_2 कर दी जाती है तो श्रमिको कों उन की उत्पादकता से अधिक मजदूरी चुकाई जाती है जिसका परिणाम होगा कि कुछ श्रमिकों को रोजगार से हटना पड़ेगा और वे बेरोजगार हो जायेंगे या ऐसे क्षेत्रों में रोजगार की तलाश करेंगे जहां न्यूनतम मजदूरी कानून लागू न होना हो।

वास्तविकता में न्यूनतम मजदूरी इस प्रकार निर्धारित की जाती है कि वे 5 या 10 प्रतिशत जो कम मजदूरी वाले श्रमिक होते है उन्हें ही प्रभावित करती है यदि न्यूनतम मजदूरी दर OW_1 हो तो केवल WN_1 मजदूर ही प्रभावित होंगे। इस स्थिति में कुछ मजदूर बेरोजगार होगे किन्तु यह स्पष्ट नही है कि कितने बेरोजगार होंगें यह मांग व पूर्ति वक्र की लोचो पर निर्भर करता है।

न्यूनतम मजदूरी कानून की औचित्य यह है कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान नहीं है और नियोक्ता की क्रेताधिकार श्रम की अगतिशीलता, तथा अन्य आर्ग्राताए जिम्मेदार है जिससे मजदूरों को कम मजदूरी चुकाकर उनका शोषण किया जाता है। न्यूनतम मजदूरी कानून के आलोचक यद्यपि उनका गरीबों के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण है, कहते है कि जिस प्रकार यह कानून लागू किया गया है वह उचित नहीं है।

5.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रम की मांग क्या है? श्रम की मांग की सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
2. सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताओं की विवेचना कीजिए एवं यहां सिद्धान्त मजदूरी के विवादों को निपटाने में कहां तक मददगार है?

3. विभिन्न बाजारों में श्रम की मांग किस प्रकार निर्धारित होता है? समझाइए।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Marshall,Carter and King	Labour Economics,wages and Tread Dimension Richerd D Irwin INC, Irwin Darsay Ltd. Geogre Town, Ontario America .
Robinson, J.W. and Walber R.W	Labour Economics And Labour Realation Ronald Press Company, New 1973.
Dunlop,J.T., and dIat C.V.P	Labour productivity MC-Craw Hili Book co,New York 1964.
Singh, R.R	Labour economics,Sri Ram Mehra & Co., Agra,1971

इकाई 6

श्रम उत्पादकता

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उत्पादकता का अभिप्राय

6.3 उत्पादकता की माप

6.3.1 श्रम की उत्पादकता की माप

6.3.2 श्रम की उत्पादकता माप का महत्व

6.4 श्रम की उत्पादकता को निर्धारित करने वाले तत्व

6.5 श्रम की उत्पादकता मैं वृद्धि के उपाय

6.6 श्रम की: उत्पादकता बढाने हेतु सुझाव

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

उत्पादकता औद्यौगिक प्रगति तथा आर्थिक विकास का मूल आधार है । यह उपलब्ध साधनों के अधिकतम मितव्ययी उपयोग का परिणाम है । यद्यपि उत्पादन उत्पति के पाँचों साधनों भूमि, श्रम,पूंजी, संगठन और साहस के संयुक्त प्रयास का परिणाम है । परंतु श्रम उत्पादन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन है । अत : श्रम की उत्पादकता कुल उत्पादकता को प्रभावित करती है । हमें यहाँ पर श्रम की उत्पादकता, उसका मापन, उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्व और उत्पादकता को बढ़ाने हेतु किये गये उपायों का अध्ययन करना है । सर्वप्रथम उस शब्दावली का भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर ले जिसका प्रयोग विषय सामग्री मे किया गया है ।

6.1 प्रस्तावना

उत्पादकता का आशय एक और कुल उत्पादन तथा दूसरी और उसके लिए प्रयुक्त किये गये साधनों के बीच सम्बन्ध अथवा अनुपात से है । यदि साधनों की तुलना मैं उत्पादन अधिक है तौ यह अनुकूलता का सूचक होगा और उत्तम उत्पादकता का प्रतीक माना जायेगा । इसके विपरित यदि उत्पादन के विभिन्न' साधनों की तुलवा मे कुक उत्पादन अपेक्षाकृत कम है तो यह प्रतिकूल स्थिति का सूचक होगा और न्यून उत्पादकता का प्रतीक माना जायेगा । कुल उत्पादन की तुलना में प्रयोग में लाये गये विभिन्न साधनों की संयुक्त उत्पादकता भी ज्ञात की जा सकती है तथा प्रत्येक साधन (जैसे श्रम, कच्चे पदार्थ, मशीनों) की पृथक उत्पादकता भी ज्ञात

की जा सकती है । दूसरे' शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन के किसी साधन का जो आनुपातिक योगदान रहता है । उसे उस साधन की उत्पादकता की संज्ञा प्रदान की जाता है।

6.2 उत्पादकता का अभिप्राय

अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार-"उत्पादकता से आशय समूह, समाज अथवा देश के संसाधनों के साथ समस्त उपलब्ध वस्तुओं एवं सेवाओं कें अनुपात से है । इसमें मानव, मशीन. माल, द्रव्य शक्ति तथा भूमि आदि उपलब्ध साधनों का पूर्ण उचित एंव कुशल उपयोग निहित है। यह प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार के अपव्यय के विरूद्ध संगठित प्रयास है ।"

डा० बी. बी. लाल के अनुसार-"उत्पादकता का आशय उस सम्बन्ध से है जो एक और सुपरिभाषित उत्पादन तथ दूसरी ओर साधनों के बीच होता है - अर्थात् एक ऐसा सम्बन्ध है जौ कि उत्पादन के परिणामों तथा सम्बद्ध उत्पादन साधनों के बीच निर्धारित समय एवं निश्चित दशाओं के अर्न्तगत वित्तीय एवं मौलिक दोनों रूपों मे होता है ।

इस प्रकार उत्पादकता एक अनुपात है जो उत्पादन एवं उसके लिए प्रयोग में लायें गये साधनों के बीच होता है । उत्पादकता की तुलना भी की जा सकती है । उदाहरण फै लिए, मान लिजिए कि "अ" व "ब" दो उत्पादक इकाईयां है जो समान वस्तुओं का उत्पादन करती है । एक निश्चित अवधि में दोनों में प्रत्येक उस वस्तु की एक हजार, इकाईयों का निर्माण करती है किन्तु "अं' कारखाने में' इसके लिए केवल 50 श्रमिक पर्याप्त होते, है जबकि "ब" कारखाने में इसके लिए 75 श्रमिकों की आवश्यकता होती है । इस स्थिति में यह स्पष्ट है कि "ब" कारखाने की तुलना में "अ" कारखाने की प्रति श्रमिक उत्पादकता पचास प्रतिशत अधिक है ।

6.3 उत्पादकता की माप

औद्यौगिक क्षेत्रों में उत्पादकता का अभिप्राय प्राय : उत्पादक इकाईयों के उत्पादन के समस्त साधनों अथवा पृथक रूप से अलग अलग साधनों के कुल उत्पादन के अनुपात से होता है । जैसे - कुल विनियोजित पूँजी की उत्पादकता, श्रम की उत्पादकता; मशीन की उत्पादकता, कच्चे माल की उत्पादकता आदि । औद्यौगिक इकाई के में प्राय : श्रम की उत्पादकता तथा मशीन की उत्पादकता को नापने का अधिक चलन हें ।

6.3.1 श्रम की उत्पादकता की माप

इसे दो प्रकार सें नापा जा सकता है-

1. प्रति श्रमिक उत्पादकता
2. प्रति घण्टे उत्पादकता

इसके लिए अग्र सूत्र प्रयोग में लाया जाता है

$$P = \frac{O}{M}$$

यहाँ

P = श्रम की उत्पादकता

O = कुल विशुद्ध उत्पादन

M = कुल प्रयुक्त श्रमिकों की संख्या अथवा कुल

प्रयुक्त श्रमिक घंटों की संख्या

6.3.2 श्रम की उत्पादकता की माप का महत्व

उत्पादकता एक सांख्यिकीय माप है। आधुनिक युग में इसका अत्यधिक महत्व है।

1. **आर्थिक विश्लेषण में सहायक -** यह आर्थिक प्रगति के विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण साधन है । आर्थिक परिवर्तनों को मापने तथा भावी परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाने के लिए उत्पादकों सूचकांको का महत्व एवं उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है ।
2. **नीति निर्धारण में सहायक -** सरकार, व्यापारिक संस्थानों व संगठनों को इसकी सहायता से मूल्य, रोजगार, मजदूरी, कार्य के घण्टे आदी के सम्बन्ध में नीति बनाने में सहायता मिलती है ।
3. **तुलनात्मक अध्ययन के लिए मापदण्ड -** राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादकता संबंधी अध्ययन से विभिन्न उद्योगों में उत्पादन की प्रकृति, विभिन्न क्षेत्रों में उत्पत्ति के साधनों की तुलनात्मक उत्गदकता, एक ही उद्योग में विभिन्न उद्योगों की संबंधित क्षमता तथा अन्य क्षेत्रों की क्षमता से तुलनात्मक अध्ययन सरल हो जाता है ।
4. **विवेकीकरण एवं वैज्ञानिक प्रबन्धन की योजनाओं का मूल्यांकन करने में सहायक -** इकाई स्तर पर उत्पादकता सूचकांको का उपयोग विवेकीकरण व वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजनाओं की प्रभावोत्पादकता का मूल्यांकन करने विभिन्न उत्पादन विधियों का उत्पत्ति के साधनों की उत्पादकता पर प्रभाव का अध्ययन करने तथा विभिन्न विभागों की तुलनात्मक प्रगति का अध्ययन करने के लिए किया जाता है
5. **अच्छे संबंध बनाने में सहायक -** नियोक्ता व श्रमिकों के मध्य भ्रान्तियों को दूर करने में उत्पादकता सूचकांक सहायक होते है ।

6.4 श्रम की उत्पादकता को निर्धारित करने वाले तत्व

श्रम की उत्पादकता अनेक कारकों पर निर्भर करती है प्रमुख रूप से, ये. निम्नलिखित है :-

1. **श्रमिकों की किस्म-** श्रम की उत्पादकता व्यापक एवं अन्तिम रूप से श्रमिकों की किस्म पर निर्भर करनी है । निपुण एवं कार्य कुशल श्रमिको की उत्पादकता ऊँचा होती है ।
2. **कार्य की दशाएं -** श्रम एक सजीव साधन है उसके कार्य करो के लिए स्वस्थ दशाओं का होना आवश्यक है । अस्वस्थ दशाओं मे कठिन परिश्रम करना सम्भव नहीं है । यदि निर्विवाद है कि गंदे अधिकारपूर्ण, उदास एवं अस्वस्थकर वातावरण की अपेक्षा स्वच्छ, स्वस्थ, उज्ज्वल एवं प्रेरणात्मक वातावरण में मनुष्य मात्रा मे अधिक एवं गुण में अच्छी वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है ।
3. **पूंजी की मात्रा -** श्रम की उत्पादकता प्रति श्रमिक द्वारा प्रयोग की गई पूंजी की मात्रा पर भी निर्भर करती है । आधुनिक मशीनों एवं यन्त्रों की स्थापना, औद्यौगिक एवं तकनीकी अनुसंधान, आधुनिक व सुधरी हुई विधियों का प्रयोग कार्य की दशाओं में सुधार मानव पूंजी निर्माण की उपलब्धि पर निर्भर है प्रत्यक्ष प्रभाव श्रम की उत्पादकता पर पडता है ।

4. **तकनीकी तत्व -** तकनीकी विकास नयी मशीनें उपलब्ध कराता है, मशीनों के स्वचालन को प्रोत्साहित करता है, उत्पादन विधियों में सुधार करता है एवं प्रमापीकरण, विशिष्टीकरण तथा सरलीकरण को सम्भव बनाता है । जिससे श्रम की उत्पादकता प्रभावित होती है ।
5. **प्रबन्ध कुशलता -** श्रम उत्पादकता प्रबन्ध पर भी निर्भर करती है श्रमिकों के प्रति मानवीय व्यवहार करना तथा वैज्ञानिक साधनों द्वारा उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि करना प्रबन्ध का मूल लक्ष्य होता है ।
6. **प्राकृतिक तत्व -** किसी देश के प्राकृतिक साधन, भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु का श्रमिकों की उत्गदकता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ना है । सामान्यताया गर्म जलवायु में श्रमिकों की उत्पादकता कम और शीत जलवायु में अधिक होती
7. **सामाजिक तत्व -** अज्ञान, अशिक्षा, भाग्यवाद, रूढ़िवाद अन्धविश्वास आदि सामाजिक तत्व श्रम की उत्गदकता में अवरोध उत्पन्न करतें है । प्रदूषण, गंदगी, बीमारी के कारण भी श्रम की उत्पादकता कम हो जाती है ।
8. **सरकार की करायेवण -** प्रशुल्क, वित्तीय संरक्षण तथा प्रशासनिक नीतियां देश के ओद्यौगिकरण एवं औद्यौगिक उत्पादकता को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करती है । वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से प्रदान की गयी पर्याप्त एवं सस्ती पूंजी व साख सुविधाएं उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने में परोक्ष रूप से सहायक सिद्ध हुई है । कर रियायतें, आर्थिक संयोजन, बचत व विनियोग सुविधाओं में वृद्धि आदि के द्वारा उत्पादकता मैं वृद्धि की जा सकती है । इसके विपरीत विश्रुत संकट, परिवहन व संचार में रूकावटें, श्रमिकों में अशान्ति आदि के कारण उत्गदकता का स्तर प्राय: गिर जाता है ।

6.5 श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के उपाय

भारत सरकार श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए काफी समय से प्रयत्नशील है । जब तक श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि नही होगी तब तक औद्योगिक उत्पादन में भी वृद्धि सम्भव नही है । भारत में औद्यौगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता हेतु जो प्रयास किये गये है वे मुख्यतया निम्नलिखित है

(1) श्रम सन्नियम का प्रतिपादन - श्रमिकों की कार्य करने की दशाओं की दृष्टि में रखते हुए भारतीय कारखाना अधिनियम 1948 प्रतिपादित किया गया । इस अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न विषयों को वर्णित किया गया है । जिसे सेवायोजक अपने कर्तव्यों को समझे और श्रमिक अपना जीवन सुखपूर्ण व्यतीत कर सके । श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याणकारी कार्य आदि का उतरदायित्व मिल मालिकों पर रखा गया है । इसके अतिरिक्त और बहुत से श्रम-सन्नियम प्रतिपादित किये गये है जिनका मुख्य उद्देश्य देश के श्रमिकों को सभ्य एवं उन्नतशील जीवन व्यतीत करने की सुविधाएं प्रदान करना है ।

(2) कल्याणकारी सुविधायें - भारतीय कारखाना अधिनियम 1948, उद्यान श्रम जीवी अधिनियम तथा भारतीय खान अधिनियम 1952 के अन्तर्गत उद्योगों के लिए जलपान-गृहों, शिशु पालन गृहों, विश्राम ग्रहों, चिकित्सा सहायता, स्नान आदि की सुविधायें तथा कल्याणकारी अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है । हमारी सरकार ने कल्याण योजना के

अन्तर्गत आर्थिक सहायता का भी प्रबन्ध किया है । अधिकांश राज्य की सरकारें अनेक कल्याण केन्द्र चला रही है जिससे श्रमिक एवं उनके परिवार के सदस्य मनोरंजन तथा अन्य सांस्कृतिक सुविधायें प्राप्त करते रहते है ।

(3) श्रमिकों के लिए आवास सुविधायें - भारत के स्वतंत्रत प्राप्ति होने के पश्चात से भारत सरकार ने समाजवादी विचारधारा को कार्यान्वित किया है । अत: सरकार सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रही है यहाँ के श्रमिकों की दशाओं में यथासम्भव सुधार किया जाये जिसमे वे अपने जीवन-स्तर को उन्नत बना सकें । अत: श्रमिकों के आवास की सुविधा हेतु भारत सरकार ने समय- समय पर अनेक योजनायें कार्यान्वित की है । मई, 1956 में गन्दी बस्ती उन्मूलन यौजना का शिलान्यास किया गया जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के माध्यम सें नगरपालिकाओं और स्थानीय संस्थाओं को गन्दी बस्ती के उन्मूलन हेतु अपना आर्थिक योगदान प्रदान कर रही है । ग्राम आवास योजना अक्टूबर, 1957 में प्रारम्भ हुई थी । इसके माध्यम से सामुदायिक विकास खण्डों के कुछ चुने हुए ग्रामों के आवास की उपयुक्त व्यवस्था का प्रबन्ध किया गया है ।

सन 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के सुझाव पर भारत सरकार द्वारा सहायता प्राप्त आवास योजना क्रियाविन्त की गई थी । इस योजना के अन्तर्गत मुख्यतया तीन प्रकार के मकान बनाये जानै हैं (।)औधोगिक सेवायोजकों द्वारा (2) राज्य सरकार द्वारा (3) श्रमिको की आवास सम्बन्धों सहकारी समितियों द्वारा । आजकल लगभग सभी औद्यौगिक नगरों में श्रमिकों के रहने के लिए अच्छे मकानों का प्रबन्ध किया जा रहा है । सेवायोजक एवं सरकार दोनों ही इनके आवास के प्रबन्ध के लिए अपना उत्तरदायित्व समझते हैं ।

इन योजनाओं के अतिरिक्त भारत में, और भी आवास सम्बन्धी योजनायें चल रही है जौ मुख्यता निम्नलिखित है

तालिका 6.1

भारत की मुख्य आवास योजनाएं

योजना	प्रारम्भ होने का समय
निम्न आरा वर्ग आवास योजना	1954
उद्यान कर्मचारी आवास योजना	1956
गन्दी बस्ती सफाई योजना	1956
मध्य आय वर्ग आवास योजना	1959
किराया विकास योजना	1959
दिल्ली में झग्गी एवं झोपड़ी हटाने की योजना	1960
भूमि अर्जन तथा विकास योजना	1969
ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन कामगारों कों आवास स्थलों को उपलब्ध कराना	1971
इंदिरा आवास योजना	

उपयुक्त योजनाओं के लिए अधिकांश धनराशि का प्रबन्ध भारत सरकार तथा जीवन बीमा निगम द्वारा किया जाता है ।

(4) सामाजिक सुरक्षा - देश में श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करने हेतु अनेक प्रयास किये गये । इनके अन्तर्गत प्रो० अदराकर के सुझाव पर का स्ट्रेव एवं राव के पुनर्विचार किये जाने के उपरान्त सन 1948 में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम ओधोगिकी विभाग में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है । इस अधिनियम के अन्तर्गत बीमा कराये हुए श्रमिकों को निम्नलिखित सुविधायें प्रदान देती है :-

(क) बीमारी सम्बन्धी लाभ

(ख) अयोग्यता सम्बन्धी लाभ

(ग) मातृत्व सम्बन्धी भाग

(घ) आश्रित सम्बन्धी लाभ

(ङ) चिकित्सा सम्बन्धी

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की अखण्डता सम्बन्धी कानून, प्रशासनिक एवं संगठनात्मक मामलों की जाँच करने ओर अखण्डता हेतु विस्तृत रूप-रेखा तैयार करनें हेतु जनवरी, 1971 में एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया है और इस अधिकारी से सरकार रिपोर्ट भी प्राप्त हो चुकी है ।

श्रमिक की भविष्य की अनिश्चितता तथा चिन्ता को दूर करनें के लिए भविष्य-निधि योजना चालू की जा चुका है । भारत सरकार द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 पारित किया गया । इस अधिनियम में अपने सदस्यों को परिवार पेंशन, लाभ आदि प्रदान करने के लिए सन् 1971 में संशोधन किया गया ।

(5) प्रशिक्षण व्याख्या - श्रमिकों की शिक्षा की दृष्टि से श्रमिक शिक्षा योजना प्रारम्भ की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य श्रमिकों दो देश के औद्यौगिक, आर्थिक और सामाजिक विकास हेतु योग्य बनाया जाये । श्रमिक शिक्षा, कार्यक्रम आयोजित करने के लिए 132 संघों व संस्थानों को 168 लाख रूपये के सहायक अनुदान भी प्रदान किये गये । भारतीय श्रमिक शिक्षा संस्थान की स्थापना1970 में बम्बई में की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षा अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम ओर संगठित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये है ।

श्रमिकों की सामान्य शिक्षा के लिए प्राय: सभी औद्योगिक बस्तियों में श्रमिकों के बच्चों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का व्यवस्था की गई है । कुछ स्थानों पर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की गई है। तकनीकी प्रशिक्षण कों दृष्टिकोण में रखते हुए अनेक केन्द्र खोले गये है । अनेक योग्य एवं कुशल श्रमिकों को विदेशों में भेजकर भी, प्रशिक्षित कराया जाता है । उपर्युक्त प्रयासों के आधार पर हम कह सकते है कि हमारे श्रमिकों की कार्य कुशलता में अवश्य वृद्धि होगी ।

(6) उत्पादकता वृद्धि आन्दोलन - स्वतन्त्रता प्राप्त करनें के पश्चात् भारत में केन्द्रीय सरकार द्वारा उत्पादकता में वृद्धि करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में उन विशेष कारणों की वैज्ञानिक जाँच कराई गई, जो औद्यौगिक उत्पादकता

वृद्धि में बाधक थे । उत्पादकता वृद्धि के उपयों का विस्तार करने हेतु, अध्ययन गोष्ठियों को भी आयोजन किया गया । इसके अतिरिक्त तकनीकी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत विदेशों से भी तकनीकी विशेषज्ञों को भारत में आमन्त्रित किया गया । अपने यहाँ से शिष्ट मण्डलों को भी विदेशों में अध्ययन के लिए भेजा गया । द्वितीय योजना काल में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद द्वारा अनेक क्षेत्रीय परिषदों की स्थापना की गई । ये परिषदों उत्पादकता-वृद्धि की दृष्टि से अपना पूर्ण योग दे रही है ।

(7) उत्पादकता वृद्धि और श्रम-संघ - श्रमिक संघ किसी भी देश की प्रगति तथा उनकी कल्याणकारी राज्य बनाने में अपना विशेष योग प्रदान कर सकता है । श्रमिक संघों के द्वारा श्रमिकों में ऐसी भावना एवं प्रवृत्ति जागृत की जा सकती है । जिससे वे राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए अधिकाधिक उत्पादन-वृद्धि कर सकें । अत: श्रमिक संघ निम्नलिखित रूपों में कार्य करके राष्ट्रों के निर्माण में योग प्रदान कर सकते है-

(i) श्रमिक संघ सहकारी समितियों द्वारा मकान बनवा सकते है।

(ii) श्रमिकों में बचत की आदत उत्पन्न करके विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों संगठित कर सकते है ।

(iii) श्रमिक संघ श्रमिकों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक दशा में सुधार करने की दृष्टि से सुधार करके उनके जीवन स्तर में सुधार कर सकते है जिससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि हो जायेगी ।

(iv) श्रमिक परिवारों में ग्राम उद्योगों को प्रसारित करके उनकी आय में वृद्धि करने का प्रयोग कर सकते है ।

निष्कर्ष के रूप में श्रमिक संघ विभित्र क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य करके राष्ट्र के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकते है । श्रमिक संघों में जो दोष उत्पन्न हो जाते है वे उनके स्वयं न होकर अपितु उनके स्वार्थी नेताओं के कारण उत्पन्न होते है । अत: श्रमिक-समाज देश के कल्याण हेतु यह आवश्यक है कि श्रमिक संग स्वास्थ्य सम्बन्धी आधारों पर विकसित किये जाये और उसे नेता भी श्रमिकों में से ही होने चाहिए । इससे श्रमिकों का जीवन स्तर उच्च बनाने में सफलता प्राप्त हो सकेगी ।

उपर्युक्त बातों के आधार पर तृतीय पंचवर्षीय योजना में श्रम नीति को काफी महत्व प्रदान किया गया है । इस योजना के अनुसार प्रबन्धकीय को यह चाहिए कि श्रमिकों के लिए मशीन, कार्य करने की उपयुक्त स्थिति तथा दशायें, पर्याप्त प्रशिक्षण एवं उपयुक्त मनोरंजन आदि प्रदान करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । भारत में जब तक उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि नहीं होगी तब तक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता है श्रमिकों को अपने तथा देश की भलाई के लिए वैज्ञानिकरण में बाधा नहीं डालनी चाहिए अपितु उन्हें इसकी माँग करनी चाहिए । वैज्ञानिकरण के द्वारा श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जा सकती है तथा उनकी कार्यकुशलता से ही उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि हो सकती है ।

(8) श्रम आयोग की नियुक्ति - शाही श्रम आयोग की 1931 की रिपोर्ट के पश्चात श्रम कानूनों औद्यौगिक सम्बन्धों और श्रमिको के कार्य करने और रहने की दशाओं में विस्तृत जाँच अभी तक प्राप्त नहीं हो पाई । श्रमिकों की कार्य करने दशाओं से सम्बन्धित आकड़े श्रम-

अनुसन्धान समिति ने सन् 1946 में एकत्र किये थे । भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्यौगिक धन्धों में आमूल परिवर्तन हुए है । अत: भारत सरकार ने श्रम नीति के लिए 24 दिसम्बर 1966 को श्री पी० वी० गजेन्द्रगड़कर की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय श्रम आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने इस मामलों के साधु श्रमिकों की स्थिति में हुए परिवर्तनों एवं उनके हितों की रक्षा करने वाले वर्तमान वैज्ञानिक व उनके कार्यो का मूल्यांकर करने का परामर्श दिया है । आयोग के अन्तर्गत 38 अध्ययन दल अथवा समितियों निर्मित की गई है ।

6.6 श्रम की उत्पादकता बढ़ाने हेतु सुझाव

श्रम की उत्पादकता बढ़ाने हेतु निम्न सुझाव है :-

(क) कुल मजदूरी के 3 भाग होने चाहिए- बुनियादी अथवा न्यूनतम मजदूरी, रहन-सहन की लागत से सम्बद्ध भाग और उत्पादन में वृद्धि सें सम्बद्ध भाग । मजदूरी की वृद्धि को उत्पीड़न की वृद्धि से सम्बद्ध करने हेतु मानव स्तर पर लाना और मजदूरी के अन्तर को घटाना आवश्यक है।

(ख) परिणामों के आधार पर मजदूरी भुगतान की प्रणाली को उन क्षेत्रों में भी विकसित करना चाहिए जहां यह अभी प्रचलित नहीं है इस प्रणाली को श्रमिकों की सहमति और मधुर वातावरण में लागू किया जाये ।

(ग) उत्पादकता के उचे स्तर को प्राप्त करने हेतु मानव पूंजी निर्माण हेतु क्रमबद्ध व संगठित प्रयास किए जाने चाहिए ।

(घ) सेवायोजकों और श्रमिकों को मिलाकर अपनी विशेष परिस्थितियों के अनुसार उत्पादन यूनिट के स्तर पर साधारण प्रोत्साहन योजनाओं का विकास करना चाहिए ।

(ङ) श्रमिकों की सलाह के साथ प्रोत्साहन योजनाएं बनाते समय उत्पादकता बढ़ाने के लिए कार्य की सन्तोषजनक परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए । वित्तीय और गैर वित्तीय प्रोत्साहनों के अनिश्चित नौकरी की सुरक्षा काम के प्रति सन्तोष की भावना और कम की प्रतिष्ठा आदि तथा प्रोत्साहनों को भी उचित महत्व देना चाहिये ।

6.7 सारांश

उत्पादकता आधुनिक औद्यौगिक व आधिक विकास का मूलाधार है । भारत एक अल्पविकसित देश है । यहाँ परम्परागत समाज है । रहन-सहन का स्तर निम्न है उत्पादन तकनीकि के पिछड़े व अविकसित है । शिक्षा व प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव है । उत्पादन का स्तर नीचा है । श्रम जो उत्पत्ति का एक प्रमुख साधन है उसकी उत्पादकता तो और भी कम है । श्रम की उत्पादकता के आधार पर की जा सकती है । आर्थिक विश्लेषण, नीति निर्धारण व तुलनात्मक् अध्ययन के लिए श्रम की उत्पादक की माप आवश्यक है । श्रम की उत्पादकता पर प्राकृतिक, सामाजिक तकनीकी, पूँजीगत व प्रबन्धकीय कुशलता का प्रभाव पड़ता है । श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए सरकार ने समय-समय पर बहुत से प्रयास किए है जिसमें श्रम सन्नियम का प्रतिपादन, कल्याणकारी सुविधाएं, सामाजिक सुरक्षा और उत्पादकता वृद्धि आन्दोलन प्रमुख है । श्रम की उत्पादकता के ऊँचे स्तर कों प्राप्त करने के लिए मजदूरी की

वृद्धि के एक अंश को उत्पादन से सम्बद्ध किया जाये और मानव पूंजी निर्माण हेतु क्रमबद्ध संगठित प्रयास किए जानें चाहिए ।

6.8 शब्दावली

श्रम की उत्पादकता - श्रम की उत्पादकता विशुद्ध और कुल प्रयुक्त श्रमिकों की संख्या अथवा कुल प्रयुक्त श्रमिक घंटों की संख्या के बीच अनुपात होता है ।

विवेकीकरण - विवेकीकरण सामूहिक प्रयत्नों पर आधारित एक ऐसी विधि है जिसमें अव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अन्वेषण तथा अध्ययन पर आधारित प्रणालियों और तकनीकों को अपनाया जाता है जिससे समय धन और उत्पत्ति के साधनों का अपव्यय कम से कम हो तथा इनका प्रयोग उद्योग और राष्ट्र के सर्व श्रेष्ठ हित में हो ।

वैज्ञानिक प्रबन्धन - यह जानने की कला कि आप व्यक्तियों से क्या कराना चाहते है? तथा यह देखना कि वे सबसे उचित ढंग से कार्य करते है वैज्ञानिक प्रबन्ध कहलाता।

सामाजिक सुरक्षा - सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा एक उपयुक्त संगठन के माध्यम से अपने सदस्यों की कार्य शक्ति को क्षति पहुँचाने तथा जीवन स्तर को गिराने वाली आकस्मिक घटनाओं जैसे बीमारी, बेकारी, दुर्घटनाओं, औद्यौगिक रोग, मातृत्व, बुढ़ापा, मृत्यु आदि के विरूद्ध एक वांछित न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करने की दिशा में किया गया सामूहिक प्रयास है।

श्रम संघ - श्रम संघ से हमारा तात्पर्य ऐसे संगठन से है जिसका निर्माण ऐच्छिक रूप से सामुदायिक शान्ति के आधार पर श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए किया जाता है।

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. उत्पादकता को परिभाषित कीजिए। श्रम की उत्पादकता का मापन कैसे किया जाता है?

प्रश्न 2. श्रम की उत्पादकता से आप क्या समझते है? श्रम की उत्पादकता की माप की क्यों आवश्यकता है?

प्रश्न 3. श्रम की उत्पादकता को प्रभावित करनें वाले प्रमुख घटक कौन-कौन से है?

प्रश्न 4. भारत की एक प्रमुख समस्या श्रम की न्यून उत्पादकता है। श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के लिए कौन-कौन से उपाय अपनाये गये है?

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिन्हा, जे० पी०	श्रम अर्थशास्त्र एस० चाँद एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली
सक्सेना	श्रम समस्याएं एण्ड सामाजिक सुरक्षा रस्तौगी।, एण्ड कम्पनी, मेरठ।
Agarwal, A.N.	Indian, Labour problems: Wiley Eastern Limited, New delhi.
Giri, V.V.	Labour Problemes in Indian Industry Asia publishing House, Bombay

Memoria C.B. Labour Problems and social Welfare in India. Himalaya Publishing House, New Delhi.

Mehrotra, S.N. Labour Problems in India, S. Chand & Co. Delhi.

इकाई 7
विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में श्रम समस्यायें

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 श्रम समस्याओं के कारण

7.2.1 श्रम बाजार में श्रम विक्रय के समय अस्पष्ट शर्ते

7.2.2 उद्योग के उत्पादन के वितरण में परस्पर विरोधी हित

7.2.3 बाजार सम्बन्धी पूर्णतायें

7.2.4 मनोवैज्ञानिक कारक

7.2.5 उद्योग का प्रबन्धन

7.2.6 श्रम समस्याओं का अंतर्राष्ट्रीय चरित्र

7.3 विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की विशेषताएं

7.3.1 औद्योगिक श्रमिक की सामाजिक रचना

7.3.2 कामगारों का यौन संघटन

7.3.3 जनजातीय श्रम का उद्भव

7.3.4 साक्षरता का निम्न स्तर

7.3.5 श्रमिक वर्ग की विषमांगता

7.3.6 अनुपस्थिति एवं श्रम प्रतिस्थापितता की ऊँची दर

7.3.7 प्रवासी चरित्र

7.3.8 श्रमिक वचन बद्धता

7.4 निबन्धात्मक प्रश्न

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपका परिचय, एक विकासशील देश की श्रम समस्याओं से कराना है । इस इकाई के अध्ययन, के बाद आप :

- o जान सकेंगे कि श्रम समस्याएं क्यों पैदा होती है?
- o समझ सकेंगे कि विकासशील देशों में श्रम की क्या विशिष्टताएं है जो उन्हें विकसित देशों के श्रम से अलग करती है ।

7.1 प्रस्तावना

श्रम को ऐसे किसी मस्तिष्क अथवा हस्त-कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसको आर्थिक विचार से लिया जाता है । एस ई. थॉमस के अनुसार, "श्रम में वे सभी शारीरिक और मानसिक मानवीय प्रयास है, जिन्हें पारितोषिक अर्थात् लाभ की प्रत्याशा में किया

जाना है।" जिवॉन्स (Jevons) के अनुसार, "श्रम शरीर अथवा मन का ऐसा कोई प्रयत्न है जो कि आंशिक अथवा पूर्णरूप से, कार्य से व्युत्पन्न प्रत्यक्ष आनन्द के अलावा अन्य वस्तु कों दृष्टिगत करते हुए किया जाता है । " श्रम समस्यायें तब उठती है, जब व्यक्ति नियोक्ता के वायदों द्वारा निदेशित कार्य और मजदूरी के लिए अपनी सेवाओं का विक्रय करते है । अत: पद 'श्रम' का सामान्य उपयोग या तो उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो सीधे नियोक्ता के पास अपनी सेवाओं को विक्रय करते है अथवा उन सेवाओं के लिए किया आता है जिनका वे विक्रय करते है । यह कहा जा सकता है कि संसार के लगभग सभी देशों में श्रम समस्यायें प्राथमिक महत्व की है । क्योंकि, जनसंख्या के बहुसंख्यक या तो श्रम का विक्रय करने है अथवा इसका क्रय करते है और अपने जीवन यापन के लिये इन विक्रयों पर आश्रित है ।

"श्रम-समस्यायें जैसा कि इन्हें आधुनिक युग में समझा जाता है, इस तथ्य के कारण उठती है की वृहद उद्योग की दशाओं में लोगों को अपनी जीवन-निर्वाह के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है । उन्हें, वे काम स्वीकार करने पड़ते है जिन्हें वे पसन्द नहीं करते, उन्हें वह मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है जो कि उनके सामान्य जीवन-यापन के लिए पर्याप्त नहीं है । इस प्रकार, श्रम समस्यायें वृहत् उद्योगो के साहचर्य में है । ये लघु उदधोंगों के कारण नहीं उठती । जहां कि न तो कोई नियोक्ता है, न कोई कर्मचारी और कर्मचारियों तथा उत्पादन के विभिन्न कारकों की आपूर्ति एक और उसी व्यक्ति द्वारा होती है

7.2 श्रम समस्याओं के कारण

निम्नलिखित अवतरणों में उन कारकों पर विमर्श करने का प्रयास किया गया है जिनके कारण श्रम-समस्यायें उठती है :-

7.2.1 श्रम बाजार में श्रम विक्रय के समय अस्पष्ट शर्तें :

श्रम-समस्याओं का प्रमुख बिन्दु श्रम-बाजार है । ऐसा माना जाता है कि यहां पर विभिन्न समस्याएं, यथा- मजदूरी के दरें; कार्य के घंटे, कार्य की शर्ते और काम की अवधि, हल होती है । अन्य विक्रेताओं की भांति, श्रम के विक्रेता अपने श्रम के लिए सम्भावित उच्चतम मूल्य प्राप्त करना चाहते है । यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक विक्रेता का जीवन-स्तर बड़े पैमाने पर उस मूल्यों अथवा मजदूरी पर आश्रित है जो उसको अपनी सेवाओं के बदले प्राप्त होता है । श्रम के विक्रेता केवल प्रतिघंटा मजदूरी दरों में ही रुचि नही रखते । किन्तु वे साप्ताहिक और वार्षिक उपार्जन में भी रुचि रखते है । जो कि विक्रय किये गये श्रम के घंटो को मजदूरी की दर से गुणा करने पर निर्भर है । इसलिए वे स्थिर विक्रियों में रुचि रखते है ।

जिस समय श्रम-सेवाओं का विक्रय होता है, उस समय प्राय: कार्यशाला की शर्तो पर कोई समझौता नहीं होता । कार्य की प्रकृति बदल सकती है, कर्मी की गति में भिन्नता आ सकती है, अधिकर्मी (फोरमैन) बदला जा सकता है या उन्नति की सम्भावनायें बदल सकती है ।

सर्वाधिक बिक्रीयों के समय बेचा गया परिमाण सन्देह में नहीं छोड़ा जाता । किन्तु, ठीक प्रकार से कोई यह नही जानता कि प्रति घंटा श्रम के बेचने में क्या बेचा गया है क्रेता का

एक घंटे को कार्य: उसकी गति की रुचि खरीदे गये श्रम के निर्गत में होती है । श्रम को भाड़े पर लेने पर उसको कितना निर्गत प्राप्त हुआ ।

श्रम के बेचान को घेरे हुई अस्पष्ट और अनिश्चित संस्थितियाँ गलतफहमी, असहमति और संघर्ष के लिए पर्याप्त स्थिति बना देती है ।

7.2.2 उद्योग के उत्पाद के वितरण में परस्पर विरोधी हित

अधिकतर सामग्रियों के उत्पादन में कच्चा माल, भूमि, श्रम, पूंजीगत उपकरण, और संगठनात्मक प्रयास सभी योगदान करते है । उद्योग के उत्पादन का वितरण सारे झगड़े की जड़ है । यह विशेष रूप से उस स्थिति मे है जब कि जनसंख्या निश्चित और परस्पर विरोधी समूहों में बँटी हुई है । एक ओर श्रम के क्रेता तो दूसरी ओर उसके विक्रेता है । विक्रेता अपनी सम्पूर्ण आमदनी के व्यावहारिक आधार श्रम मूल्य को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहते है । जबकि क्रेता उसको कम रखने के लिए प्रयत्नशील रहते है, जिससे लाभ कम अथवा समाप्त न हो जाय । विलियम एम. -लिससर्न ने सही कहा, ".सही या गलत का ऐसा कोई मापदण्ड नहीं है जिससे मज़दूरियों और आमदनियों को ज्ञात किया जा सके । कार्यकारी लोगों को क्या आमदनी उनके श्रम के बदले उपलब्ध करायी जाय, एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी नैतिक निर्णय के आधार पर नहीं दिया जा सकता

7.2.3 बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएँ

"लगभग प्रत्येक वेतन भोगी अपनी सेवाओं के लिए किसी अन्य द्वारा निर्धारित मूल्य को प्राप्त करता है।" वर्तमान सन्दर्भ में यह प्रोफेसर सी. कौम्बी बोल्डर्सटेन का कथन है । तथ्य यह है कि मजदूरी नियोक्ता निर्धारित करता है, इस ओर इशारा करता है कि बाजार अपूर्ण है और नियोक्ता के नियन्त्रण का विषय है ।

यह कहा जा सकता है कि जब कई स्थानीय श्रम बाजार अपूर्ण होते है तथा क्रेताओं के द्वारा शासित होते है तो श्रम के विक्रेता बार-बार लड़ाइयां अपने हितों की रक्षा एवं प्रोन्नति के लिए संगठित करते है । वे या तो हड़ताल की धमकियां देते है और धरना देते है अथवा व्यवस्थापिकाओं पर राजनैतिक दबाव से ऐसे कानून पारित करवाते है जिससे कि उनके हितों की भांति उनके हितों की भी रक्षा हो । कर्मचारियों की मान्यता है कि संघ में शक्ति है ।

7.2.4 मनोवैज्ञानिक कारक:

श्रम संघों की सार्थकता मात्र आने सदस्यों के लिए अधिक मजदूरी, छोटे कार्यघंटे कार्य अवधि उत्तम कार्य संस्थितियां उपलब्ध कराने की युक्ति में ही नहीं है । श्रम संघर्ष के भौतिक और बाजार सम्बन्धी कारणों के अलावा मानवीय या मनोवैज्ञानिक कारण भी है । कर्मचारी की कार्य-सन्तुष्टि उसकी मजदूरी, कार्य के घंटों, नियुक्ति की संस्थितियों पर आंशिक रूप ही आधारित है । कामगार को गर्व, आत्म सन्तुष्टि, और महत्व का संतान चाहिए । उनके कार्य में सामान्य रूपये ऐसी आवश्यकताओं के निर्गम निहित है ।

इसके अलावा, शिक्षा के प्रसार से इन कारकों का औद्योगिक शान्ति बनाये रखने में महत्वपूर्ण स्थान दे दिया है । इसलिए, नियोक्ता की पितृ वृत्ति के विरुद्ध विद्रोह और औद्योगिक प्रजातन्त्र के लिए आन्दोलन इस तथ्य से जुड़ गये है कि कई कामगार अच्छी शिक्षा प्राप्त है और अपने कार्य तथा निर-कार्य के घण्टों मे नियोक्ता के आधिपत्य को पसन्द नहीं करतें ।

7.2.5 उद्योग का प्रबन्धन

श्रमिकों और नियोक्ताओं के मध्य वार्ता तय नियमों के माध्यम से कामगार उद्योग के लिए सामान्य कानून की उम्मीद करते है । जो कि प्रबन्धन की स्वेच्छाचारी कार्यवाईयों को रोकेगा, तथा उद्योग के विशेष क्षेत्रों में व्याप्त मनमानी और पक्षपात को कम करेगा । अत: नियोक्ता मानते है कि श्रमिक संघवाद उनकी अधिनायकवाद शक्तियों को रोकने का कार्य करता है । ताकि जैसा कि प्रोफेसर हॉक्सी ने कहा है कि सामूहिक रियायती सौदेबाजी; "उद्योग पर श्रमिकों के नियन्त्रण की प्रक्रिया में एक कदम तथा औद्योगिक लोकतन्त्र की ओर एक प्रविष्ट फलक है।' यह एक कारण है कि कुछ नियोक्ताओं ने अपने कर्मचारियों। स्वतंत्र संगठन पर प्रतिरोध किया है । नियोक्ताओं और कर्मचारियों के आर्थिक स्वार्थी के मध्य टकराव विभिन्न श्रम समस्याओं को जन्म देता है ।

7.2.6 श्रम-समस्याओं का अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र

श्रम समस्यायें किसी देश या स्थान की विशेषता नहीं है । प्रत्येक देश में मजदूरी कमाने वाले अपने जीवन स्तर और कार्य की शर्तो को सुधारने के लिए संघर्षरत है । चाहे विकसित देश हो या अविकसित और विकासशील सभी क्षेत्रों में श्रम-समस्यायें सामान्य है । वे मुश्किल से ही कुछ व्यक्तियों अथवा स्थानीय संस्थितियों के उत्पाद हैं । किसी एक देश में श्रमिकों को देय रियायत अन्य देशों में मांगी जाती है । इस प्रकार श्रम समस्याओं का अंतर्राष्ट्रीय चरित्र विकसित हो चुका है ।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई. एल. ओ.) की, स्थापना की गई है, जिससे कि श्रम समस्याओं पर पारस्परिक समझ विकसित की जाय । औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के लिए मार्ग और साधन ज्ञात किये जाये जिनसे कामगारों के अधिकारों की रक्षा की जा सके । इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कामगारों को संगठित किया जा सके ।

अत: किसी एक देश में उठने वाली श्रम-समस्या आज उसी देश में सीमित नहीं रहती । किन्तु, दूसरे देशों में भी इसका प्रभाव पड़ता है । यह भी इस समस्या के अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र का कारण है ।

कुछ लोग ऐसा सोचते है कि श्रम समस्यायें केवल पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उठती है और नियन्त्रित तथा समाजवादी व्यवस्था में ऐसी समस्यायें नहीं होती। वास्तव में, यह समस्या प्रत्येक उस आर्थिक व्यवस्था में उठेगी जिसमें जनसंख्या का बड़ा भाग धन कमाने के लिए मजदूरी का काम करता है । तथा श्रम ओर धन अलग-अलग हाथ नियन्त्रित करते है । प्रत्येक देश में मजदूरी करने वाले अपने जीवन सार को उठाने के लिए संघर्षरत है चाहे अर्थव्यवस्था

पूंजीवादी हो या समाजवादी । अत: यह सोचना, बुद्धिमता नही है कि श्रम समस्यायें नियन्त्रित और समाजवादी व्यवस्था मैं नहीं उठती । राजनैतिक अधिनायकवाद के आधीन देशों में हड़तालें और कानूनी होने के कारण श्रम के क्रेताओं और विक्रेताओं के मध्य आर्थिक स्वार्थो के संघर्ष उस रूप में नहीं उठते जिस रूप में अन्यत्र ।

7.3 विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की विशेषताएं

भारत की तरह विकासमान देशों में विभिन्न विकास, हुए है । जैसा कि इनके द्वारा भारतीय कामगार के व्यक्तित्व के उद्विकास को प्रभावित किया गया है । हमारे संविधान और उसकी उद्देशिका तथा निर्देशक सिद्धान्तों ने आर्थिक विकास के लिए दर्शन और सामाजिक राजनैतिक ढांचा उपलब्ध किये है । आगे, नियोजन प्रक्रिया ने उद्योग के विकास और अभिवृद्धि को सरल बनाया है । एक श्रम नीति उस संस्थागत ढांचे से हुयी है, जिसका निर्माण इसको सूत्रबद्ध करने के लिए हुआ है । इन कारकों से अलग, राजनैतिक शक्तियों और सामाजिक परिवर्तन का सामाधान कामगारों के जीवन को प्रभावित कर रहे है । यह कहा जा सकता है कि भिन्न अभिलक्षणों और सामाजिक गतिशीलता के औद्योगिक श्रम के संवर्ग में एक नया कामगर उद्विकसित हो रहा है ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का पर्यवेक्षण है, 'यह उल्लेखनीय तथ्य है कि हमारी मुलाकातों से यह स्वप्रकाशित हुआ कि कामगार को दैनिक जीवन में परिवर्तित हो रहे है । यद्यपि ये प्रभाववादी और परिमाणात्मक परिशुद्धता में कम है, फिर भी ये भारतीय परिदृश्य में प्रतिनिध्यात्मक सामाजिक पर्यवेक्षकों के लेखों से सामने आये है । " भारत की भांति विकासशील देशों में श्रमिक के मुख्य अभिलाक्षणिक गुण निम्नलिखित है :-

7.3.1 औद्योगिक श्रमिक की सामाजिक रचना

यद्यपि जाति और व्यवसाय में सदा अन्तर्क्रिया होती है और इन दोनों के मध्य समाज में लचीले सम्बन्ध रहे है । आज सामाजिक गतिशीलता मिश्र कार्य शक्ति के उद्विकास के लिए उत्तरदायी है । पुरातन सामाजिक रुकावटें त्वरित रूप से ढ़ह रही है । यह पाकर कोई आश्चर्य नहीं होता कि पुरानी पीढ़ी के फैक्ट्री के कामगार का लड़का/लड़की किसी रासायनिक अथवा औषधि निर्माण संस्थान में किसी जुलाहे या बुनकर के लड़के/लड़की के साथ काम कर रहे हों । यह कहा जा सकता है कि उच्चतर कौशल, उत्तम शिक्षा और मजदूरी स्तर शारीरिक और गैर शारीरिक कामगारों के मध्य अन्तर है ।

इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग के विचार लिखने योग्य है, "चाहे कोई भी कारण हो, कामगारों के मध्य अन्त: और अन्तर दोनों ही प्रकार से समानता का महान् संवेदन विकसित हुआ है। जैसे-जैसे कामगार अपने बच्चों की स्कूलों, कालेजों और संस्थानों में भेज रहे है, वैसे-वैसे फैक्ट्री के कर्मचारियों के बच्चे इन्जीनियर, डॉक्टर, लेखापाल, शिक्षक बनते जा रहे है । इन सब ने एक मिश्रित समाज के निर्माण में योगदान किया है ।

7.3.2 कामगारों का यौन संघटन

पूर्व में फैक्टरियों में पुरुष कामगारों की बहुतायत रही है । किन्तु अब महिलाओं ने दोनों औद्योगिक कुशल और अकुशल कार्य सम्भाल लिए है । महिलाओं के रोजगार के सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग का कथन है, "कुछ स्थितियों में आर्थिक अनिवार्यता उनको काम लेने के लिए बाध्य करता है । किन्तु, अन्य सन्दर्भ में जीवन-स्तर को सुधारने की चाह और अतिरिक्त सामान जुटाने की लगन पति-पत्नी दोनों को कार्य की ओर आकर्षित करते है ।

7.3.3 जनजातीय श्रम का उद्भव

औद्योगिक श्रम में जनजातीय श्रम का बड़े अनुपात में उद्विकास हुआ है । राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार, "यह प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी के अन्त में वन सम्पदा और कोयला, मैंगनीज, लोहा जैसे खनिजों के शोषण के साथ आरम्भ हुई । इसने स्वतंत्रता के बाद जनजातीय पट्टियों में उद्योगों की स्थापना के से अधिक गति प्राप्त की ।" इन जनजातीय युवाओं ने अपने आपकी नवीन जीवन पद्धति में अनुकूलित कर लिया । जनजातीय लोगों को अब दूसरों के साथ खनन क्षेत्रों, लोहा और इस्पात उद्योगों तथा निर्माण और भवन निर्माण जैसे असंगठित उद्योगों में काम करते हुए देखा जाता है ।

7.3.4 साक्षरता का निम्न स्तर

यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक कामगारों में साक्षरता का निम्न प्रतिशत है। चूंकि साक्षरता कामगारों के लिए अपनी दक्षता और कौशल को सुधारना संभव बनाती है, अत: युद्ध स्तर निरक्षरता को दूर करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।

7.3.5 श्रमिक वर्ग की विषमांगता

उद्योग में कार्यकारी वर्ग में विषमांगता नहीं है। इसका कारण यह है कि उद्योग में विभिन्न जातियों, समुदायों, नृजातीय समूहों, धार्मिक विश्वासों, विभिन्न भाषियों के लोग काम करते है। तथा; वे एक दूसरे के लिए अजनबी होते है। भारतीय श्रम शक्ति स्पष्ट रूप से "उच्च वर्ग-निम्न वर्ग", "कुशल-अकुशल", "उत्तरी-दक्षिणी", "हिन्दु-मुसलमान", "बंगाली-गुजराती" आदि विभिन्न वर्गो में बंटा हुआ है। भारतीय कार्यकारी वर्ग अभी तक वर्ग के रूप में अविभेदित है। इसके कारण औद्योगिकरण का निम्न स्तर, गांव और संयुक्त परिवार से लगाव की स्थिरता, जाति और अन्य सामाजिक संस्थायें, निम्न मजदूरी और पूर्ण जनसंख्या में निम्न रचना है।

7.3.6 अनुपस्थिति एवं श्रम-प्रतिस्थापितता की ऊँची दर

उनका एक मुख्य अभिलाक्षणिक गुण यह है कि उनकी कार्य से अनुपस्थित रहने का आदत है तथा अन्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा उनमें कारखाना बदलने। की प्रवृत्ति अधिक प्रबल है। अनुपस्थिति की दर 13 से 30 प्रतिशत है।

अनुपस्थिति मुख्यत: और अनधिकृत कारणों से है। अधिकृत कारणों में निम्नलिखित है-

(अ) बीमारी, कुल अनुपस्थिति का 3 प्रतिशत इसमें सम्मिलित है।

(ब) दुर्घटना 0.2-0.4 प्रतिशत।

(स) अवकाश 3.0-3.5 प्रतिशत।

अनधिकृत कारणों में निम्नलिखित सम्मिलित है :-

(अ) कामगारों की थकान।

(ब) बुरी आदतें यथा- मद्यपान, जुआ आदि।

(स) कर्जदार।

(द) अनुपस्थिति के लिए दण्ड।

(य) स्थानीय मेले आदि।

बेशक अनुपस्थिति उद्योग में एक प्रमुख श्रम-समस्या है। कामगारों कई आय और दक्षता में ह्रास के अलावा उत्पादन में बड़ी हानि (5 से 25 प्रतिशत हानि) होती है। इस प्रकार उत्पादकता ह्रास से राष्ट्रीय आय को गहरा धक्का लगता है। इसलिए इस समस्या से इस आवश्यकता को बल मिलता है कि अनुपस्थिति को कम से कम करने तथा नियन्त्रित करने के लिए मार्ग और साधन विकसित किये जाने चाहिए,।

7.3.7 प्रवासी चरित्र

अधिकतर कामगार निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के अप्रवासी है और ग्रामीण गृह में उनके सम्बंध बने रहते है । वे प्राय: अपने गांव आते जाते रहते है । क्या गांव आज भी बच्चों बूटों थकेमादों, बेरोजगारों और बेरोजगार योग्य के लिए असममित रूप सें अच्छे है? कामगारों का आंशिक प्रतिबद्धता का चरित्र और अस्थिरता केवल देश के आर्थिक विकास को ही मन्द नहीं करता अपितु व्यवसायिक संघों की शक्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते है।

ग्रामीण जनसंख्या का शहर की और प्रवास के तात्कालिक कारण इस प्रकार है :

(अ) कुटीर उद्योगों के पतन से भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव।

(ब) भूमिहीन कृषि मजदूरों की बढ़ती हुयी संख्या को अन्यत्र जीवन निर्वाह के लिए बाध्य करना ।

(स) उच्च जाति के वर्गो द्वारा अनुसूचित जाति और अन्य शोषित वर्ग के लोगों तथा सामाजिक नियोंग्यों के साथ बुरा व्यवहार ।

(द) पारिवारिक झगड़े और विवाद

(य) कर्जदारी ।

प्रवास के फलस्वरूप कामगार अपने आप को पूर्ण रूप से सभी दृष्टियों से लिए पर्यावरण मे पाते है। बन्द कारखानों, दृढ़ अनुशासन, अजीब परपरायें और प्रथायें, भिन्न भाषा अनुकूल कार्य-दशायें, त्रुटिपूर्ण पोषण, आवास की कमी और अन्य भीड़-भाड़ जिसमें रहने के वे आदि नहीं है । नवीन पर्यावरणीय अवस्थाओं में कामगार का स्वास्थ्य कई दबावों के प्रभाव में आ जाता है । बीमारियों और बीमारी के कारण अन्य खतरे बढ़ जाते है । औद्योगिक संगठन पर प्रवासन का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। और व्यावसायिक संघों का अस्वस्थ विकास होता है ।

कार्य से अनुपस्थिति की बारम्बारता, श्रम को अस्थिरता, नियौकता-नियोक्ता में सम्पर्क स्थापित करने और उनमें सहयोग का संवेदन बनाने में बाधक है -

- प्रबन्धन और कामगार दोनों ही दृष्टियों से श्रमिक का प्रवासन चरित्र दूसरे गम्भीर प्रतिकूलता में फलीभूत होते है ।

- कई देशों में विभिन्न नये और विकसित उद्योगों की श्रम के लिए बढ़ती हुयी माँग के परिणाम स्वरूप ग्रामीण प्रवास के प्रवाह ने कई ठोस आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया है जैसे औद्योगिकरण की बुराइयां, स्वास्थ्य और स्वास्थ्यकर अवस्था को कमी तथा देखभाल की कमी ।

अन्त में, ग्रामीण और शहरी श्रमिकों की भर्ती के प्रवाह के साथ-साथ स्वतंत्र काम ढूंढने वालों का प्रवाह भी प्रत्यक्ष में देखा जा सकता है, फिर भी, अस्थाई प्रवास के कुछ लाभ भी है । जो इस प्रकार है -

(i) औद्योगिक कामगारों में अधिकतर का पोषण ग्रामीण प्राकृतिक वातावरण में हुआ । अत : शारीरिक रूप से वे शहरियों की अपेक्षा-अधिक पुष्ट होते है ।

(ii) जहां कहीं भी गांवों से सम्पर्क बने रहते है, आवश्यकता पड़ने पर वापिस गांव जाने की सुविधा रहती है । शाही श्रम आयोग ने सही कहा है, "बीमारी, प्रसव-काल, हड़ताल, तालाबन्दी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था में कई लोगों के लिए गांव का घर आश्रय रहता है । यह तथ्य कि यह है, आवश्यक न होने पर भी सुरक्षा का संवेदन तो बना ही रहता है।"

(iii) शहरी जीवन मन को संकुचित और दृष्टिकोण को भ्रष्ट की अपेक्षा अधिकतर कामगारों में व्यापक बनाता है । गांवों मे कई सुधार सम्भव हो गये है । तथा गांव स्वयं को प्रथाओं, पूर्वाग्रहों, परिवर्तन विरोधी भावनाओं की बेड़ियों से छुटकारा दिलाने में समर्थ हुए है ।

नवीन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि कामगारों का गांव से सम्बन्ध श्रम-शक्ति की अस्थिरता का कारण, अब न्यूनाधिक रूप मै इतिहास का विषय बन चुका है । कामगारों के गांव से सम्बन्ध होते है । किन्तु वे आर्थिक व्यवसाय के लिए गांव नहीं जाते । वे केवल आराम करने या सामाजिक समारोहों के लिए या लम्बे अवकाश में ही गांव जाते है । श्रम शोध समिति (लेबर इन्वेस्टीगेशन कमेटी) ने महसूस किया कि, "कारखाना के कर्मचारी कृषि-कार्य की अपेक्षा आराम और अरोग्यता के लिए अधिक, अपने सम्बंध गांव से बनाये रखते है ।" ये कर्मचारी अपनी जमीन में कोई रुचि नहीं रखते तथा अपने द्वारा चुने गये व्यवसाय की जीवन पद्धति से जुड़ जाते हैं ।

समिति द्वारा किये गये तथ्यात्मक सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ है कि औद्योगिक क्षेत्रों में कामगार वर्ग की बड़ी सान्द्रता ने अधिकतर शहरों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया है । समिति ने आगे महसूस किया कि; "कामगार बड़ी सीमा तक अपने न्यायसंगत अधिकारों और जीवन-निर्वाह के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरों तक ही सीमित थे । औद्योगिक नगर में श्रम शक्ति का स्थिरीकरण चयन की अपेक्षा अनिवार्यता थी ।"

7.3.8 श्रमिक वचन-बद्धता

श्रमिक वचन बद्धता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि, औद्योगिक जीवन पद्धति के लिए उपयुक्त व्यवहार को स्वीकृत करना तथा इसका निष्पादन दोनों ही।" लेखक श्रमिक वचन बद्धता को निम्नलिखित चार संवर्गों में देखता है :-

(i) अनप्रतिबद्ध कामगार, जो कि औद्योगिक समाज का अस्थायी सदस्य है तथा औद्यौगिक रोजगार को अपनी अस्थायी कठिनाई पर काबू पाने के लिए स्वीकार करता है और अल्प समय के लिए काम पर आने के बाद वापिस गांव चला जाता है ।

(ii) आंशिक प्रतिबद्ध एक अर्द्ध प्रतिबद्ध कामगार है जो औद्योगिक रोजगार को स्थायी मानता है । किन्तु, हृदय से ग्रामीण ही रहता है और गांव से सम्पर्क बनाये रखता है।

(iii) सामान्य रूप से प्रतिबद्ध कामगार वह है जो जीवन पद्धति से समायोजित हो जाता है, जो पूर्ण रूप से अपने जीवन के लिए औद्योगिक रोजगार पर आश्रित रहता है और गांव के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता ।

(iv) विशिष्ट प्रतिबद्ध कामगार वह है जो कि किसी विशेष व्यवसाय और किसी विशेष उद्यम के साथ स्थायी रूप से जुड़ चुका हो ।

चूंकि भारत में औद्योगिक कामगार ग्रामीण पृष्ठभूमि से होता है । उसका गांवों से स्थायी जुड़ाव होता है । औद्योगिक जीवन पद्धति में वह पूरी तरह घुलमिल नहीं पाता । इसलिए भारतीय उद्योगों में अनुपस्थितता प्रतिशत काफी ऊँचा है । औद्योगिक कामगारों में प्रतिबद्धता का स्तर बहुत निम्न है ।

श्रमिक खोज समिति के वर्तमान अध्ययनों से, (प्रभु, सी.ए. माइरिस, मारिस. और लैम्बार्ट द्वारा किये गये), स्पष्ट होता हूँ कि जैसा कुछ लोग सोचते है भारतीय कारखानों में कामगारों की प्रतिबद्धता कम नहीं है। यद्यपि, प्रतिबद्धता का स्तर अपेक्षित नहीं है।

इसलिए, यहां स्थायी औद्योगिक जनसंख्या की अभिवृद्धि के चिन्ह मौजूद है। दूरदराज से आये कामगारों की प्रवृत्ति स्थायी रूप से शहरों में बसने की ओर है। वे शहरी वातावरण के आदि बनते जा रहे है। उद्योग के हित में स्थिर श्रमिक शक्ति अपेक्षित है। औद्योगिक क्षेत्र को हालतों- मकानों की हालते, कार्य की मजदूरी-हालतें, रहने तथा कल्याणकारी उपायों तथा अन्य सुविधाओं में सुधार किया जाना चाहिए। जिससे उन कारणों, जिनसे कामगार वापिस गांव जाता है, को समाप्त और नियन्त्रित किया जाया यदि ये उपाय किये जाय, विकसित और विकासशील देशों में श्रम समस्या का समाधान किया जा सकता है। यह सही कहा गया है कि स्थिर श्रम-शक्ति, 'निष्ठा और सहयोगिता अर्जित कौशल और व्यावहारिक समझ का समानार्थी है। इसका मूल्य होता है जिसको आसानी से वित्तीय पदों में मापा नही जा सकता है।.

7.4 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत के सन्दर्भ में विकासशील देशों की श्रमिक-समस्या पर टिप्पणी दीजिए।
2. विकासशील देशों में श्रम-समस्या के लिए उत्तरदायी कारकों की समालोचनात्मक जाँच कीजिए।

3. भारतीय औद्योगिक श्रम के प्रमुख अभिलाक्षणिक गुण क्या है? समालोचनात्मक जाँच कीजिए।

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Lambert, R.D. — Workers, Factories and Social change in India, Princetan University Press; 1963
2. Kher, Manik — Profile of Industrial Workers; The Time Research Fourdatia Poona; 1984
3. Singh, V.B. — An Intorduction to the Study of Labour Problems in India, 1967.
4. Manoria, C.B. — Dynamics of Industrial Relations, Third Revised Edition, 1999; Hilalaya pubLishing House, New Delhi. 1991.

इकाई 8.
बेरोजगारी एवं अर्द्धरोजगार

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 बेरोजगारी का अर्थ

8.2.1 अर्द्धरोजगार या अल्परोजगार

8.3 दृश्य अर्द्धरोजगार का माप

8.3.1 अदृश्य अर्द्धरोजगार का माप

8.4 बेरोजगारी के अन्य माप

8.4.1 अस्वेच्छिक बरोजगारी

8.4.2 खुली बेरोजगारी

8.4.3 चक्रीय बेरोजगारी

8.4.4 तकनीकी बेरोजगारी

8.4.5 घर्षण बेरोजगारी

8.4.6 संरचनात्मक बेरोजगारी

8.4.7 मौसमी बेरोजगारी

8.4.8 शिक्षित बेरोजगारी

8.4.9 शहरी बेरोजगारी

8.5 भारत में बेरोजगारी के अनुमान

8.6 बेरोजगारी के कारण

8.6.1 विकास की धीमी प्रक्रिया

8.6.2 श्रम शक्ति में वृद्धि

8.6.3 अनुपयुक्त तकनिकी

8.6.4 अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली

8.6.5 गरीबी एवं कृषि का पिछड़ापन

8.6.6 राष्ट्रीय रोजगार नीति का अभाव

8.6.7 निजी उपक्रमों के लिए सरकारी नीति

8.7 बेरोजगारी दूर करने में सरकारी नीति

8.7.1 नियोजन के पूर्व की अवधि

8.8 मुख्य रोजगार कार्यक्रम

8.8.1 काम के बदले अनाज योजना

8.8.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

8.8.3 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम

8.8.4 ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राइसेम)

8.8.5 ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम

8.8.6 योजनाओं का क्रियान्वयन्

8.9 छिपी हुई बेरोजगारी एवं पूंजी निर्माण

8.10 सुझावात्मक टिप्पणी

8.10.1 कृषि को पूर्णकालीन व्यवसाय बनाना

8.10.2 सहकारी कृषि

8.10.3 उद्योग एवं कृषि के मध्य सामंजस्य

8.10.4 जनसंख्या नियंत्रण एवं शिक्षा पद्धति के सुधार

8.0 उद्देश्य

भारत में बेरोजगारी की समस्या आज की सबसे ज्वलंत समस्या है इस इकाई का उद्देश्य आपको बेरोजगारी के स्वरूप व कारणों की संक्षिप्त संक्षिप्त जानकारी देना है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप न केवल बेरोजगारी के अर्थ से परिचित हो जाएंगे बल्कि भारत में चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों से भी परिचित हो जाएंगे ।

8.1 प्रस्तावना

बेरोजगारी विश्व की भयंकरतम समस्याओं में से एक है, जो विश्व के सभी देशों में फैली हुई है यद्यपि उनमें इसकी मात्रा का अंतर है । यह समस्या केवल अकुशल श्रमिकों तक ही सीमित नही है । कभी-कभी कुशल श्रमिक भी उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत भी रोजगार प्राप्त करने के काफी समय तक बेरोजगार बने रहतें है । आधुनिक आर्थिक प्रणाली इन सभी श्रमिकों को जो रोजगार प्राप्त करने को इच्छुक है, रोजगार देने में असफल रहती है । इसीलिए इस समस्या की तरफ सभी अर्थशास्त्रियों एवं प्रशासकों का ध्यान आकर्षित हुआ है । भारत की बेरोजगारी व निर्धनता की समस्या अधिक स्पष्ट रूप से सामने आई है और इसे दूर करने के लिए विशेष उपाय किये गये है । बेरोजगारी व्यक्तिगत परिवारों व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को बहुत बुरी तरह प्रभावित करती है ।

जब एक परिवार बेरोजगारी से प्रभावित होता है तो इसके जीवन स्तर में गिरावट अवश्यंभावी है । ये परिवार अपने कपड़े, ईधन एवं आवास सुविधाओं में कमी करने लगते है । आर्थिक कठिनाइयाँ मानसिक भटकाव को जन्म देती है एवं आर्थिक अपराधों को बढ़ावा मिलता है । किसी भी समाज में बेरोजगारी आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में बाधा पहुंचाती है । जब बहुत आर्थिक मात्रा में व्यक्ति बेरोजगार हो तो राष्ट्रीय उत्पादकता में वृद्धि असंभव है । श्रमिकों से उचित मजदूरी देना भी कठिन होता है । इस प्रकार बेरोजगारी उत्पादक शक्ति के उद्देश्यहीन समाप्ति को प्रकट करती है ।

द्वितीय, बेरोजगारी असामान्य रूप से मानवीय शक्ति को नष्ट करती हैं । लम्बे समय तक बेरोजगारी व्यक्ति के सम्मान व पद को समाप्त कर देता है । इससे कुंठा व वैराग्य से बढ़ावा मिलता है । 'यह धीरे-धीरे व्यक्ति के व्यक्तित्व बोध व आनन्द को समाप्त कर देती है।

तृतीय बेरोजगारी श्रमिक के व्यवहार को दूषित कर देती है । एक श्रमिक हमेशा रोजगार खो देने की आशंका में रहता है ।

बेरोजगारी के दौरान दैनिक मजदूर मुख्य रूप से अधिक नुकसानदेह स्थिति में होते है। बेरोजगारी के दौरान श्रमिकों को बचत भी समाप्त हो जाती है क्योंकि उनकी आय समाप्त हो चुकी होती है । इस अवधि में श्रमिकों का अपव्यय भी होता है ।

बेरोजगारी से आर्थिक संस्थिति समाप्त होने के साथ बड़ी संख्या में व्यक्ति दैनिक मजदूरों में परिवर्तित हो जाते है । उनकी आय में कमी होती है और कुशलता समाप्त हो जाती है । श्रमिक का नैतिक बल समाप्त हो जाता है और आर्थिक पतन को जन्म देती है । उत्साहहीन एवं नैतिक गिरावट बेरोजगारी के त्वरित परिणाम हें । यह सामाजिक असंतोष को जन्म देती है एवं मजदूरों में वर्तमान सामाजिक व आर्थिक प्रणाली के प्रति असंतोष उत्पन्न होता है । व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा चाहता है, जो व्यक्ति ऋण व गरीबी में जीवन जीने को बाध्य है उसमें क्रांतिकारी विचार पनपने लगते है । प्रोफेसर लेस्कोहेयर ने बेरोजगारी के प्रभावी का सारांश इस प्रकार दिया है :-

"अस्थिर बेरोजगारी श्रमिकों की दक्षता को इतने अधिक रूप से प्रभावित करती है कि इसे गिनना मुश्किल है । यह उसे शारीरिक रूप से कमजोर करती है, मस्तिष्क को शिथिल करती हें, आशाओं को कमजोर करती हे, लगातार व स्थिर प्रयास करने की क्षमता को नष्ट करती है, आत्म विश्वास व जिम्मेदारी की भावना को कमजोर करती है, तकनीकी दक्षता को पंगु बनाती है, मानव व संकल्प शक्ति को कमजोर करती है, अपनी असफलताओं का दूसरों पर दोषारोपण करने की प्रवृति को जन्म देती है, साहस को कमजोर करती है, परिवार के बढ़ने की आशा व मितव्ययता को रोकती है, श्रमिक की इस भावना को नष्ट करती है कि वह परिवार की देखभाल कर रहा है, उसे चिंताग्रस्त व अपूर्ण भोजन के साथ काम पर भेजती है एवं उसे कर्ज में डूबोती है ।"

बेरोजगारी एक बहुत बड़ी बुराई है । यह समाज को प्रदूषित करती है और देश के राजनीतिक तंतुओं को नष्ट करती है । यह शैतानों को जन्म देती है । यह सदाचारी को दुराचारी व ईमानदारी को अपराधी में बदल देती है । यह भ्रष्टाचार जो संरक्षण देती है और असत्यता को महिमामण्डित करती है । यह ऐसी समाज को जन्म देती है जिसमें सत्य, ईमानदारी व कुलीनता न हो । बेरोजगारी राष्ट्र को दूषित करती है, देश की भूख को बढ़ाती है और इस भूख की आग में एक पिता के आदर्श गुण, एक पुत्र या पति के कर्त्तव्य सब जल कर राख हो जाते है ।

बेरोजगारी की समस्या के इन सभी कारणों को वजह से सामाजिक आर्थिक साहित्य में यह एक ज्वलंत प्रश्न है । भारत में ।।छले साढ़े चार दशकों में यह समस्या तीव्र गति से बढ़ी है किन्तु प्रभावपूर्ण हल नहीं निकाला जा सका है । इसी वजह से भारत में सभी प्रकार: की बेरोजगारी पाई जाती है और यह देश की मूलभूत समस्या है ।

8.2 बेरोजगारी का अर्थ

सामान्य रूप सें कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति जो किसी उत्पादक कार्य में लगा हुआ नही हो वह बेरोजगार माना जाता है । यह बिना इच्छा के बेकार रहने के विचार को प्रकट करता है । बेरोजगार वह व्यक्ति है जो काम करने की इच्छा व शक्ति होने के बावजूद वह अपने लिए काम ढूँढ़ने में असफल रहता है । बेरोजगारी श्रम बाजार की वह अवस्था है जिसमें श्रम की पूर्ति इसकी मांग की तुलना में अधिक होती है । बेरोजगारी का धारणा केवल कार्यशील जनसंख्या जो 15-60 वर्ष की आयु के मध्य विद्यमान रहती है, के सम्बन्ध में ही मानी गई है । बेरोजगारी देश की उस अवस्था को माना जाता है जब देश के नवयुवक कार्य करने को तैयार है किन्तु उन्हें काम नहीं मि लता है।

अर्द्धविकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या विकसित पूंजीवादी देशों की समस्या से भिन्न है । विकसित देशों में बेरोजगारी प्रभावपूर्ण मांग में कमी या कीमत लागत असंतुलन या उपकरण या अन्य संरचनात्मक कारण जैसे पूंजी की कमी से उत्पन्न होती है। अर्द्धविकसित देशों में अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या बेरोजगारी की समस्या से अधिक महत्वपूर्ण है । प्रो ए.ई. वाथ के अनुसार - "एक बेरोजगार व्यक्ति वह हुए जो योग्य है और कार्य करने को इच्छुक है किन्तु कार्य नही कर रहा है और रोजगार जिसके लिए वह स्थानीय मानकों के अनुसार योग्य है, प्राप्त नहीं कर पाता है । "

8.2.1 अर्द्धरोजगार या अल्परोजगार

अर्द्धरोजगार बेरोजगारी की तुलना में अल्पविकसित देशों में और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक फैली हुई है । इसमें उन सभी व्यक्तियों को सम्मिलित लिया जाता है जो अंशकालीन, मौसमी, आकस्मिक रूप से रोजगार में लगे हुए है या कम उत्पादक कार्यों में लगे हुए है । इस दृष्टि से कि उनकी उत्पादकता व आय कम है एवं मुश्किल से ही बढ़ सकती है । कभी-कभी अद्धरोजगार को दृश्य व अदृश्य रूप से भी परिभाषित किया जाता है । दृश्य का अभिप्राय अल्पकाल के लिए रोजगार प्राप्त होना है एवं अदृश्य या अभिप्राय एक निश्चित समय के लिए कम मजदूरी पर रोजगार प्राप्त होना है । अर्द्ध अल्परोजगार को छिपी हुई बेरोजगरी भी कहते है ।

8.3 दृश्य अर्द्धरोजगार का माप

भारत में दृश्य अर्द्धरोजगार के माप के लिए समय मापदण्ड अपनाया जाता है जिसके अन्तर्गत एक श्रमिक जितने समय लाभ पद कार्य कर सकता है और जितना वह कार्य करता है उसका माप किया जाता है । संदर्भ अवधि ठीक पिछले सप्ताह को माना जाता है ताकि वह न बहुत कम हो और न बहुत अधिक हो । ग्रामीण क्षेत्र के लिए मौसमी परिवर्तन को महत्व दिया जाता है और सर्वेक्षण अवधि एक वर्ष मानी जाती है किन्तु एक वर्ष के लिए सर्वेक्षण अवधि मानने पर एक व्यक्ति के लिए सूचना प्राप्त करने पर अल्प अवधि के आधार पर प्राप्त सूचना का महत्व कम होने से विचारणी समस्या उत्पन्न हो जायेगी ।

दृश्य अर्द्धरोजगार के विषय में समय मापदण्ड के आधार पर सूचना एकत्रित करने पर यह स्वयं सिद्ध माना पड़ेगा कि व्यक्ति लाभ पूर्ण. कार्य पर लगा हुआ है । इस प्रकार के मापदण्ड में कुछ संदेह है । यह संदेह कृषि क्षेत्र के पूरक कार्यो की वजह से है ।

8.3.1 अदृश्य अर्द्धरोजगार का माप

अवधारणात्मक एवं अन्य व्यवहारिक समस्याओं के कारण इस विषय पर अधिक कार्य नहीं हो पाया है । कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने अपनी सातवीं रिपोर्ट 1960 में कुछ मानक फार्मों का अध्ययन कर के कुछ निश्चित कार्य दिवस निर्धारित किये । इसने उन फार्मों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के वास्तविक कार्य दिवसों की तुलना करके अध्ययन किया । विचारणीय फार्मों को आगे फसलों का स्वरूप, सिंचाई, परिवार में । वयस्क व्यक्ति, प्रति व्यक्ति कृषि भूमि के आधार पर समरूप वर्गीकृत किया। अर्द्धरोजगारी को इस प्रकार अनुमानित किया। इस प्रकार अनुकूलतम कामों में लगने वाले कार्य दिवसों व वास्तविक मानव दिवसों का अंतर ज्ञात हो सकता है । भाड़े पर लिया गया श्रमिक भी समिलित है । रबी एवं खरीफ दोनों फसलों में इस प्रक्रिया को अपनाया जा सकता है । इसमें कोई संदेह नही कि इस प्रक्रिया की भी सीमाएं है किन्तु यह प्रक्रिया निश्चित रूप से अदृश्य अर्थ रोजगार को मापने की विधियों में एक कदम आगे है ।

8.4 बेरोजगारी के अन्य माप

स्वैच्छिक बेरोजगारी

यह वह अवस्था है जब श्रमिक प्रचलित मजदूरी दर पर कार्य करने से मना करता है । यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब श्रमिक को उसकी सीमांत उत्पादकता से कम मजदूरी चुकाई जाती है । यह वह अवस्था है जब वे काम करना चाहते किन्तु फिर भी बेकार रहना पसंद करते है । भारत में शिक्षित व्यक्ति कम मेहनत के काम के अभाव में बेकार रहना पसंद करते है किन्तु जो अन्य की कमाई पर आश्रित रहते है वे परजीवी कहलाते है, न कि स्वैच्छिक बेरोजगार ।

8.4.1 स्वैच्छिक बेरोजगारी

यह बेरोजगारी की वह अवस्था है जब कार्य उपलब्ध नहीं होता है या कार्य पर्याप्त नही होता है । इसके विभिन्न प्रकार हो सकते है -

छिपी हुई बेरोजगारी :- यह अर्द्धविकसित कृषि देशों में विशेष रूप से पाई जाती है । विस्मृत रूप में इसका आशय है कि इन देशों में कृषि क्षेत्र में लगे हुए काफी व्यक्तियों को वहां से हटा देने पर भी कृषि उत्पादन में कोई कमी नही आयेगी । अर्थात् इन व्यक्तियों की कृषि क्षेत्र में सीमांत उत्पादकता शून्य है । टी. डब्ल्यू. शुल्ज प्रथम अर्थशास्त्री थे उन्होंने 1964 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "परम्परा गत कृषि का रूपान्तरण" मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला । उन्होंने इफ्लुएंजा एपेडमिक टेस्ट के द्वारा बताया कि यदि कुछ व्यक्तियों को कृषि क्षेत्र से हटाया गया तो कुल उत्पादन में निश्चित रूप से कमी आयेगी । प्रो. ए. के. सेन ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में छिपी हुई बेरोजगारी की अवधारणा को परिवर्तन किया ।

वर्तमान में जो सूचना उपलब्ध है उसके आधार पर हरित क्रांति क्षेत्र में कोई छिपी हुई बेरोजगारी नहीं है । पिछले डेढ़ दशकों में इस क्षेत्रं में श्रमिकों को यहां लाया गया है । अन्य क्षेत्रों में बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव कृषि पर बढ़ता जा रहा है एवं कोई इस बात पर ध्यान देता है कि काफी व्यक्ति छोटी भूमि जोतों पर काम कर रहे है तो यह विश्वास होने लगता है कि इस क्षेत्रों में छिपी हुई बेरोजगारी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । यह केवल भ्रम है और इस सम्बन्ध में ठोस निर्णय गलत निष्कर्षो की और से जा सकता है । इस बोरे में कुछ व्यक्ति स्तर के शोघ किये गये है । शकुंतला मेहरा ने अपने पत्र भारतीय कृषि में अवशेष श्रम को इंडियन इकनोमिक रिव्यू में प्रकाशित हुआ था तथा इसमें बताया कि 1960 में कृषि क्षेत्र में 17.1 प्रतिशत व्यक्ति अतिरेक श्रम के रूप में थे । ये आकड़े अलग-अलग राज्यों के लिए अलग थे । अन्यों ने अन्य राज्य स्तरीय आकड़े भी प्रस्तुत किये है । जे.एस. उपाल ने पत्र "पंजाब में कृषि क्षेत्र में छिपी हुई बेरोजगारी का माप" में बताया कि 1956-57 में पंजाब में कृषि क्षेत्र में लगे हुए श्रमिकों का बारहवां हिस्सा अतिरेक श्रम के रूप में था। उसने आगे भी कहा कि वह कृषि फार्मो की तुलना में छोटे कृषि फार्मो में छिपी हुई बेरोजगारी कम मात्रा में पाई जाती है ।

8.4.2 खुली बेरोजगारी

यह दृश्य बेरोजगारी की दशा है, जो विकसित व अर्थ विकसित दोनों देशों में पाई जाती है । इसके विभिन्न. प्रकार होते है ।

विस्फीतिकारी बेरोजगारी :- यह विकीसत देशों में सामान्य रूप से पाई जाती है अधिक बचत अनुपात के कारण विकसित देशो, मे प्रभावपूर्ण मांग में कमी हो जाती है । जिसमें अल्पकाल में उत्पादन कम हो जाता है और फलस्वरूप बेरोजगारी फैलना लगती है । इसी वजह से विकसित देश रोजगार नीति में स्थमित्व की समस्या से चिंतित रहते है ।

8.4.3 चक्रीय बेरोजगारी

एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की बेरोजगारी एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस प्रकार देशों में आर्थिक गतिविधियों में उतार-चढ़ाव सामाजिक-आर्थिक प्रणाली की अनियोजित व अनियंत्रित प्रकृति के कारण होता है । व्यापार चक्र की स्थिति अर्थात् मंदी के बाद तेजी एवं इसी तरह आर्थिक गतिविधियों में गिरावट सामान्य बेरोजगारी के कारण है । मोद्रकी व गैर मौद्रिक तत्वों के कारण भी बेरोजगारी उत्पन्न हो सकती है ।

8.4.4 तकनीकी बेरोजगारी

इस प्रकार की बेरोजगारी सामान्य रूप से विकासशील देशों में पाई जाती है । इन देशों में नई तकनीकों के साथ श्रम का सामंजस्य न हो पाने के कारण इस प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती है । यह स्थिति तब भी उत्पन्न होती है जब नई प्रक्रिया में नई मशीनों के कारण विशिष्ट श्रमिकों को वहां नहीं लगाया जा सकता है । विकासशील देशों में उत्पादन की लागत कम करने के लिए श्रम उत्पादन अनुपात कम रखने के प्रयास के श्रम की मात्रा कम करने के उपाय अपनाये जाते है । श्रम की अगतिशीलता के कारण भी श्रम की मात्रा घटाने के उपाय

किये जाते है । दीर्घकाल में श्रम घटाने के ख्यालों से उत्पादन में कई गुना वृद्धि हो सकती है किन्तु अल्पकाल में सामंजस्य स्थापित करने में तकनीकी बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है ।

8.4.5 घर्षण बेरोजगारी

जब श्रम की मांग व पूर्ति की स्थिति में समायोजन रहता है तो श्रमिक अल्पसमय के लिए बेरोजगार हो जाते है और इसे ही घर्षण बेरोजगारी की संज्ञा दी जाती है । यह समायोजन श्रम की अगतिशीलता, कार्य की मौसमी प्रकृति कच्चे माल की कमी, सयंत्र की खराबी या रोजगार के अवसरों की जानकारी का अभाव के कारण हो सकता है। ए.पी. लर्नर ने अपनी पुस्तक रोजगार का अर्थशास्त्र में इस बात पर प्रकार डाला है कि श्रम की गतिशीलता बढ़ने से घर्षण बेरोजगारी ने कमी आती है । उनसे कहा कि यदि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति खाली बर्तन में पानी भरने के समान है तो श्रम की गतिशीलता में वृद्धि बर्तन के आकार में वृद्धि के समान है जिससे अधिक पानी की मात्रा इसके अंदर आ सके ।

8.4.6 संरचनात्मक बेरोजगारी

इस प्रकार की बेरोजगारी तब उत्पन्न होती है जब संरचनात्मक कुसमायोजन हो और उत्पादन के साधनों की कमी होती हैं। देश में भूमि, पूंजी या दक्ष श्रम की कमी होने के कारण श्रम बाजार में संरचनात्मक असंतुलन होने से बेरोजगारी उत्पन्न हो सकती है। यह उद्योग के आकार में कमी या उद्योग की भोगोलिक स्थिति में परिवर्तन के कारण भी हो सकता है। यदि श्रमिकों को उद्योग से तुरंत बाहर निकाला जाता है। तो वे तुरन्त रोजगार प्राप्त नहीं कर सकते।

8.4.7 मौसमी बेरोजगारी

अर्द्धविकसित कृषि देशों ने मौसमी बेरोजगारी एक प्रमुख विशेषता के रूप में है। कृषि चूंकि एक मौसमी कार्य है अत: अन्य समय के लिए श्रमिक बेरोजगार रहता है। यह उन उद्योगों में भी पाई जाती है जो अपना कच्चा माल कृषि क्षेत्र से प्राप्त करते है। विकसित देशों में इस प्रकार की बेरोजगारी मांग या उत्पादन में परिवर्तन के कारण पाई जाती है।

8.4.8 शिक्षित बेरोजगारी

शिक्षित बेरोजगारी देश के आर्थिक विकास व गलत शिक्षा नीतियों के कारण पाई जाती है। शिक्षित बेरोजगार एक खतरनाक व्यक्ति होता है वह अपनी बात को बताता है, उसका प्रभाव है और वह अपनी पीड़ा को समझता है। शिक्षित युवकों को रोजगार प्राप्त करने के लिए अवसर नही दिया जाता और इस प्रकार के कठोर पीड़ा भोगते है। भारतीय शिक्षा पद्धति में केवल साक्षरता है और हमारे स्नातक युवक क्लर्क, या शिक्षक के अलावा अन्य स्थानों के लिए उपयुक्त नहीं होते है। सीमित स्थानों के लिए बढ़ते हुए स्नातकों को रोजगार के लिए उपयुक्त नहीं होते है। सीमित स्थानों के लिए बढ़ते हुए स्नातकों को रोजगार देना संभव नहीं होता है इस प्रकार शिक्षित लोगों में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। तकनीकी शिक्षा के व्यापक विस्तार से

भी शिक्षित लोगों में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। औद्योगिक व व्यावसायिक प्रणाली बढ़ती हुई तकनीकी परिवर्तनों के कारण शिक्षित युवकों को रोजगार के अवसर नहीं दे पा रही है।

श्रम व रोजगार मंत्रालय के अनुसार 1951 में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 2.44 लाख थी जो बढ़कर 1972 से 32.0 लाख हो गई। योजना आयोग द्वारा 1980 में यह 34.72 लाख अनुमानित की गई। 1985 में यह 1951 की तुलना में 20 गुना अधिक अनुमानित की पाई। 1985 में 26 प्रतिशत स्नातक व 74 प्रतिशत मैट्रिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त थे। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक प्रशिक्षण बहुत कम मात्रा मे है और वे क्लर्क बनने की दौड़ में रहते है। फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। ब्लांग, लेयर्ड एवं चुहहात जैसे अर्थशास्त्री ने शिक्षित बेरोजगारी की धारणा के सम्बन्ध में बताया की शिक्षित बेरोजगारों की मांग सापेक्षिक स्थिर रहती है जबकि पूर्ति स्थिर रूप से बढ़ती रहती है। भारत में शिक्षा की निजी लागत इसकी भावी आय की तुलना में काफी कम है। इसी कारण से काफी व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करने को प्रेरित रहते है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य सरकारी नौकरी प्राप्त करना या बेरोजगार के अवसरों में वृद्धि करना है।

भारत में शिक्षित बेरोजगारी की समस्या प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अधिक पैदा हुई और बम्बई, मद्रास, बंगाल व पंजाब में जांच समितियां नियुक्त हुई और यह पाया गया कि शिक्षित बेरोजगारी नियमित रूप सें बढ़ रही है तथा यह बेरोजगारी अन्य बेरोजगारी के स्वरूपों से अधिक खतरनाक है। इन विभिन्न समितियों के निष्कर्षो से भिन्नता थी किन्तु इनमें यह समानता थी कि शिक्षित युवकों की संख्या में तेज गति से वृद्धि हो रही है किन्तु सरकारी क्षेत्र या निजी क्षेत्र में उनकी मांग से बहुत कम वृद्धि हो रही है।

8.4.9 शहरी बेरोजगारी

शिक्षित बेरोजगारी को मुख्य रूप से औद्योगिक बेरोजगारी व शिक्षित बेरोजगारी में बांट जा सकता है। शहरी बेरोजगारी के सम्बन्ध में कुछ अनुमान निम्न प्रकार है :-

तालिका 8.1

शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी

स्त्रोत	वर्ष	बेरोजगारी(लाखों में)
1. आरसी. भारद्वाज	मार्च 51	25
2. राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे संमक	सित. 53	24
3. राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संमक	मई 56	34
4. आरसी. भारद्वाज	मई 61	45
5. सातवीं योजना	मार्च 05	61
6. राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे 38वा राउण्ड	मार्च 85	42

तालिका 8 .1 के आकड़े बताते है कि शहरी बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है। यह निरपेक्ष रूप में ही नहीं सापेक्ष रूप में भी बढ़ रही है।

8.5 भारत में बेरोजगारी के अनुमान

योजना आयोग ने 1980 एवं 1985 के वर्षो के लिए बेरोजगारी के अनुमान उपलब्ध कराते है।

तालिका 8.2

मार्च 1980 में बेरोजगारी (लाखों में)

क्र.स. अवधारणा	(5+)	आयु वर्ग (15+)	(15-59)
1. सामान्य स्थिति	120.2	114.2	113.1
2. साप्ताहिक स्थिति	121.8	116.4	113.6
3. दैनिक स्थिति	207.4	197.7	191.7

इन आकड़ों के आधार पर योजना आयोग ने बताया है कि सामान्य स्थिति में 75 प्रतिशत रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्ति वे थे जो श्रम शक्ति में नये जुड़े थे। यह भी बताया कि बेरोजगारी की दर ग्रामीण क्षेत्र की तुलना मे शहरी क्षेत्र में अधिक थी।

1985 में सामान्य स्थिति की बेरोजगारी के अनुमान राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे के 32वें दौर व रोजगार व बेरोजगारी के 38वें दौर के प्रथम दो उपदौर के आधार पर थे।

तालिका 8 .3

मार्च 1985 में बेरोजगारी की सामान्य स्थिति (लाखों में)

आयु वर्ग	32वें दौर पर आधारित	38वें दौर पर आधारित
(5+)	138.9	92.0
(15+)	132.5	87.7
(15-58)	131.0	86.7

मार्च 1985 के सामान्य स्थिति के बेरोजगरी के अनुमान जो कि 30 वे दौर पर आधारित है। इसकी की तुलना मार्च 1980 के सामान्य स्थिति के बेरोजगारी के अनुमान से की जा सकती है। यह दर्शाता है कि बेरोजगारी निरपेक्ष रूप में बढ़ी है। 38वें छोर के आकड़ों के बारे में अर्थशास्त्रीयों के द्वारा माना गया है कि वे कम अनुमानित किये गये है।

8.6 बेरोजगारी के कारण

भारत में बेरोजगारी के लिए मुख्य संरचनात्मक ढांचा जिम्मेदार है फिर भी भारत में बेरोजगारी के मुख्य कारण निम्नलिखित है :-

8.6.1 विकास की धीमी प्रक्रिया

किसी भी देश के विकास का स्तर इसके रोजगार के स्तर को प्रभावित करता है। उत्पादन की वृद्धि के साथ रोजगार के अवसरों में विस्तार होता है। योजना काल में विकास की दर धीमी रही जबकि जनसंख्या में वृद्धि तेज गति से बड़ी फलस्वरूप बेरोजगारी में निरपेक्ष रूप वृद्धि हुई। तीव्र विकासशील अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों को उचित तरीके से उपयोग होता है जिससे बेरोजगारी पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। भारत में दो दशक तक ये योजना काल

में महालनोबिस प्रारूप को अपनाया गया और पाँचवी पंचवर्षीय योजना में विकास व रोजगार में परस्पर विरोध को अंतर्निहित मानकर व्यूह रचना अपनायी गयी। इसके पहले यह माना जाता था कि विकास से स्वत: ही बेरोजगारी समाप्त हो जायेगी।

8.6.2 श्रम शक्ति में वृद्धि

जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। जिससे श्रम शक्ति में वृद्धि हुई है। जनांकिकीय एवं सामाजिक कारण इसके लिए जिम्मेदार है। जनांकिकीय कारण प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है जबकि सामाजिक कारणों से भी श्रम शक्ति से अभूतपूर्ण वृद्धि हुई है। दृष्टिकोण मे परिवर्तन के कारण अब महिलाएं भी पुरूषों के बराबर रोजगार में आगे आ रही है। जिससे बेरोजगारी में लगातार वृद्धि होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह छिपी हुई बेरोजगारी कें रूप में है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह दृश्य बेरोजगारी रूप में है। इसका मूलभूत कारण यह है कि आर्थिक विकास से नये रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हो पाई है। कृषि क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में व्यक्तियों के जाने से बेरोजगारी में वृद्धि हुई है।

8.6.3 अनुपयुक्त तकनीकी

भारत में पूंजी कम मात्रा में है जबकि श्रम का बाहुल्य है। यदि बाजार प्रणाली को स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है तो देश के श्रम गहन तकनीकी का प्रयोग किया जायेगा। यूरोपीय देशों में विकास प्रक्रिया में श्रम को पूंजी से प्रतिस्थापित किया जा रहा है। उत्पादन प्रक्रिया में आर्थिक विवेकशीलता के लिए गैरभेदभावपूर्ण मशीनीकरण किया जाता है और यह प्रदर्शनात्मक प्रभाव का परिणाम है। ल्यूस ने भी इसका समर्थन किया है कि जिस देश में अधिक मात्रा में अकुशल श्रमिक हो वहां उत्पादन प्रविधि के मारे में चयन करते समय अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए। उसने कहा कि पूंजीगत संयंत्र में विनियोग एक पूंजीपति के लिए अधिक लाभप्रद हो सकता है किन्तु यह समाज के लिए लाभप्रद नहीं हो सकता क्योंकि इससे बेरोजगारी बढ़ती है और उत्पादन नही बढ़ता।

8.6.4 अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली

भारत में शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। इसमें अभी तक कोई परिवर्तन नही हुआ है और उपनिवेश काल में मैकाले द्वारा प्रचलित शिक्षा पद्धति अभी तक चली आ रही है। मानवीय संसाधनों का विकास शिक्षा नीति का लक्ष्य नही है। इसमें सरकारी व निजी क्षेत्र के लिए निचले स्तर के कर्मी उत्पन्न किये है। इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं में वृद्धि के साथ बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। गुनाह मिर्डल ने कहा है कि जो इस प्रकार कि शिक्षा ग्रहण करते है वे अपर्याप्त शिक्षित नहीं है वरन् गलत रूप से शिक्षित है। यदि देन से बेरोजगारी को समाप्त करना है तो शिक्षा प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन आवश्यक है। मानवीय संसाधनों के उचित विकास में शिक्षा प्रणाली की सहायता आवश्यक है जिससे उन सभी को रोजगार प्राप्त हो सके और वे शिक्षा ग्रहण कर सके।

8.6.5 गरीबी एवं कृषि का पिछड़ापन

गरीबी एवं बेरोजगारी एक दूसरे के पूरक है। एक व्यक्ति गरीब है क्योंकि वह बेरोजगार है। वह बेरोजगार है क्योंकि वह गरीब है। एक गरीब व्यक्ति के पास लाभ पर कार्य के लिए संसाधन ही है। यह तथ्य राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण के 32वें दौर में बेरोजगारी एवं मासिक, प्रति व्यक्ति व्यय में प्रतिस्थापित हुआ है।

8.6.6 राष्ट्रीय रोजगार नीति का अभाव

विभिन्न योजनाओं में कुछ कार्यक्रमों के अलावा बेरोजगारी हटाने के लिए कोई विशेष नीति का क्रियान्वयन नहीं किया गया है। रोजगार के अवसरों को योजना के दौरान विकास का प्रतिफल माना गया है। रोजगार सृजन के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। मानव शक्ति नियोजन के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किये गये है। मानव शक्ति नियोजन के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किये गये है। स्पष्ट रोजगार नीति के स्वभाव में बेरोजगारी एवं अर्द्धबेरोजगारी में प्रत्येक योजना में वृद्धि हुई है।

8.6.7 निजी उपक्रमों के लिए सरकारी नीति

रोजगार सृजन हेतु निजी क्षेत्र के लिए सरकारी नीति सहायक नहीं रही है। अभी तक लाइसेंस नीति पर राज्य का कठोर नियंत्रण रहा है। अभी नियमित कर दरों एवं मजदूरी सीमा में वृद्धि से निजी उपक्रमों के विस्तार को प्रोत्साहन नही मिला है। इन सभी बेरोजगार के स्तरों का सृजन नहीं हुआ है।

8.7 बेरोजगारी दूर करने में सरकारी नीति

भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों में बेरोजगारी को दूर करने को प्रमुख बताया जाता है। किन्तु अब तक की सभी योजनाओं में दीर्घकालीन रोजगार नीति का अभाव रहा है जो बेरोजगारी को दूर कर सके। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न योजनाओं के सम्बन्ध में इस विषय पर संदेह करता है। रोजगार वृद्धि के उपायों को प्राथमिक ला नहीं दी गई। यह डर था कि इससे विकास की प्रक्रिया में शिथिलता आयेगी और उपभोग ने वृद्धि होगी। महिलाओं में रोजगार प्राप्ति की इच्छा में वृद्धि से भी बेरोजगारी की मात्रा एवं प्रकृति में बदलाव आया है।

8.7.1 नियोजन के पूर्व की अवधि

प्रथम योजना के आरंभ मे लगभग 33 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। इस योजना में 90 लाख व्यक्ति और बेरोजगार की पंक्ति में जुड़ने की संभावना था। इस प्रकार 123 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया । किन्तु इस अवधि में केवल 70 लाख व्यक्तियों को ही रोजगार प्रदान किया जा सका और योजन के अंत में 53 लाख व्यक्ति बेरोजगार रह गये । यह अपेक्षा थी कि कुटीर उद्योग, नहर तथा सडकों के निर्माण से अधिकतम लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकेगी किन्तु इसमें अधिक सफलता नहीं मिली । द्वितीय व तृतीय योजनाओं की नीतियों में भी कोई परिवर्तन नही किया गया । संगठित क्षेत्र के रोजगार के अवसरों की उपलब्धता पर्याप्त नहीं थी । फलस्वरूप 1969 तक 220 लाख

व्यक्ति बेरोजगार थे । चौथी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास के विस्तृत कार्यक्रम अपनाये श्रम गहन कार्यक्रम, उद्योगों मे श्रम गहन तकनीकी, घरेलू एवं विदेशी बाजारों में श्रम गहन औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा दिया गया । इसमें कोई संदेह नही कि सैद्धांतिक रूप में बेरोजगारी समाप्ति की व्यूह रचना अपनायी । किन्तु व्यवहार में पूर्व नीतियों से हटकर कोई नई बात नहीं हुई ।

पांचवी योजना में योजना आयोग को यह आशा थी कि विकास कार्यक्रमों के द्वारा रोजगार सृजन होगा । इसमें श्रम गहन कार्यक्रमों को बढ़ावा देने पर जोर दिया । योजना में कुछ ग्रामीण कार्यक्रमों पर भी विशेष ध्यान दिया जो रोजगार के अवसरों को बढ़ावा दे सकते थे । इसके उद्देश्यों से क्रय शक्ति का पुन: वितरण श्रम गहन वस्तुओं की मांग में वृद्धि ग्रामीण संरचना एवं सामाजिक सेवाओं में त्वरित विनियोग सम्मिलित थे ।

छठी योजना के दस्तावेज में योजना आयोग ने इस कटु सत्य को स्वीकार किया दीर्घकालीन आर्थिक नियोजन के बावजूद रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाई है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रोजगार नीति में दो महत्तपूर्ण लक्ष्य निर्धारित किये । प्रथम श्रम शक्ति में विद्यमान अल्प रोजगार को। कम करना और द्वितीय दीर्घकालीन बेरोजगारी की मात्रा में कमी करना। हमारी अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था होने के कारण वहां सरकारी क्षेत्र के साथ निजी क्षेत्र एवं सहकारी क्षेत्र भी विद्यमान है । सरकार स्वयं सभी क्षेत्रों में रोजगार सृजन हेतु कुल संकल्प है। गैर कृषि कार्यो से सम्बन्धित गतिविधियों, लघु एवं कुटीर उद्योग, कृषि - क्षेत्र में स्वयं रोजगार पर अधिक क्या दिया गया । कुछ रोजगार सृजन के कार्यक्रम जैसे - एकीकृत ग्रामीण विकास परियोजना, आपरेशन ब्लड, द्वितीय डेयरी योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, लघु किसान विकास एजेंसी आदि आरंभ किये ।

सातवीं योजना में उद्गमन व विनियोग की उपयुक्त मात्रा को अपनाने का लक्ष्य अपनाया, तकनीकी की उपयुक्त प्रकार, उत्पादन तकनीकी एवं संगठनात्मक सहयोग का सही अनुपात का लक्ष्य निर्धारित किया । रोजगार सृजन के लिए कृषि क्षेत्र के योगदान को योजना में ध्यान दिया गया ।

8.8 मुख्य रोजगार कार्यक्रम,

देश में रोजगार के लिए निम्नलिखित मुख्य कार्यक्रम आरंभ किये है इनका विस्तार पूर्वक वर्णन इस प्रकार है :

8.8.1 रोजगार गारन्टी योजना

यह योजना महाराष्ट्र सरकार द्वारा 1972-73 में आरंभ की गई थी ताकि ग्रामीण क्षेत्र के 18 वर्ष या इससे अधिक आयु के अकुशल युवाओं को रोजगार प्राप्त हो सके । उन्हें प्रचलित मजदूरी दर पर मानवीय श्रम करना था । यह माना गया कि वहां 50 अथवा इससे अधिक रोजगार की तलाश में व्यक्ति रहते है उसके 5 किलोमीटर की परिधि में नया कार्यक्रम आरंभ करना था एवं उत्पादक कार्य किया जाना था तथा श्रम का भाग एवं उपकरण के भाग का खर्च में अनुपात 60:40 सें कम नही रखा जाना था। 1983-84 में 1645 लाख मानव दिवसों का

रोजगार का सृजन किया गया । 90 प्रतिशत व्यक्ति जो इस योजना के तहत रोजगार प्राप्त कर सकें । वे गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवन यापन करते थे ।

8.8.2 काम के बदले अनाज योजना

यह योजना गैर योजना मद के रूप में आरंभ की गई थी । इसके उद्देश्य रोजगार का सृजन, एवं पोषण आय में वृद्धि एवं ग्रामीण संरचना को मजबूत करना था । यह माना गया कि इस योजना सें एक वर्ष में 40 करोड़ मानव दिवस रोजगार का सृजन होगा किन्तु यह योजना केवल अल्पकाल के लिए ही लागू रही । यह योजना काफी अच्छी थी किन्तु इसके क्रियान्वयन में कुछ हानियां थी ।

8.8.3 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

वह योजना छठी योजना का हिस्सा थी किन्तु यह सातवीं योजना तक भी लागू रही । ग्रामीण जनसंख्या का बड़ा भाग जो कि मुख्य रूप से दैनिक मजदूरी पर आश्रित रहता है । उसके पास कृषि क्षेत्र में हानि होने पर आय का अन्य कोई स्त्रोत नहीं होता है । यह कार्यक्रम केन्द्र प्रवर्तित योजना के रूप लागू किया गया जिसमें केन्द्र सरकार का एवं राजा सरकार की हिस्सा 50:50 के अनुपात में था । छठी योजना में इस पर 1620 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान रखा गया था ।

8.8.4 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम

यह कार्यक्रम छठी योजना में गरीबी उन्मूलन के रूप में आरंभ किया गया । इसके अन्तर्गत रेशम उत्पादन, पशुपालन तथा प्राथमिक क्षेत्र में कृषि आधारित गतिविधियों द्वारा स्वयं रोजगार का सृजन किया जाना था । सम्पूर्ण देश में सभी खण्डों में 15 लाख परिवारों एवं प्रति खण्ड 3000 परिवारों को लाभान्वित करना था । छठी योजना में इस कार्यक्रम के लिए 1500 करोड़ रू का प्रावधान किया गया था एवं बैंकों के द्वारा भी 3000 करोड़ का चयनित परिवारों को ऋण देना का लक्ष्य रखा गया था । इस कार्यक्रम का विभिन्न संस्थाओं द्वारा मूल्यांकन करने पर पाया गया कि यह अन्य कर्मियों कें अलावा उपयुक्त रोजगार प्रदान करने में असफल रहा है ।

8.8.5 ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राईसेम)

यह योजना ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार प्राप्त करने के उद्देश्य से चालू की गई थी । इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष 2 लाख ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया था । प्रति खण्ड से 40 युवकों का चयन किया जाना था जिनकी पारिवारिक आय3500 रूपये वार्षिक से कम हो । अनुसूचित जाति एवं जनजाति के युवकों को प्राथमिकता दी जानी थी । छठी योजना में 10.05 लाख के मुक़ाबले 9.4 लाख युवकों को प्रशिक्षण दिया गया ।

8.8.6 ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम

इस योजना का सूत्रपात 15 अगस्त 1983 से किया गया इसका उद्देश्य ग्रामीण भूमिहीन व्यक्तियों को रोजगार के अवसरों की मात्रा में वृद्धि करना था । इसके अन्तर्गत भूमिहीन परिवारों के कम से कम एक व्यक्ति को एक वर्ष में 100 दिन रोजगार प्रदान करना था । इसके लिए केन्द्र में 500 करोड़ रू. का बजट प्रस्तावित किया गया था जिसका क्रियान्वयन राज्यों को करना था । केन्द्रीय समिति ने 320 योजनाओं के लिए 906.6 करोड़ रू. व्यय करने हेतु स्वीकृत किये । 3600 लाख मानव दिवसों के लक्ष्य के मुकाबले 2601.8 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजन किया गया ।

8.8.7 योजनाओं का क्रियान्व्यन

इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी पंचायत राज संस्थाओं को सोंपी गई थी जबकि ये संस्थाएं अब भ्रष्टाचार के अड़े बन चुकी है । हमारे समाज में इन कार्यक्रमों का लाभ गरीबों के स्थान पर अमीरों को प्राप्त हो रहा है । तीन मूलभूत समस्याओं के कारण इन कार्यक्रमों का उचित रूप से क्रियान्वयन नहीं हो पाया है । प्रथमत: उचित कार्य का चुनाव जो कि किया जाना है, द्वितीय इस कार्यक्रम के लिए आर्थिक संसाधनों की प्राप्ति तथा तृतीय ग्रामीण कार्यक्रमों के संगठन में स्पष्टता का अभाव। आयोग ने हमेशा उन कार्यक्रमों का समर्थन किया है जो बेरोजगारों के घरों के रोजगार का सृजन करते है । ये कार्यक्रम बड़ी मात्रा में कृषि श्रमिकों को कृषि से पूर्ण रूप से अलग करते है । किन्तु केवल समस्या यह है कि कोई भी कार्यक्रम भारत में मापदण्ड पर खरा नही उतरा है ।

8.9 छिपी हुई बेरोजगारी एवं पूंजी निर्माण

भारत में छिपी हुई बेरोजगारी बहुत मात्रा में है और इस अतिरेक श्रम को कृषि क्षेत्र से हटाकर अन्य क्षेत्र में लगाया जाय जहां इसकी उत्पादकता शून्य से अधिक है तो इससे राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी जिससे देश की खपत क्षमता में वृद्धि होगी और पूंजी निर्माण में अनुभूत प्रभाव पड़ेगा ।

किन्तु इस अतिरेक श्रम को अन्य क्षेत्र में किस प्रकार लगाया जाय जहां पर पहले से ही पूंजी की मात्रा कम है । इन व्यक्तियों की सेवाएं वास्तविक पूंजी निर्माण में ली जानी चाहिए । इन व्यक्तियों को सिंचाई, पानी का निकास, नहर, रेलवे, मकान, फैक्टरियां, प्रशिक्षण योजनाओं में लगातार पूंजी का निर्माण किया जाना चाहिए ।

चूंकि बचत का छठा भाग शहरी वर्ग द्वारा किया जाता हें और इसका एक भाग ही पूंजीगत कार्यक्रमों हेतु उपलब्ध हो पाता है । राज्य आय पर एवं व्यय पर कर लगाकर अपने आय के स्रोतों को बढ़ा सकता है । कुछ में विदेशी पूंजी का भी आयात किया जा सकता है । इन व्यक्तियों के लिए भोजन की आपूर्ति हेतु वैकल्पिक व्यवस्था भी की जानी चाहिए ।

इस अतिरेक श्रम को कृषि क्षेत्र से पूंजीगत योजनाओं में स्थापित की जानी वाली लागत कृषि क्षेत्र से शांत की जा सकती है । कृषि क्षेत्र में छिपी हुई बेरोजगारी अपने आप में छिपी हुई बचत का प्रमाण है । कृषि क्षेत्र का अनुवादक श्रम उत्पादक श्रम में परिवर्तित होगा और राष्ट्रीय उत्पादन में बचत में वृद्धि कर होगी। और कृषि क्षेत्र के श्रमिकों का अनुत्पादक

उपभोग उत्पादन उपभोग में परिवर्तित होगा । नर्कसे ने यह मत दिया कि पूंजीगत योजनाओं में लगाये गये इन श्रमिकों का उपभोग व्यय कृषि क्षेत्र से प्राप्त होगा । छिपी हुई बेरोजगारी सें बचत प्राप्त करने की नर्कसे की योजना प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों एवं कीन्स के दृष्टिकोण के मध्य की स्थिति को दर्शाती है । प्रतिष्ठित माडल, जो कि पूर्ण रोजगार को मान कर चलता है । विनियोग के स्तर से वृद्धि द्वारा उपभोग स्तर में कमी की जा सकती है । जबकि कीन्सियन माडल में उपभोग व विनियोग दोनों में साथ-साथ कमी या वृद्धि की जा सकती है । नर्कसे के मॉडल में विनियोग में वृद्धि के लिए उपभोग में कमी आवश्यक नही है किन्तु एक साथ विनियोग एवं उपभोग में वृद्धि की संभावना में छिपी हुई बेरोजगारी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

8.10 सुझावात्मक टिप्पणी

यह एक वास्तविक तथ्य है कि बेरोजगारी की समस्या पर स्थायी नियंत्रण के लिए रोजगार बाजार का सुव्यवस्थित संगठन होना आवश्यक है । उद्योग में संरचनात्मक परिवर्तन या अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली में संघर्ष के कारण बेरोजगारी होने पर इसे समाप्त करने पर रोजगार बाजार की महत्वपूर्ण भूमिका है । यहां कुछ व्यावहारिक सुझाव निम्नलिखित है -

8.10.1 कृषि को पूर्णकालीन व्यवसाय बनाना

भारत में कृषि एक मौसमी व्यवसाय है अत: इसे पूर्णकालिक व्यवसाय बनाना महत्वपूर्ण है । सैद्धांतिक रूप से एक आदर्श स्थिति तब होती है जब कृषि से कृषकों, कृषि जोत एवं कृषि श्रमिकों को वर्ष पर्यंत रोजगार प्राप्त होता है । व्यवहार में यह अत्यन्त कठिन है क्योंकि कृषि प्राकृतिक दशाओं पर निर्भर रहती है । अत: सबसे अच्छा यह हो कि ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जाय कि वर्ष पर्यंत तक कृषि क्षेत्र से रोजगार प्राप्त हो सके । सिंचाई सुविधाओं द्वारा दोहरी कृषि से मौसमी बेरोजगारी में कमी आयेगी । इस सम्बन्ध में कृषि के सहायक धन्धों जैसे - मुर्गीपालन, नदियों एवं तालाबों में मछली पालन, डेयरी उद्योग, वृक्षारोपण द्वारा भी अतिरिक्त रोजगार का सृजन किया ज सकता है ।

8.10.2 सहकारी कृषि

बढ़ती हुई जनसंख्या एवं कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि को प्राप्त करना व रोजगार प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश में सहकारी कृषि को बढ़ावा दिया जाए । सामुदायिक विकास आंदोलन के द्वारा सामान्य कृषि के प्रयासों की सफलता, ऋण विपणन; वितरण प्रसारण में सहकारिता की प्रगति, ग्रामीण उद्योगों के विकास एवं भूमि सुधारों में उद्देश्यों की प्राप्ति सहकारी कृषि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

8.10.3 उद्योग एवं कृषि के मध्य सामंजस्य

एक संतुलित अर्थव्यवस्था में औद्योगिक एवं कृषि विकास में सामंजस्य होना आवश्यक है अन्यथा आर्थिक विकास की गति मंद पड़ जायगी । विकास के संदर्भ में दोनों क्षेत्र निकट रूप से जुड़े हुए है एक क्षेत्र में रोजगार का सृजन दूसरे क्षेत्र में रोजगार सृजन को बढ़ावा देता है।

8.10.4 जनसंख्या नियंत्रण एवं शिक्षा पद्धति में सुधार

जब तक जनसंख्या का नियोजन एवं नियंत्रण नहीं होगा तब तक भारत मे बेरोजगारी की समस्या का समाधान कठिन है । जिस दर से श्रम शक्ति में वृद्धि हो रही है उस दर से रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हो पा रही है । अत: यह आवश्यक है कि जनसंख्या नियंत्रण के लिए ठोस उपाय किये जाय । शिक्षित बेरोजगारों की समस्या को हल करने के लिए आवश्यक है कि भारत में शिक्षा पद्धति में परिवर्तन किये जायें । मिडिल स्तर तक शिक्षा में छूट दी जाय किन्तु सैकण्डरी के बाद शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जाना चाहिए । महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाय जिनका अकादमिक स्तर ऊँचा हों । देश की वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए मानव शक्ति का उचित तरीके से नियोजन किया जाना चाहिए ।

इकाई-9

जनसंख्या संरचना और जनशक्ति नियोजन

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन

9.2.1 व्यवसायों का विभाजन

(क) प्राथमिक

(ख) द्वितीयक

(ग) तृतीयक

9.2.2 व्यावसायिक विभाजन तथा आर्थिक विकास का संबंध

9.3 भारत में व्यावसायिक संरचना

9.3.1 पूर्व योजना काल

9.3.2 योजना काल में व्यावसायिक संरचना

9.4 व्यावसायिक ढांचे की स्थिति का विश्लेषण

9.4.1 प्राथमिक क्षेत्र का प्रभुत्व

9.4.2 द्वितीयक क्षेत्र में कुछ वृद्धि

9.4.3 तृतीयक सेवा क्षेत्र में उच्चावचन

9.5 जनसंख्या व व्यावसायिक वितरण में अपरिवर्तन शीलता के कारण

9.6 सारांश

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 उद्देश्य

जनसंख्या की विशेषताओं और आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है । जहां एक ओर नगरीकरण की प्रवृत्ति आर्थिक विकास को प्रभावित करती है वही व्यावसायिक संरचना का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है । व्यावसायिक संरचना विकास को प्रभावित भी करती है । हम यहां जनसंख्या के व्यावसायिक विभाजन अध्ययन करेंगें तथा आर्थिक विकास से उसके संबंध को भी पढ़ेंगे । आर्थिक विकास साथ साथ कृषि में लगे हुए या यों कहें प्राथमिक क्षेत्र में नियोजित जनसंख्या घटती जाती है और विकसित देशों में कार्यशील जनसंख्या का छोटा भाग ही इस क्षेत्र में लगा है । हम कुछ चुने हुए देशों में आर्थिक विकास के साथ व्यावसायिक संरचना में वाले परिवर्तन का भी अध्ययन करेंगे । भारत में व्यावसायिक संरचना पूर्व योजना और योजनाकाल में कैसी है तथा व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तनशीलता क्यों है? के बारे में भी पढ़ेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के आर्थिक विकास में प्राकृतिक साधनों का उतना ही महत्व है, जितना कि मानवीय संसाधनों अर्थात् जनसंख्या का । लेकिन प्राकृतिक संसाधन निर्जीव है जिस पर मानवीय संसाधनों के द्वारा अपनी कार्यकुशलता का योग्यता का जोहर दिखाया जाता है ।

इसीलिए मानवीय संसाधन एवं प्राकृतिक संसाधन एक ही गाड़ी के दो पहिये है, जिनका किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए होना अनिवार्य है । आर्थिक विकास को कार्यशील जनसंख्या सबसे अधिक प्रभावित करती है और यह तथ्य कि जनसंख्या व्यावसायिक दृष्टि से किस किस क्षेत्र में लगी हुई है । जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण से अर्थ कुल जनसंख्या के उस अनुपात से है जिसमें जनसंख्या विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगी है । दूसरे शब्दों में, कुल जनसंख्या विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में किस अनुपात में लगी है इसी को जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण कहते है । 1991 के आकड़ों के अनुसार भारत में कुछ श्रमिकों का 68.8 प्रतिशत कृषि में 13.5 प्रतिशत खनन व उद्योग में व शेष 17.7 प्रतिशत सेवाओं (जैसे- परिवहन, संचार, व्यापार-वाणिज्य आदि में लगा हुआ है ।

9.2 जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन

जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन आर्थिक विकास के स्तर का महत्वपूर्ण मापदण्ड है । व्यावसायिक विभाजन से आशय कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में क्रियाशील जनसंख्या की तुलनात्मक मात्रा के अध्ययन को व्यावसायिक विभाजन के अध्ययन में शामिल किया जाता है ।

9.2.1 व्यवसायों का विभाजन

व्यावसायिक क्रियाओं को मुख्य रूप से तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है:

1. **प्राथमिक वर्ग -** इस वर्ग में कृषि, वानिकी, मछली पकड़ना, जंगलों से वस्तुएं प्राप्त करना इत्यादि को शामिल किया जाता है । इन व्यवसायों को, प्राथमिक इसलिए कहा जाता, है कि इनका उत्पादन मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण है । तथा इन व्यवसायों को मुख्यत: प्रकृति के सहयोग से चलाया जाता है ।
2. **द्वितीयक अथवा मध्यमिक वर्ग -** इस वर्ग में विनिर्माण उद्योग, गैस तथा बिजली इत्यादि के उत्पादन को शामिल किया जाता है । कभी-कभी खनिज व्यवसायों को भी इसी वर्ग में शामिल कर लिया जाता है ।
3. **तृतीयक वर्ग -** इस वर्ग में प्राथमिक और द्वितीयक वर्ग की क्रियाओं को सहायता देने वाले व्यवसायों को शामिल किया जाता है जैसे - यातायात, बैंकिंग बीमा, वित्त प्रबन्ध इत्यादि ।

सरल शब्दों में इन तीनों वर्गो को क्रमश : कृषि क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र तथा सेवा क्षेत्र भी कहा जा सकता है ।

9.2.2 व्यावसायिक विभाजन एवं आर्थिक विकास का सम्बन्ध

कार्यशील जनसंख्या के व्यावसायिक विभाजन एवं आर्थिक विकास के स्तर में घनिष्ठ सम्बन्ध है । आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कार्यशील जनसंख्या का सर्वाधिक अनुपात प्राथमिक क्षेत्र में होता है । ऐसा होने के तीन मुख्य कारण हैं- प्रथम, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अर्थात अल्प-विकसित देशों में प्रति व्यक्ति खाद्य सामग्री का उत्पादन बहुत हम होता है अत: बहुत अधिक संख्या में लोग भोजन की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति

करने के लिए कच्चे पदार्थो (कृषि उपज अथवा खनिज का निर्यात करते है, जिसके कारण वहाँ कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग प्राथमिक उद्योगों में लगा रहता है। तीसरे, गैर कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का अभाव होने के कारण इन देशों में लोगों. को मजदूरी में कृषि क्षेत्रों में लगा रहना पड़ता है।

ज्यों-ज्यों आर्थिक विकास होता जाता है, कृषि क्षेत्र में उत्पादन उत्पादकता में वृद्धि होने लगती है और श्रमिक इस क्षेत्र से निकलकर निर्माण उद्योगों की ओर जाने लगते है। निर्माण उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि का एक कारण यह भी होता है कि विकास के साथ लोगों की आय बढ़ती है आय बढ़ने के साथ प्राथमिक उत्पादनों की मांग कम अनुपात में बढ़ती है। लेकिन निर्माणी उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की भाग में तेजी से बिका वृद्धि होती है। निर्माण, क्षेत्र में वृद्धि के साथ ही बैंकिंग बीमा, परिवहन इत्यादि क्षेत्रों का तेजी से विकास होता है और इस सम्बन्ध में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ता चला जाता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्राथमिक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में कमी होने तथा द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि की प्रकिया की गति बहुत धीमी रहती है।

व्यावसायिक संरचना और आर्थिक विकास के सम्बन्ध में पुष्टि करते हुए कालविन क्लार्क ने अपनी पुस्तक में लिखा है - "प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ऊँचा औसत स्तर सदैव तृतीयक उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या के बड़े अनुपात में लगे रहने से सह "सम्बन्धित रहता है (जबकि) प्रति व्यक्ति निम्न वास्तविक आय सदैव तृतीयक उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या के कम अनुपात तथा प्राथमिक उद्योगों से कार्यशील जनसंख्या के अधिक अनुपात से सह सम्बन्धित होती है।" इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए ए०बी०जी० फिशर ने लिखा है, "हम यह कह सकते है कि प्रत्येक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में रोजगार और विनियोग का मूल प्राथमिक क्षेत्र से धीरे-धीरे द्वितीयक में और उससे भी अधिक तृतीयक क्षेत्र में निरन्तर स्थानान्तरण होता रहता हैं।" संरचना एवं आर्थिक विकास के सम्बन्ध को निम्नलिखित ऐतिहासिक एवं सांतत्यक तथ्यों से भी स्पष्ट किया जा सकता है:

कुछ चुने हुए देशों में आर्थिक विकास के साथ व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन हुए है। यह स्थिति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है

तालिका 9.1

देश	वर्ष	कार्यशील जनसंख्या का वितरण (प्रति में)		
		प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक
संयुक्त राज्य अमेरिका	1965	5	35	60
	1993	2	35	65
ब्रिटेन	1965	3	47	50
	1980	3	38	59
जापान	1965	26	32	42
	1980	11	34	55

भारत	1965	73	12	15
	1980	70	13	17

उपर्युक्त तालिका 9.1 से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे इन देशों में आर्थिक विकास होता गया, प्राथमिक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात कम होता गया और द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ता गया। वास्तव में कृषि पर आधारित सक्रिय जनसंख्या तथा सूची प्रति व्यक्ति आय में ऋणात्मक सह-सम्बन्धी है।

9.3 भारत में व्यावसायिक संरचना

भारत में व्यावसायिक संरचना को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : (1) पूर्व योजनाकाल में व्यावसायिक संरचना तथा ('2) योजनाकाल में व्यावसायिक संरचना।

9.3.1 पूर्व योजना काल में व्यावसायिक संरचना

पूर्व योजनाकाल में व्यावसायिक संरचना की स्थिति निम्न प्रकार रही:

तालिका 9.2

देश क्षेत्र	कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत				
	1901	1911	1921	1931	1951
प्राथमिक क्षेत्र	71.76	74.76	75.19	74.75	72.12
द्वितीय क्षेत्र	12.61	11.23	10.41	10.21	10.62
तृतीयक क्षेत्र	15.63	14.01	13.50	15.04	17.25

तालिका 9.2 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सन् 1901 और 1921 की अवधि में कार्यशील जनसंख्या का प्राथमिक क्षेत्र में अनुपात निरन्तर बढ़ता गया है। इसका मुख्य कारण तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की वाणिज्यिक नीति थी, जिसके अन्तर्गत भारत के कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं को इंग्लैंड में मशीनों द्वारा निर्मित वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी पड़ी। फलस्वरूप कुटीर और लघु उद्योगों का पतन होने लगा और उन उद्योगों में लगी जनसंख्या मजबूरी में अपनी आजीविका पूर्ति के लिए कृषि पर आश्रित होने लगी। द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में कमी आने का करण यह भी रहा कि कृषि क्षेत्र जीवन में निर्वाह योग्य उत्पादन करने वाला ही क्षेत्र था। इसके विपणन योग्य अतिरेक बहुत कम रहता था, जिससे औद्योगिक वस्तुओं का मांग पक्ष कमजोर रहता था।

सन् 1951 में प्राथमिक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात पुन: लगभग 1901 के अनुपात के स्तर पर आ गया। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जहां एक ओर द्वितीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात सन् 1921 से 1961 के मध्य लगभग स्थैतिक रहा है वहां तृतीयक क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई है। कुल मिलाकर पूर्व योजनाकाल में व्यावसायिक संरचना की स्थिति स्थैतिक रही है।

9.3.2 योजना काल में व्यावसायिक संरचना: योजना काल में व्यावसायिक संरचना की स्थिति को निम्न तालिका 9.3 द्वारा दर्शाया जा सकता है:

तालिका 9.3

क्षेत्र	कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत				
	1951	1961	1971	1981	1991
(अ) प्राथमिक क्षेत्र	72.1	71.8	72.1	58.8	66.8
1-कृषक	50.0	52.8	43.4	41.6	38.4
2-खेतिहर मजदूर	19.7	16.7	26.3	24.9	26.4
3-वन, पशु-पालन इत्यादि	2.4	253	2.4	2.3	1.9
(ब) द्वितीयक क्षेत्र	10.7	12.2	11.2	13.5	12.7
1-खनन	0.6	0.5	0.5	0.6	0.6
2-लघु एवं बडे उद्योग	9.0	10.6	9.5	11.3	10.2
3-निर्माण कार्य	1.1	1.1	1.2	1.6	1.9
(स) तृतीयक क्षेत्र	17.2	16.0	16.7	17.7	20.5
1-व्यापार एवं वाणिज्य	5.2	4.0	5.6	6.2	7.5
2-परिवहन एवं संचार	1.5	1.5	2.6	2.7	2.6
3-अन्य सेवाएं	10.5	10.4	8.7	8.8	10.2
योग	100.0	100.00	100.0	100.0	100.0

9.4 व्यावसायिक ढांचे की स्थिति का विश्लेषण

9.4.1 प्राथमिक क्षेत्र का प्रभुत्व

उपर्युक्त समंकों से स्पष्ट है कि देश में लगभग दो तिहाई कार्यशील जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित है, जो इस तथ्य का प्रतीक है कि भारत में व्यावसायिक ढांचे की स्थिति अर्द्ध-विकसित या असन्तुलित अर्थ व्यवस्था पर आश्रित है। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र में इतनी अधिक कार्यशील जनसंख्या लगी होने पर भी देश कृषि उत्पादन के सभी क्षेत्रों में आत्म निर्भर नहीं है, जबकि इसके विपरीत अमेरिका में कुल 4 प्रतिशत श्रमिक ही कृषि कार्य में लगे है और वे देश के लिए आवश्यक खाद्यान्न ही उत्पन्न नहीं कर लेते वरन पर्याप्त मात्रा में विदेशों को निर्यात भी करते है।

प्राथमिक क्षेत्र के उपवर्गों में सन् 1951 में 50 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषक के रूप में थी, जो सन 1961 में 52.6 प्रतिशत हो गयी। इसका मुख्य कारण इसी अवधि में जमींदारी उन्मूलन के कारण अनेक व्यक्तियों को नवीन भूमि स्वामित्व प्राप्त होना था, लेकिन इसके पश्चात कृषकों की संख्या घटकर 1971 में 43:4 प्रतिशत और 1991 में 38.4 प्रतिशत रह गयी। दूसरी ओर खेतिहर मजदूरों की संख्या 19.7 प्रतिशत से बढ़कर 26.4 प्रतिशत हो गयी। इस तथ्य के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम इस अवधि में बड़े पैमाने पर कृषक किरायेदारों को कानूनी अथवा गैर कानूनी ढंग से भूमि से बेदखल किया गया। दूसरे, सरकार की अनेक योजनाओं लाभ उठाने की दृष्टि मे कृषकों द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था विकसित की गई, कि

वे अपने को खेतिहर मजदूर बता सकें । कृषक और खेतिहर मजदूरों के अनुपातों में उच्चावचन होने पर भी कुल मिलाकर इन दोनों वर्गो का प्रतिशत यह स्पष्ट करता है कि योजना काल में हम कार्यशील जनसंख्या को कृषि से हटाकर अन्य क्षेत्रों की ओर ले जाने में सफल नहीं हो पाये है ।

9.4.2 द्वितीयक क्षेत्र में कुछ वृद्धि

सन 1951 में देश की कार्यशील जनसंख्या का 10.7 प्रतिशत भाग द्वितीयक क्षेत्र में लगा था, जो बढ़कर सन 1961 में 12.2 प्रतिशत हो गया, लेकिन 1971 में घटकर 11.2 प्रतिशत ही रह गया । सन 1961 से 1971 के मध्य अनुपात घटने का मुख्य कारण यह था कि उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या का भाग 10.6 प्रतिशत से घटकर 9.5 प्रतिशत रह गया, क्योंकि इस अवधि में आधार भूत एवं पूँजीगत उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दिया गया, जो पूंजी प्रधान होते है । यह सन्तोष का विषय है कि 1981 में उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या का भाग 11.3 प्रतिशत हो जाने से द्वितीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का भाग 13.5 प्रतिशत हो गया सन् 1991 में उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या का विषय है कि 1981 में उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या का भाग 11.3 प्रतिशत हो जाने से द्वितीय क्षेत्र में कार्य जनसंख्या का भाग 13.5 प्रतिशत हो गया सन् 1991 में उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात घटकर 10.2 प्रतिशत रह जाने पर द्वितीय क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत भी 12.2 प्रतिशत रह गया । द्वितीय क्षेत्र में खनन वर्ग में कार्यशील जनसंख्या का भाग 0.6 प्रतिशत के स्तर पर लगभग स्थिर हो गया: लेकिन निर्माण कार्यो में 1.1 प्रतिशत से बढ़ते हुए 1.9 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गया है । अत: हमें यह स्वीकार करना होगा कि योजनाकाल में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताओं प्राप्त करने पर भी द्वितीयक क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के भाग में मामूली वृद्धि ही हो पायी है।

9.4.3 तृतीयक अथवा सेवा क्षेत्र में उच्चावचन

सेवा क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में कोई निश्चित प्रवृति नहीं रहीं है । सन् 1951 में इस क्षेत्र का भाग 17.2 प्रतिशत था, जो 1961 में घटकर 16 प्रतिशत रह गया । सन् 1971 में यह बढ़कर 16.7 प्रतिशत सन 1981 में 17.7 प्रतिशत तथा 1991 में 20.5 प्रतिशत हो गया । लेकिन इस वर्ग में यह प्रवृति अच्छी है कि परिवहन और संचार में कार्यशील जनसंख्या का भाग सन् 1951 में 1.5 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 2.8 प्रतिशत हो. गया अर्थात् देश में विकास के लिए आधारभूत संरचना के रूप में परिवहन एवं संचार सेवाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ है । दूसरी ओर अन्य सेवाओं में यह अनुपात 10.5. प्रतिशत से घटकर 10.2 प्रतिशत रह गया है । अन्य सेवाओं में प्रशासनिक सेवायें, सुरक्षा सेवायें इत्यादि शामिल होती है, जिन्हें सामान्य रूप से अनुत्पादक सेवायें माना जाता है ।

देश में व्यावसायिक ढांचे का क्षेत्रवार अध्ययन करने के उपरान्त यह स्पष्ट है कि कुल मिलाकर यह लगभग स्थिर और गतिहीन रहा है और नियोजन के लगभग 50 वर्ष होने पर भी यह अर्थव्यवस्था कोई विकसित स्थिति में दर्शाता है ।

9.5 जनसंख्या व व्यावसायिक वितरण में अपरिवर्तनशीलता के कारण

ऊपर दिए गए विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के अलावा भारत में व्यावसायिक संरचना पिछले कुछ दशकों में शील रही है । यह बता पाना भी कठिन है कि इसमें आमूल परिवर्तन कब तक हो पाऐंगे । भारत अब गतिहीनता की स्थिति में नहीं है । विभिन्न क्षेत्रों में असफलताओं के बावजूद योजनाओं के दौरान उसने शुद्ध राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि पाने में सफलता पाई है । परन्तु फिर भी व्यावसायिक सरंचना लगभग वही चली रही है जैसा कि ब्रिटिश काल के अंतिम चरण में थी जब आर्थिक गति हीनता कई स्थिति पाई जाती थी । आइए अब इस बात गर विचार करें कि व्यावसायिक संरचना अपरिवर्तनशीलता के क्या कारण रहे है?

विभिन्न विकसित देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनमें व्यावसायिक संरचना में जो आमूल परिवर्तन उसके तीन मुख्य कारण थे- जनसंख्या वृद्धि की दर में तेज कमी, कृषि में श्रम में तेज वृद्धि तथा उद्योगों का तीव्र विकास । पिछले दशकों में भारत में इनमें से कोई कारक मौजूद नहीं था । जहां तक जनसंख्या वृद्धि दर का प्रश्न है, दूसरी योजना के समय योजना आयोग ने यह अनुमान लगाया था कि जनसंख्या वृद्धि की दर 2.0 प्रतिशत प्रति वर्ष से कम हो जायेगी जिससे 1975-76 तक कृषि पर केवल 60 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या निर्भर होगी । परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ । परिवार के तमाम कार्यक्रमों के बावजूद जनसंख्या वृद्धि की दर 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष अधिक बनी रही ।

दूसरे, भारतीय कृषि का अधिकांश भाग आज भी परम्परागत है और उसमें श्रम की उत्पादकता काफी कम है । व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन लाने के दृष्टिकोण से कृषि में श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जाना आवश्यक है क्योंकि केवल इसी स्थिति में अतिरिक्त श्रम शक्ति को वैकल्पिक व्यवसायों में भेजा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में उत्पादकता को बढ़ाया जाना आवश्यक से इस क्षेत्र में ओधोगिकी वस्तुओं की मांग में तेजी से वृद्धि हो सकेगी जिससे औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा । क्योंकि भारत में कृषि में श्रम की उत्पादकता कम बनी रही है इसलिए न तो इस क्षेत्र में लगे लोग अन्य व्यवसायों की ओर जा पाए है और न ही औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक व्यापक बाजार उपलब्ध हो सके है । कृषि में वृद्धि लाने के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि भूमि सुधारों को कड़ाई से किया जाए और दूरवासी जमींदारों से जमीन लेकर काश्तकारों के बीच बांट दी जाए । दूसरे,नई उत्पादन तकनीकों के प्रसार को और तेज किया जाए । अभी तक इन तकनिकों से केवल कुछ राज्यों को ही लाभ हुआ है और केवल गेहूं की उत्पादकता में ही वृद्धि हुई है । आवश्यक है कि इन तकनीकी को अन्य राज्यों तक पहुंचाया जाए । तथा अन्य फसलों के लिए अपनाया जाए ।

अत: आयोजन के शुरू से ही औद्योगीकरण की गति धीमी है और 1965 से 1985 के बीच तो औद्योगिक क्षेत्र में गतिहीनता भी बनी रही जैसा कि ऊपर कहा गया है इस गतिहीनता का मुख्य कारण यह था कि कृषि क्षेत्र में उत्पादकता का स्तर कम होने के कारण औद्योगिक वस्तुओं के बाजार सीमित थे । इसके अतिरिक्त आर्थिक संवृद्धि से लाभों का वितरण उचित नहीं हो पाया । गरीब जनता की संवृद्धि से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ जबकि सारा फायदा कुछ चुने हुए विशिष्ट वर्गों को ही हुआ । इसलिए उन्हीं उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा जो इस वर्ग की मांग की पूर्ति के लिए आवश्यक थे । अन्य उद्योगों को विकास असंतोषजनक था । भारी मशीनरी, मशीन टूल्स, इस्पात व अन्य औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की विकास की दर भी कम रही क्योंकि धीमी गति से विकास करें रहे निजी क्षेत्र के उद्यम उनके उत्पादन के लिए आवश्यक मांग पैदा नहीं कर पाए । औद्योगिक गतिहीनता के कारण 1965 से 1985 के दो दशकों के दौरान उद्योगों में जो भारी निवेश किए गए उनसे केवल उत्पादन क्षमता ही बढ़ी परन्तु रोजगार अवसरों में विशेष वृद्धि नहीं हुई । इसलिए व्यावसायिक संरचना में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाए ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पश्चिमी यूरोप के देशों में और अभी हाल में जापान में औद्योगिक विकास को निर्यात-प्रसार से काफी प्रोत्साहन मिला । परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में विकसित देशों की कड़ी स्पर्धा के कारण भारत के लिए यह मार्ग भी सुगम नहीं है । इन परिस्थितियों में अधिक उपयुक्त नीति यही होती है कि सरकार औद्योगिक वस्तुओं के घरेलू बाजार को बढ़ाने का प्रयास करती । यह तभी सम्भव हो सकता है यदि एक ओर उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने का प्रयास करती । यह तभी सम्भव हो सकता था यदि एक और उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने के सतत प्रयास किए जाते और दूसरी ओर राष्ट्रीय आय का पुन वितरण निर्धन आय-वर्गों के पक्ष में किया जाता । इस नीति से औद्योगिक वस्तुओं और सेवाओं के बाजार का प्रसार होता जिसके द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर पैदा होते ।

जे० कृष्णामूर्ति के अनुसार 1971 से 1981 के बीच कार्यकारी जनसंख्या का कृषि से अन्य व्यवसायों की ओर कुछ स्थानांतरण अवश्य हुआ है । यदि इस प्रकार का स्थानान्तरण जारी रहता है तो हो सकता है कि इस शताब्दी के अंत तक व्यावसायिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाएं । परन्तु इस स्थानान्तरण के पीछे कौन से कारक थे यह बता पाना कठिन है? यदि कृषि से लोग इसलिए हट रहे हों कि औद्योगिक विकास की गति तेज हो रही है तो यह एक स्वस्थ सूचक है । परन्तु यदि कृषि से स्थानान्तरण इसलिए हो रहा हो कि कृषि क्षेत्र में प्रतिकूल दशाएं पाई जाती हों (जैसा कि छोटे और सीमान्त किसानों की जीविका उपार्जन की क्षमता न रखना या भूमि से बेदखल किया जाना) तो फिर इस स्थिति को कोई अच्छा सूचक नहीं माना जा सकता ।

9.6 सारांश

इसमें कोई सन्देह नहीं कि योजनाकाल में देश में व्यावसायिक ढांचा लगभग स्थिर रहा है । और कृषि में उत्पादकता का स्तर ऊँचा उठने तथा अर्थव्यवस्था को विकसित स्वरूप की ओर ले जाने की दृष्टि से इस ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता है अर्थात कृषि पर कार्यशील

जनसंख्या का प्रतिशत कम हो तथा उद्योग और सेवा क्षेत्र में बढ़े । इसके लिए जनसंख्या वृद्धि की दर को नियन्त्रित करना होगा, औद्योगिक क्षेत्र में ग्रामीण, कुटीर और लघु उद्योगों को और अधिक प्रोत्साहन देना होगा तथा तृतीयक क्षेत्र में रोजगार के नवीन और अधिक क्षेत्र विकसित करने होंगे, लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि जनसंख्या की तिर्व वृद्धि के सन्दर्भ में निकट भविष्य में व्यावसायिक संरचना में किसी उल्लेखनीय परिवर्तन की आशा नहीं कर सकते ।

जनसंख्या के व्यवसायिक वितरण सें आशय कुल जनसंख्या के उस अनुपात से है जिसमें जनसंख्या विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगी है । यदि किसी देश की कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा प्रतिशत कृषि पर निर्भर रहता है तो वह देश आर्थिक विकास की निम्न अवस्था में माना जाता है । इस अवस्था में कृषि अनेक समस्याओं से ग्रस्त और पिछड़ी अवस्था में होती है । अत: अधिकांश जनसंख्या के लगे होने पर भी उत्पादन विकसित देशों की तुलना में कम ही रहता है । अन्य क्षेत्रों में रोजगार सुलभ न हो पाने के कारण जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित रहती है । ज्यों ज्यों आर्थिक विकास होता है जाता है कृषि क्षेत्र में, उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि होने है और श्रमिक इस क्षेत्र से निकलकर निर्माणी उद्योगों की ओर जाने लगते है । हम भारत की व्यावसायिक संरचना की तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और जापान व्यवसायिक संरचना के साथ करें तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि इन देशों की के लगभग जनसंख्या तृतीयक क्षेत्रों से रोजी रोटी प्राप्त कर रही है ।

भारत में व्यवसायिक संरचना में पूर्व योजना काल तथा योजना काल में स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है आज भी अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र में ही रोजगार प्राप्त कर रही है ।

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण की विवेचना कीजिए?
2. योजनाबद्ध आर्थिक विकास के बावजूद भारत के व्यावसायिक ढांचे? कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ है । इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

इकाई- 10

भारतीय वैज्ञानिक पुनर्गठन और स्वचालिता के संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन एवं रोजगार

विषय सूची

10.0 उद्देश्य

10.1 तकनीकी का अर्थ एवं अवधारणा

10.2 वैज्ञानिक पुनर्गठन (Rationalisation) का अर्थ एवं अवधारणा

10.3 स्वचालिता(Automation) का अर्थ एवं अवधारणा

10.4 भारत में रोजगार की स्थिति (ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में)

10.5 तकनीकी परिवर्तन एवं रोजगार

10.5.1 सकारात्मक प्रभाव

10.5.2 नकारात्मक प्रभाव

10.6 वैज्ञानिक पुनर्गठन का प्रभाव

10.7 स्वचालित का प्रभाव

10.8 सारांश

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

आज विश्व एल्विन टायलर (Alvin Toffler's Thirdwave) की थर्डवेव में से गुजर रहा है। उसकी प्रथम लहर कृषिकरण की लहर थी, जिसका प्रारम्भ हजारों की पहले हुआ था। जहां शिकारी समाप्त हो गये थे तथा मछुआरे एवं चरवाहे कृषक बन गये थे एवं गांव की स्थापना हुयी। टॉफलर ने इस स्थिति को सभ्यता के उद्भव के साथ जोड़ा था। द्वितीय लहर, औद्यौगिक लहर थी, जिसका प्रारम्भ लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ था। मशीनें, वृहद उत्पादन, खपत, जनसंचार एवं जनशिक्षा आदि आधारित, एक उद्योग आधारित जीवन शैली प्रारम्भ हुयी। प्राचीन कृषक सभ्यता का स्थान उद्योग आधारित जीवन शैली ने ले लिया। प्रथम लहर कृषि क्रांति लेकर आयी तथा द्वितीय लहर औद्यौगिक क्रांति लेकर आयी।

तदुपरान्त, तृतीय लहर प्रारम्भ हुयी, जो कि उपर्युक्त दोनों लहरों से प्रभावित रही। इस लहर के फलस्वरूप अंतरिक्ष युग, सूचनायुग, इलैक्ट्रानिक युग आदि का प्रादुर्भाव हुआ। बेजेजिन्सको ने कहा है कि आज हम तकनीकी युग में रह रहे है। प्रसिद्ध अर्थशस्त्रि डेनियल वेल ने व्याख्या करते हुये लिखा कि "एक उत्तर औद्योगिक समाज का प्रादुर्भाव हो रहा है।" सोवियत भविष्यवैत्ताओ ने एस.टी.आर. (वैज्ञानिक तकनीक क्रांति) की बात की है। एल्विन टॉफलर सुपर औद्योगिक समाज कें प्रारम्भ का अग्रदूत रहा है। टालकर के अनुसार "थर्ड वेव" ने उच्च तकनीकी प्रारम्भ की है।

10.1 तकनीकी का अर्थ एवं अवधारणा -

तकनीकी को समान्यत : मशीनों एवं प्रक्रियाओं से सम्बंधित ज्ञान के संदर्भ में जाना जाता है । व्यापक अर्थ में इसका सम्बन्ध कौशलयुक्त ज्ञान एवं प्रक्रिया से होता है । इसमें चीजों के प्रयोग एवं उपयोगी चाजों को बनाने की दक्षता शामिल की जाती है । इस प्रकार इनकी में गैर बाजारी गतिविधियों एवं बाजारी गतिविधियों दोनों में ही प्रयोग में ली जाने वाली पद्धतियों को सम्मिलित किया जाता है । इसके अन्तर्गत क्या उत्पादन करना है एवं कैसे उत्पादन करना है की प्रकृति तथा विशिष्टीकरण को सम्मलित किया जाता है । इसके क्षेत्र मे प्रबन्धकीय एवं विपणन तकनीकी और उत्पादन से जुड़ी हुयी तकनीकों को भी लिया जाता है । तकनीक के अन्तर्गत सेवा प्रशासन, शिक्षा, बैंकिंग एवं कानून के साथ ही निर्माण एवं कृषि को भी किया जा सकता है । किसी भी देश की उत्पादन इकाइयों के संगठन, उनके स्वामित्व एंव से जुड़ी हुयी चीजों को भी तकनीक के पूर्ण विवेचन में सम्मलित किया जा सकता है ।

तकनीकी में क्रिया - विधियों की एक श्रृंखला होती है । क्रिया विधियों का विकास मूलत: एक ऐतिहासिक प्रक्रिया होती है जिसके अन्तर्गत एक क्रिया विधि अपनी विशेष के साथ एक समय विशेष की आर्थिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप अन्य क्रिया विधि का स्थान ले लेती है । आज हमारे यहां जो अधिकांश तकनीकी प्रयोग किये जा रहे है, उसका विकास पश्चिमी देशों, में पहले विगत दो शताब्दियों के दौरान किया जा चुका है । पश्चिमी देशों में पहले जो तकनीकी का प्रयोग हो चुका है उससे भिन्न तकनीक अपनाकर उसे आधुनिक तकनीक का नाम दिया जा रहा है । तथा वे तकनीक जिसे कि परम्परागत तकनीक के नाम से पुकारा जाता है वह आज बहुत से अविकसित एवं विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र एवं लघु उद्योग में काम में ली जा रही है ।

10.2 वैज्ञानिक पुनर्गठन (Rationalsation) का अर्थ एवं अवधारणा -

वैज्ञानिक पुनर्गठन का तात्पर्य सभी गतिविधियों में विवेक का प्रयोग करना है । इस प्रकार से इसके अन्तर्गत एक निश्चित सुधार अपेक्षित होता है । यह अच्छी प्रबन्धकीय नीतियों, अच्छी उत्पादन पद्धति, अच्छी कार्य प्रणाली, अच्छी कच्चा माल, अच्छा स्तर एवं विशिष्टीकरण, अच्छे प्रशिक्षित श्रमिकों, अच्छी मशीनों एवं उपकरणों, अच्छी कार्यदशाओं, आदि के द्वारा संभव बन पाता है । भारत में औद्योगिक विकास के लिए इस तरह का विवेकीकरण एक ऐसा सचेत आन्दोलन है जिसका लक्ष्य रद्दी एवं अक्षमता को समाप्त करना एवं वैज्ञानिकता और तार्किकता को बढ़ाने का लक्ष्य होता है । इस हेतू एक उद्योग के अन्तर्गत क़ार्यरत विभिन्न इकाईयों के संयुक्त एवं सामूहिक प्रयास। की अपेक्षा की जाती है । इसका यह है कि सामग्री के न्यूनतम रद्दी करण हेतु विभिन्न रीतियों, कार्य विधियों एवं संगठनों निर्धारण किया जाये । इसमें निम्नलिखित कारक सम्मलित होते है -

1. वैज्ञानिक संगठन एवं श्रम ।
2. प्रक्रियाओं का सरलीकरण और सामग्री एवं उत्पादों का स्तरीकरण ।
3. परिवहन एवं विपणन में सुधार ।

इसका सम्बन्ध कम्पनी एवं उद्योग के मध्य सम्बन्ध के पुनर्गठन से होता है । इसमें एक कम्पनी की आन्तरिक कार्य प्रणाली भी सम्मलित की जा सकती है ।

विवेकीकरण के अन्तर्गत मुख्यत : दो प्रमुख शाखाओं पर बल दिया जाता है।

1. प्रत्येक इकाई में वैज्ञानिक प्रबन्ध ।
2. उद्योग में व्यापार संयुक्तीकरण द्वारा संयुक्त कार्य । विवेकीकरण के अन्तर्गत केन्द्रीय विचार के दो आयाम होते है

1. उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियों एवं कार्य विधियों का सचेत पुर्नगठन एवं विवेकीकरण ।
2. कुव्यवस्था एवं आर्थिक असंतुलन में कमी ताकि आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना की जा सके ।

विवेकीकरण में पश्चिमी प्रयास चार दिशाओं में रहे है -

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध के माध्यम द्वारा उत्पादन की लागत में रद्दी माल को समाप्त किया जाये।
2. औद्योगिक संयुक्तीकरण आन्दोलन के द्वारा प्रतियोगिता को समाप्त किया जाये ।
3. वाणिज्यिक संयुक्तीकरण के द्वारा -

   (अ) निर्गत (ब) कीमत (स) बाजार, के नियंत्रण हेतु उत्पादकों के मध्य निकट सहयोग स्थापित किया जाये ।
4. अतिवादी व्यक्तिवाद की बुराईयों से बचा जाये । एकाधिकार की बुराईयों से दूर रहा जाये अतिवादी व्यक्तिवाद को समाप्त किया जाये ।

इस प्रकार के प्रयासों को विवेकीकरण या वैज्ञानिक पुर्नगठन कहा जाता है । इसका प्रारम्भ प्रथमत: उत्पादन पक्ष से होता है तथा तदुपरान्त धीर-धीरे यह एक संयुक्त आन्दोलन के रूप में फैल जाता है । कालान्तर में यह वाणिज्यिक संयुक्तीकरण के रूप में वितरण एवं विपणन की मशीनरी तक फैल जाता है । इसके बाद यह कार्यालय, कार्य एवं प्रशासन अर्थात प्रबन्धकीय विवेकीकरण को भी प्रभावित करता है । समय के साथ विवेकीकरण न केवल वित्तीय स्रोतों में आता है वस्तु पर मानव संसाधनों में भी प्रवेश कर जाना है ।

विवेकीकरण का प्रयोग तीन चरणों मे होता है -

1. योजना - इसमें एकत्रीकरण या संयुक्तीकरण तथा निश्चित बाजार सर्वेक्षणों को सम्मिलित किया जाता है ।
2. स्तरीकरण एवं सरलीकरण के द्वारा उपकरणों एवं मशीनों का पुर्नगठन एवं पुनर्व्यवस्थापन।
3. विभिन्न भागों एवं उपभागों के द्वारा विकास करना । इसके अन्तर्गत अधिकतम मशीनीकरण या स्वचालित को सम्मिलित किया गया है ।

इस प्रकार विवेकीकरण के आदर्श के अन्तर्गत व्यापार को ही महत्व दिया जाता है । किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इसमें केवल निजी लाभ एवं तकनीकी आर्थिक पक्ष ही जुड़े हुये नही होते । विवेकीकरण की प्रक्रिया में कर्मचारी का सन्तोष एवं. कल्याण, उपभोक्ता आवश्यकताएँ जैसे सामाजिक पक्ष भी जुड़े हुये होते है । साथ ही इसमें आर्थिक स्थिरता की आवश्यकता एवं उन जीवन स्तर भी जुड़ा होता है । उद्योग में मानवीय पक्षों से सम्बंधित

सामाजिक पक्षों को अगर उचित स्थान नहीं दिया जात है तो इसका तात्पर्य व्यापारिक गतिविधियों का छद्म विवेकीकरण होगा ।

10.3 स्वचालिता (Automation) का अर्थ एवं अवधारणा -

यांत्रिकीकरण का तात्पर्य मानव शक्ति का स्थान यांत्रिकी शक्ति के ले लेने से होता है। जिसमें मशीनी शक्ति द्वारा नियंत्रित हो जाता है । स्वचालिता इससे भी एक कदम आगे है। इसमें मानव नियंत्रण: पूर्णत विलोप हो जाता है। मशीनीकरण की भांति शारीरिक एवं मानवीय शक्ति का स्थान मशीनें ले लेती है । स्वचालित का लक्ष्य मानव की मानसिक गतिविधियों विशेषकर, मानसिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया को भी नियंत्रित करना होता है ।

स्वचालित (Automation) शब्द का प्रथम प्रयोग फोर्ड मोटर कम्पनी के डी. एस. वार्डर (Warder) ने 1946 में मशीन को परिभाषित करते हुये किया था । तदुपरान्त फोर्ड द्वारा इसका प्रयोग इंजनों के स्वाभाविक चलन हेतु किया जाने लगा । साथ ही इसका प्रयोग मशीनों के स्थानान्तरण तथा प्रेस द्वारा मुद्रित छाप को मिटाने के लिये किया जानें लगा । फोर्ड ने पहली बार अप्रेल, 1947 में ऑटोमेशन विभाग की स्थापना की तथा इसमें उत्पादक में विशेषज्ञ अभियंताओं को नियुक्त किया जिन्हें कि ऑटोमेशन अभियंता कहा जाने लगा । अमेरिकन मैकनिष्ट ने 21 अक्टूबर 1948 को पहली बार स्वचालित शब्द को छापा । इसने फोर्ड ऑटोमेशन ग्रुप के प्रयासों का भी विवेचन किया । स्वचालिता शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा गया कि "यह तकनीकी प्रक्रिया को प्रयोग करने की वह कला है जिसमें कार्य को बड़ी मशीनों की सहायता से निष्पादित किया जाता है तथा इस कार्य निष्पादन की प्रक्रियात्मकता तथा निष्पादता और इसके मध्य के प्रक्रिया के बीच में एक निश्चित समय श्रृंखला होती है । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि एक केन्द्र बिन्दु पुश बटन के जरिये सम्पूर्ण कार्य प्रक्रिया संचालित की जा सके ।"

एम.आई.टी के रॉवेर्ट वीनर द्वारा 1950 में प्रकाशित "ह्यूमन यूज ऑफ ह्यूमन विड्गस" के साथ स्वचालिता शब्द का एक नया अर्थ सामने आया । वीनर को यह श्रेय जाता है कि उसने तकनीकी उन्नयन के नये युग में ऐसा उपकरण बनाया जो एक ट्यब के रूप में सामने आया वह पूर्णत: स्वनियंत्रित कार्य विधि पर आधारित था । जॉन ली लॉड ने स्वचालिता को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "स्वचालित उद्योग के विकास का तात्पर्य, स्वचालित प्रक्रिया तथा चालों के बनने की प्रक्रिया की स्वचालिता से होता है । " अत: स्वचालिता एक चिन्तन का एक नया रूप है जो कि उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया से जुड़ा हुआ होता है । आज स्वचालिता का तात्पर्य मशीनों की स्वचालित, नियंत्रित कार्य विधि से होता है । इसको एक तकनीकी पक्ष के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत इलैक्ट्रिनिक कम्प्यूटर, स्थानान्तरित युक्तियों आदि को भी सम्मलित किया जा सकता है ।

10.4 भारत में रोजगार की स्थिति (ग्रामीण एवं शहरी)

यद्यपि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य श्रम शक्ति के विकास की अपेक्षा रोजगार अवसरों को तेजी से बढ़ाना रहा है । किन्तु वास्तव में नियोजन प्रक्रिया के प्रारम्भ से ही बेरोजगारी में तेजी से वृद्धि हुयी है । बेरोजगारों के विकास की गति एवं आकार दोनों ही बड़

रहे हैं । प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में बेरोजगारी का प्रतिशत 2.9 प्रतिशत ही था । किन्तु यह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में बढकर 3.6 प्रतिशत एवं तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत में 4.5 प्रतिशत हो गया । तदुपरान्त वार्षिक योजना के तीन वर्ष (1966-1969) के दौरान यह प्रतिशत 9.6 प्रतिशत हो गया ।

छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 12 मिलियन के लगभग थी । जिसमें से 3.47 मिलियन शिक्षित (मैट्रिक एवं इससे ऊपर के) बेरोजगार थे । योजना में यह अनुमान लगाया गया कि श्रम शक्ति में 1980-1985 के दौरान लगभग 34 मिलियन नये बेरोजगार और जुड़ जायेंगे । पूर्व के बेरोजगार व्यक्ति एवं उनमें जुड़ते नये व्यक्ति कुल मिलाकर 46 मिलियन व्यक्ति छठी पंचवर्षीय योजना में काम की तलाश में थे । हालांकि छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान रोजगार का विकास 5.2 प्रतिशत की सीमा तक पहुँच गया था किन्तु फिर भी इस काल में 3.3 प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगारी की संख्या में और जुड़ गये । 15 से 59 वर्ष की आयु वर्ग की सम्पूर्ण श्रम शक्ति की संख्या लगभग 27 करोड़ आज मानी जा रही है । इसमें बेरोजगारी की संख्या बहुत ऊँची है ।

तालिका संख्या 10.1 में 32 वे राऊन्ड सर्वेक्षण को आधार मानकर के सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में बेरोजगारी को प्रदर्शित किया गया है । इस तालिका में विभिन्न आयु वर्गों एवं लिंग के आधार पर विभाजित कर देखा गया है ।

तालिका - 10.1

32 वे राऊन्ड के आधार पर मार्च 1985 में बेरोजगार (सामान्य स्थिति) का अनुमान

श्रेणी			आयु वर्ग
	5-	15-	15-50
ग्रामीण पुरूष	3.74	3.56	3.52
ग्रामीण महिलायें	4.06	3.77	3.71
शहरी पुरुष	3.65	3.56	3.52
शहरी महिलायें	2.44	2.36	2.35

स्रोत - 7 वी पंचवर्षीय योजना, 1985 - 1990, खन्ड- 2 योजना आयोग, भारत सरकार । राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संगठन (NSSO), 32 वॉ राऊन्ड (1977 - 1978) को आधार मानकर, सामान्य स्तरीय सहभागिता दर प्रदर्शित की गयी है । जिसमें आयु, लिंग एवं निवास को कारक माना गया है । सर्वेक्षण के दौरान पिछलें 15 वर्ष में पैदा हुये बच्चों को सन् 1985 - 2000 के काल कें समय की श्रम शक्ति में सम्मिलित किया जायेगा । 1985 - 1990 के दौरान श्रम शक्ति की वार्षिक वृद्धि की दर 2.56 प्रतिशत होगी । तथा 1990 - 2000 में यह दर 2.24 प्रतिशत हो जायेंगी । इस दौरान जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर क्रमश 1.96 प्रतिशत तथा 1.69 प्रतिशत रहेगी । इन दो कालों कें दौरान श्रम शक्ति में क्रमश: 39 मिलियन तथा 81 मिलियन व्यक्ति अतिरिक्त जुड़ जायेगें । 1985 में जो बेरोजगार व्यक्तियों की बची हुयी संख्या थी, उसको ध्यान में रखते हुये सन् 2000 तक लगभग 130 मिलियन व्यक्तियों को

रोजगार प्रदान की व्यवस्था की जायेगी । आने वाले 15 वर्षों में इस व्यापक अतिरिक्त रोजगार को पैदा करना एक प्रमुख चुनौती होगी । इस सब कें लिये यह माना गया कि हमारे यहां एक ऐसा परिदृश्य पैदा होगा, जिसमें निरंतर रूप से सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि की दर 5 प्रतिशत वार्षिक होगी, तथा कृषि का तीव्र विकास एवं उद्योगों के तीर्व विकास के फलस्वरूप रोजगार प्रदान करना संभव होगा । ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2000 तक सम्पूर्ण श्रम शक्ति के लिए रोजगार का प्रावधान संभव बना लिया जायेगा ।

1990-2000 के लिए रोजगार प्रक्षेपण -

तालिका संख्या 10.2 में सन् 1990 में बचे हुये बेरोजगारी की संख्या 28 मिलियन दिखाई गयी है । सर 1990-1995 के दौरान इसमें 37 मिलियन अतिरिक्त मानव शक्ति जुड़ने का अनुमान लगाया गया इस तरह 8वी पंचवर्षीय योजना के दौरान रोजगार चाहने वाले कुल व्यक्तियों की संख्या का अनुमान 65 मिलियन लगाया गया है । यह अनुमान लगाया गया है कि 1995 - 2000 कें दौरान श्रम शक्ति 41 मिलियन तक बढ़ जायेगी । इस प्रकार सन् 2000 तक नौकरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या लगभग 106 मिलियन हो जायेंगी ।

तालिका - 10.2

1990-2000 के लिए रोजगार प्रक्षेपण

	मिलियन
1. 1990 के प्रारम्भ में बचे हुये बेरोजगार	28
2. 1990 - 95 के दौरान श्रम शक्ति में जुड़ने वाले नये व्यक्ति	37
8 वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल बेरोजगार(1 + 2 = योग)	65
3. 1995 - 2000 के दौरान श्रम शक्तिमें जुड़ने वाले नये व्यक्ति	41
4. 9वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल बेरोजगार	106

स्रोत - योजना आयोग

इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति अधिक गंभीर है । ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों एवं सीमान्त कृषकों के द्वारा बेरोजगारी की समस्या पैदा हो रही है तो शहरी क्षेत्रों में यह व्हाईट कॉलर नौकरी समस्या है । अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र द्वारा लगभग 11 प्रतिशत श्रम शक्ति के वार्षिक विस्तार के द्वारा तथा असंगठित क्षेत्र के द्वारा 89 प्रतिशत श्रम शक्ति को खपाया जा रहा है ।

10.5 तकनीकी परिवर्तन एवं रोजगार -

10.5.1 सकारात्मक प्रभाव -

पश्चिमी देशों के आधुनिक तकनीक का इतिहास औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ होता है । नयी उपयोगी वस्तुओं उत्पादन में भी तकनीकि विकास को प्रयोग में लाया है । एक बार जब औद्योगिक क्रांति ने अपनी जड़े स्थापित कर ली तो नये अन्वेषणों एवं प्रयोगों की खोज को बढ़ावा दिया जानें लगा । उत्पादकों द्वारा अधिक से अधिक उन्नत तकनीक के प्रयोग की

प्रतियोगिता प्रारम्भ हुयी । प्रत्येक उत्पादक का यह प्रयास रहा कि अधिक उन्नत व परिवृति उच्च श्रेणी की वस्तुओं को उपभोक्ता के सामने लाकर अपने प्रतिस्पर्द्धा को प्रतियोगिता से बाहर करना रहा । एक क्षेत्र में किये गये प्रयोग एवं अन्वेषणों ने दूसरे क्षेत्र के प्रयोग एवं अन्वेषणों को बढ़ावा दिया । जैसा कि ए. के. कार्नक्रॉस (A.K. Cairncross) ने लिखा है "विकास एक निरन्तर रूप से आगे बढ़ती प्रक्रिया होती है, जो कि तकनीक के निरन्तर वेग द्वारा संभव बन पाती है । साथ ही वह तकनीकि परिवर्तनों के उद्भव एवं उनके अपनाने की क्षमता पर भी निर्भर करता है । "

पश्चिम देशों में अन्वेषणों का आग्रह कीमत को कम करना एवं मांग में वृद्धि करना रहा है । औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भिक वर्षो के दौरान अन्वेषणों एवं नयी खोजों ने उत्पादन की लागत को घटाया साथ ही इन्होंने बाजार में नयी उपभोक्ता वस्तुओं की एक व्यापक श्रृंखला प्रारम्भ की । चूंकि अधिक से अधिक उपभोक्ता वस्तुओं की नयी किस्मों को खरीदना है, अत: मांग बढ़ती है । इसके फलस्वरूप उत्पादक अधिक से अधिक नयी एवं उन्नत वस्तुओं को लेकर सामने आते है । पश्चिमी देशों के आर्थिक विकास में उपभोक्ताओं की हुई मांगों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है क्योंकि औद्योगिक वस्तुओं के लिए निरन्तर रूप से। व्यापक बाजार मिलता रहा है साथ ही, आर्थिक विकास में तकनीक को खोजने कें पश्चिमी देशों के उदाहरण के साथ ही जापान का उदाहरण भी दिया जा सकता है जैसा कि कॉर्न क्राँस ने पीछे लिखा है कि देश में एक वर्ष पूर्व आर्थिक विकास तीव्र गति से बढ़ने लगा था । यह अन्य पूर्ण औद्योगिक समाजों की भांति खेती पर ही अधिकांशत: निर्भर करता था । यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि जापान की 75% जनसंख्या खेती में लगी हुयी थी । हालांकि यह देश दूसरे अविकसित देशों की अपेक्षा कई दृष्टियों से भिन्न था, जिस प्रकार से अन्य अविकसित देशों में शिक्षा, शहरी संस्कृति, प्रबन्धकीय अनुभव, सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में जिस तरह का पिछड़ापन पाया जाता था, वैसा जापान में होते हुये भी यहां अन्य देशों जैसा आर्थिक पिछड़ापन नहीं था इस तरह से पश्चिमी देशों एवं जापान ने जो तीव्र आर्थिक प्रगति की उससे तीव्र आर्थिक विकास में तकनीक की भूमिका स्पष्टत: परिलक्षित होती है । तकनीक, व्यापक निर्गत, कम कार्य समय, कौशल युक्त रोजगार का उद्भव, नये प्रारूपों, रख रखाव, सुरक्षित कार्य दशाओं, स्तरीय गुणवत्ता युक्त नयी एवं अच्छी वस्तुओं का उत्पादन, कच्चे माल का ज्यादा प्रभावकारी से प्रयोग, अन्धविश्वासों एवं रूढ़िवादिता में कमी की तरफ अग्रसित करती है । तकनीक जीवन के प्रति वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण को चढ़ाने में सहायक होती है ।

10.5.2 नकारात्मक प्रभाव -

तकनीकी अन्वेषणों का सबसे नकारात्मक प्रभाव यह रहा है कि इनके फलस्वरूप श्रमिक विस्थापित होते है, फलत: बेरोजगारी की समस्या पैदा होती है । तकनीकी परिवर्तन के समर्थकों का तर्क होता है कि तकनीकी परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव का असर कुछ श्रमिकों तक ही सीमित रहता है । इसके लाभ अर्थव्यवस्था को अधिक मिलते है । विकसित एवं परिवर्तित अर्थव्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन अपरिहार्य होते है । इसका नकारात्मक स्वभाव श्रमिकों या व्यापारियों पर पड़ सकता है । सामने वाले प्रतियोगी के अन्वेषणों के द्वारा वे बुरी तरह

प्रभावित हो सकते है । हालांकि यह तर्क व्यापारी एवं श्रमिकों के मध्य के दृष्टिकोंण की मूलभूत मिलता को अस्वीकार करता है । व्यापारी, लाभ एवं हानि को व्यापार से जुड़ा हुआ मानता है जबकि श्रमिक की रूचि केवल निश्चित मौद्रिक राशि (वेतन) तक होती है । साथ ही व्यापारी के पास संकट से उभरने के लिए पर्याप्त मात्रा में जमा पूंजी होती है जबकि श्रमिक के पास अल्प जमा राशि ही होतीं है जो कुछ दिनों में ही समाप्त हो सकती है । अत: बेरोजगारी के तनाव एवं दबाव को सहन करना उनके लिए भारी होता है । तकनीकी प्रगति एवं अन्वेषणों में भी व्यापक परिवर्तन किया है । जीवन स्तर बढ़ा है । शहरी एवं औद्योगिक व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप बहुत से अवसर उपलब्ध करवाये है जिनसे कि व्यक्ति अपनी प्रगति कर सकते है । किन्तु दूसरी तरफ इन सब के फलस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण बढ़ा है, चिन्ता एवं असुरक्षा में वृद्धि हुयी है तथा कुटीर उद्योग व्यवस्था समाप्त होती जा रही है मानव मशीन बन गया है तथा धीरे-धीरे वह तिर्व रूप से बदलते समाज में अपनी अस्मिता खो रहा है ।

अन्तत: हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि तकनीक के इन अवगुणों, जो कि उन्नत औद्योगिक देशों में आज सामने आ रहे है, के होते हुए भी अविकसित देश आज तकनीकि अन्वेषणों को बढ़ाने का आज भरपूर प्रयास कर रहें है । क्योंकि उनके आर्थिक विकास के लिए मात्र एक तकनीक ही एक आशा की किरण दिखाई पड़ती है वे यह महसूस करने लगे है और कुछ हद तक यह सही भी है कि अपने स्थिर निम्न जीवन स्तर, महामारी, अकाल के फलस्वरूप भुखमरी को दूर तकनीकी परिवर्तनों को लागू किये बिना नहीं दिया जा सकता ।

10.6 वैज्ञानिक पुनर्गठन का प्रभाव -

वैज्ञानिक पुर्नगठन के प्रभाव का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत मूल्यांकन किया जा सकता है-

1 व्यापक बेरोजगारी का डर -

वैज्ञानिक पुर्नगठन की हर योजना श्रम के प्रति एक पूर्वाग्रह की स्थिति लेकर चलती है । तथा बेरोजगारी का डर वास्तविक एवं न्यायोचित होता है । छटनी कों नही किया जा सकता है । जब व्यापक स्तर पर मशीनीकरण को अपनाया जाता है तो अस्थायी बेरोजगारी होगी अत: श्रमिक हमेशा वैज्ञानिक पुर्नगठन की हर योजना के विरूद्ध होते है ।

2 कुशल श्रमिकों पर नकारात्मक प्रभाव -

यद्यपि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य श्रम शक्ति के विकास अपेक्षा रोजगार अवसरों को तेजी करना है तथापि वैज्ञानिक पुर्नगठन के अन्तर्गत कुशल श्रमिकों का स्थान या तो मशीनें ले लेती है या सीमित संख्या के अकुशल श्रमिक जिनका काम केवल मशीन को चलाना होता है । वैज्ञानिक पुनर्गठन की योजना के अन्तर्गत कुशल श्रमिक को बाहर कर दिया जाता है ।

3 शोषण का भय

वैज्ञानिक पुनर्गठन के आवरण के अन्तर्गत बेईमान प्रबन्ध, शोषण करने को भी प्रेरित हो सकता है । तथा कार्यभार, अनावश्यक तनाव, उच्च वेतन एवं बोनस के liye थकाऊ स्थिति पैदा की जा सकती है ।

भारतीय उद्योग में वैज्ञानिक पुनर्गठन -

भारत के पुराने उद्योग जैसे सूती वस्त्र, जूट वस्त्र, कोयला एवं चीनी उद्योगों में वैज्ञानिक पुनर्गठन की समस्या उत्पन्न हो गयी है । हम इसमें सामान्यत: वैज्ञानिक पुनर्गठन के तकनीकि पक्ष को ही लेते है । अर्थात इसमें आधुनिकीकरण की समस्या एवं पुरानी पड़ी मशीनों के बदलाव को ही लेते है । विकसित देशों में श्रम कम है, एवं मशीनों की पूर्ति तथा पूंजी की बहुलता है । अत: इन देशों में वैज्ञानिक पुनर्गठन के सामाजिक पक्ष के द्वारा कोई समस्या उत्पन्न नहीं की जाती है । किन्तु भारत जैसे विकसित एवं बड़ी जनसंख्या वाले देश में वैज्ञानिक पुनर्गठन के द्वारा बेरोजगारी की समस्या पैदा हो जायेगी । सरकार को बाध्य होना पड़ेगा कि वह रूढ़िवादी एवं सतर्कता पूर्ण दृष्टिकोंण अपनाये । वैज्ञानिक पुनर्गठन की योजना को चरण बद्ध तरीके से इस तरह लागू किया जाये कि उसके द्वारा वर्तमान श्रमिको को न्यूनतम हानि हो, एवं अस्थायी रूप से जिन श्रमिकों की छटनी की जाये उन्हें भी आगे चलकर काम पर ले लिया जाये । भारत में पूंजी की कमी एवं श्रमिकों की अधिकता के कारण प्रति श्रमिक निर्गत में वृद्धि करने की अपेक्षा प्रति मशीन या प्रति एकड़t भूमि का उत्पादन बढ़ायें । इस प्रकार से भारत जैसे विकसित देश में हमें यह समझ लेना होगा कि हमें उच्च उत्पादकता के साथ-साथ उच्च आर्थिक गतिविधियों को भी संचालित कराना होगा।

भारत में वैज्ञानिक पुनर्गठन की किसी भी योजना के मुख्य कारक निम्नलिखित होंगे :-

1. नियोक्ताओं एवं यूनियनों के मध्य समझौते द्वारा या विभिन्न पक्षों के बीच मध्यस्थों द्वारा सहमति के आधार पर ही वैज्ञानिक पुनर्गठन के प्रभावों को लागू किया जाये ।
2. वर्तमान कर्मचारियों में कोई छटनी नहीं हो तथा उनकी आमदनी में कमी नहीं हो ।
3. वैज्ञानिक पुनर्गठन के लाभों को नियोक्ताओं श्रमिकों एवं समुदाय के मध्य समान रूप से वितरित किया जाये ।
4. कार्यदशा में उपयुक्त दृष्टि से सुधार किया जाये ।
5. राज्य को निक्रियता रूप से नहीं बैठ जाना चाहिये, उसे उपयुक्त कानूनों एवं प्रशासन के द्वारा वैज्ञानिक पुनर्गठन से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों से संबंधित समस्याओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिये । तथा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिये ।

10.7 स्वचालिता का प्रभाव -

प्रारम्भ में विकसित देशों के विशेषज्ञों का मानना रहा था कि स्वचालिता रोजगार पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं डालेगी । इस धारणा के पीछे मुख्य विचार यह रहा था कि स्वचालिता के प्रवेश के फलस्वरूप जितनी नौकरियों का नुकसान होगा उससे ज्यादा वैकल्पिक नौकरियां प्रदान की जायेगी । किन्तु आज विशेषज्ञ यह महसूस करने लगे है कि अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह धारणा सही नहीं है । इस संदर्भ में एक उदाहरण उद्धृत किया जा सकता है । भूतपूर्व सोवियत संघ में 1976 - 80 के मध्य 7000 रॉबोटों के कारण 20,000 लोगों कों रोजगार खोना पड़ा था । साथ ही आज पश्चिम देशों में भी स्वचालिता के परिणामस्वरूप बेरोजगारी का स्तर बढ़ रहा है । अमेरिका, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी तथा फ्रांस में उच्च औद्योगिक समृद्धता प्राप्त करने के उपरान्त कम्पयूटरों का प्रयोग किया गया । किन्तु

यहां जनसंख्या की कोई समस्या नहीं है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये यह उल्लेख किया जा सकता है कि भारत को उन समृद्ध राष्ट्रों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता जहां की औद्योगिक क्रांति ने कम्पयूटर क्रांति का मार्ग प्रशस्त कर दिया है । भारत को अभी उन्नत देशों तक पहुंचने के लिए लम्बा रास्ता तय करना पड़ेगा । साथ ही हमारे यहां श्रम की कमी नहीं है । हमारे यहां वास्तविक समस्या उपयुक्त रोजगार के अवसरों को पैदा करने है न कि औद्यौगिक विकास के पश्चिमी प्रतिमान के अनुकरण की अगर स्वचालिना की प्रवृति को नहीं रोका गया तो इसका भारत में सामाजिक आर्थिक कारकों जैसे आय, खपत, बचत एवं निवेश पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा । बचत मुख्यत: उपभोक्ता की बचाने एवं खर्च करने की प्रवृति द्वारा प्रभावित होती है । बचत एवं निवेश मुख्यत : अर्थव्यवस्था के आर्थिक स्तर पर निर्भर करती है । स्वचालित अन्तत: देश की अर्थव्यवस्था में चिर कालीन समस्याओं को पैदा करती है । इस प्रकार सही ही कहा गया है कि स्वचालित की सामाजिक कीमत काफी भारी होती है ।

भारत मे स्वचालित के प्रवेश की संभावना

स्वचालित के समर्थक यह दावा करते है कि इसके फलस्वरूप उपादान बढ़ेगा, लागत कम होगी, उच्च वेतन मिलेगा, उच्च मांगे होंगी, जीवन स्तर में वृद्धि होगी तथा अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होगें । अर्थात् स्वचालित के फलस्वरूप अधिक रोजगार के अवसरों के साथ ही तकनीकि अन्वेषण एवं तीव्र आर्थिक विकास भी संभव हों पायेगा । इनका आगे तर्क रहा है कि बेरोजगारी का भय मुख्यत: ज्ञान एवं शिक्षा के अभाव के कारण से है । लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत में भी स्वचालित के जिन चुनें हुये उद्योगों मे लागू किया गया वहां भी किसी प्रकार की कोई छटनी नहीं हुयी है । यद्यपि हम तकनीकी प्रगति की आवश्यकता को अनदेखा नहीं कर सकते किन्तु हमारा मुख्य ध्यान इस तरफ होना चाहिए कि देश में इसके लागू करने की गति उतनी ही हो जितनी की सहन की जा सके । भारत जैसे देश में जहां कि व्यापक मानव शक्ति अतिरिक्त है, बेरोजगारी बढ़ रही है, आय के स्तरों में असंतुलन पाया जाता है, संभावित रोजगार सिकुड़ रहें है तथा विदेशी विनिमय की स्थिति अच्छी नहीं है, वही कम्प्यूटर युग में प्रवेश करना उपयुक्त नहीं होगा । साथ ही अगर स्वचालित को लागू भी करना है तो इसके फलस्वरूप उत्पन्न स्थितियों को पहले देख लिया जाये, इसको क्रमश: लागू किया जाये तथा इसके सामाजिक परिणामों को भी ध्यान में रखा जाये । यह ध्यान भी रखा जाना आवश्यक है कि हम स्वचालिता को तभी लागू करें जबकि इसके नकारात्मक परिणामों को पहले ध्यान में रख लें । हमें यह नही भूलना चाहिये कि स्वचालिता में अधिक प्रगति केवल उन्हीं विकसित देशों तक सीमित रही है जिनको कि संयुक्त राज्य अमेरिका का संरक्षण प्राप्त हो रहा है ।

10.8 सारांश

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि बढ़ते हुये विदेश व्यापार के संदर्भ में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगी अर्थव्यवस्था से जुड़ा हुआ होता है । इसकी प्राप्ति केवल तभी की जा सकती है जबकि उत्पादन प्रक्रिया तकनीकी रूप से अन्य देशों में जितनी उन्नत है उतनी ही उन्नत वहां भी हो । इस प्रकार उत्पादन की उन्नत उत्पादन की तकनीकी की तरफ हमें सावधानी पूर्वक देखना होगा किन्तु साथ ही साथ हमें उस परम्परागत

श्रम बहुल क्षेत्र को भी देखना होगा जो अधिकांश श्रमबल को रोजगार प्रदान करता है । दूसरे शब्दों में परम्परागत श्रम बहुल क्षेत्र भी चलता रहे तथा आधुनिक पूँजी बहुल क्षेत्र का भी विकास हो । इस दोहरी स्थिति को हमें कुछ समय तक तो चलाना ही चहिऐ चाहे परम्परागत श्रम बहुल उद्योगों को आर्थिक सहायता ही क्यों न देनी पड़े । अगर इस दृष्टिकोण को अपनाया जातां है तो श्रम बचत तकनीकों के सीमित प्रवेश के प्रभाव का पूर्ण रोजगार पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कॉनक्रास, ए. केण् "रॉल ऑफ टेक्नोलोजी एण्ड नेचूरल रिसोर्सेज इन द डेवलपमैंट प्रोसेस," इन राव, सी. एच. हनुमन्ना एण्ड जोशी, पी. सी. (सं०), रिफ्लैक्शन्स ऑन इकोनॉमिक्स डेवलपमैंट एण्ड सोशियल चेन्ज प्रो० वी. के. आर. वी. राव के सम्मान में लेख, बम्बई: अलाइड पब्लिशिंग प्रा० लि०, 1779।
2. रॉबिन्सन, ऑसटीन, (सं०), एप्रोप्रियेट टैक्नोंलोजिज फॉर थर्ड वर्ल्ड डेवलपमेंट। प्रीसीडिग्स ऑफ दी कान्फ्रेंस हेल्ड वाई दी इंटरनेशनल ऐट तेहरान, ईरान लंदन: दी मैकमिलन प्रेस लि०, 1970।
3. स्टेवर्ट - फ्रांसिस, टेक्नोलॉजी एण्ड अण्डर डेवलपमेंट, लंदन: दी मैकमिलन प्रेस लि०, 1977।
4. थर्लवाल, ए. पी., ग्रोथ एण्ड डेंवेलपमैंट - विद स्पेशल रेफरेन्स टू डेवलपिंग इकोनॉमिक्स, लंदन मैकमिलन, 1986 ।
5. सूमैकर, एफ. ई, स्माल इज ब्यूटीफुल, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 1979।
6. सैन, ए. के. च्वायस ऑफ टेक्नीकल, बम्बई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीज प्रेस, 1972 ।
7. मिश्रा एण्ड पुरी, डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग शेयरी एण्ड प्रेक्टिस, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस 1991 ।
8. गुप्ता पी. वी. एण्ड कुमार, राजेन्द्र, ऑटोमेशन - इटस सोशियो इकानामिक इम्पैक्ट: ए केस स्टडी ऑफ इण्डिया, इन्सटीट्यूँसन ऑफ इंजीनियर खण्ड 70 अक्टूबर 1989, कलकत्ता।
9. कुमार, राजेन्द्र एण्ड शर्मा, आर. सी., "इम्पलायमैट पालिसी इन दी 7 फाइवइयर प्लान -ए क्रटीकल अप्रेल", द इंडियन जनरल ऑफ लेबर इकोनोमिक्स,,खण्ड 28, संख्या-4, जनवरी 1986।
10. 7 वी, 8 वी पंचवर्षीय याचनाओं के प्रारूप, भारत सरकार ।
11. नौवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप, भारत सरकार ।

इकाई 11
तकनीकी द्वेतवाद तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अनौपचारिक क्षेत्र का विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 तकनीकी द्वैतवाद (Technological Dualism)

11.2.1 अनौपचारिक क्षेत्र के लक्षण

11.2.2 औपचारिक क्षेत्र की विशेषताएं

11.3 अनौपचारिक क्षेत्र का परिमाण

11.3.1 अनौपचारिक क्षेत्र में वृद्धि के कारण

11.3.2 विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक की भूमिका

11.3.3 अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकता

11.4 अनौपचारिक क्षेत्र की समस्याएं

11.5 अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमों की पहचान

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

विकासशील देशों में जनाधिक्य के दबाव तथा धीमी गति के औद्योगीकरण ने तकनीकी द्वैतवाद को जन्म दिया है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

(I) जान सकेंगे कि विकासशील देशों के श्रम बाजार जनाधिक्य एवं सीमान्त रोजगार के अवसरों के दबाव में किस प्रकार कार्य करते है ?.

(II) अनौपचारिक क्षेत्र के क्या लक्षण है एवं इनकी क्या समस्याएं है ?

11.1 प्रस्तावना

वर्तमान शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग में विकासशील देश अनुमान सें अधिक जनसंख्या वृद्धि के प्रत्यक्षदर्शी रहे है । जनसंख्या की इस ऊँची वृद्धि दर का परिणाम यह रहा है कि शहरी जनसंख्या तेजी से बढ़ी है और श्रम पूर्ति मे, विशेष रूप से शहरी क्षेत्र में, शहरी जनसंख्या का अधिकांश दबाव बड़े शहरों पर पड़ा है ।

बड़े शहरों के प्राकृतिक विकास के अलावा ग्रामीण क्षेत्र से शहरी प्रवासियों का लगातार प्रवाह, मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र में आधिक्य मानव श्रम के कारण हुआ। विकासशील देशों के बड़े शहरों में औद्यौगिक प्रगति का केन्द्रीयकरण अधिक है, व्यापार व व्यवसायिक क्रियाएं,

यातायात व अन्य सम्बादवहन सुविधाऐं और सरकारी नौकरियाँ है । यद्यपि यह पाया गया है 'कि ये शहरी क्षेत्र इन देशों में उपलब्ध श्रम शक्ति को पूर्ण रोजगार देने में असफल रहे है । इन शहरी क्षेत्रों में समय गुजरने के साथ नये रोजगार के अवसर प्रतिवर्ष खुलते है । नये व्यक्तियों को जो रोजगार बाजार में जोड़े जाते है प्राकृतिक वृद्धि एवं नव प्रवास ग्रामीण क्षेत्र के द्वारा, के मध्य तालमेल नहीं रख पाते हैं ।

अत: शहरी क्षेत्रों में अतिरिक्त श्रम शक्ति को अपने स्वयं के रोजगार के साधन ढूढने होंगे । परम्परागत रोजगार के तरीकों के अलावा, अपनी पूँजी व कौशल के बल पर । इस प्रकार का स्वयं रोजगार जिसे अनौपचारिक क्षेत्र कहा जाता है वह शहरी क्षेत्र में वर्तमान विकसित देशों में रोजगार का प्रमुख साधन बन गया है । इस प्रकार के औपचारिक क्षेत्र में लगे तृतीय विश्व देशों में शहरी श्रम शक्ति का भाग 20% से 70% तक पाया गया है ।[1]

11.2 तकनीकी द्वैतवाद

विकासशील देशों की आर्थिक प्रणालियों की तकनीकी द्वैतवाद विशेषता है । इससे पूर्व ये अर्थव्यवस्थाएं परम्परागत व आधुनिक क्षेत्रों में विभाजित थी । परम्परागत क्षेत्र आकार में छोटा हाने के कारण निदर्शन निरीक्षण में सांख्यकी विशालता से बहुत सम्भव है कि बच जाते हो । दृष्ट (1973) ने प्रथम बार विश्व का इस परिघटना के बारें में ध्यान आकर्षित किया । इस बात पर जोर दिया कि ऐतिहासिक प्रति सांस्कृतिक तुलना शहरी अर्थव्यवस्थाओं की अनौपचारिक व औपचारिक क्षेत्र का विश्लेषण किया है ।

11.2.1 अनौपचारिक क्षेत्र के लक्षण

अनौपचारिक समूह की आधारभूत विशेषताओं का लेखा-जोखा निम्नलिखित है -

1. सरल प्रवेश

साहसियों के लिए अनौपचारिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए कोई सुस्पष्ट औपचारिक आवश्यकता नहीं है सिर्फ अल्प आधार की जरूरत होती है । उदाहरण के लिए छोटी दुकान में जूते बेचना, सापेक्ष रूप से आसान है वनस्पति जानी पहचानी ब्राण्ड के जूते की एजेन्सी लेने के । यद्यपि अनौपचारिक क्षेत्र में साहसी को प्रतियोगिता रहती है पर व्यक्तिगत सम्बंध और अन्य सामाजिक सम्बंध उसमें प्रवेश में सहायक हो सकते हैं ।

2. घरेलू साधनों पर निर्भरता

अनौपचारिक क्षेत्र में ज्यादातर उत्पादन बनाने में घरेलू (देशीय) कच्चा माल, काम में लेते है । स्थानीय उपलब्ध साधनों अथवा घरेलू संसाधन इसलिए उपयोग में लिये जाते हैं कि वे आसानी से उपलब्ध होते हैं । आयातित साधनों के प्राप्त करने की लम्बी प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है । अनौपचारिक क्षेत्र में व्यापार के लिए अधिक प्रक्रियाएँ नहीं है ।

3. परिवार संचालित उद्योग

उद्योगों का स्वामित्व अनेकों व्यक्तियों को स्वयं रोजगार का अवसर उपलब्ध कराता है । अत: अनौपचारिक उद्योगों में सामान्य रूप से कार्य कर्ता ही उनके स्वामी होते हैं ।

4. लघुस्तरीय उद्यम

बड़े उद्योगों की निर्माण इकाई वित, बैंकिंग, लाइसेन्स आदि औपचारिक माध्यम से नहीं बच सकते है जबकि अनौपचारिक क्षेत्र में उद्यमी को ऐसी औपचारिकताएं नहीं करनी होती है ।

5. श्रम गहन और अपनाई गई (adopted)तकनीक

इसकी प्रकृति अन्य परिभाषात्मक आवश्यकता अनौपचारिक समूह की ऐसी है कि इस समूह मैं आने वाले क्षेत्र श्रम गहन और पूँजी प्रधान तकनीक का भी इस्तेमाल और नवीनीकरण Modified) होगा । क्योंकि इसकी आधार भूत आवश्यकता रोजगार है ।अत: यह श्रम प्रधान होना चाहिए

6. औपचारिक स्कूल प्रणाली के बाहर अर्जित कुशलता

सामान्यत: औपचारिक क्षेत्र अपने मजदूरों को स्वयं ही उत्पादन कराती और प्रशिक्षित करती है । प्रशिक्षित श्रम अपने बच्चों को या अन्य बच्चों को नाम मात्र या पर प्रशिक्षण देने हैं । इस प्रकार का सम्पूर्ण प्रशिक्षण व्यक्तिगत आधार पर चलता है और किसी प्रकार की स्कूली शिक्षा और औपचारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती ।

7. असुरक्षित और प्रतियोगी बाजार

अनौपचारिक क्षेत्रों के बाजार में उत्पादित वस्तुओं को अधिकतम प्रतियोगिता का सामान करना पड़ता है क्योंकि विभिन्न उद्यमियों का प्रवेश बाजार मैं आसान है। ऐसे समूहों को सरकार से कोई सुरक्षा रही है । जैसा कि आयात शुल्क, आयात व्यापार लाइसेन्स आदि ।

11.2.2 औपचारिक क्षेत्र की विशेषताएं

उपर्युक्त विशेषताओं के समान -औपचारिक क्षेत्र की निम्न विशेषताएं है ।

1. कठिन प्रवेश
2. आयातित समुद्र पार साधनों पर निरन्तर निर्भरता
3. सहकारी या सामूहिक स्वामित्व
4. बड़े पैमाने के उद्यम
5. पूंजी गहन और आयातित तकनिकी
6. औपचारिक प्राप्त कुशलता
7. संरक्षित बाजार

उपर वर्णित तकनीकी द्वैतवाद में शहरी क्षेत्र के वनिस्पन ग्रामीण क्षेत्र में विरोधाभास अधिक तीव रूप में देखेने को मिलता है ग्रामीण क्षेत्र में यह द्वैतवाद उत्रत कृषि व परम्परागत कृषि के रूप में देखने को मिलता है । ग्रामीण क्षेत्र में गैर कृषि क्रियाओं में तकनीकी देखने कौ मिलती है । ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्र की क्रियायें लघु स्तरीय श्रम प्रधान और घरेलू स्वामित्व, तथा औपचारिक क्षेत्र में आती है ।

---

(1) एम० वी० सेनूरमन- "द अरबन इनफारमल लेवर इन डवलपिंग कन्ट्रीज"

जैसे अनौपचारिक क्षेत्र केवल गैर कृति कार्यों के लिए उपयोग में आता है । ग्रामीण क्षेत्र मैं कृषि का तकनीकी द्वैतवाद अनौपचारिक क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आसन है ।ग्रामीण क्षेत्र में गैर कृषि कृपाओं का का अनौपचारिक क्षेत्र बहुत कमजोर है । परिणाम स्वरूप इसके प्रभाव कम है अगर इसकी तुलना इसके प्रतिरूप शहरी क्षेत्र के मध्य की जाये ।

11.3 अनौपचारिक क्षेत्र का परिमाण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि शहरी क्षेत्र मैं अनौपचारिक क्षेत्र का भाग विकसित देशों में 20%-70% के बीच मैं है । विकासशील देशों के कुछ चुने शहरों में अनौपचारिक क्षेत्र के अन्तर्गत अनुमानित श्रम शक्ति का प्रतिशत भाग नीचे तालिका मैं दिया गया है ।

तालिका 11.1

विकास शील देशों के अनौपचारिक क्षेत्र में शहरी श्रम शक्ति का अनुमानित प्रतिशत भाग कुछ प्रमुख शहरों में

क्षेत्र	वर्ष	प्रतिशत भाग
अफ्रिका		
अबीडजन	1970	31
लागोस (आइवरी कोस्ट)	1976	50
कुमासी (घाना)	1974	60/70
नैरोबी (कीनिया)	1972	44
अरबन एरिया (सीनिगल)	1976	50
अरबन एरिया (टयूनिशिया)	1977	34
एशिया		
कलकत्ता (भारत)	1971	40/50
अहमदाबाद (भारत)	1971	47
जकार्ता (इन्डोनेशिया)	1976	45
कोलम्बो (श्रीलंका)	1971	19
पश्चिमी मलेशिया शहरी क्षेत्र	1970	35
सिंगापुर	1970	23
अरबन एरिया (थाईलैण्ड)	1976	26
अरबन एरिया (पाकिस्तान)	1972	69
लेटिन अमेरिका		
कोरडोबा (अर्जेन्टीना)	1976	38
साओ पालो (ब्राजील)	1976	43
शहरी क्षेत्र (ब्राजील)	1970	30
रियो डी० जेनिरो (ब्राजील)	1972	24

बीलो होरिजोन्टी (ब्राजील)	1972	31
शहरी क्षेत्र (चीली)	1968	39
बोगोटा (कोलम्बिया)	1970	43
सेंको डोरिया (डोमनिकरिपब्लिक)	1973	50
ग्वाया क्यील (इक्योडोर)	1970	48
क्येटी (इक्योडोर)	1970	48
सेन सेलवे डोर (एल सेलेडोर)	1974	41
फेडरल डिस्ट्रीक एण्ड स्टेट आफ सेक्सेलो	1970	27
मेक्सीको डी ० एल० ग्वाडालाजीरा एण्ड मोम्मोटिरेज	1970	42
असन कोइन (पेराग्वे)	1973	57
शहरी क्षेत्र (वेनेजूएला)	1970	60
शहरी क्षेत्र (वेंनेजूएला)	1974	44
केराकस (वेनेजुएला)	1974	40
किन्सटन (जूमाइका)	1974	33

तालिका 11.1 को ध्यान से देखने से पता चलता है कि अनौपचारिक क्षेत्र न भाग कोलम्बो (श्रीलंका) में 20% पाकिस्तान के शहरी क्षेत्र में लगभग 70% तक देखने को मिलता है । भारत में इसका भाग कलकत्ता (1971)[1] में 40 -50 प्रतिशत, और अहमदाबाद में: 47% प्रतिशत है ।[2]

वे शहर जहाँ इसका भाग 50% और अधिक है वे है लगोस (नाइजीरिया ।976), कुमासी (धाना 1974), शहरी क्षेत्र सेनीगल के (1976), कलकत्ता (1971), पाकिस्तान शहरी क्षेत्र (1972), सेचे डोमेगो (गेमीनी रिपब्लिक 1973), अगुनी कोन (पेराग्वे) और पीरके शहरी क्षेत्र (197०)

11.3.1 अनौपचारिक क्षेत्र के विकास के कारण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि शहरों का आधुनिक औद्यौगिक जहां भारी मात्रा में आर्थिक साधन विनियोजित है आवश्यक रोजगार दिलाने में तथा आर्थिक अवसरों को उत्पन्न करने में असफल रहे हैं । तीव्र जनसंख्या वृद्धि के सन्दर्भ में और अत्यधिक ग्रामीण से शहरी होने शहरी क्षेत्र को अपनी श्रम उपयोग क्षमता को बढ़ाना चाहिए ।

अनौपचारिक क्षेत्र साधनों से रोजगार उत्पन्न करने की दृष्टि से अधिक सक्षम पाया गया है । अध्ययन यह बताते है कि औपचारिक क्षेत्र के अपेक्षा रोजगार उत्पन्न करने के लिए अनौपचारिक क्षेत्र को पूंजी के थोड़े भाग की आवश्यकता होती है । उदाहरणतया कलकत्ता में अनौपचारिक क्षेत्र में प्रति श्रमिक औसत मात्रा में स्थिर पूँजी रूपये 2325 या कुल औपचारिक क्षेत्र में आवश्यक मात्रा 1690 अनुमानित था यह अहमदाबाद में 50% था ।

11.3.2 विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक क्षेत्र की भूमिका

विकासशील देशों के बड़े शहरी में अतिरिक्त श्रम शक्ति के अवशोषण (absorbing) में शहरी अनौपचारिक क्षेत्र महत्वपूर्ण भाग अदा करता है । इसलिए शहरी गरीबी हटाने में सहायक है । इसलिए बहुत से देश अपनी सरकारी नीति में इस क्षेत्र के लिए धनात्मक सहयोगी रूख रखते है ।[1]

अन्य शब्दों मैं अनौपचारिक क्षेत्र शहरी क्षेत्र में अधिक श्रम अवशोषण का भार निरन्तर वहन करता है । शहरी क्षेत्र में गरीबी हटाने के अतिरिक्त, अनौपचारिक क्षेत्र का विकास शहरी विकास, पर्यावरण प्रयास और श्रम के कार्यदशाओं पर भी प्रभाव डालता है ।

विकासशील देशों के शहरी विकास में सहयोग करने वाले कुछ तत्व अनौपचारिक क्षेत्र मैं भी है ये बिन्दु नीचे दिये गये है ।

1. निम्न पूंजी गहनता
2. उंची श्रम गहनता
3. अर्द्धकुशल व अकुशल श्रम शक्ति पर आधारित
4. यह श्रमिको को कम लागत पर प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है ।
5. सदी तकनीक पर आधारित है जौ साधनों के अधिक कुशल वितरण के परिणाम लायेगी ।

यहाँ पर कुछ क्रियाएं भी है जिनमें अनौपचारिक क्षेत्र अधिक सफल हुआ है । ये क्रियाऐं विभिन्न प्रकृनि के द्वारा औपचारिक क्षेत्र लघु स्तरीय रूप मैं की जा सकती है चुँकि सही रूप में औपचारिक क्षेत्र वहाँ नहीं पहुँच सकता है । उदाहरागतया रिपेयर (repair) व्यापार और टेलरिंग (कपड़े सिलना) आदि । द्वितीय - कुछ वस्तुओं के छोटे बाजार औपचारिक क्षेत्र के कुछ सामान उत्पादन की प्रेरणा नहीं देते है उदाहरणतया आयातित स्पेयर पार्टस की नकल और व्यर्थ पदार्थों आदि का पुन: निर्माण (recycling) तृतीय - व्यर्थ पदार्थों और कुड़ को एकत्र करना जो औपचारिक क्षेत्र के लिए बहुत महंगा है इसका कारण यह है इसमें बहुत अधिक शक्ति लगती है । चतुर्थ -सस्ते श्रम के कारण लागत कुशलता, आर्थिक उपरी व्यय आदि या स्थनिाय लाभों के कारण। पंचम-शहरी गरीब के द्वारा उच्च स्तर के समान की सस्ती नकल को प्राप्त करने की मांग अन्त में कुछ क्रियायें औपचारिक क्षेत्र में जानबूझ कर अनौपचारिक क्षेत्र के लिए जोड़ दी जाती है. जैसे -सब काप्ट्रेक्टीग या बाजारी करता (Marketing) आदि ।

11.3.3 अनौपचारिक क्षेत्रं की आवश्यकता

शहरी क्षेत्र में अनौपचारिक क्षेत्र द्वारा अतिरिक्त श्रम को खपाने की अपरिहार्यता के बावजूद इसकी प्रासंगिकता पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह है । इसके पक्ष में एक विचार है ।

उार्थव्यवस्था में सरंचनात्मक असन्तुलन कुल मिलाकर दिये होने पर औपचारिक क्षेत्र में श्रम कठिनायों की ओर अवशोषण को इंगित करतें है । ग्रामीण से शहरी प्रवासियों की बढ़ती

---

(1) ए० एन० थोम - कलकत्ता और प्रांगण बंगाल, स्माल सेक्टर सिम्बायोसस कलकत्ता, 47 आई.एल.ओ० p66

(2) 'टी० एस० पापोला - शहरी क्षेत्र अनौपचारिक क्षेत्र नगरलोक, Oct.,Dec. 1978 p. 160

संख्या कें लिए नियोजन एवं आपके अवसर उपलब्ध कराने के रूप में अनौपचारिक क्षेत्र की तरफ देखा जाता है ।[3]

अनौपचारिक क्षेत्र के लिए दूसरा मत यह है कि इसे औपचारिक क्षेत्र का पराश्रयी (parasitic) है अत: अन्त में अर्थव्यवस्था के आधुनिकरण के साथ यह औपचारिक क्ष्ज्ञेत्र में विलिस हो जायेगा ।

बोध प्रश्न 1

अपने पास के उद्यमों की लिस्ट बनाओ और निम्न लक्षणों को पता करें

1. उद्यम का नाम
2. पंजीकृत या पंजीकृत
3. विपिन व्यवसायों' में श्रमिकों की संख्या, उनकी योग्यता और प्रशिक्षित के अनुसार विभाजन करते है ।
4. समान जो उत्पादित करते है ।
5. शक्ति का उपयोग करते हैं या नहीं
6. कच्चा माल कहीं से प्राप्त किया जाता है और कैसे वित उतम किया - है, चुकाया जाता है ।
7. उत्पादित माल कहाँ बेचा जाता है और भुगतान कैसे प्राप्त होते है ।
8. उद्यम की औपचारिक व अनौपचारिक क्षेत्र उद्यम में वर्गीकृत करें ।

बोध प्रश्न 2

1. अनौपचारिक क्षेत्र को परिभाषित करें, औपचारिक क्षेत्र से यह भिन्न कैसे है?
2. तकनीकी द्वैतवादसे आप क्या समझते हैं ।
3. बैंक इन्सोनैन्स (Insurance) आदि अनौपचारिक क्षेत्र का भाग क्यों हो सकती है।
4. विकासशील देशों में अनौपचारिक क्षेत्र के महत्व का वर्णन करे ।
5. औपचारिक क्षेत्र द्वारा अनौपचारिक क्षेत्र के शोषण की समस्या का विवेचन करें ।
6. ऐसी कौन सी स्थितियाँ है जहाँ अनौपचारिक क्षेत्र उद्यम औपचारिक क्षेत्र से कोई प्रतियोगिता नहीं करता है ।

11.4 अनौपचारिक क्षेत्र की समस्याएं

वे जो अनौपचारिक क्षेत्र के पक्ष में है का विचार है कि अर्थव्यवस्था में औपचारिक क्षेत्र की प्रमुखता होती है वहाँ अनौपचारिक क्षेत्र औपचारिक क्षेत्र से शोषित होगा ही । अनौपचारिक क्षेत्र में जो अधिकता आता है वह सरकारी नीतियां से सम्बंधित है जो औपचारिक क्षेत्र के पक्ष मे है तिय यह भी बताते है कि विपरीत परिस्थतियों में यद्यपि अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमी भी आधिक्य का निर्माण कर सकते है ।[1]

पूँजी प्रतिबन्धों के अनेक परिणाम होते है उनमें स कुछ नीचे बताये गये है ।

---

(1) गेलब्रेट, एल०, गूलरजोजफ - शहर, गरीबी और विकास - आक्स फोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस 1982p74

(2) एस० वी० सेधूरमन (p-39)

(3) कमल सलीह, "Urban Dilemmas in South East Asia" सिंगापुर p-19

1. औपचारिक सोत से उपयुक्त ब्याज दर पर अगर पूंजी उपलब्ध नहीं होति है तो निर्माण उद्यमी अन्य साख सोत से भी पूँजी लेने को बाध्य हो जाते है । वे मध्यस्थ व्यक्ति या अन्तर मध्यस्थों से उंची ब्याज दर पर पूँजी प्राप्त करते है ।
2. पूँजी की अनुपलब्धता के कारण - अधिकांश स्थिति में निर्माण उद्यमिर्मी को अपना कुछ या पूरा उत्पादन औपचारिक सेवा द्वारा निर्धारित कीमत पर बेचना पड़ता है । कभी यह कहा जाता है कि निर्माणकर्ता उंची निवेश व निम्न निर्गत Higher Input and Lower Output मूल्यों के चक्र में फंस जाता है ।
3. पूँजी की कमी निर्माण उद्यमियों को बाध्य करती है कि स्वयं का ध्यान आवासीय क्षेत्र व निम्न स्तरीय क्षेत्रों पर केन्द्रीत करें । जैसे कि खुले सार्वजनिक स्थान ढेला गाड़ी (Push carts) का उपयोग करते है । ये सभी प्रमुख बाजार से उन्हें दूर करती है । अपने माल व सेवाओं के बाजारी करण (Marketing) के लिय वो मध्यस्थों पर निर्भर करते है ।
4. इन निर्माण कर्ताओं को इनके उद्योग के लिए आवश्यक कुछ खास आयातित समान उपलब्ध नहीं होता है और वे उंचे मूल्यों पर उसे खरीदते है जो उनकी लाभदायकता की कम करते है ।

उपर्युक्त तथ्य यह बताते है कि अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमियों को किन खराब स्थितियों में काम करना होता है और अपनी आप का कुछ भाग उन उद्यमियों को खो देते है जो औपचारिक क्षेत्र में लाभदायक स्थिति में है । यह कहने की आवश्यकता नही है कि इन बाजार अपूर्णताओं की और साधन प्रतिबन्धों को हटाकर अनौपचारिक उद्यमकर्ता अपने उत्पादन व रोजगार दोनों को बढ़ा सकते है

जैसा कि पहले कहा गया है कि शहरी अनौपचारिक क्षेत्र श्रम शक्ति को खपाने में प्रमुख भाग अदा कर रहा है । यह भूमिका आगे भी चलते रहने की सम्भावना है । जब तक कि ग्रामीण विकास व ।विकेन्द्रीयकरण जैसे प्रभावी कदम ना हो । अनौपचारिक क्षेत्र द्वारा पूर्ण किये गये उपरोक्त महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्यों के बावजूद यह क्षेत्र विकासशील देशों में लगातार अनदेखा रह रहा है । यही कारण है अनौपचारिक क्षेत्र अनेकों समस्याओं का समाना कर रहा है । अनौपचारिक क्षेत्र की तुलना में । इस क्षेत्र की समस्याएं कुछ नीचे दी गई है ।

अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमी की पूँजी के स्त्रोत के औपचारिक भाग तक पहुँच नहीं होती है । यह कथन सैधूरमन कहते है ।

विभिन्न अनौपचारिक क्षेत्र अध्ययन द्वारा एकत्र तथ्य यह सुझाव देते है कि वास्तव में कोई भी उद्यमी के पास औपचारिक सोत साख से पूंजी प्राप्त नहीं होती है । ये प्रमुख रूप से अपनी बचतों पर निर्भर करते है । ये कुछ हद तक मित्रों, रिश्तेदारों व अन्य घरेलू समाधानों से उधार लेते है? [1]

11.5 अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमों की पहचान करना

अनौपचारिक क्षेत्र की परिभाषा पूर्व मैं इसकी प्रमुख विशेषता के सन्दर्भ में की गई है ।

---

(1) सेधूरमन एस. वी.....p.35

अब यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्यमियों की पहचान की जाय ।

अधिकांश विकासशील देशों में सभी उद्यमियों को एक स्थान पर अनुक्रमित नही किया जा सकता है । विशेषत: छोटे उद्यमियों को तो अनुक्रमित नहीं किया जा सकता है । क्योंकि उनका पंजीकरण नही होता है । अत : अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमी की पहचान एक सर्वेक्षण द्वारा सम्भव है । यदि सभी इकाइयों कों देखें और यह पहचान करे कि वे अनौपचारिक क्षेत्र की है अथवा नही । अन्य तरीका उनकी पहचान का यह है कि हम हटाने की प्रक्रिया के द्वारा (Process of elimination) जैसे कि उन इकाइयों को निकाल दे जो अनौपचारिक क्षेत्र में नहीं आती है ।

अत: सभी सरकारी विभाग, एजेन्सी, सार्वजनिक क्षेत्र, कार्पोरेशन, निजी संयुक्त स्टाफ कम्पनी, मल्टीनेशनल, पूर्व संस्थाऐं आदि घटा दी जायेगी बाहर से । शहरी भ्रम पर कृषि क्रियाऐं गरीब व बेरोजगारी द्वारा स्वयं रोजगार का एकमात्र साधन नहीं हो सकता है। अत: इसे अनौपचारिक क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता है। इसी तरह खान, खदान, बिजली, गैस, पानी, वित्त और वास्तविक सम्पति आदि अनौपचारिक क्षेत्र उद्यमी में नही आते हैं।

अत: यह सुझाव दिया जाता है कि वे सभी उद्यमी जहाँ दस या कम सहयोग वाले उद्यमी निर्माणकारी क्षेत्र में लगे है तो जैसे विनिर्माण, व्यापार, यातायात, और सर्विस क्षेत्र में कार्य रत श्रम को निर्माण उद्यम कहा जाता है यद्यपि' उपरोक्त वर्गीकरण में भी कमियाँ है।

कुछ अन्य विशेषताएं निर्माणकारी उद्योग की जो उपर लिखी के साथ मिलें की खोज की जानी चाहिए[1] इसमें यह भी देखें उद्यमी कानूनी है या नही, बिजली या शक्ति का उपयोग करने है या नहीं, परम्परा साख संस्थाओं पर निर्भर है या नहीं, उनका विनति औपचारिक है आदि। ।

11.6 सारांश

विकास शील देशों की अर्थव्यवस्था में प्रमुखता आधिपत्य श्रम पूर्ति की सीमित रोजगार और आप अवसरों की है। इस तिय ने श्रम शक्ति कों स्वयं रोजगार ढूढने केलि प्रेरित किया है। इसने देश में तकनीकी द्वैतवाद को जन्म दिया है जो शहरी क्षेत्र में बहुतायत से हैं। इन क्षेत्रों के कुशल व अकुशल श्रम अपने समाधान के आधार पर जिन क्षेत्रों में ये कार्य करते है जैसे विनिर्माण, सर्विस एवं प्रशिक्षण इकाई इन सभी कौं अनौपचारिक क्षेत्र है। विकासशील देशों मैं श्रम शक्ति का काफी भाग अनौपचारिक क्षेत्र में पाया जाता है। अनौपचारिक क्षेत्र प्रतिकूल आर्थिक दशाओं मैं भी जीवित रह कर आप पैदा कर अपनी अधिक कारगरता (Viability) को दर्शाते है।

11.7 शब्दावली

तकनीकी (Technology) अर्थव्यवस्था के क्षेत्र, Sector of Economy, द्वैतवाद (Dualism) औपचारिक क्षेत्र (Formal Sector), अनौपचारिक, क्षेत्र(Informal Sector), श्रम गहन (Labour intensive) पूँजी गहन (Capital Investment) अपनाई गई तकनीक -

---

(1) एम० वी० सेधूरमन.....p. 29

-(Adopted Technology) पुन: निर्माण (Recycling) परजीवी (Parcisitic) शोषण (Exploitation)

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. एस०वी० सेथूरमन- "दी अरबन इनफोरमल सेक्टर इन डेवलपिंग कन्ट्रीज" एम्पलोइमेन्ट, पावरटी, और एनवायर मेन्टल" जिनेवा, इन्टरनेशनल लेवर आफीस 1981

2. एस.वी. सेथूरमन"इनफोरमत्न अरबन सेक्टर इन डवलपिग कन्ट्रीज : सम पालिसी एप्लीकेशन" सोशियल एक्शन जुलाई - सेप्टेम्बर 1971

3. गिलवर्ट, एलन, जूगलर जोजफ सीटीज - पावरटी, और डवलपमेंन्ट' आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीज प्रेस, 1982

4. ए० एन० बोस "कलकत्ता एण्ड रूरल बंगाल स्माल सेक्टर सिम्बोईसिम,कलकत्ता, साई० सत्न० ओ० 1978

5. टी० एस० पपोला "इनफोरमल सेक्टर इन एन अरबन इकोनोमी, नगरलोक, अक्तूबर दिसम्बर 1978

---

(1) एस० वक्र सेथूरमन - .....pp. 22

इकाई 12
श्रम की गतिशीलता एवं प्रवास

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 श्रम शक्ति के प्रवास की प्रक्रिया
12.3 श्रम के प्रवास के कारण
12.3.1 प्राकृतिक कारण
12.3.2 मानव निर्मित कारण
12.4 भारत में आन्तरिक प्रवास के रूप
12.5 प्रवास के परिणाम
12.5.1 मूल स्थान पर प्रभाव
12.5.2 गंतव्य स्थान पर प्रभाव
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

12.0 उद्देश्य

श्रम की जो विशेषता इसे अन्य साधनों से विशिष्टता प्रदान करती है वह है इसकी गतिशीलता। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में एवं विभिन्न देशों के भिन्न-भिन्न भागों में समय एवं काल कें साथ-साथ श्रम के प्रवास के कारण एवं परिणामों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- समझ सकेंगे कि श्रम शक्ति के प्रवास कें मुख्य कारण क्या रहे है;
- भारत में श्रम प्रवास के प्रतिरूपों को जान सकेंगे; एवं
- श्रम प्रवास के प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

मानव सदियों से अपनी गतिशीलता के कारण जाना जाता है। और मानव इतिहास ऐसे लेखों से भरा पड़ा है कि कहीं बस जाने की खोज में वह प्रवासित होता है। यद्यपि वर्तमान समय में इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास कम हों गये है। [1]आधुनिक श्रम प्रवास सामान्यतया आर्थिक परिवर्तनों के कारण श्रम का प्रवास है।[2]

---

1. अमीन समीर, मोर्डन माइग्रेशन इन वेस्टर्न अफ्रीका, लन्दन आक्यफोर्ड युनि प्रेम 1974,P-66.
2. 2 यू.. एन डीर्पाटमेन्ट आफ ईको एण्ड सोसियल अफेयर्स डीर्टमीनेन्टस' एण्ड कोन्सीक्वेन्सेस आफ पापुलेशन ट्रेन्डस्रवोत्त्रमू न.Population Studies,No.50, New York UN,1973, P.159

आज औद्योगिक देशों में ग्रामीण जनसंख्या को नियोजिन ढंग से शहरी क्षेत्रों के उद्योगों की तरफ मोडा जा रही है । इन देशों मैं ग्रामीण क्षेत्रों मैं कृषि में मशीनीकरण करके कृषि श्रम की कमी पूरी की जा रही है ।

एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या की अधिक-वृद्धि दर और उचित रोजगार के अवसरों की कमी प्रवास का करण है । साधारण ग्रामीण सें शहरी श्रम के प्रवास के अतिरिक्त, एक ग्रामीण क्षेत्र से दूसरे ग्रामीण क्षेत्र में श्रम का प्रवास बढ़ा है, जिसका कारण कुछ ग्रामीण क्षैत्र में बहुत अधिक गरीबी और आधुनिक कृषि का प्रार्दुभाव है ।

आर्थिक संसाधन एवं तकनीकी जानकारी उनके शोषण की सभी क्षेत्रों में समान नहीं है। यह समय के साथ-साथ बदलती रहती है । इसके परिणामस्वरूप अन्य क्षेत्रों के मुकाबले, कुछ क्षेत्रों में अच्छे आर्थिक अवसर प्राप्त होत है । यद्यपि कुछ लोग जो कम अवसर वाले क्षेत्रों में रहते है, वें ज्यादा प्रगतिशील होते है, क्योंकि वे अपने अवसरों से सन्तुष्ट नही होने है । ये लोग अपने रहने वाले क्षेत्रों से गतिशील होकर उन क्षेत्रों की तरफ जाने है । जहाँ अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं ताकि वहाँ जाकर बस जावे व्यक्तियों के इस प्रकार गतिशील होने को प्रवास कहते है ।

12.2 श्रम शक्ति के प्रवास की प्रक्रिया

श्रम के प्रवास. की आधारभूत शक्तियों कौ समझने के लिये दूरी, उत्पत्ति की प्रकृति और गंतव्य स्थान एवं अवधि के आधार पर कुछ ग्रामीणो में वर्गीकृत कर दिया गया है । जैसा नीचे समझाया गया है ।

(अ) दूरी के आधार पर प्रवास का वर्गीकरण

1. आन्तरिक प्रवास अथवा देश के अन्दर प्रवास ।

   आन्तरिक प्रवास आगे निम्न में पुन: विभाजित है-

   (अ) अत : क्षेत्रीय अथवा क्षेत्र के अन्दर प्रवास ।

   (ब) अत : क्षेत्रीय अथवा दो क्षेत्रों मध्य प्रवास ।

2. अन्तराष्ट्रीय प्रवास अथवा दो देश भवण प्रवास ।

(ब) आरंभ और गतंव्यस्थान के आधार पर वर्गीकरण (प्रवास का प्रवाह)

1. ग्रामीण से शहरी प्रवास ।
2. शहरी से शहरी प्रवास
3. ग्रामीण से ग्रामीण प्रवास
4. शहर से ग्रामीण प्रवास । ।

(स) प्रवास की अवधि के आधार पर वर्गीकरण

1. मौसमी प्रवास ।
2. तात्कालिक प्रवास ।
3. अन्तर जन प्रवास ।
4. जीवन कालीन प्रवास ।

सामान्यरूप से मौसमी प्रवास कृषि से सम्बन्धित है । बुआई व कटाई की मौसम में कृषि श्रम आधिक्य के क्षेत्र से उन क्षेत्रों की तरफ प्रवास करते है, जो कृषिगत विकसती क्षेत्र है, जहां उनकी सेवाओं की मांग अधिक है । प्रवासियों को ज्यादातर अल्प समय के लिये आर्थिक दृष्टि से आकर्षक मजदूरी पर रोजगार उपलब्ध होता है । मौसम के बाद वे अपने क्षेत्रो पुन : लौट जाते है और इस तरह से परिवार की आप से सहयोग करते है।

तात्कालिक प्रवास अल्प अवधि प्रवास है इसमें गंतव्य स्थान पर तीन या पांच साल से कम ठहरना शामिल है ।

अन्तर जन प्रवास दो जनगणनाओं के मध्य का प्रवास है और जीवन कालीन प्रवास वह प्रवास है जहां प्रवासियों के प्रवास की अवधि निश्चित न हो ।

12.3 श्रम के प्रवास के कारण

एक स्थान से दूसरे स्थान पर श्रम के प्रवास के पीछे प्राकृतिक साथ ही मानव निर्मित आर्थिक कारण हो सकते है ।

12.3.1 प्राकृतिक कारण

एक स्थान से दूसरे स्थान पर श्रम के प्रवास के पीछे प्राकृतिक कारण नित्य है-

1) विशिष्ट प्राकृतिक साधन जैसे खान, लकड़ी, अथवा कृषि संसाधन के कम होना अथवा खत्म होना ।
2) प्राकृतिक विपदाएं जैसे सूखा, बाढ़, महामारी जैसी प्राकृतिक विपदायें ।

12.3.2 मानव निर्मित कारण

1. देशों का विभाजन अथवा देश की सीमाओं को पुन : संगठित करना ।
2. जनता के एक वर्ग के विरूद्ध राजनैतिक भेदभाव।
3. सामाजिक कारण जैसे शिक्षा:, विवाह, परिवार के मुखिया के स्थानान्तरण के कारण गतिशील होना ।
4. एक स्थान से दूसरे स्थान में मजदूरी की भिन्नता ।
5. कुछ क्षेत्रो में रोजगार के अच्छे अवसर
6. जून-शिक्षा
7. कुछ योजनाओं जैसे बाँध आदि के निर्माण के कारण विस्थापन ।
8. कुछ क्षेत्रों में अच्छे रहन-महन की सुविधाओं के कारण।

सभी प्राकृतिक कारण सामान्य रूप से प्रभावित क्षेत्रों की श्रम शक्ति को प्रेरित करते है कि वे अन्य क्षेत्रों की तरफ पलायन करें ताकि प्राकृतिक कारणों से आई बाधाओं से मुक्त हो सके ।

कुछ मानव निर्मित कारण, चाहे, प्रत्यक्ष प्रभाव डालते है मानव की गतिशीलता पर जब कि अन्य प्रभाव नहीं डाले । उदाहरण के रूप में विवाह वधु का प्रवास तो है पर श्रम शक्ति का

प्रवास नहीं है । इसी तरह से छोटे परिवार के सदस्य जो परिवार के साथ गतिशील होते है, विद्यार्थी शिक्षा के लिये प्रवासित होते है, ये भी श्रम शक्ति के प्रवास का भाग नहीं है ।

यहाँ पर यद्यपि निकट सम्बन्ध है, श्रम की गतिशीलता, प्रवास की दूरी, मजदूरी भिन्नता, शिक्षा स्तर, स्त्री/पुरूष, ग्रामीण व शहरी, जगह की प्रकृति आरम्भ व गंतव्य के मध्य।

यह पाया गया है कि प्रवास के लाभ बढ़ते है तो प्रवास की दूरी भी बढ़ जाती है । अत: एक ग्रामीण क्षेत्र से दूसरे ग्रामीण क्षैत्र मैं प्रवास में यह पाया गया है कि अधिकतर अन्य दूरी का होता है क्योंकि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के मध्य कृषि मजदूरी के लाभ अधिक ऊँचे नहीं होते है । इसके विपरीत ग्रामीण से शहरी क्षेत्र की दूरी सामान्यत : अधिक होती हें फिर श्रम अधिक दूरी के प्रवास की जोखिम व कठिनाइयाँ उठने को तैयार हो जाता है क्योंकि शहरी व ग्रामीण कुशल श्रम की मजदूरी सामान्यरूप से काफी ऊँची होती है ग्रामीण से शहरी प्रवासी न केवल अधिक दूरी तय करते वरन् ऊँची शिक्षा के स्तर को लिये होते है ।

लेविस ने ग्रामीण से शहरी प्रवास के द्वि क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के मॉडल में जो ग्रामीण व शहरी क्षेत्र की असीमित श्रम शक्ति और ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में अधिक मजदूरी को लेकर समझाया है । ऐसी अर्थव्यवस्था में यदि कृषि श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य या लगभग शून्य हो तो श्रय संसाधन शहरी क्षेत्र की तरफ स्थानान्तरित हो जायेंगे । शहरी क्षेत्रों में श्रम की अधिक पूर्ति के कारण वहां मजदूरियों नीचे आ जावेगी, पर शहरी क्षेत्र में अधिक लाभ की प्रवृतियां अधिक रोजगार उपलब्ध करायेगी । इस कारण प्रवासी के रूप में अधिक लोग शहरी क्षेत्र की तरफ विस्थापित होते जायेंगे । आधुनिक क्षेत्र एवं रोजगार के विस्तार' की यह प्रक्रिया बढ़ती रहेगी ऐसा माना जाता है जब तक कि सभी अतिरिक्त श्रम ग्रामीण क्षेत्र का खपा नहीं लिया जाता और ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में मजदूरी का अन्तर भली प्रकार कम नहीं हो जाता है ।

यद्यपि लेविस का मॉडल इस तथ्य की अनदेखी करता है कि Added Profit अतिरिक्त लाभ श्रम की मांग में वृद्धि न करके यह श्रम स्थानापन्न पद्धतियों को इसके स्थान पर आमन्त्रित नरेगा । [1]

टोडेरे ने अपने विस्तृत चर्चित मॉडल से अर्थमिति परिपेक्ष्य Econometric Perspective को दिया हें जो निम्न मान्यताओं पर आधारित है ।

1) व्यक्ति अपनी संभावित आय को अधिक करने की प्रेरणा को लेकर गतिशील होता है ।
2) भावी प्रवासी उनके स्तर के शिक्षित वर्ग के प्रचलित औसत आय को प्राप्त करनें का प्रयास करते है ।
3) प्रवास से पहले, व्यक्तियों को यह जानकारी होती है कि उन्हें शीघ्रता से नौकरी मिलने की सम्भावना है । वह यह भी जानता है कि कुछ समय बेकार एवं अर्ध बेकार रहने के बाद नौकरी की पूरी सम्भावना है।

टोडेरो का प्रमुख तर्क यह है कि अगर प्रवासी के t समय अवधि पर शहरी सेवा में

1. आलोचना के लिये लेविस के माडल की टोडेरो एम.पी. का इन्टरनल माइग्रेशन इन डवलपिंग कन्ट्रीज, जीनेवा आई. एल.ओ. 1973, pp 24- 25.

नौकरी मिलने की सम्भावना है [माना Yu (t)] इसके वर्तमान मूल्य को व्याज की दर पर कटौति की जायेगी। वह विशेष रूप से संभावित लाभ के विचार का उपयोग करता है जिसे शहरी मजदूरी की उत्पादकता के रूप में परिभाषित किया है कि t समय के पश्चात नौकरी मिलने की सम्भावना ।माना P(t)) है।

व्यक्ति के प्रवास का निर्णय इस पर निर्भर करेगा

$$\int_{t=0}^{n} [P(t)Yu(t) - Yr(t)]e-^{it}\, dt - C(o) > o$$

यहाँ पर Yr(t) = t समय अवधि में ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी

C(o) = गतिशीलता की लागत

i = व्याज की दर

और Yu(t) और P(t) जैसा उपर परिभाषित किया गया। अगर इसका मूल्य धनात्मक नहीं है तो प्रवास वास्तविक लाभ नहीं होगे ऐसी स्थिति में व्यक्ति प्रवास नहीं करेगा।

टोडेरो के मॉडल में यद्यपि बहुत कमियों यह प्रवास के पीछे कै सामाजिक व व्यक्तिगत तत्वों को लेने में असफल रहा है। वास्तव में इस मॉडल के लिए श्रम बाजार की जो सूचनायें जरूरी थी, वह व्यवहार उपलब्ध नहीं हो पाई।

लेविस व टोडेरो के अलावा कुछ महत्व सिद्धान्त रेविस्टीन (1885) स्टोफर (1940) कुजनेट (1964) द्वारा बनाये गये है। इन सभी सिंद्धान्तों में ('Push' and 'pull') धक्का व खीचने का तत्व रूप से पाया जाता है। प्राकृतिक विपदा, राजनैतिक, सामाजिक असमानता, गरीब खेती और जमीन पर आदि दबाव, कम मजदूरी आदि सृजात्मक तत्व एक क्षेत्र जो उनको मूल निवास से जाने को प्रेरित करते है सब 'Push' धक्का तत्व कहलाते है। 'Pull' खीचने (रोकने) के तत्व वे है जो विशेष क्षेत्र की ओर को खीचने है जैसे कि विस्तृत भूमि जहां जनसंख्या कम हो, महानगरीय संस्कृति जहां सामाजिक भेदभाव न हो, ऊँची मजदूरी, अच्छी रहने की दशाएं एवं अन्य आर्थिक तत्व आदि।

ऊपर वर्णित सैद्धान्तिक व्याख्याओं के अलावा कई ऐसे अनुभविक अध्ययन है जो श्रम की गतिशीलता का वर्णन करते है। इसमें कोनल (1977) गोसल (196।) ग्रीनवुड (1971) ओबीराव (1980) और पटेल प्रमुख है (1965)

बोध प्रश्न 1

1. मौसमी प्रवास को परिभाषित करें ।
2. मानव निर्मित व प्राकृतिक अन्य प्रवासों में भेद करे ।
3. विकासशील देश मैं ग्रामीण से शहरी क्षेत्र प्रवास की महत्वता का वर्णन करे ।
4. स्त्री प्रवास ग्रामीण से ग्रामीण क्षेत्र में प्रमुखता क्यो रखता है?
5. टोडेरो के मॉडल की आधारभूत आलोचना करते हुए विकासशील देशों में ग्रामीण से शहरी प्रवास को समझाइये ।
6. ग्रामीण से शहरी प्रवास को समझने के लिए लेविल माडल का वर्णन करे ।

12.4 भारत में आन्तरिक प्रवास के रूप

प्रवास के सन्दर्भ में दस वर्षिय जनगणना भारतीय जनसंख्या के आकड़ों का प्रमुख स्रोत है। 1961 की जनगणना के अनुसार 1961 में 144.8 मिलियन जनसंख्या जो कुल का 33.0 प्रतिशत है प्रवासी अनुमानित किये गये। 1971 स्व 1991 की जनगणना में ये 166.8 एवं 203.6 मिलियन है जो कुल जनसंख्या का क्रमश: 30.4 प्रतिशत एवं 30.6 प्रतिशत है।

1981 में अन्तर जिला, जिले के अन्दर (उसी राज्य में) दो राज्य मध्य, पुरूष वस्ती प्रवास की तालिका (12.1) नीचे दी गई है।

तालिका 12.1

जिले में, अन्तर जिले और अन्तर राज्यीय प्रवास का प्रतिशत

भाग 1981 ने पुरूष व स्त्रियों में।

प्रवासियों के रूप	पुरूष	स्त्री
1. जिले के अन्दर	48.91	67.00
2. अन्तर जिला (राज्य के अन्दर)	30.98	23.97
3. अन्तर राज्यीय	20.11	9.03
कुल	100.00	100.00

अन्तर जिला प्रवास के पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिले में एवं अन्तरजिला (राज्य के अन्दर) एवं अन्तरक्षेत्रीय, यद्यपि यह अन्तर,' यद्यपि यह अन्तर राज्यीय के समान ही है।

उपरोक्त तालिका 12.1 से स्पष्ट है कि लघु दूरी का अन्तर जिला गतिशीलता व्यक्तियों में अधिक प्रभावशाली है और स्त्रियों के मामले में यह और अधिक है। जैसे दूरी का स्तर बढ़ता जाता है प्रवास का प्रतिशत घटता जाता है स्त्रियों में अधिक तेजीसे उपरोक्त वास्तविकता यह बनाती है कि सामान्य रूप से बाकि कम दूरी तय करना पसन्द करते है।

चार प्रकार के प्रवाह जो पहले से बताऐ जा चुके हे में प्रतिशत भाग प्रवासियों का नाम से ग्रामीण से ग्रामीण, ग्रामीण से शहरी, शहरी से शहरी एवं शहरी से ग्रामीण नीचे बताये गये है तालिका न. 12.2 में जो 1981 के लिये पुरूष व स्त्री वर्ग के लिये अलग से है।

तालिका 12.2

1981 में चार प्रकार के प्रवास का प्रतिशत भाग (स्त्री व पुरूष में)

प्रवास के प्रकार	पुरूष	स्त्री
ग्रामीण से ग्रामीण	45.57	73.28
ग्रामीण से शहरी	30.00	12.45
शहरी से ग्रामीण	45.57	8.69
शहरी से शहरी	7.00	5.58
कुल	100.00	100.00

तालिका 12.2 से यह स्पष्ट है कि यह तालिका 12.2 की पुष्टि करती है। यह बताती है कि अधिकतर व्यक्ति ग्रामीण से ग्रामीण, प्रवास वाले सामान्यत: लघु दूरी की प्रकृति के होते है। इस प्रकार के प्रवाह में स्रोतों की प्रमुखता रहती है। यह इसकी भी पुष्टि करता है। स्त्री प्रवास का एक भाग जो ग्रामीण से ग्रामीण प्रवाह में योगदान करता है वह है शादी के रूप मे प्रवास। इसका कारण है कि लड़कियों की पास के गावों में शादी की जाती है।[1] तालिका 12.2 यह बतलाती है ग्रामीण से शहरी और शहर से शहर प्रवास का भाग पूरूष की जगह स्त्रोतों में अधिक पाया जाता है प्रवास का यह कारण सामान्यत रोजगार से जुड़ा है यह पुरूष प्रवास के भाग को बढ़ाने का कारण हो सकता है।

1981 की जनगणना में प्रथम बार प्रवास के प्रमुख कारणों के आधार पर प्रवासियों की तालिका बनाई गई। नीचे तालिका 12.3 में स्त्री व पुरूष के प्रतिशत भाग को पांच प्रमुख श्रेणियों में विभाजित करके बताया गया है।

तालिका 12.3

1981 में स्त्री पुरूष प्रवास का प्रतिशत भाग उनके प्रवास के प्रमुख कारण के अनुसार।

प्रवास के प्रकार	पुरूष	स्त्री
रोजगार	30.98	1.93
शिक्षा	5.36	0.83
परिवार गतिशीलता	30.23	14.49
शादी	3.06	72.36
अन्य	30.37	10.34
कुल	100.00	100.00

स्त्रोत: 1981 में भारत की जनगणना श्रेणी। प्रवासी तालिका भाग V तालिका D3

तालिका 12.3 यह स्पष्ट बताती है कि रोजगार ही पुरूष वर्ग के प्रवास का प्रमुख कारण है। स्त्रियों में फिर भी तालिका यह बताती है कि शादी ही प्रवास का प्रभावशाली कारण है।

बोध प्रश्न 2

1. भारत में आन्तरिक प्रवास के मुख्य लक्षण को समझाये?
2. दूरी के प्रवास के सन्दर्भ में भारत में प्रवास के मुख्य रूप कौन-कौन से है।
3. जिले में, अन्तर जिले (राज्य के अनन्द और अन्तर राज्य प्रवास से आप क्या समझते है, स्पष्ट करे।
4. श्रम के प्रवास की प्रक्रिया का अध्ययन करते समग्र प्रवास की, प्रवाहों की आवश्यकता क्यों पड़ती है।

---

1. डेविस के, पापुलेशन आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान प्रिन्सटन यूनिवर्सिटीज , प्रेस,1951, PP 110-113.

12.5 प्रवास के परिणाम

जब कभी भी मूल स्थान सै लक्ष्य स्थान की और प्रवास होता है तो दोनों स्थानों पर कुछ प्रभाव आवश्य पड़ते है । हर समाज के क्षेत्र पर इसके प्रभाग पते है और यह प्रभाव स्थान व दूरी के साथ अलग-अलग होते है । यद्यपि, आर्थिक प्रभाव, श्रम के प्रवास से प्रत्यक्षरूप से सम्बन्धित है ।

चूकी प्रवाह पुरूष प्रधान है इसलिये युवा व शिक्षित में गतिशीलता की ऊँची प्रवृति होती है और इसके मूल व लक्ष्य स्थान दोनों पर महत्वपूर्ण जनसंख्या व सामाजिक आर्थिक प्रभाव होते है । ये प्रभाव धनात्मक साथ ही ऋणात्मक होंगे ।

12.5.1 मूल स्थान पर प्रभाव

जैसा कि उपर बताया गया है कि प्रवास विशिष्ट स्वरूप वाला होता है । शिक्षित युवा पुरूष में अन्य के मुकाबले गतिशीलता की ऊँची प्रवृति होती है । इक्के परिणामस्वरूप मूल स्थान पर स्त्री पुरूष अनुपात स्त्री के पक्ष में जाता है । जैसा कि युवावर्ग के अधिक लोग बाहर प्रवास करे तो मूल स्थान पर बच्चों व बूढ़ों का अनुपात बढ़ जायेगा, इससे निर्भरता अनुपात (dependency-ratio) बढ़ जाता है । प्रवासी वर्ग सामान्यत : अधिक शिक्षित व उत्साही होता है अत : मूल स्थान अपने साहसी व उत्साही वर्ग को खो देता है । यही वर्ग ग्रामीण क्षेत्र में विकास का अग्रगामी और खोजकर्ता कहलाता है । अत: सामान्यत : उपर्युक्त बतायें कारण अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के लिये उत्तरदायी होते है । अन्य रूप से बाहर प्रवासी मूल स्थान पर धनात्मक प्रभाव ही डालते है ।

उदाहरण के लिये प्रवासी जो राशि भेजते है अपने मूल स्थानों पर वह कई अच्छे कार्यो में काम आती है जैसे शिक्षा, कृषि में नवीन उपकरण, अच्छे मकान और अच्छी स्वास्थ दशाऐं आदि । अर्ध रोजगार संबंधी बेरोजगारी के चलते, बाहर गेर प्रवासी, अपने प्रवासी स्थानों को मदद भेजते है एवं वहां के जनाधिक्य के दबाव को भी कम करते है । बाहर गये प्रवासी जो अनुभव लेकर लौटते है अपने मूल स्थानों पर वह भी धनात्मक प्रभाव डालते है ।

12.5.2 गंतव्य स्थान पर प्रभाव

गंतव्य स्थानों पर जब प्रत पहुँचते है वे भी प्रवासियों के प्रभाव से बच नही सकते है । सर्वप्रथम प्रवासी जब मकान, यातायात, शिक्षा और अन्य सुविधनो का उपयोग स्थानीय जनता के साथ करते है तो वहां पर आधारभूत सुविधाओं पर भारी दबाव उत्पन्न होता है । स्थानीय श्रम शक्ति में यह प्रतिस्पर्धा की शुरूआत करती है ।

धनात्मक प्रभाव अप्रवास के मूल स्थान पर यह सम्मिलित करते है कि सस्ता श्रम उपलब्ध होता है, द्वितीयक क्रियाऐं का विकास होता है ।

बोध प्रश्न 3

1. श्रम शक्ति का प्रवास मूल व गंतव्य स्थानों को कैसे प्रभावित करता है ।
2. अपने मूल स्थान पर बाहर प्रवास के कौन से जनसंख्या सम्बन्धित कारण होते है ।
3. गंतव्य स्थान पर प्रवास के धनात्मक व ऋणात्मक परिणामों की सूची बनाइये ।

12.6 सारांश

आधुनिक प्रवास मुख्य रूप से युवा पुरूष द्वारा रोजगार की तलाश में हुआ प्रवास है। आन्तरिक प्रवास का स्थान मुख्य रूप से ग्रामीणों से शहरी प्रवास दे, विशेष रूप से पुरूष वर्ग के मामले में। श्रम का आन्तरिक प्रवास मुख्य रूप से तब होता है जब शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के मध्य औसत मजदूरी में अन्दर हो। वे सभी तत्व जो एक व्यक्ति को बाहर प्रवास के लिये प्रेरित करते है तो धक्का 'Push' तत्व कहलाते है इसी तरह वे तत्व जो एक व्यक्ति को किसी स्थान की तरफ ले जाते है वे खींचने 'Pull' वाले तत्व है। मूल व लक्ष्य स्थान पर प्रवास के प्रभाव धनात्मक व ऋणात्मक दोनों होते है।

12.7 शब्दावली

प्रवास के प्रवाह (Steams migration) श्रम की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Production of labour) मजदूरी भिन्नता (Wage differintial) श्रम स्थापना (Labour-substitute) धक्का व खीचने वाले तत्व (Pull and Push factor) क्षेत्रीय में, अन्तर क्षेत्रीय (Intraregional and inter-rigional)

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

1. समीर अमीन, मोर्डन माइग्रेशन इन वेस्ट अफ्रीका लन्दन, ओक्सफोर्ड युनि. प्रेस 1974
2. यू.एन. डीटरमेरस एण्ड कोन्सीस्वेन्सेस आफ पापूलेशन ट्रेण्ड, पोपूलेशन स्टडीज न.50 न्यूयार्क, यू एन. 1973
3. लेविस. डब्लू. ए. "इकोनोमिक डवलपमेन्ट विद अनलिमिटेड सप्लाई आफ लेकर," मेन्वेस्टर स्कूल आफ इकानोमिक्स एण्ड सोसिपल स्टडीज मई 1954.
4. टोडारो म. इन्टनल माइग्रेशन इन डवलपिग कन्टरीज, साई.एल.ओ. जिनेवा 1973
5. टोरेजे. न. 'ए मोडल आफ लेवर माइग्रेशन इन लेस डवलपड कंट्रीज' अमेरिकन इकनोमिक रिव्यू मार्च 1969
6. डेविस. के. पोपूलेशन आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान प्रिन्सटन युनि प्रेस. 1951.
7. सेन्सेस आफ इण्डिया 1981, माइग्रेशन टेवल, पार्ट V सीरीज।
8. सेमुअल ए. स्टूफर. 'इन्टरवेनिज ओपोरजूनेटि स ए. थियोरी रिलेटिग मोबिलिटी एण्ड डिस्टेन्स. अमेरिकन सोसोलिजिकल रिव्यू वीलूम 5, 1940
9. रवनस्टीन इ.जी. द लोज आफ माइग्रेशन'' जनरल आफ रावल स्टेतीस्टीकल सोसाइटी .48 जून 1955
10. एवरेट एस.ली. 'ए थ्योरी आफ माइग्रेशन, डेमोग्राफी, 3; 1966
11. डोरथी. एस. थोमस एण्ड मुजनेट, साइगन 'पोपूलेशन रिजिद्रिव्युशन एण्ड इकोनोमिक ग्रेथ इन यूनाइटेड स्टेरस 3 वोल्यूम फिलाडेफीपर दी -अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसाइटी, 1957
12. कोनेल, जे. दासगुप्ता, बी. et, at. 'माइग्रेशन फ्रोम रन्लर एरिया 'द स्वीडेना फ्राम विलेज स्टडीज ।

13. गोसल, एस, एस, इन्टरनल माइग्रेशन इन इण्डिया, ए. रिजनल एनालिसिम इण्डियन जोगराफिकल जनरल वोल्यूम 36, 1961
14. ग्रीनूड, एम. 'एन एनालिसिव आफ इन्टरनल लेबर मोबिलिटी इन इण्डिया, एनालिसिस आफ जनरल आफ रिजनल साइन्सेस, न.1 1971
15. ओबिराय, ।ए.एस. और मनमोहन सिंह एच के माइग्रेशन। इन पन्जाबस ग्रीन रैवत्थूशन बेल्ट, इकानोमीक एण्ड पोलिटिकल बिकली ' 15 न. 13, 1960.
16. पटेल'. के. रन्लर लेबर इन 'इन्डस्ट्रीयल बोम्बे, बोम्बे पोपूलर प्रकाशन 1965.
17. ओबिराय ए. एस. प्रसार पी.एच. सरधना एम डी. डीटरमीनेन्टस एण्ड कोन्सीस्वेन्सेड आफ इन्टनल माइग्रेशन इन इण्डिया देहली, 1989 आक्सफोर्ड यूनर्वसिटी प्रेस

इकाई- 13

नियोजन हेतु श्रम की मांग एवं आपूर्ति के प्रक्षेपण की विधियां

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 प्रक्षेपण की विधियाँ

13.2.1 प्रवृति पद्धति

13.2.2 पतीपगमन एवं अन्य अर्थमिति/विधियां

13.2.3 आगत-निर्गत विधि

13.3 आगत-निर्गत मॉडल के मुख्य तत्व

13.4 सारांश

13.5 शब्दावली

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में श्रमशक्ति की प्रचुरता है । मानव पूँजी का समुचित उपयोग करने के लिए किसी भी देश के लिए उपलब्ध श्रमशक्ति का अनुमान लगाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस इकाई में आपका परिचय योजना निर्माण हेतु श्रमशक्ति के प्रक्षेपण की विभिन्न तकनीकों की जानकारी प्राप्त करना है । इस इकाई को पढने के बाद आप आगत 'निर्गत विधि की सहायता से श्रम शक्ति की मांग एवं पूर्ति के प्रक्षेपण से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

मुख्य अर्थशास्त्र के श्रमशक्ति की आपूर्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी प्राय. बहुत कम की जाती है क्योंकि इसमें आपूर्ति को मूल्य के एक काय के रुप में लिया जाता है । सामान्यत: इसका अर्थ श्रमशक्ति की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने अथवा निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता के रुप में इस परिकल्पना के आधार पर लिया जाता हैं कि सभी सापेक्षिक मूल्य तथा वेतन स्थिर रहते है, तथा बीच के सामान 'की अन्तरऔद्योगिक मांग भी स्थिर रहती है । अत : यह संकलग्ना अर्थशास्त्रीय होने के बजाय तकनीकी अधिक नजर आती है ।

यदि एक निश्चित प्रकार की श्रम शक्ति की अधिकता एवं कमी रहती है तो नियोक्ता को अपने पूंजीगत माल की संरचना को बदलना होगा । जिससे की कम आपूर्ति होने पर कम श्रम शक्ति का प्रयोग करेगा तथा अधिक मांग होने पर अधिक श्रम शक्ति का उपयोग करेगा । यदि यह तकनीक कारणों से कठिन हो तो उन वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होगी जो कि कम

आपूर्ति होने पर भी अधिक मंहगी श्रम-शक्ति का प्रयोग करते है । तथा इनके स्थान पर उन वस्तुओं को प्राथमिकता मिलेगी जिनकी अधिक आपूर्ति होती है तथा कम श्रम शक्ति लगी होती है ।

किसी भी अर्थव्यवस्था में श्रम शक्ति की अधिकता या कमी उसकी वृद्धि को प्रभावित करती है । अत इस समस्या का यदि उचित समय पर ध्यान रखा जाए तो अर्थव्यवस्था के उन्नयन में काफी सहायता मिलेगी । श्रम शक्ति की भविष्य की मांग की पूर्ति हेतु समय के साथ ही प्रशिक्षण तथा शैक्षिक कार्यक्रमों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । यह तभी सम्भव है जब कि हमें अपनी. भविष्यवाणी की आवश्यकताओं की स्पष्ट समझ हो । किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए श्रम शक्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना इस प्रकार से हमारी नियोजन व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है । क्योंकि श्रम शक्ति की आवश्यकता अर्थव्यवस्था की निर्गत (output) से सम्बन्धित है । इसलिए विभिन्न क्षेत्रों हेतु श्रम शक्ति के स्तरों की आवश्यकता का ज्ञान भी इस सम्बन्ध में काफी महत्वपूर्ण है । प्रत्येक क्षेत्र के लिए श्रम शक्ति की तकनीकी आवश्यकता मुख्यत. विभिन्न क्षेत्रों की भविष्य की निर्गतता पर निर्भर करती है । इसलिए एक क्षेत्र हेतु आवश्यक भविष्य निर्गतता उस क्षेत्र की भावी अन्तिम मांग से अधिक होगी । यह अतिरिक्त उत्पादन अन्तर्क्षेत्रीय उत्पादनों हेतु आवश्यक होगा । यदि किसी एक क्षेत्र हेतु एक इकाई की निर्गतता को उत्पादित करना है तो उस क्षेत्र का समग्र अपेक्षित उत्पादन एक इकाई से अधिक होगा । इस क्षेत्र के अतिरिक्त उत्पादन की दूसरे सैक्टर के उत्पादन हेतु आवश्यकता होगी जो कि अन्त में उपलब्ध नहीं होगा तथा वह दूसरे सेक्टर हेतु केवल आगत (In put) बन कर रह जायेगा,' और स्पष्ट रुप से कहें तो यदि किसी उद्योग की एक ईकाई की निर्गतता दूसरे सैक्टर की निर्गतता के साथ उत्पादित की जानी है । तो आपको उद्योग की एक ईकाई की निर्गतता तथा उद्योग की कुछ अन्य निगर्तता की आवश्यकता होगी तथा इसके अलावा कृषि की एक ईकाई को उत्पन्न करने हेतु उद्योगों की कुछ निर्गतता चाहिए तथा परिवहन और अन्य क्षेत्रों की भी एक इकाई चाहिये । अत : उद्योग की समय निर्गतता उसी अन्तिम एक इकाई की माग की निर्गतता से अधिक होगी ।

अत: अन्तर्क्षेत्रीय ढांचे में मुख्य चीज यह है कि आप अर्थव्यवस्था के विभिन्न सैक्टरों की अन्तिम आवश्यकता को निश्चित कर सके । एक बार अन्तिम क्षेत्रीय मांग यदि निश्चित हो गयी तो इनपुट-आउटपुट मॉडल की सहायता से समग्र क्षेत्रीयता की निर्गतता को निकाला जा सकता है । अन्तिम क्षेत्रीयता की मांग को निकालने के पश्चात श्रमिक आवश्यकता को निकाला जा सकता है । इसके लिए क्षेत्रीयता की मांग को क्षेत्रीय श्रम कोफीसियेन्ट (coefficients) से गुणा करना होगा । इस श्रमिक कोफीसियेन्ट-को आप प्रत्येक क्षेत्र में प्रति इकई श्रम की आवश्यकता भी कह सकते है ।

13.2 प्रक्षेपण की विधियाँ (Method of Projection)

किसी घटना के भविष्य के बारे में जानना हमेशा से वैज्ञानिक खोज का एक महत्वपूर्ण पक्ष रहा है । हम किसी भी घटना के भविष्य को मुख्यत : दो कारणो से जानना चाहते है ।

1. यदि यह घटना नियंत्रण से बाहर जा रही है तो उसमें परिमार्जन करना या यह पता लगाना कि यह घटना अब कुछ कारणों से उपयुक्त नहीं रह गयी है ।
2. भविष्य की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में नियोजन करना ।

चाहे उद्देश्य कोई भी रहा हो जिसके लिए भविष्य में प्रक्षेपण तैयार किया जा रहा है, उस प्रक्षेपण के पीछे कुछ निर्देशनात्मक मान्यताएं होंगी, अत: विभिन्न प्रक्षेपण विभिन्न मान्यताओं के साथ बनाये जाते है। विभिन्न मान्यताओं के आधार पर बनाये प्रक्षेपणों की विभिन्न पद्धतियां निम्नलिखित है।

1. प्रवृति पद्धति (Trend Method)
2. प्रतीपगमन पद्धति (Regression Method)
3. आगत-निर्गत पद्धति (Input-Output Method)

13.2.1 प्रवृति पद्धति (Trend Method)

प्रक्षेपण निर्माण की प्रवृति पद्धति के अन्तर्गत हम यह मूल मान्यता लेकर चलते है कि घटना की भूतकालीन प्रवृति भविष्य में भी जारी रहेगी। यह मान्यता तभी बनाई जा सकती है जबकि यह सुनिश्चित हो कि घटना के निर्धारक कारक बदलेंगे नहीं। कई स्थिति ऐसी जटिल होती है कि इसके निर्धारकों की पूर्ण जानकारी नहीं होती और हम यह निष्कर्ष निकालते है कि भूत में जो प्रवृतियां रही है वे भविष्य में भी रहेंगी। विभिन्न प्रवृत्तियों को जानने के लिए जो तरीके अपनाये जाते है, वे निम्न है।

(1) रेखाचित्र प्रवृति (Graphic Method)

(2) बदलती औसत विधि (Moving Average Method)

(3) कर्व फिटिंग विधि (Curue Fitting)

13.2.2 प्रतीपगमन एवं अन्य अर्थमितिय पद्धतियाँ

कर्व फिटिंग मेथड एक प्रतीपगमन समीकरण है जो कि निर्भर चर तथा समय के रुप में स्वतंत्र चर के मध्य फिट होता है। यदि आप समय के अलावा कोई अन्य स्वतंत्र चर रखते है तो हम वर्ग प्रतीपगमन समीकरण विधि का प्रयोग कर सकते है। यह समीकरण विभिन्न प्रकार के हो सकते है। जैसे-

1. रेखीय (Linear)
2. अरेखीय(Non Linear)
3. द्वविचलन (Bivariat)
4. बहु वचन (Multivariat)
5. युगपत अर्थमितीय समीकरण (Simultaneons Econometric Equations)

13.2.3 आगत - निर्गत विधि (Input Output Method)

यह एक विशिष्ट प्रणाली है जिसमें अन्तिम क्षेत्रीय मांग के आधार पर विभिन्न सैक्टरों के निर्गत का अन्दाजा लगाया' जाता है। यहां पर हमें अन्तिम मांग तथा समग्र निर्गत के बीच

जो अन्तर है वह हमें पता होना चाहिए। समग्र निर्गत में अन्तिम मांग के साथ साथ अन्तर औद्योगिक उपभोग के लिए आवश्यक निर्गत भी समाहित होता है।

यहां पर अन्तिम क्षेत्रीय मांग को बाह्य रुप से दर्शाया गया है जिसकी किसी अन्य विधि से भी भविष्यवाणी की जा सकती है।

बोध प्रश्न - 1

1. भविष्यवाणी (प्रक्षेपण) तथा अनुमान में अन्तर बताइये ।
2. मानव शक्ति नियोजन का अर्थशास्त्रीय विकास के संगणक के रुप में महत्व समझाइये ।'
3. मानव शक्ति को प्रक्षेपित करने की विभिन्न विधियां कोन-कोन है । इन विधियों के प्रमुख दिशा निर्देशों का वर्णन कीजिये ।
4. प्रवृत्ति विधि प्रतिगमन विधि से किस प्रकार भिन्न है । ।

13.3 आगत - निर्गत मॉडल के मुख्य तत्व

इस मॉडल का सार यह है कि किसी भी अर्थव्यवस्था के विभिन्न सैक्टरों के उत्पादन आपस. में एक दूसरे पर निर्भर होते है । किसी भी उद्योग का निर्गत उसी उद्योग तथा उससे सम्बन्धित अन्य उद्योगों की आगत पर निर्भर करता है इसलिए एक सेक्टर के निर्गत को तय करने समय हमें इन अर्न्तऔद्योगिक सम्पादकों (लेन-देन) को भी ध्यान में रखना होगा ।

इनपुट-अऊटपुट विश्लेषण का सार यह है कि दिये गये कल्पित तथा अन्तिम मांग के सन्दर्भ में प्रत्येक अर्न्तजातीय सेक्टर का निर्गम बहु सम्मागीय मांग के योग द्वारा निश्चित होगा ।

1. मान लरजिये किसी अर्थव्यवस्था को ' 'N " सैक्टर में बाटा जा सकता है ।
2. Xi सेक्टर i अपेक्षित उत्पादन है (ई=1,2,.....,N)
3. Xij सेक्टर i की Xj अमाउन्ट को जो कि सेक्टर J का निर्गत, को उत्पादित करने की आवश्यकता है ।
4. पहले सेक्टर की सामग्रियों का F1 अन्तिम मांग का अमाउन्ट है ।

Xi= Xi1+Xi2+Xi3+.....+Xin+Fi

यदि हम यह मान लें कि अन्तर्क्षेत्रीय आवश्यकता AIJ निग्रतता स्तर के साथ नहीं बदलती है तो इसे निम्न रुप से लिखा जा सकता है ।

$X_1 = (X_{11}+X_{12}+X_{13}+.....+X_{in})+F_1$

$X_2 = (X_{21}+X_{22}+X_{23}+.....+X_{2n})+F_2$

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

$X_n = (X_{ni}+X_{n2}+X_{n3}+.....+X_{nn}+ F_n$

यदि इसे और सरल रुप में देखें तो J सेक्टर की एक ईकाई का उत्पादन करने के लिए हम aij को पहले सेक्टर की आवश्यकता के रुप में ले सकते है इस अवस्था में j सेक्टर के xj अमाउन्ट को उत्पादित करने के लिए xij जो कि 1st, सेक्टर की आवश्यकता है को निम्न रुप से भी प्राप्त किया जा सकता है, aij x 1 इस समीकरण. एक को निम्न रुप में भी लिखा जा सकता है ।

$X_1 = (a_{11}\times 1+a_{12}\times 2+a_{13}\times 3+.....F_1$

$X_1 = (a_{12}\times 1+a_{22}\times 2+a_{23}\times 3+.....F_2$

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

$X_n = (a_{n1}\times 1+a_{n2}\times 2+a_{n3}\times 3+.....F_n$

समीकरण 2 के उपयुक्त सैट को निम्न मेंटिक्स के रुप में भी लिखा जा सकता है।

X+AX+F.....3

जहाँ

$$X = \begin{bmatrix} X_1 \\ X_2 \\ \\ \\ \\ \\ X_m \end{bmatrix} A = \begin{bmatrix} a_{11} & a_{12} & a_{13} & ..... & a_n \\ a_{21} & a_{22} & a_{23} & ..... & a_{23} \\ : & : & : & & : \\ : & : & : & & : \\ : & : & : & & : \\ : & : & : & & : \\ a_{n1} & a_{n2} & a_{n3} & .....ann & \end{bmatrix} and\ F = \begin{bmatrix} F_1 \\ F_2 \\ : \\ : \\ : \\ : \\ F_n \end{bmatrix}$$

F. को क्षेत्रीय निर्गत के सदिश वाहक (Vector) के रूप में जाने जाता है ।

F. को संभागीय अन्तिम मांग के सदिश वाहक के रूप में जाना जाता है ।

A. को आगत निर्गत कोएफिसियन्ट मैटिक्स या तकनीकी कोएफीसियेरे - मैटिक्स के रुप में जाना जा सकता है।

जिसे मेट्रिक्स बाज गणित का थोड़ा ज्ञान है वह समीकरण 3 को निम्न रुप में लिख सकता है।

[X-AX] = F

OR

[1-A] X = F

OR

$X = [1-A]^{-1} F$ -(4)

समीकरण 4 सैक्टोरियल निर्गत X तथा अन्तिम मांग F के मध्य आगत निर्गत कोएफीरिसेन्ट मैटिक्स A के मध्य महत्वपूर्ण सम्बन्धों को स्थापित करता है।

यदि एक संभागीय अन्तिम मांग को प्रक्षेपित किया गया है तो उतना ही उत्पादन करना अपेक्षित नहीं होगा। वास्तविक उत्पादन इस प्रक्षेपित मांग से अधिक होगा क्योंकि उसका अन्तर औद्योगिक उपभोग भी होगा। इस प्रकार से आगत निर्गत सम्बन्ध दी गई प्रक्षेपित संभागीय अन्तिम मांग के सन्दर्भ में समग्र संभागीय निर्गत की भविष्यवाणी करने में सहायता करेगा।

उदाहरण

यदि किसी' अर्थव्यवस्था में तीन संभागीय कृषि, निर्माण तथा सेवा 1000 रुपये लागत के कृषि उत्पादन को बनाना चाह रहे है तो कृषि निर्माण तथा सेवा का इनपुट क्रमश. 250 रुपये, 250 रुपये तथा 80 रुपये होगा। इसी तरह से द्वितीयक सैक्टर के 1150 रुपये के निर्गत के लिए. उपर्युक्त वर्णित सैक्टरों का इनपुट क्रमश: रुपया 150 तथा रुपया 120 होगा। सेवा सेक्टर के 750 रुपये के निर्गत के लिए उपर्युक्त सैक्टरों में सै क्रमश: 50 रुपये 150 रुपये तथा 50 रुपये का इनपुट आपेक्षित होगा। इसी तथ्य को निम्न तालिका कें द्वारा भी दर्शाया जा सकता है:-

क्रय विक्रय	कृषि	निर्माण	सेवा	क्रय अन्तिम मांग	अन्तिम निर्गत	(प्रयोग किये गये समान साथ
कृषि	250	300	50	400	1000	
निर्माण	250	150	150	600	1150	
सेवा	80	120	50	500	750	
समय निर्गत	1000	1150	750		2900	

यदि हम इस तालिका को पंक्ति (Row) के अनुसार देखें तो हमें प्रत्येक सेक्टर के आगत के सम्बन्ध में जानकारी मिल जायेगी, जो कि विभिन्न सैक्टरों के (बिक्री) निर्गत को उत्पादित करने से सम्बन्धित होगी। यदि इसे हम कॉलम के अनुसार देखें तो यह हमें प्रत्येक सेक्टर में (खरीददारी) आने वाले विभिन्न सैक्टरों के इनपुट की जानकारी देगी।;

यदि हम प्रत्येक कॉलम के तीनों मूल्यों को तालिका में नीचे दी गई समग्र निर्गत मूल से विभाजित कर दे तो हमें आगत निर्गत कोएफीसियेन्ट निम्न रुप से प्राप्त होगा।

आगत निर्गत कोएफीसियेप्ट-2 मैटिक्स

खरीददारी

विक्रय	कृषि	निर्माण	सेवा
कृषि	0.25	0.25	0.08
निर्माण	0.26	0.13	0.13
सेवा	0.07	0.20	0.07

इस मैटिक्स की सहायता से हम विभिन्न सेक्टरों की प्रक्षेपित अन्तिम मांग हेतु विभिन्न सेक्टरों के समग्र उत्पादन समीकरण चार का प्रयोग करके पता सकते है।

उदाहरण के लिए यदि तीनों सेक्टरों की अन्तिम मांग को 500 रुपये 7०० रुपये तथा 550 रुपये के रुप में प्रक्षेपित किया गया है तो अन्तिम मांग सदिश वाहक (Vector) की गणना समीकरण $X=(1-A)^{-1}F$ के रूप में होगी

जहाँ $(1-A)^{-1} - \begin{bmatrix} 100 \\ 010 \\ 001 \end{bmatrix} - \begin{bmatrix} 0.25 & 0.26 & 0.07 \\ 0.25 & 0.13 & 0.20 \\ 0.08 & 0.10 & 0.07 \end{bmatrix}^{-1}$

$$(1-A)^{-1} = \begin{bmatrix} 0.75 & -.26 & -.07 \\ -.25 & 0.87 & -.20 \\ -.08 & -0.10 & .93 \end{bmatrix}^{-1} = \begin{bmatrix} 1.5158 & .4780 & .2169 \\ .4773 & 1.3291 & .3217 \\ .1817 & .1848 & 1.1285 \end{bmatrix}$$

$$X = (1-A)^{-1} F = \begin{bmatrix} 1.5158 & .47810 & .2169 \\ .4773 & 1.3291 & .3217 \\ .1817 & .1840 & 1.1285 \end{bmatrix}^{-1} \times \begin{bmatrix} 500 \\ 700 \\ 550 \end{bmatrix} \times \begin{bmatrix} 1211 \\ 1330 \\ 840 \end{bmatrix}$$

यदि उत्पादन को उत्पादित करने के लिए प्रत्येक सेक्टर में श्रम की आवश्यकता को रुपयों में दर्शाया गया है तो हम किसी भी अर्थव्यवस्था के प्रक्षेपित अन्तिम सेक्टर की समग्र श्रम की आवश्यकता की भी गणना कर सकते है।

(if L^{*}=l1l2.....Ln) विभिन्न सैक्टरों मैं इकाई रुपये को उत्पादित करने के लिए श्रम की आवश्यकता है तथा ($X^{*}=X_1X_2$——X_{n1}) अन्तिम सैक्टोरियल मांग सैक्टर है तो समग्र श्रम की आवश्यकता को निम्न रुप में प्रक्षेपित किया जा सकता है।

$L^1X=(1\ 1- - -\ 1n) \begin{bmatrix} X1 \\ X2 \end{bmatrix}$=n<Li x i

उदाहरण

यदि तीनों क्षेत्रों में अन्तिम सैक्टोरियल मांग वेक्टर क्रमश (1211, 1 330, 840) है तथा तीनों सेक्टरों में प्रति इकाई उत्पादन में श्रम की आवश्यकता क्रमश (.42, 51, .66) है तो श्रम की समग्र आवश्यकता निम्न होगी।

L_1x = (.42,.51.66) $\begin{bmatrix} 1211 \\ 1330 \\ 840 \end{bmatrix}$

=[.42 × 1211 = .51 × 1330 + .66 × 840]

= [508.6 + 678.3 + 554.1] = 171.0

बोध प्रश्न 2

1. तकनीकी कोएफीसियेन्ट मैटिक्स कों परिभाषित कीजिए तथा इसमें अर्न्तनिहित मान्यताओं को बताईये।

2. एक सेक्टर में एक इकाई के निर्गत उत्पादन के लिए क्या उसी सेक्टर के एक इकाई से अधिक आऊटपुट निर्गत की आवश्यकता होगी।
3. मानवशक्ति नियोजन के उपकरण के रुप में इनपुट - आउटपुट विधि के गुण तथा" दोषों की विवेचना कीजिए।
4. निम्न इनपुट आऊटपुट तालिका से समग्र मांग वैक्टर तथा उसे लिए आवश्यक श्रम की गणना कीजिए।

		I	II	(अंतिम भाग) F
क्षेत्र (सेक्टर)	I	20	80	50
	II	60	40	60
श्रम	40		20	

IF $A = \begin{bmatrix} .204 & .089 \\ .037 & .441 \end{bmatrix}$ $F = \begin{bmatrix} 7611 \\ 2246 \end{bmatrix}$ Find $\times = ?$

मानव श्रम आपूर्ति (Man Power Supply) ।

मानव शक्ति आपूर्ति का जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ा घनिष्ट सम्बType equation here.न्ध है। हमें यह अवश्य समझना चाहिए कि जनसंख्या वृद्धि में दो समय बिन्दु समाहित होते है। जनसंख्या वृद्धि को मानव श्रम की बढ़ोत्तरी के रुप में पूर्णता नहीं लिया जा सकता क्योंकि इसमें बच्चे तथा वृद्ध भी सम्मिलित होते है जो कि श्रम शक्ति का हिस्सा नहीं होते।

यद्यपि श्रम शक्ति के लिए कोई आयु सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि 15 से 59 वर्ष के बीच लोगों की शक्ति का प्रयोग श्रम के रुप में किया जा सकता है। इसलिए श्रम शक्ति की गणना सम्पूर्ण जनसंख्या के बजाए इसी आयु वर्ग पर ध्यान दिया जाना चाहिए इस प्रकार से श्रम शक्ति की गणना में वो लोग बाहर होने जो 15 वर्ष से कम आयु के है या 59 वर्ष से अधिक आयु के है या, उस विशिष्ट समय वे बाहर रहते है मान लरजिये कि हमें आने वाले दस ।वर्ष के समय के लिए इन परिवर्तनों का अध्ययन करना है तथा वहां आब्रजन का 0 है तो हमें सम्पूर्ण श्रम शक्ति की गणना में जो 5 से 14 वर्ष के बच्चे होगा जो 49 से 59 वर्ष के बीच लोग है- उन्हें भी बाहर रखना होगा क्योकि यह अनुमान आने वाले 10 वर्षो के लिए लगाया जा रहा है। इस प्रकार की गणना के लिए हमें समय के प्रारम्भ का जनसंख्या आयु वितरण की तालिका तथा विशिष्ट आयु के जीवित व्यक्तियों का अनुपात चाहिए।

उदाहरण

निम्न तालिका में जनसंख्या का आयु वितरण दस वर्षीय विशिष्ट आयु के जीवित व्यक्तियों के अनुपात 1990 के सन्दर्भ में सर 2000 हेतु श्रम शक्ति का अनुमान दिखाया गया है।

आयु वर्ग	0-10	10-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60
जनसंख्या							

(हजार में)							
10 वर्षीय	100	80	50	40	20	10	5
जीवत अनुपात (Survival Ratios)	0.91	0.92	0.98	0.98	0.985	0.800	-

आयु वर्ग	जनसंख्या 1990 में (हजार में)	10 वर्षीय जीवित व्यक्तियों का अनुपात	जनसंख्या 2000 में (हजार में)
0-10	100	.910	.910 × 100 = 91
10-20	80	.920	.920 × 80 = 73.6
20-30	50	.980	.980 × 50 = 49.4
30-40	40	.985	.985 × 40 = 39.4
40-50	20	.985	.985 × 20 = 8.0
50-60	10	.800	.800 × 10 = 8.0
60+	5	-	

15.59 आयु वर्ग की जनसंख्या

इस प्रकार से हमें पता चलता है कि 1990 में जो व्यक्ति 0 से 10 आयु वर्ग में थे वे दस वर्ष जीवित रहने के पश्चात् सर 2000 में 10 से 20 आयु वर्ग में आ गए। इसी प्रकार 10 वर्ष पश्चात सभी आयु वर्गों मैं एक दशक की बढ़ोतरी हो गई। 40 से 50 आयु वर्ग वाले व्यक्ति 50 से 60 आयु वर्ग मैं आ गए तथा 50 से 60 आयु वर्ग के लोग 60+ होकर श्रम शक्ति से बाहर हो गए। इस प्रकार 1998 की जनसंख्या के 15 से 59 आयु वर्ग की श्रम शक्ति सर 2000 में 1/2 80+50+40+20+10=160 लाख होगी। यहां हम यह मानकर चले कि दस से बीस वर्ष के आयु वर्ग की जनसंख्या का वितरण एक समान होगा। इस प्रकार 15 से 19 वर्ष के बीच की जनसंख्या 10 से 20 वर्ष के आयु वर्ग की जनसंपर्क की आधी होगा । 15 से 59 आयु वर्ग की सर 2000 में प्रक्षेपित जनसंख्या - 1/2क्ष91+73.6+49.4+39.4+19.7=227.6 लाख होगी।

जन्म दर के सम्बन्ध में अनुमान (प्रक्षेपण)

क्योंकि श्रम शक्ति में 15 से 59 वर्ष के बीच के व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया जाता है इसलिए श्रम शक्ति के अनुमान में 14 वर्ष से कम तथा 60 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों को छोड़ दिया जाता है, लेकिन यह कभी तक सम्भव है जबकि हमें अनुमान 14 वर्ष के लघु समय की अवधी के लिए ही लगाने हों । जब हमें 14 वर्ष से अधिक समय के लिए अनुमान लगाना होता है तो हम प्रत्येक वर्ष में जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या, प्रत्येक वर्ष जीवित रहने वाले बच्चों की संख्या को ध्यान में रखते है, तथा जब वे 14 वर्ष के हो जाते है तो उनकी गणना श्रम शक्ति में कर लेते है । यह प्रक्रिया काफी लम्बी है तथा इसमें पुरुष एवं महिला जनसंख्या का अलग अलग आयु वितरण तथा विशिष्ट आयु जन्म दर जो कि केवल

महिला जनसंख्या पर लागू होगी, को ध्यान में रखना होगा, कि उसमे पिछले 5 वर्ष में कितने बच्चों को जन्म दिया है । इस सम्बन्ध मे हमें 5 वर्षीय या 10 वर्षीय बच्चों के जीवित रहने के आकड़ों को भी ध्यान में रखना होगा जिससे कि 0 से 5 या 0 से 10 वर्ष के आयु वर्ग का निर्धारण हो सके। ।

उदाहरण

एक क्षेत्र की जनसंख्या के आयु वितरण (1990) को 5 वार्षिक जीवित रहने के अनुपात (महिला-पुरुष दोनों) तथा विशिष्ट आयु जन्म दर के पर 1985 में श्रम शक्ति की गणना तथा 0 से 4 वर्ष के आयु वर्ग की गणना मानते हुए की इस अवधि में कोई आवजन नहीं हुआ।

आयु वर्ग	0-4	5-9	10-14	15-19	20-24	25-29	30-34	35-39	40-44	45-49	50-54	55-59	60-64	65+
जनसंख्या M	60	40	45	40	35	30	20	15	10	5	5	2	2	7
हजारों में F	50	50	45	40	30	25	15	15	10	3	2	2	2	7
पाँच वर्षो मे जीवित रहने का अनुपात	0.7	.93	.98	.97	.96	.95	.95	.94	.94	.93	.90	.87	.80	.50
विशिष्ट आयुजन्म दर (ASBR)	-	-	-	.07	.17	.21	.20	.15	.07	.03	-	-	-	–

जन्म से 0-4 आयु वर्ग में जीवित रहने की संभावना .86 है तथा जन्म के समय लिंग अनुपात प्रत्येक 100 लड़कियों पर 106 लड़कों का होता है।

आयु वर्ग	जनसंख्या1990 में पुरुष M	महिला F	योग	पांच वर्षो में रहने का अनुपात M+F	जनसंख्या 1995 में M+F	विशिष्ट आयु जन्म दर ASBR	जन्म 1990-95
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)=(4)X(5)	(7)	(8)=(3)X(7)X5
0-4	60	50	110	0.70	82.99	-	-
5-9	40	50	90	0.93	77.0	-	-
10-14	45	45	90	0.98	83.7	-	-
15-19	40	40	80	0.97	88.2	.07	2.8X5
20-24	35	30	65	0.96	77.6	.17	5.1X5
25-29	30	25	55	0.95	62.4	.21	5.3X5
30-34	20	15	35	0.95	52.3	.20	3.0X5
35-39	15	15	30	0.94	33.3	.15	2.3X5
40-44	10	10	20	0.94	28.8	.07	2.3X5
45-49	5	3	8	0.93	18.8	.03	0.1X5
50-54	5	2	7	0.90	7.4	-	-

55-59	2	2	4	0.87	6.3	-	-
60-64	7	7	4	0.80	3.5	-	-
65+	7	7	14	0.50	-	-	-
							19.3X5=96.5

1990 से 1995 के जन्म की संख्या पो हेतु 1990 की महिला जनसंख्या को विशिष्ट आयु जन्म दर से गुणा कर दिया गया है। ये जन्म 5 वर्ष में हुए परिवर्तनों को बतायेंगे। इस अवधि के जन्मों को 5 से गुणा करके (19.3X5=96.5, जन्म) गणना प्राप्त की जा सकती है। इस अवधि के जन्मों को 0 से चार वर्ष के आयु वर्ग तक जीवित संख्या 0.86 से गुणा करके (96.5X.86=82.99 लाख) इस सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है। इस अवधि में हुए जन्मों में कितनी' महिला है और कितने पुरुष, इसका पता निम्न समीकरण के प्रयोग द्वारा किया सकता है

महिला जन्म = $\frac{1 \text{ लाख}}{1+\text{लिंग अनुपात}}$ = 82.99 x $\frac{1}{1+1.06}$ (लाख) =82.99x $\frac{1}{2.06}$ = 40.29 (लाख)

अत: पुरुष = 82.99 - 40.29=42.70 (लाख) इस अवधि की श्रम शक्ति की गणना निम्न प्रकार से हो सकती है, सन् 1990 में 15 से 59 आयु वर्ग की जनसंख्या होगी 80+65+55+35+30+20+8+7+4=304 (लाख), सन् 1995 में यह संख्या 88.2+77.6+62.4+52.3+33.3+28.8+18.8+7.4+6.3=375.1 लाख होगी।

नोट :- गणना को सरल बनाने के लिए इनमें से कुछ बिन्दुओं को हटा दिया गया है यह बिन्दु निम्नलिखित हो सकते दै-

1. 1998 से 1995 के बीच हुए जन्मों को (ASBR) विशिष्ट आयु जन्म दर (Age Specific Birth Rate) तथा 1998 और 1995 की महिला जनसंख्या के औसत से गुणा करके पता लगाया जा सकता है।
2. 1999 की जनसंख्या के आधार पर महिला तथा पुरुषों की अलग-अलग जनसंख्या की गणना की जा सकती है उसके लिए महिला नवा पुरुषों के जीवित रहने के अनुपात को ध्यान में रखना होगा।

13.4 सारांश :

श्रम शक्ति की मांग और पूर्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना नियोजन अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण भाग है। श्रम शक्ति का अनुमान प्रवृत्ति विधि, प्रतिगमन पद्धति तथा आगत-निर्गत विधि के द्वारा पता लगाया जा सकना है। श्रम की आपूर्ति समाज की आयु संरचना विशिष्ट आयु वर्ग में जीवित रहने की दर तथा विशिष्ट आयु जन्म दर पर निर्भर करती है।

13.5 शब्दावली

प्रवृत्ति, बदलना औसत, प्रतिगमन समीकरण, द्विविचलन व बहुविचलन, रेखीय, मॉडल, आगत गिर्नत मॉडल, तकनीकी सारिणी (मैट्रिक्स) अर्न्तऔद्योगिक सम्बन्ध, सदिश

प्रवाह, मैट्रिक्स ऑपरेशन- अन्तिम मांग वेक्टर, समग्र मांग वैक्टर, विशिष्ट आयु में जीवित रहने वाले व्यक्तियों का अनुपात, विशिष्ट आयु जन्म दर जीवित अनुपात, लिंग अनुपात।

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अहमद बी और क्लांगे, एम. (सं.) दी प्रैक्टिस ऑफ मैनपॉवर फोराकास्टिंग कलैक्शनए ऑफ केस स्टेडिज, ऐल्सेवियर साईन्टीफिक पब्लिशिंग कम्पनी एम्सस्टेररडम, लन्दन, न्यूयार्क, 1973
2. मेहता, बी.सी, मैथमेटीकल इकोनॉमिक्स, माईक्रो इकोनामिक मॉडल्स, सुल्तान चंद एंड संस 1987 ।
3. मिश्रा बी.डी एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ पॉपुलेशन, साउथ ऐशियन प्रा लि., नई दिल्ली, 1982 ।

इकाई- 14
रोजगार सृजन कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भारत में बेरोजगारी का स्वरूप

14.3 भारत में बेरोजगारी के अनुमान

14.4 भारत में रोजगार की उपनितियॉ

14.5 रोजगार संरचना

14.6 भारत में बेरोजगारी संबंधी मुख्य लक्षण

14.7 रोजगार बढ़ाने संबंधी सरकारी नीति

14.7.1 रोजगार सृजन की विभिन्न योजनाएं

14.7.2 रोजगार बढ़ाने के कार्यक्रम

14.8 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम

14.8.1 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम - लक्ष्य एवं उपलब्धि तथा कमजोरियां

14.8.2 राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम

14.8.3 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की आलोचनात्मक समीक्षा

14.8.4 जवाहर रोजगार योजना

14.8.5 जवाहर रोजगार योजना की प्रगति की समीक्षा

14.9 रोजगार प्रेरित विकास रणनीति

14.10 ग्रामीण रोजगार के लिए नई रणनीति

14.11 रोजगार नीति में परिवर्तन और जनशक्ति आयोजन हेतु

14.12 सारांश

14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

14.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

किसी देश का आर्थिक विकास उस देश के प्राकृतिक साधन, मानवीय साधन, पूँजी व तकनीकी ज्ञान की क्रिया प्रतिक्रिया पर निर्भर है।" मानवीय साधन प्राकृतिक का विदोहन करते है और अर्थ-व्यवस्था के विकास की गति देते है परन्तु विकासशील देशों जिसमें भारत भी सम्मिलित है की मुख्य समस्या सभी काम वालों को काम देना है। हमारे देश में जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है उसके अनुपात में रोजगार नहीं बढ़ पा रहे है अत: बेकारी अपने विभिन्न कार्यक्रम चला रही है जिससे बेकार हाथों को काम मिल सके ये योजनाएं अपना कितना प्रभाव डालने में समर्थ है इसका भी मूल्यांकन होना ही चाहिए । हम इस अध्ययन में

रोजगार सृजन, रोजगार सृजन के विभिन्न कार्य और उनका मूल्यांकन तथा बजट 1999 मैं घोषित तथा अप्रैल 1999 से कार्य रूप में परिणित स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना आदि का भी अध्ययन करेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

भारत एक विकासशील देश है जहां जनसंख्या का बाहुल है पिछले दशकों में जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है परन्तु रोजगार में वृद्धि धीरे-धीरे हो रही है इसलिए बेकारी विकराल रूप धारण कर रही है । रोजगार की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को है । मनुष्य के जीवन की कुछ मूलभूत आवश्यकताएं है जिनकी पूर्ति के लिए उसे आय चाहिए और आय तभी प्राप्त होगी जब रोजगार मिलेगा । आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनों के विदोहन हेतु विकासशील देशों में लोगों को रोजगार मिलना ही चाहिए । समाज में भी तभी शान्ति रह सकता है जब सभी अपने-अपने रोजगार में लगे रहें, अन्यथा खाली दिमाग शैतान का घर वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है । खाली पेट के, लिए कोई नियम कानून नहीं होता कहा भी जाता है भूखे भजन न होई गोपाला' भूखा व्यक्ति अपने उदर की ज्वाला की शान्ति के लिए कोई भी सही गलत काग कर सकता है चोरी डकैती लूट मारधाड सभी कुछ सम्भव है इससे अशान्ति उत्पन्न हो जाती है । राजनीतिक स्थिरता के लिए भी सभी लोगों को कामकाज मिलना आवश्यक है अन्यथा सत्ताओं तक में परिवर्तन सम्भव है । रोजगार का सृजन हमारे चाहने मात्र से नहीं हो सकता इसके लिए तो विकास की प्रक्रिया तेज करनी पड़ती है । विकास के मार्ग में अवरोधक तत्वों पर नियंत्रण करना होता है । प्रत्येक देश में भोगोलिक आर्थिक मानवीय विशेषताएं अलग अलग प्रकार की है इस कारण विकासशील देश विकसित देशों का अंधानुकरण करके भी रोजगार सृजन नहीं कर पाते । प्रत्येक देश की अपनी विशेषताओं को देखते हुए अपने हिसाब से रोजगार कार्यक्रम के बारे में जानकारी लेने से पहले यह जान लें कि भारत में बेकारी का स्वरूप क्या है?

14.2 भारत में बेरोजगारी का स्वरूप

भारत का अल्प-विकसित किन्तु विकास समान देश है इस कारण, यहाँ बेरोजगारी का स्वरूप उन्नत देशों से काफी भिन्नता लिए हुए है । लार्ड कीन्स के विश्लेषण के अनुसार औद्योगिक देशों में बेरोजगारी का मूल करण प्रभाव पूर्ण मांग का कम होना है, जिससे अस्थायी व चक्रीय प्रकृति की बेरोजगारी उत्पन्न होती है । लेकिन इसे विपरीत भारत जैसे अल्प-विकसित देशों में बेरोजगारी, पूंजी या अन्य अनुपूरक साधनों के अभाव का परिणाम मात्र है । अत : इस दृष्टि से बेरोजगारी के समाधान करने के लिए पूंजीगत वस्तुओं के स्टाक को बढ़ाना अनिवार्य हो जाता है । जिससे कि उत्पादन की नयी इकाईयां स्थापित होने पर अतिरिक्त श्रम-शक्ति को लाभदायक रोजगार दिलाया जा सकेगा ।

जहां तक भारत में व्याप्त बेरोजगारी की संरचना का सवाल है इसका विश्लेषण निम्न दो क्षेत्र में किया जा सकता है :

(अ) ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी

भारत में अधिकतर बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में ही पायी जाती है और इसके दो स्वरूप है- (1) मौसमी तथा (2) निरन्तर अल्प-रोजगार या अदृश्य बेरोजगारी । मौसमी बेरोजगारी का मूल्य कारण खेती के तरीकों, भूमि की बनावट, उगाई गाने वाली फसलों आदि के स्वरूप में अन्तर का पाया जाना है। इसके विपरीत अदृश्य बेरोजगारी का मूल्य कारण कृषि पर आवश्यकता से अधिक श्रम-शक्ति का निर्भर रहना है।

(ब) नगरीय क्षेत्र में बेरोजगारी

नगरीय क्षेत्र की बेरोजगारी के भी दो स्वरूप है - (1) औद्योगिक श्रमिकों में बेरोजगारी और (2) शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी। औद्योगिक बेरोजगारी के मुख्य कारण ये है : तीव्र जन-दृष्टि के फलस्वरूप सक्रिय जनसंख्या में बढ़ोतरी छेना, नगरीकरण के कारण ग्रामीण जनसंख्या का शहरों में प्रवास करना, औद्योगिक श्रम में होने वाली वृद्धि की तुलना में उद्योगों का विस्तार अपेक्षाकृत कम हो पाना। नगरीय क्षेत्र में बेरोजगारी का दूसरा स्वरूप, शिक्षित-मध्यम वर्ग में बेरोजगारी का पाया जाना है; माध्यमिक या उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त ये बुद्धि जीवी वर्ग अर्थात कम शारीरिक श्रम चाहने वाला रोजगार पसन्द करते है और इसमें समाज के नेतृत्व की पर्याप्त क्षमता होती है। 'इस शिक्षित वर्ग में असन्तोष के कारण श्रम-जीवी वर्ग में- क्रान्ति भड़काने का डर सदैव बना रहता है। इन छोटे से वर्ग द्वारा आवाज बुलन्द करना चाहे शासन का स्वरूप कैसा ही क्यों न हो, सरकार के लिए सर दर्द बन जाता है (सैडलर कमीशन)। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षित बेरोजगारी को पनपने का कम से कम अवसर दिया जाए।

14.3 भारत में बेरोजगारी के अनुमान

भारत में बरोजगारी सम्बन्धी विश्वसनीय आकड़ों का पूर्णतया अभाव है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई गहन सर्वेक्षण नहीं किया जा सका। फिर भी, अनुमान के रूप में सरकारी व अर्द्ध सरकारी स्तर पर कुछ आंकड़े उपलब्ध किये गये है। तालिका 14.1 से स्पष्ट है कि भारत की पंचवर्षीय योजनायें पूर्ण रोजगार का उद्देश्य प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ सही है, बल्कि प्रत्येक अगली योजना के दौरान बेरोजगार लोगों की संख्या में वृद्धि होती गयी है। 30 अगस्त 1992 को 854 रोजगार कार्यालयों में दर्ज व्यक्तियों की संख्या 371 लाख थी, जबकि 1961 में इनकी संख्या' 18 लाख थी।

तालिका 14.1 : भारत में योजना-वार बेरोजगारी की स्थिति (लाख व्यक्ति)

मद	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	3-वार्षिक	चतुर्थ	पंचम
1. योजना के शुरू में श्रम-शक्ति	1852	1970	2150	2290	2490	2800
2. योजना के दौरान श्रम-शक्ति में वृद्धि	90	118	170	140	230	370
3. योजना के शुरू में अवशिष्ट बेरोजगारी	33	53	71	96	95	140
4. कुल बेरोजगारी(2+3)	123	171	241	236	325	510

5. अतिरिक्त स्थापित नौकरियां	70	100	145	14	185	230
6. योजना के अन्त में बेरोजगारी (4-5)	53	71	96	222	140	280
7. बेरोजगारी : कुल श्रम-शक्ति के रूप में	29	3.6	4.5	9.7	5.8	10.0

शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी

शिक्षित वर्ग में व्याप्त बेरोजगारी देश के लिए आज एक गम्मीर समस्या बन चुकी है। उदाहरण के तौर पर शिक्षित बेरोजगारों की संख्या जो 1961 में 5.9 लाख थी, बढ़कर 1981 में 90.18 लाख और 1987 में 167.4 लाख हो गयी अर्थात् इसमें 28 गुना वृद्धि हुई। तालिका-14.2 से यह भी स्पष्ट है कि शिक्षित बेरोजगारों में मैट्रिक पास लोगों का अनुपात 1961 में 76 प्रतिशत से घटकर 1987 में 58 प्रतिशत रह गया जबकि स्नातक व स्नातकोतर का प्रतिशत 1961 में 9.5 प्रतिशत के विरूद्ध 1987 में बढ़कर 17 प्रतिशत हो गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में केवल नौकरी प्राप्त करने के लिए लोग ग्रेजुएट बनना चाहते है न कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए।

तालिका 14.2

भारत में शिक्षित बेरोजगारी (हजारों में)

मद	वार्षिक वृद्धि दर %				
	1961	1971	1981	1987	(1961-87)
(अ)शिक्षित (1+2+3)	590	2296	9018	16735	13.7
1. मैट्रिक	463	1297	5008	9744	12.4
2. स्नातक पूर्व (इन्टर)	71	605	2325	4176	17.0
3. स्नातक व स्नातकोत्तर	56	394	1685	12815	16.3
(ब) अकुशल शारीरिक श्रमिक	1243	2804	7566	13512	9.6
कुल अभ्यर्थियों की संख्या(अ+ब)	1833	5100	16584	30247	10.9
रोजगार कार्य (सं०)	325	437	592	755	3.2

इसके विपरित 1961 - 87 के दौरान गैर-शिक्षित बेरोजगारों की 9.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर, शिक्षित बेरोजगारों की 13.7 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में कम थी । इसका यह अर्थ निकलता है कि भारत में शिक्षा रोजगार दिलाने में अधिक सहायक नहीं है ।

काम का अधिकार

यह विचार राष्ट्रीय मार्च सरकार की देन है जिसका उद्देश्य काम के अधिकार को "मौलिक अधिकार" का रूप देना, था । भले ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का अब कोई अस्तित्व शेष नहीं है, तथापि यह एक न्यायपूर्ण सोच होने के नाते अभिनंदनीय है । वास्तव में, रोजगार की गारन्टी ही एक मात्र ऐसा उपाय है जो गरीबी पर गहरी चोट कर सकता है । फिर, यह भी निर्विवाद सत्य है कि गरीबी, वास्तव में बेरोजगारी या रोजगार के निम्न-स्तर (अल्प रोजगार या

अदृश्य बेरोजगारी) का ही परिणाम है । अत: यह बहुत जरूरी है कि अब हमारे आयोजन का झुकाव रोजगारोन्मुखी-आयोजन की तरफ होना चाहिए, न कि उत्पादन मुखी-आयोजन पर ।

14.4 भारत में रोजगार की उप नीतियां

भारत में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा प्रत्येक भाव वर्ष के रोजगार तथा बेरोजगारी की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इसके आधार पर 15 वर्षो (1973-88) के लिए रोजगार वृद्धि के अनुमान तैयार किए गए है कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है:

पिछले 15 वर्षो के दौरान रोजगार की वृद्धि दर 2.21 प्रतिशत वार्षिक रही है। ग्रामीण-रोजगार 1.75 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ा, जबकि शहरी-रोजगार अपेक्षाकृत ऊँची-दर 4 प्रतिशत वार्षिक, दर से बढ़ा फलस्वरूप 1973-88 के दौरान कुल रोजगार में, शहरी रोजगार का भाग 16 प्रतिशत से बढ़कर 22 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ा और फलस्वरूप कुल रोजगार में इनका अनुपात भी 2:1 स्थिर बना हुआ है।

तालिका 14.3

लिंग, निवास तथा शिक्षा के अनुसार रोजगार-वृद्धि

(प्रतिशत)

लिंग/निवास	1973-88	शिक्षा	1977-88
ग्रामीण	1.75	ग्रामीण	8.1
शहरी	4.00	शहरी	7.1
पुरूष	2.19	पुरूष	7.3
स्त्री	2.24	स्त्री	7.5
कुल	2.21	कुल	7.5

शिक्षा के अनुसार रोजगार-वृद्धि

यद्यपि सकल रूप में रोजगार की दर में गिरावट आई है परन्तु शिक्षितों में रोजगार की दर सापेक्षत: ऊँची रही है, विशेष रूप से शिक्षित स्त्रियों के मामले में। पिछले दशक में शिक्षित रोजगार-दर 7.5 प्रतिशत वार्षिक रही, जबकि पुरूषों में यह दर 7.3 प्रतिशत वार्षिक रही, जबकि पुरुषों में यह दर 7.3 प्रतिशत और स्त्रियों में 9.7 प्रतिशत वार्षिक देखने में आई, जैसा कि तालिका-143 से स्पष्ट है।

प्रमुख क्षेत्र के अनुसार रोजगार वृद्धि

रोजगार की क्षेत्रीय उपनियमों से पता चलता है कि कृषि क्षेत्र में, जो 1960 व 1970 के दशक में कुल रोजगार जनन के दो तिहाई भाग का दावेदार रहा है, जबरदस्त गिरावट आई है और यह 1977-88 के दौरान 0-92 प्रतिशत वार्षिक थी। निर्माण, विधुत गैस आदि क्षेत्र में रोजगार की दर बढ़ी है जबकि अन्य क्षेत्रों में रोजगार दर या तो स्थिर रही है या घटी है कुल मिलाकर रोजगार-वृद्धि की दर में गिरावट आई है जैसा कि तालिका 144 से स्पष्ट है।

तालिका 14.4

प्रमुख क्षेत्रों के अनुसार रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर

क्षेत्र	1977-83	1983-88	1977-88
1. कृषि	0.91	0.94	0.92
2. खनन	6.32	5.68	6.03
3. विनिर्माण	3.76	2.18	3.05
4. निर्माण	7.93	13.03	10.19
5. विद्युत, गैस जल पूर्ति	6.01	3.15	4.71
6. व्यापार	3.52	3.83	3.66
7. परिवहन, भण्डारण, संचार	6.66	2.35	4.70
8. सेवाएं	4.49	2.06	3.39
कुल	2.10	1.77	1.95

जहां तक संगठित या असंगठित क्षेत्र का प्रश्न है दोनों ही क्षेत्रों में रोजगार में गिरावट आई है परन्तु इसकी तीव्रता संगठित क्षेत्र विशेष रूप से विनिर्माण क्षेत्र (में अधिक अनुभव की गयी है। 1973-77 में संगठित क्षेत्र की रोजगार दर 2.48 प्रतिशत से घटकर 1983-87 में 1.36 प्रतिशत वार्षिक रह गयी। रोजगार मंच का एक दूसरा उल्लेखनीय लक्षण यह है कि संगठित क्षेत्र में जितना भी रोजगार मंच का एक दूसरा उल्लेखनीय लक्षण यह है कि संगठित क्षेत्र में जितना भी रोजगार बढ़ा है, उसका अधिकांश भाग सार्वजनिक क्षेत्र की देन है। जबकि कुल संगठित क्षेत्र की रोजगार-दूर 1973-78 के दौरान 2 प्रतिशत वार्षिक थी, वहां ''सार्वजनिक क्षेत्र'' की दर 3 प्रतिशत और उसके विपरीत 'निजी क्षेत्र,'' की 0.5 प्रतिशत वार्षिक थी। किन्तु 1990 के दशक से स्थिति के बदलाव आया है और निजी क्षेत्र का रोजगार में योगदान बढ़ा है। फिर, नई औद्योगिक नीति 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के पंख तराश दिए गए है। इसलिए आर्थिक उदारवाद के परिवेश में, रोजगार वृद्धि की सारी आशाएं अब निजी क्षेत्र पर ही केन्द्रित रहेगी।

तालिका 14.5

भारत में संगठित क्षेत्र में रोजगार-वृद्धि

वर्ष	सार्वजनिक क्षेत्र		निजी क्षेत्र		कुल रोजगार
	लाखों में	वार्षिक वृद्धि	लाखों में	वार्षिक वृद्धि	लाखों में
1961	70.5	3.2	50.4	1.0	120.9
1971	107.3	3.4	67.4	0.9	174.7
1981	154.8	2.7	74.0	2.3	228.8
1986	176.8	2.4	73.7	0.7	200.5
1989	184.4	0.7	74.5	0.8	258.9
1990	187.3	1.6	75.9	1.9	263.2

1991	189.7	1.3	78.5	3.4	268.2

14.5 रोजगार संरचना

पिछले 15 वर्षों के दौरान रोजगार की संरचना में काफी बदलाव आया है जो कि इस प्रकार है-

(1) क्षेत्रीय ढांचा - भारत में रोजगार-संरचना के क्षेत्रीय ढांचे में काफी परिवर्तन आया है। जबकि 1972-73 में कार्य-शक्ति का 74 प्रतिशत भाग क्षेत्र में लगा हुआ था, यह 1987-88 में घटकर 66 प्रतिशत रह गया। इसके द्वितीयक क्षेत्र एवं तृतीयक या सेवा क्षेत्र का अंशदान बढ़ा है।

(2) संगठित तथा असंगठित क्षेत्र - संगठित तथा असंगठित क्षेत्र को कुल रोजगार में योगदान लगभग स्थिर बना हुआ है और यह अनुपात क्रमश: 10 तथा 90 है।

(3) रोजगार का वर्ग या श्रेणी - पिछले 15 वर्षो के दौरान कुल रोजगार में स्वं: रोजगार का अनुपात घटा है और यह 1972-73 में 61 प्रतिशत से घटकर 1987-88 में 56 प्रतिशत रह गया था। नियमित वेतन-भोगी रोजगार में भी मामूली गिरावट आई है परन्तु आकस्मिक मजदूरी रोजगार में काफी वृद्धि हुई है और 1972-73 में 23 प्रतिशत के विरूद्ध 1987-88 में यह बढ़कर 30 प्रतिशत हो गया। तालिका

तालिका 14.6

रोजगार-वर्ग के अनुसार श्रमिकों का प्रतिशत वितरण

वर्ग	1972-73	1977-78	1982-83	1987-88
1. स्व: रोजगार	61.4	59.3	57.3	56.5
2. नियमित वेतन भोगी	15.3	13.2	13.7	13.7
3. आकस्मिक मजदूर	23.3	27.5	28.9	29.9

योजना आयोग ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 43 वे दौर वे आधार पर 1987-88 वर्ष के लिए बेरोजगारी की मात्रा और वृद्धि दर के अनुमान तैयार किए है। बेरोजगारी की मात्रा सामान्य मुख्य स्थिति के अनुसार 124.3 लाख, साप्ताहिक स्थिति के अनुसार 15.3 लाख और दैनिक स्थिति के अनुसार 189.5 लाख मानव वर्ष अनुमानित की गयी। इन तीनों स्थितियों के अनुसार बेरोजगारी की दर (श्रम शक्ति के प्रतिशत रूप में) क्रमश: 3.77 4.80 तथा 6.09 प्रतिशत थी।

तालिका 14.7

लिंग व निवास के अनुसार 1983 व 1987-88 मे बेरोजगारी (%)

		ग्रामीण			शहरी		योग
श्रमिक	वर्ष	पुरुष	स्त्री	योग	पुरुष	स्त्री	योग
यू.पी.एस.	1983	2.12	1.41	1.91	5.86	6.90	6.04	2.77
	1987-88	2.87	3.52	3.07	6.07	8.77	6.56	3.77
डब्लू.एस.	1983	3.72	4.26	3.88	6.69	7.47	6.81	4.51

1987-88	4.16	4.27	4.19	6.71	8.93	7.12	4.80
डी.एस. 1983	7.52	8.98	7.94	9.23	10.99	9.52	8.25
1987-88	4.58	6.91	5.25	8.79	12.00	9.26	6.09

14.6 भारत में बेरोजगारी सम्बन्धी मुख्य लक्षण

एन.एस.एस. के 43 वें दौर के आधार पर आठवीं योजना प्रलेख में भारत में व्याप्त बेरोजगारी सम्बन्धी कुछ मुख्य लक्षणों की ओर संकेत किया गया है, जोकि इस प्रकार है :

(1) ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले, शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी अधिक है।

(2) पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में बेरोजगारी की दर ऊँची है।

(3) पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में अल्प-रोजगार का अनुपात अधिक है।

(4) सन् 1983-88 के दौरान सामान्य स्थिति (यू०पी०एस०) बेरोजगारी बड़ी है, जबकि साप्ताहिक स्थिति (डब्ल्यू.एस.) और दैनिक स्थिति (डी.एस.) बेरोजगारी दोनों में कमी आई है। यह तथ्य इस बात का संकेत है कि देश में बेरोजगारी के ढाँचे में बदलाव आया है अर्थात् अल्प-रोजगार धीरे-धीरे खुली बेरोजगारी का रूप लेता जा रहा है ।

(5) स्त्रियों में खुली बेरोजगारी, ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों में बढ़ी है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रभाव दुगना रहा है।

(6) शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी की गहनता अधिक है। जबकि कुल सामान्य स्थिति बेरोजगारी का अनुपात 3.77 प्रतिशत है, शिक्षित बेरोजगारी का अनुपात 12 प्रतिशत है।

(7) उच्च-स्तर की शिक्षा के साथ-साथ बेरोजगारी की दर में भी वृद्धि हो रही है ।

(8) एक आधर राज्य को छोड़कर, अन्य राज्यों में. साक्षरता व शिक्षा के स्तर और/या आर्थिक विकास और खुली बेरोजगारी के बीच घनात्मक सह-सम्बन्ध बनता जा रहा है।

14.7 रोजगार बढ़ाने सम्बन्धी सरकारी नीति :

बेरोजगारी पर भगवती कमेटी

भारत सरकार ने बेरोजगारी की समस्या का समुचित हल खोजने के लिए श्री. बी. भगवती की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1973 में सरकार को प्रस्तुत कर दी। समिति ने ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त बेरोजगारी के निदान हेतु देहातों में विद्युतीकरण, सड़क ग्रामीण आवास निर्माण तथा छोटी सिंचाई योजनाओं को अभी अगले दो वर्षो के लिए चालू रखने का सुझाव दिया और इस सम्पूर्ण कार्यक्रम के लिए 740 करोड रु० के अतिरिक्त व्यय की जोरदार सिफारिश की। इन ग्रामीण योजनाओं से लगभग 40 लाख लोगों को रोजगार मिलने की आशा व्यक्त की गयी थी। इसके अलावा समिति ने कृषि सेवा केन्द्रों की योजना को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का सुझाव रखा ताकि प्रक्षिक्षत तकनीशियनों व इन्जीनियरों को इस क्षेत्र में स्व-रोजगार का खुला अवसर मिल सके।

शहरी अर्थात् औद्योगिक क्षेत्र की बेरोजगारी के सम्बन्ध में समिति ने अल्प कालीन व दीर्घकालीन दो समाधान प्रस्तुत किये। तुरन्त रूप में रोजगार-वृद्धि के लिए उद्योगों में स्थापित

क्षमता के अल्प उपयोग को आवश्यक सम्भव स्तर पर लाना होगा और कुछ विशिष्ट उद्योगों में लाईसेंस प्राप्त क्षमता की सीमा के ऊपर 100 प्रतिशत अतिरिक्त उत्पादन करने की इजाजत देनी होगी ताकि देश की अल्प-प्रयुक्त जन-शक्ति आयोजन करने का सुझाव दिया । समिति की राय में "बेरोजेगारी की समझ का स्थायी रूप से हल हो सके, इसके लिए नीचे से नियोजन और बुनियादी-स्तर पर शिक्षा के स्वरूप में तबदीली लाने की जरूरत है ।

14.7.1 रोजगार सृजन की विभिन्न योजनाएं

प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त विनियोग द्वारा अतिरिक्त रोजगार कायम करने के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने का प्रलय किया गया । रोजगार के अवसरों की व्यवस्था करन। केवल कल्याणकारी उपाय ही नहीं,यह एक निर्धन देश में विकास की विधि का अनिवार्य अंग है क्योंकि ऐसा देश अपने मानवीय साधनों का अल्प प्रयोग या कम प्रयोग सहन नहीं कर सकता । सदैव यह कल्पना की जाती रही है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होगी और इस कारण रोजगार बढ़ेगा । किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ द्वारा संकलित आकड़े यह स्पष्ट करते है कि उत्पादन और रोजगार की वृद्धि में सह-सम्बन्ध का अभाव है । हाल ही में प्राप्त हुए प्रमाण से यह पता चलता है कि कम से कम विकसित देशों में आर्थिक विकास और रोजगार में महत्वपूर्ण. सकारात्मक सह-सम्बन्ध विद्यमान नहीं है । विकसित देशों में विद्यमान इस परिस्थिति का मुख्य कारण तकनीकी परिवर्तन हैं । नयी तकनीकों के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई है परन्तु इससे रोजगार के प्रत्यक्ष विस्तार पर कोई प्रभाव नहीं हुआ बल्कि इसके विरूद्ध चूंकि कई प्रकार के उपलब्ध कौशल नयी तकनीक के लिए अनुचित है, इस कारण इससे बेरोजगारी की समस्याएँ उत्पन्न हो गई है ।

चूंकि तीव्र आर्थिक विकास का अनिवार्य रूप में अर्थ, कम से कम अल्पकाल में, अधिक रोजगार नहीं होता और चूंकि जन्म दर में कमी का प्रभार तो केवल दीर्घकाल में ही व्यक्त हो सकता है, बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए विशिष्ट प्रोग्राम बनाने की जरूरत है । नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक से उपाय लागू नहीं किए जा सकते है । जबकि प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, ग्रामों का बिजली करण, सड़क-निर्माण, गृह-निर्माण, सिंचाई योजनाओं और ग्राम उद्योगों द्वारा ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने में सहायता मिलती है, किन्तु नगरीय क्षेत्र में इस उद्देश्य के लिए भिन्न प्रकार के उपायों की आवश्यकता है । सूक्ष्म तकनीकी परिवर्तन के कारण चूंकि रोजगार के विस्तार पर दुष्प्रभाव पड़ता है, इसलिए नीति निर्धारकों को प्रति तुलन की दृष्टि से उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण और बड़े पैमाने के उद्योगों को छोटे पैमाने की पूरक इकाइयों के साथ सम्बन्द्व करने के उपायों का प्रयोग करना होगा । उद्योगों. के विकेन्द्रीयकरण का उद्देश्य नौकरी ढूंढने वालों का ग्रामों से शहरों में उपवास प्रोत्साहित करना है और बड़े एवं छोटे उद्योगों के समन्वय का उद्देश्य रोजगार के विस्तार को और 'अधिक बढ़ाना है । इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र में नौकरियां कायम करने के लिए नगरीय वर्गो द्वारा अधिकाधिक मात्रा में मांगी जाने वाली सेवाओं के लिए तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी ।

14.7.2 रोजगार कार्यक्रम

(1) ग्राम-निर्माण कार्यक्रम

इसमें ऐसी परियोजनाएं शामिल की गई जिनमें एक ओर अधिक रोजगार सामर्थ्य उपलब्ध है और दूसरी ओर भूमि और श्रम की उत्पादित की वृद्धि की प्रत्याशा है । इन प्रोग्रामों में कृषि श्रमिकों को राहत देने का लक्ष्य रखा गया। इस प्रोग्राम में स्थायी रूप की नगर निर्माण परियोजनाओं को बल दिया गया ताकि वे इन क्षेत्रों में अभाव की स्थिति को दूर कर सकें ।

(2) छोटे किसानों के विकास की एजेन्सियों

चौथी योजना का उद्देश्य छोटे किसानों को उधार उपलब्ध करना था ताकि वे अद्यतन तकनीक का प्रयोग कर सकें, सघन खेती को अपना सकें । इन एजेन्सियों द्वारा ऐसी संस्थाओं की भी सहायता की गई जो आदानों के वितरण विपणन, विधायन एवं संग्रहण का काय करती है ।

(3) समन्वित खुश्क भूमि विकास

इसके अधीन, भूमि संरक्षण, भूमि विकास कार्यक्रम सम्मिलित किए गए । ये श्रम-प्रधान कार्यक्रम थे और एक करोड़ रुपए के व्यय के लिए लगभग 15,000 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया।

(4) कृषि सेवा केन्द्र

इस योजना में बेरोजगार ग्रेजुएटों और डिप्लोमाधारियों को सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना के मुख्य उद्देश्य है: (1) तकनीकी श्रमिक को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना (2) फार्म के उपर कृषि-मशीनरी और औजारों के लिए असुरक्षण और मरम्मत की सुविधाएं उपलब्ध कराना, (3) फालतू पुरजों, इंधन, तेल, स्नेहक तेल और अन्य इंजीनियरिग सेवाओं के लिए आसानी से प्राप्त होने वाले केन्द्र खोलना, और (4) उर्वरकों कीटनाशकों आदि जैसे आदान उपलब्ध कराना ।

(5) क्षेत्र विकास योजनाएं

इन योजनाओं में अध: संरचना सुविधाएं जैसे सड़के, बाजार आदि कायम करने का प्रोग्राम रखा गया ।

(6) ग्राम रोजगार के लिए वृहद कार्यक्रम

इस कार्यक्रम का उद्देश्य विभिन्न श्रम प्रधान एवं उत्पादक ग्राम प्रोजेक्ट द्वारा अतिरिक्त रोजगार कायम करना है । इस योजना के दो उद्देश्य थे - प्रथम प्रत्येक प्रोजेक्ट में औसतन 1000 व्यक्तियों के लिए प्रत्येक जिले में एक वर्ष में लगभग 10 मास का लगातार रोजगार उपलब्ध कराना चाहिए। द्वितीय, प्रत्येक प्रोजेक्ट द्वारा स्थानीय विकास योजनाओं के अनुकूल निर्माण कार्य या विरस्थायी ढंग की परिसम्पीत् शामिल करनी चाहिए ।

इस योजना में जो विभिन्न प्रकार के प्रोजेक्ट शामिल किए गये है, वे है छोटी सिंचाई, भू-संरक्षण एवं भू-उपकरण, बाढ़ से बचाव और जलरोध-विरोधी उपाय, मत्स्यपालन, पीने के पानी और सड़क-निर्माण की योजनाएं ।

चौथी योजना के आधीन चालू की गई बहुत सी रोजगार-जनन योजनाएं ग्रामीण बेरोजगारी और अल्परोजगार को दूर करने में सफल नहीं हो सकी । क्योंकि ग्रामीण बेरोजगारों की सेना को उचित संभरण शिविरों में संगठित न किया गया ताकि उन्हें वाँछनीय न्यूनतम मजदूरी देकर मांग के स्थानों तक पहुंचाया जा सकता है । आडिटर-जनरल ने अगस्त 1974 में लोक सभा को अपनो रिपोर्ट में यह दु:खद उल्लेख किया कि विभिन्न महान् और ग्राम-रोजगार कार्यक्रम जिस पर केन्द्र सरकार ने चौथी योजना के दौरान 170 करोड़ रुपये खर्च किए पूर्णतया विफल हो गए ।

(7) महाराष्ट्र की रोजगार गारन्टी योजना

1972-73 में महाराष्ट्र सरकार ने रोजगार गारन्टी योजना चालू की । यह अपनी प्रकार की पहली योजना थी । जिसमें संविधान में दिए गए "काम के अधिकार" को स्वीकार किया गया। इसके अधीन यदि कोई व्यक्ति काम करने की मांग करता है, तो राज्य सरकार का यह दायित्व है कि उसे काम उपलब्ध कराए । ।

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है :-

(क) किसी व्यक्ति को स्वीकृत ग्राम परियोजनाओं में जो अर्थव्यवस्था की उत्पादिकता बढ़ाने वाली हो, लाभकारी एवं उत्पादक रोजगार उपलब्ध कराना । ।

(ख) इन परियोजनाओं द्वारा क्षेत्र में चिरस्थायी सामुदायिक परिसम्पत्ति कायम करनी चाहिए ।

(ग) श्रम-प्रधान उत्पादक परियोजनाओं अर्थात छोटी सिंचाई जल एवं भू-संरक्षण, नालों पर बाँध लगाना,नहरें खोदना, भूमि-विकास, नव-रोपण आदि को कार्यान्वित करना चाहिए ।

(घ) इन योजनाओं को ठेकेदारों की अपेक्षा विभागों द्वारा लागू करना चाहिए ताकि इनका कम से कम 60 प्रतिशत व्यय मजदूरी पर और 40 प्रतिशत सामग्री, पूंजी उपकरणों पर्यवेक्षण एवं प्रशासनिक सेवाओं के लिए खर्च हो ।

यह योजना ग्रामों के बालिग पुरुषों एवं स्त्रियों जिनकी आयु 18 वर्ष सै अधिक हो, के लिए तैयार की गई । इसके अधीन आरम्भ में 3 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी की गारन्टी दी गई। इस योजना का उद्देश्य ग्राम समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों विशेषकर भूमिहीन मजदूरों और सामान्य किसानों की सहायता करना है ।

उपस्थिति के आधार पर रोजगार-जनन के बारे मे निम्नलिखित मुख्य लक्षणों का पता चला -

(1) फरवरी और जून के बीच रोजगार गारन्टी योजना में भाग लेने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है, जो किसी एक महीने में प्राप्त न्यूतम स्तर से दो या तीन गुना होती है और

(2) खरीफ फसल और रबी बुआई के मौसम अर्थात नवम्बर में सबसे कम संख्या रिकार्ड की गई ।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज के कमजोर वर्गों की विशेष रूप में सहायता करना था । इन वर्गों द्वारा ही रोजगार की गारण्टी योजना के आधीन रोजगार की मांग होनी थी ।

(3) आरम्भ में बहुत कम स्त्रियों ने इसमें भाग लिया परन्तु जनवरी 1979 में इस योजना के आधीन उपलब्ध कराए गए श्रमिकों में स्त्रियों का भाग 43 प्रतिशत हो गया ।

1972-73 से 1982-83 के 10 वर्षों के दौरान योजना की प्रगति से पता चलता है कि जहाँ पर रोजगार गारण्टी योजना के आधीन विपिन कार्यक्रमों पर व्यय बढ़ता ही गया, वहाँ पर इन प्रोग्रामों के फलस्वरूप मानव दिनों के रूप में जनित-रोजगार पिछले चार वर्षों में लगातार घटता गया। पहले 7 वर्षों में योजना की प्रगति अच्छी थी क्योंकि 1972-73 में 1.89 लाख करोड़ रुपये से बढ़कर 1979-80 में 109.2 करोड़ रुपये हो गया। किन्तु 1980-81 के पश्चात व्यय में वृद्धि के बावजूद जनित रोजगार के मानव-दिनों में गिरावट की प्रवृत्ति व्यक्त हुई 1979-80 में एक मानव-दिन रोजगार के लिए 5.3 रुपये खर्च किए गए और यह आंकडा बढ़कर 1982-83 में 10.2 रुपये हो गया।

चूंकि एक अकुशल श्रमिक की औसत दैनिक मजदूरी बढकर 6 रुपये प्रतिदिन कर दी गई' है, इसलिए जनित रोजगार के मानव-दिनों में गिरावट की एक हद तक व्याख्या इस बात से होती है। व्याख्या का दूसरा कारण कीमतों की वृद्धि है। कुछ हद तक प्रति मानव दिन रोजगार पर व्यय में वृद्धि का कारण भ्रष्टाचार एवं अपव्यय है जो हमारी प्रशासनिक संस्कृति का अंग बन गए है।

पिछले चार वर्षो (1979-80 से 1982-83) के दौरान श्रम की उपस्थिति में लगातार गिरावट आई, चाहे इस काल के दौसन राज्य प्राकृतिक विपणियों अर्थात सूखे और बाढ़ के प्रकोप से गश्त रहा। श्रम की उपस्थिति 1981-82 में गिरकर 62 लाख हो गई और 1982-83 में और गिरकर 57 लाख हो गई।

महाराष्ट्र रोजगार गारण्टी योजना में केवल ऐसे उत्पादक प्रोजैक्ट लिए जाते हैं जिनमें अकुशल मजदूरी का भाग 60 प्रतिशत से अधिक हो। इस योजना में हाल ही में किए गए संशोधनों द्वारा छोटे तथा सीमान्त किसानों की अपनी भूमि पर व्यक्तिगत परियोजनाएं चलाने की स्वीकृति दी गई है। ऐसी परिस्थिति में कुल व्यय का 50 प्रतिशत संबंधित किसान या लाभ प्राप्तकर्ता को वहन करना होगा। इसके अतिरिक्त बागवानी कार्यक्रम जोकि 1० लाख हैक्टेयर तक फैला होगा, आठवीं योजना (1992-97) के दौरान अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों/छोटे किसानों की भूमियों पर सरकारी खर्च पर लागू किया जाएगा। अन्य भूमियों पर सामग्री पर खर्च को सरकार और लाभ प्राप्तकर्ता के बीच 75:25 के अनुपात में बांटा जाएगा।

इस योजना के लिए राज्यीय सरकारों द्वारा साधन जुटाए जाते है और इस उद्देश्य से वे (1) बहुत से कर/अधिभार लगाती है, जैसे व्यवसाय कर व्यापार कर मोटर गाड़ी कर बिक्रीकर सिंचाई प्राप्त भूमि पर कर, भू-राजस्व और गैर-रिहायशी भूमि पर कर और (2) इन करों से एकत्रित राशि के समतुल्य योगदान राज्यीय सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाता है। पिछले 5

वर्षो (1987-88 से 1991-92) के दौरान रोजगार गारण्टी योजना पर व्यय 1987-88 में 288 लाख रुपये और 1991-92 में 200 करोड़ रुपये के बीच रहा है और इससे जनित रोजगार 18.95 करोड मानव दिन और प्रत्याशित 7.5 करोड़ मानव दिन के बीच रहा। इस योजना का एक अत्यन्त संतोषजनक लक्षण यह है कि इसके आधीन दी जाने वाली मजदूरी अकुशल कृषि श्रम का ही दी जाने वाली न्यूनतम मजदूरी से कम नहीं से कम नहीं है।

आठवीं योजना के अनुसार, ''इस योजना के परिणाम स्वरूप ग्राम क्षेत्रों में बेरोजगारी के आपात में महत्वपूर्ण कमी हुई। ग्रामीण महाराष्ट्र में औसत दैनिक बेरोजगारी की दर जो 1977-73 में 7.2 प्रतिशत थी कम होकर 1987-88 में 3.17 प्रतिशत हो गई है । इसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण निर्धनता की मात्रा जो 1977-78 में 60.4 प्रतिशत थी कम होकर 1987-88 में 36.7 प्रतिशत हो गई है । इस योजना के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी में वृद्धि का दबाव बना रहता है । इस योजना से बहुत सी स्त्रियों को भी लाभ हुआ है क्योंकि रोजगार गारण्टी योजना में काम करने वाले श्रमिकों में 60 प्रतिशत स्त्रियां है ।"

प्रोफेसर वी.एम. डांडेकर का मत है कि यह योजना सही दिशा में एक कदम था किन्तु रोजगार गारण्टी योजना एक योजना की नहीं बल्कि विकास की एक विधि है । यह अपनी प्रकार की पहली योजना है जिसमें "काम के अधिकार" को मान्यता दी गई है । अत: इस योजना का महाराष्ट्र के ग्रामीण लोगों के जीवन-स्तर और उनकी आय को उन्नत करने की दिशा में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है । योजना की अब बहुत सराहना होने लगी है और अन्य राज्यों में महाराष्ट्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलने की बात की जा रही है ताकि भारत के प्रत्येक नागरिक को न्यूनतम सजीवन-स्तर की गारण्टी दी जा सकें। किन्तु यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि यह ।योजना केवल निर्वाह मजदूरी उपलब्ध कराती हैं । अच्छे जीवन-स्तर को प्राप्त करने के लिए ग्राम-औद्योगीकरण करना आवश्यक है ।

(8) समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम, निर्जनता एवं रोजगार

ग्राम रोजगार उपलब्ध कराने का कार्य बहुत्सी एजेन्सियां करती रही है । इनमें शामिल है- रोजगार गारंटी योजना रोजगार के लिए खाद्य कार्यक्रम, छोटे किसानों के विकास की एजेन्सी, सीमान्त किसान और कृषि मजदूर कार्यक्रम, सूखा प्रवृत्त क्षेत्र प्रोग्राम रेगिस्तान विकास कार्यक्रम, कमान क्षेत्र प्रोग्राम आद । छठी योजना ने यह सुझाव दिया, "इस प्रकार बहुत से प्रोग्राम जो काम-निर्धनों के लिए बहुविध एजेन्सियों द्वारा चलाए जाते है समाप्त करने चाहिए और उनका प्रतिस्थापन समग्र देश के लिए एक समन्वित प्रोग्राम द्वारा किया जाना चाहिए ।" इस प्रोग्राम को समन्वित ग्राम विकास क्रार्यक्रम कहा गया ।

छठी योजना में दो महत्वपूर्ण प्रोग्रामों को प्रारम्भ किया गया- समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा मूल, रूप से गरीब परिवारों में स्वरोजगार को प्रोन्नत करने की विधि अपनाई गई ताकि उत्पादक पररिसम्पदों के हस्तांतरण से वे इतनी आय कमा सकें कि निर्धनता-रेखा को पार कर लें । राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम का उद्देश्य मौसमी -तथा अल्परोजगार के काल के दौरान धृति-रोजगार

उपलब्ध कराना -है । इसका उद्देश्य यह भी था कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि भिन्न व्यवसायों में श्रम नियोजना क्षमता बढ़ाई जाए ताकि अधं:संरचनाऔ-समाजिक एवं आर्थिक के निर्माण द्वारा अर्थ व्यवस्था की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाया जा सके । राष्ट्रीय ग्राम रोजगार को और बढ़ावा देने के लिए भूमिहीन श्रमिकों के लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम 1983 में चालू किया गया । इन तीनों प्रोग्रामों का उद्देश्य ग्राम विकास प्रोन्नत करना और ग्राम रोजगार का विस्तार करना था ।

14.8 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम

बहुत से अर्थ-विशेषज्ञों ने अपने अध्ययनों में यह बात साफ कर दी है कि जहाँ आर्थिक संवृद्धि द्वारा विकासशील देशों "में प्रति व्यक्ति आय को उन्नत किया जा सकता है, उसके साथ यह जरूरी. नहीं कि निर्धनता कम हो जाए और बेरोजगारी तथा अल्प-रोजगार को समाप्त किया जा सके । इसके विरुद्ध तृतीय विश्व के देशों में विकास-प्रक्रिया ने (भारत इसमें कोई अपवाद नहीं) सापेक्षत: विकसित क्षेत्रों और आर्थिक दृष्टि से उन्नत लोगों को लाभ पहुंचाया है । दूसरे शब्दों में, आर्थिक विकास के लाभ पिछड़े क्षेत्रों एवं गरीब व्यक्तियों तक नहीं पहुंच पाए है ।

इस परिस्थिति के उपचार के रूप में यह आवश्यक समझा गया कि निर्धनता पर सीधा प्रकार किया जाए । इसके लिए यह जरूरी था कि ग्राम निर्धनता को कम करने के लिए ऐसे प्रोग्राम चलाए जाए जो गरीबों को उत्पादक परिसम्पदों से या कौशल से सम्पन्न कर दें ताकि वे इनका प्रयोग लाभदायक ढंग से अधिक आय कमाने के लिए कर सकें और परिणामत: वे निर्धनता-रेखा को पार कर सकें । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए छठी योजना में ग्राम-विकास के समन्वित कार्यक्रम की कल्पना की गई । "समन्वित" यहां चार आयामों को शामिल करता है - क्षेत्रीय प्रोग्रामों का समन्वय, भौगोलिक समन्वय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं का समन्वय और इन सबसे ऊपर उन सभी नीतियों का समन्वय करना होगा जो विकास निर्धनता की समाप्ति और रोजगार जनन के बीच बेहतर तालमेल बिठाना चाहती है । और अधिक स्पष्ट रूप में इसमें उन लक्षित-समूहों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है जिनमें छोटे एवं सीमान्त किसान, कृषि मजदूर एवं ग्राम-कारीगर शामिल है और जिनके लिए ग्राम-क्षेत्रों में बहुत स्थिति-चयन विशिष्ट आयोजन की आवश्यकता है ।" इस प्रकार, समग्र विकास-रणनीति के आधीन "समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की कल्पना अनिवार्यता: एक पिघनता-विरोधी कार्यक्रम के रूप में की गई है ।"

14.8.1 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम - इसके लक्ष्य एवं उपलब्धियां

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम देश के 5011 ब्लाकों में 2 अक्टूबर 1980 को चालू किया गया। 5 वर्षों (1980-85) की अवधि के दौरान प्रत्येक ब्लॉक मैं 600 गरीब परिवारों की सहायता करने का निश्चय किया गया इस प्रकार 150 लाख परिवारों जिनमें 750 लाख व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे थे, को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया । प्रत्येक ब्लाक में 35 लाख

रुपये की समरूप राशि इसे कार्य के लिए व्यय करने का निर्णय किया गया जिसे 50:50 के आधार पर केन्द्र और राज्यों के बीच बाँटा जाना था ।

यह कार्यक्रम उपादान की एक क्रमिक योजना पर आधारित है जिसके आधीन पूंजी-लागत को 25 प्रतिशत छोटे किसानों को 33.3 प्रतिशत सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों को और 50 प्रतिशत जनजातीय लाभ प्राप्तकर्ताओं को उपादान के रूप में प्रदान किया जाएगा । अन्त्योदय सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए प्रोग्राम का लक्ष्य सबसे पहले गरीब परिवारों तक लाभ पहुंचाया है और बाद में एक ऊर्ध्व क्रम में अन्य गरीब वर्गों तक लाभ पहुंचाना है ।

सामुदायिक योजनाएँ 50 प्रतिशत उपादान के लिए हकदार होगी । कुल परिव्यय के लगभग 20 प्रतिशत का प्रयोग प्रशासनिक एवं अध संरचना सम्बन्धी व्यवस्था पर खर्च किया जाएगा और शेष 80 प्रतिशत लाभ प्राप्तकर्ता ओं को परिसमापन ग्रहण करने के लिए सामान्य के रूप में दिया जायेगा ।

छठी योजना (1980-81 से 1981-85) के दौरान 1661 करोड़ रुपए उपादान के रूप में उपलब्ध कराए गए और 3102 करोड़ रुपए सावधि ऋण के रूप में। इस प्रकार कुल मिलाकर 4762 करोड़ रुपये का विनियोग किया गया। इसके परिणामस्वरूप 1656 लाख लाभ प्राप्त कर्ताओं की जिनमें से 39 प्रतिशत अनुसूचित एवं जनजातियों में थे सहायता प्राप्त हुई। प्रोग्रामों का सराहनीय लक्षण यह है कि प्रति परिवार विनियोग जो 1980-81 में 1642 रुपए था उन्नत होकर 1984-85 में 3339 रुपए हो गया।

सातवीं योजना में समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अधीन 200 लाख परिवारों को सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए केन्द्र द्वारा 2643 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया। चाहे गरीबी रेखा के नीचे परिवार की परिभाषा में वे परिवार लिए जाते है जिनकी वार्षिक आय 6400 रुपये से कम हो, किन्तु इस कार्यक्रम में गरीबी की रेखा का मापदण्ड 4800 रुपए से कम आमदनी वाले परिवार है। यह बात भो निश्चय की गई कि सबसे पहले ऐसे परिवारों को सहायता दी जायेगी जिनकी आय 3500 रुपए से कम है। ।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की सातवीं योजना के दौरान प्रगति की समीक्षा के पता चलता है कि इससे 182 लाख परिवारों को सहायता प्राप्त हुई और इस पर 3316 करोड़ रुपये का व्यय किया गया। अतिरिक्त वित्तीय संस्था द्वारा 5372 करोड़ रुपए का सावधि उधार उपलब्ध कराया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर 182 लाख परिवारों के लिए 8688 करोड़ रुपये के कुल विनियोग की व्यवस्था की गई। इनमें से 45 प्रतिशत परिवार अनुसूचित एवं जनजातियों से थे। प्रति लाभप्राप्तकर्ताओं पर 4780 रुपए का विनियोग किया गया जिसमें से 38 प्रतिशत उपादान और 62 प्रतिशत सावधि ऋण था ।

1990-91 और 1991-92 के दो वर्षों के दौरान इस कार्यक्रम पार 3920 करोड़ का विनियोग किया गया और 54 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाया गया। प्रति परिवार विनियोग में तीव्र वृद्धि हुई और 1991-92 में यह बढ़कर 7568 रुपए हो गया।

कार्यक्रम की मुख्य कमजोरियां निम्नलिखित है -

चाहे सरकार यह दावा करती है कि केवल 8 प्रतिशत परिवार ऐसे थे जो सहायता प्रदान करने की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, परन्तु वास्तव में इनकी संख्या कहीं अधिक है। 72 प्रतिशत मामलों में, रिकार्ड के अन्तर्गत परि सम्पति की कीमत और लाभप्राप्तकर्ताओं के विचार से इसके मूल्य में कोई अन्तर नहीं था। 18 प्रतिशत मामलों में यह अन्तर 500 रुपए के समान था जिससे कुप्रथाओं और रिसावों का पता चलता है। लाभप्राप्तकर्ताओं की बहु संख्या को काई प्रशिक्षण नहीं दिया गया। 22 प्रतिशत मामलों में कोई अतिरिक्त आप जनित नहीं हुई। लाभ प्राप्तकर्ता ओं को पर्याप्त अध:संरचना सुविधाएं उपलब्ध नहीं थी। आदान सुविधा केवल 40 प्रतिशत को विपणन सुविधा 14 प्रतिशत को तौर मरम्मत की सुविधा 5 प्रतिशत लाभ प्राप्तकर्ता ओं को उपलब्ध थी।

14.8.2 राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम

रोजगार के लिए खाद्य कार्यक्रम को पुनर्गठित करके इसका नाम राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम रखा गया और इसे अम्बर 1980 से चालू किया गया। इसे भी केन्द्र द्वारा चालू की गई योजना के रूप में जिसे 50 प्रतिशत सहायता प्राप्त थी, कार्यान्वित किया गया। 3000 से 4000 लाख मानव दिन का अतिरिक्त प्रतिवर्ष रोजगार कायम करने का संकल्प किया गया। ताकि बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार को दूर किया जा सके। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण अध:संरचना को मजबूत करने के लिए सामुदायिक परिसम्पतियो का निर्माण करना है। इनमें शामिल है- पीने के पानी के कुंए, सामेदायिक सिंचाई कुंए, ग्राम-तालाब छोटी सिंचाई परियोजनाएं ग्रामीण सड़कें' स्कूल, बालवाड़ी, भवन, पंचायत घर आदि।

इस प्रोग्राम के आधीन चलाई गई परियोजनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा की गई और इनकी निम्नलिखित कमजोरियां बताई गई।

(1) मध्यावधि समीक्षा में उल्लेख किया - "राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा कार्यान्वित परियोजनाओंका प्राय उन परिवारों की आवश्यकताओं के साथ तालमेल अथवा समन्वय नहीं किया जाता जिनका पहचान सहायता के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन की गई। राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम सम्बन्धी राशि उसके कुल खर्च के 50 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए। इस कार्यक्रम के आधीन ठेकेदारों को रखने की अनुमति नहीं है कुल निर्धारित राशि का 10 प्रतिशत भाग अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए व्यय करना अनिवार्य है। इस प्रोग्राम के अन्तर्गन सामाजिक वानिकी इंदिरा आवास योजना और इस लाख कुओं की योजना के लिए राशि निर्धारित की जाती है।

तालिका 14.8

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की प्रगति

	व्यय (करोड़ रुपए)	जनित रोजगार (लाख मानव-दिन)	प्रति मानव-दिन लागत (रुपए)

छठी योजना (1980-85)	1834	17750	10.3
सातवीं योजना (1985-86)	532	3160	16.8
1986-87	718	3950	18.1
1987-88	788	3710	21.3
1988-89	902	3950	22.8
कुल	294	14770	19.9

इस कार्यक्रम के आधीन छठी योजना के दौरान 17750 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया जबकि इसका लक्ष्य 15000 लाख मानव-दिन रोजगार कायम करना था।

सातवीं योजना में इसे लिए 2487 करोड़ रुपए के कुल परिव्यय का प्रस्ताव रखा गया- 1251 करोड़ रुपए के केन्द्र द्वारा और 1236 करोड़ रुपए राज्यीय सरकारों द्वारा पहले उद्देश्य के अतिरिक्त इसमें सामाजिक वानिकी के उद्देश्य का ईस कार्यक्रम का अंग बनाया गया ताकि परिस्थितिकीय संतुलन कायम रखा जा सके। इस योजना में 14450 लाख मानव दिन कुल रोजगार जनित करने का लक्ष्य तय किया गया। संशोधित मार्गदर्शक नियमों में 25 प्रतिशत परिव्यय सामाजिक वानिकी पर 10 प्रतिशत ऐसी परियोजनाऔं पर जो अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाए। परिसम्पतियों के टिकाउपन को निश्चित करने के लिए यह तय किया गया कि मजदूरी एवं गैर-मजदूरी व्यय में 50 50 का अनुपात रखा जाएगा।

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की समीक्षा से पता चलता है कि सातवीं योजना के पहले चार वर्षों (1985-86 से 1988-89) के दौरान इस कार्यक्रम पर 2940 करोड़ रुपए खर्च किए गए परन्तु इसके विरूद्ध 14770 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया जा सका दूसरे शब्दों में चाहे इस प्रोग्राम में अपेक्षाकृत अधिक राशि झौंकी गई, किन्तु इसकी तुलना में अपेक्षाकृत कम रोजगार कायम हुआ। इसके अतिरिक्त, गांधी श्रम संस्थान के अध्ययन से यह पता चलता है कि "इस कार्यक्रम के आधीन उपलब्ध कराया गया प्रोग्राम बहुत ही थोड़े समय के लिए है और इस कारण यह ग्रामीण लोगों के जीवन-स्तर पर प्रभाव नहीं डाल सकता। इस कार्यक्रम के आधीन बाजार-दर की तुलना में कम मजदूरी दी जाती है। लाभप्राप्तकर्ताओं का चयन भी उचित रूप में नहीं किया जाता और निर्धनों में सबसे अधिक निर्धन जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया गया, बिल्कुल छोड़ ही दिए जाते है।'.'

इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम सही दिशा में एक कदम है। इसकी सहायता के लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम भी जल ही में चालू किया गया है। परन्तु जब तक रोजगार जनन को आयोजन का प्रधान लक्ष्य नहीं बनाया जाता है और अन्य उद्देश्य इस मुख्य उद्देश्य के इर्द गिर्द चुने नहीं जाते, तब तक बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार की समस्या का समाधान होना सम्भव नही।

14.8.3 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की आलोचनात्मक समीक्षा

कार्यक्रम के मूल्यांकन सम्बन्धी बहुत से अध्ययनों से पता चलता है कि प्रोग्राम का प्रचालन प्रभाव गरीबी हटाओ के रूप में कहीं कम था जबकि सरकार अपने प्रतिवेदनों में सहायकों बैंक उधार और निर्धनता रेखा पार करने वालों के प्रभावशाली आकड़े पेश कर रही थी।

सबसे पहले लाभप्राप्तकर्ताओं में निर्धनों का वर्गीकरण किया गया। अत 165.6 लाख लाभप्राप्तकर्ताओं को निर्धन मान लेना उचित न होगा। समन्वित ग्राम-विकास कार्यक्रम के नाबार्ड सर्वेश के आधार पर प्रोफेसर नील कण्ठ रथ यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते है- "नाबार्ड सर्वेक्षण (1984) के अनुसार गलत ढंग से वर्गीकृत लाभ प्राप्तकर्ता ओं का अनुमान असम में 42, प्रतिशत, हरियाणा में 17.76 प्रतिशत, पंजाब में 35 प्रतिशत, मध्यम प्रदेश में 19 प्रतिशत और महाराष्ट्र में 13 प्रतिशत था। इसके विरूद्ध, इस सर्वेक्षण के अनुसार वर्गीकरण का अनुपात तमिलनाडु और कर्नाटक के सर्वेक्षित जिलों में 11 प्रतिशत, आंधप्रदेश में 7 प्रतिशत और उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश में 2 प्रतिशत से भी कम था। 'कुल मिलाकर यह कहना अनुचित न होगा कि कम से कम 15 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति जिनकी पहचान "गरीबों" के रूप में की गई और जिन्हें समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम से सहायता दी गई, वास्तव में गरीब वर्गों से नहीं थे।"

श्री ए.सी. कुट्टी कृष्णन अपने केरल के अध्ययन से इस नतीजे पर पहुंचे है- 'लाभ प्राप्तकर्ताओं की बहुसंख्या 80 प्रतिशत की सीमा तक (3000 रुपये से कम वार्षिक पारिवारिक आय पर आधारित) और 63.25 प्रतिशत (76 रुपए से कम प्रति व्यक्ति मासिक आय पर आधारित) इस प्रोग्राम से सहायता प्राप्त करने के हकदार नहीं थे । किसी विशेष क्षेत्र में निर्धनता के आकार को वास्तविक रूप से समझे बिना लक्ष्य निश्चित कर दिए जाते है, जिसके नतीजे के तौर पर लाभ उदार रूप में समृद्ध वर्गों को पहुंचते चले जाते हैं । इसी प्रकार प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे, गांधी लेबर इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद, गुजरात में चार चुने हुए ग्रामों के अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे है- "प्रथम, गैर-निर्धन परिवारों का प्रोग्राम में भाग लेने वालों में प्रभुत्व है । इन ग्रामों में गैर-निर्धनों का भाग लेने वालों में अनुपात 55 से 75 प्रतिशत था। और दूसरे न भाग लेने वालों में मुख्यत: ऐसे व्यक्ति थे जो उपभाग-स्तर के निम्नतम तीन दशाओं से सम्बन्ध रखने वाले थे । "इन्दिरा हीरा वे ने यह भी अनुभव किया कि भौगोलिक दृष्टि से समन्वित ग्राम-विकास कार्यक्रम और लाभप्राप्तकर्ताओं की योजनाएं केवल विकसित गांवों तक ही पहुंच पाई है । अध्ययन से व्यक्त हुआ है कि "चाहे विशेष कार्यक्रम 5 वर्षों से भी अधिक समय से चल रहे है, सिंचाई प्राप्त और कृषि की दृष्टि से समृद्ध ग्रामों में परिवारों के उपभोग स्तर में वर्षा पर आधारित ग्रामों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक असमानता थी जो यह जाहिर करती है कि विकास के साथ असमानताओं की जड़ें सम्भवत: इन ग्रामों अर्थव्यवस्थाओं में मजबूत बन गई है ।"

दूसरे, समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अ-परिचय वन प्रभाव के लिए दो कारणतत्व उत्तरदायी है (1) लाभप्राप्तकर्ताओं परिवारों को दिए जाने वाले ऋणों एवं उपादान में छिद्र हो

सकते है, (2) ऋण का दुष्प्रयोग भी हो सकता है । समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन सबसे मुख्य परिसम्मद जिसके निर्माण के लिए ऋण (एवं साहायम) दिए जाते है पशुधन के रूप में यह जिसमें दुग्ध-पशु, बकरियाँ, भेड़ें, गाएं, बैल गाडिया, ऊंट गाडियां शामिल है नेवार्ड सर्वेक्षण ने यह व्यक्त किया कि 40 से 50 प्रतिशत विनियोग डेरी, बकरियों एवं भेड़ों पर किया गया । बैल, ऊँट (गाड़ियों सहित या इनके बिना) पर 20 प्रतिशत अतिरिक्त विनियोग किया गया छोटी सिंचाई पर 13 से 14 प्रतिशत विनियोग किया गया । दूसरे शब्दों में ऋण उपादान का लगभग दो तिहाई पशुधन के रूप में था ।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम को लागू करने वाले करने वाले तीन अंगों अर्थात विकास प्रशासन, ऋण संस्थानों एवं पंचायती राज संस्थानों की कार्य पद्धति में कमजोरियों के कारण गैर-निर्धन इन ऋणों उपादान को हथियाने में सफल हो गए । इसके लिए वे या तो अपनी पहचान गरीबों के रूप में करवाते या गरीब व्यक्तियों को कुछ रुपया देकर परि सम्पति प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल करते । इन क्षणों का अनुपात इन्दिरा हीरा वे के अनुसार कुल भागीदारों का 25 से 30 प्रतिशत था । नाबार्ड सर्वेक्षण से व्यक्त हुआ कि पशुपालन के लिए दिए गए ऋणों में 26 प्रतिशत क्षरण का उच्च अनुपात था जिसका लगभग आधा ऋणों के दुष्प्रयोग के कारण और दूसरा आधा भाग जानवरों के विक्रय के कारण था । गैर-निर्धनों द्वारा ऋणों को हथियाने के लिए बहुत से अवैध तरीकों का प्रयोग किया गया । इनमें मुख्य ये थे (1) परिवार के एक सदस्य को कागज पर किसान और बाकी सभी सदस्यों को भूमिहीन मजदूर के रूप में दिखना (2) छोटे और सीमान्त किसान के रूप में वर्गीकृत होने के लिए भूमि को परिवार के सभी सदस्यों में विभक्त करना, और (3) किसी वास्तविक निर्धन व्यक्ति के नाम में परिसम्पत्ति खरीद लेना और फिर गरीब व्यक्ति को कुल धनराशि देकर इन परिसम्पतों (पशु और गाडियों) को हथिया लेना । नेवार्ड के आधीन किए गए जयपुर अध्ययन ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि ऋण प्राप्तकर्ताओं में से केवल 46 प्रतिशत के पास ही दो वर्षों के बाद परिसम्पत् बच पाए थे, अन्य व्यक्तियों ने या तो इन्हें बेच दिया था या पशु मर गया था । कृषि श्रम परिवारों का बहुत ही सी.एच.ओटीए अनुपात अर्थात 34 प्रतिशत ही ऐसा था जिसके पास पशु बच पाए थे । अध्ययन में इस असंतोषजनक स्थिति की व्याख्या करते हुए यह उल्लेख किया गया- "वास्तविक समस्या सांझी चरागाहों की घटिया उपलब्धि, चारे अथवा भोजन के पर्याप्त संभरण विशेषकर भूमिहीन श्रमिकों के सन्दर्भ में, और खुश्क मौसम के दौरान पशुओं का पालन-पोषण की ऊँची लागत है ।"

तीसरे, "चाहे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम में यह शर्त है कि लाभ कर्ताओं का चयन निर्धनता-रेखा के नीचे निर्धनता वर्गों से होना चाहिए, वहाँ वस्तुस्थिति यह है कि कई एक राज्यों में लाभप्राप्तकर्ताओं की काफी बड़ी संख्या का चयन छोटे तथा समान्तर किसानों में से किया गया । ऐसे लाभप्राप्तकर्ताओं का अनुपात भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न हें और कुछ परिस्थितियों में 30 प्रतिशत तक ऊँचा है । इसका मुख्य कारण उधार की दृष्टि से छोटे तथा सीमान्त किसान की बेहतर क्षमता है और इसी कारण ब्लॉक अधिकारी एवं उधर एजेन्सियों इन्हें

सहायता देने में प्राथमिकता दिखलाती है । "दूसरे शब्दों में, इस कार्यक्रम के लाभ निर्धन वर्गों की ऊँची सतहों द्वारा हथिया लिए जाते हो इस विकृति सुधारना होगा यदि अन्त्योदय की भूल भावना-गरीबों में सबसे गरीब तक पहुँचना के कार्यान्वयन की प्रक्रिया को सबसे अधिक महत्व प्रदान करना है । चौथे, उत्पादक परिसम्पदों के निर्माण के लिए व्यक्तियों को दिए जाने वाले साहय्ंयों के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि इसमें दलाली की पद्धति और बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार उत्पन्न हो गया है । ग्राम समाज के प्रभावशाली सदस्य नौकरशाही एवं सहकारों विभाग के अफसरों एवं उधार संस्थाओं के साथ मिलकर गरीब देहातियों को उपादान एवं उधार की स्वीकृति प्रदान करने के लिया दलाली वसूल करते है । बहुत सी परिस्थितियों मैं एक ही पशु को विभिन्न लाभप्राप्तकर्ताओं में घुमाने की कहानी सुनाने में आती है और इनमें "शुद्ध लाभ" सामान्य ही है । ग्राम समाज के ढांचे में चहा गरीब ऋणों एवं उपादान की स्वीकृति के लिए गैर-निर्धनों पर बहुत हद तक निर्भर हो गए है, गैर निर्धन इन विकास कार्यक्रमों के लाभों को हथियाने में कामयाब हो गए है । इसके परिणामस्वरूप गरीबों में अपरच्यवन और निर्धनों की: गैर-सहभागिता के कारण समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ही पराजित हो जाता है।

अन्तिम, इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समन्वित ग्रामविकास कार्यक्रम के आधीन परिसम्पदों के हस्तांतरण के नतीजे के तौर पर कितने निर्धन लाभप्राप्तकर्ताओं को निर्धनता रेखा के ऊपर खींचा गया प्रोफेसर नीलकण्ठ रथ नेबार्ड सर्वेक्षण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे है "लाभप्राप्तकर्ताओं की मात्रा जिनकी आय 3500 रुपयें की निर्धनता रेखा से अधिक बढ़ गई कुल वांछनीय लाभप्राप्तकर्ताओं का 47 प्रातिशत थी (यदि 15 प्रतिशत गैर-निर्धन लाभ प्राप्तकर्ताओ को छोड़ दिया जाए) या सभी लाभ प्राप्तकर्ताओं का 40 प्रतिशत । भिन्न-भिन्न राज्यों में इस सम्बन्ध मे काफी भिन्नता पाई गई है । परन्तु ये चालू कीमतों पर है, यदि 1979 -80 रु और अवेक्षण अवधि के दौरान कीमतों में परिवर्तन का समायोजना किया जाए तो यह पता चलता है कि वांछनीय लाभप्राप्तकर्ताओं का केवल 22 प्रतिशत या कुल लाभप्राप्तकर्ताओं का 18.7 प्रतिशत निर्धनता रेखा को पार कर पाया ।"

प्रोफेसर रथ निर्धनता रेखा को पार करने वाले सभी लाभप्राप्तकर्ताओं के 18.7 प्रतिशत के आंकड़े को भी अत्यनुमान मानते है । उनके अनुसार इसका कारण यह है कि विनियोग पश्चात् आय का परिकलन करते समय वार्षिक भुगतान की किस्तें लागत के रूप में घटायी नहीं गई । अत: रथ लिखते है- "यदि इस उचित व्यय को परिचालन में शामिल कर लिया जाए, तो लाभ प्राप्तकर्ताओं का वह प्रतिशत जो निर्धनता रेखा को पार कर गया है, बहुत बड़ी मात्रा में कम हो जाएगा ।" यदि इसका समायोजन कर लिया जाए तो निर्धनता रेखा को पार करने वाले लाभप्राप्तकर्ताओं का अनुपात गिरकर 10 प्रतिशत से भी कम रह जाएगा । इस प्रकार यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के 2 वर्षों के कार्यान्वयन के पश्चात ग्रामीण भारत के लगभग 3 प्रतिशत निर्धन परिवार निर्धनता रेखा के ऊपर रहने में समर्थ हो पाए चाहे थोड़ी देर के लिए ही ।"

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के संचालन के विश्लेषण से प्रोफेसर नील कण्ठ रथ इस निष्कर्ष पर पहुँचते है - 'समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अनुभाव की इस लम्बी समीक्षा के एक बात बिल्कुल साफ हो जाती है - ग्राम समाज में अनेक निर्धनों की सहायता के लिए परिसम्पत्ति प्रदान करने की नीति द्वारा गरीबी हटाने की नीति बहुत हद तक मिथ्या धारणा है । इस ढंग से बहुत ही थोड़े अनुपात की सहायता की जा सकती है । इस नीति पर अधिक बल देने से प्रहार की धार के कुन्द हो जाने का भय है, इससे अपव्यय, भ्रष्टाचार पैदा होगा और अन्ततोगत्वा निराशा ही मिलेगी । ग्रामीण निर्धनता पर एक बहु-दिशा के प्रहार में इस नीति का उचित स्थान अवश्यकता है किन्तु यह इस प्रोग्राम का मुख्य आधार नहीं बन सकता । "प्रोफेसर रथ का मत है कि गरीब के लिए परिसम्पत्ति जरूरी नहीं, बल्कि आय आवश्यक है । इस विचार के अनुसार गाय भेड़ों या बकरियों का झुण्ड या बैलगाड़ी या कुआं या पम्प सैट आयोजन के साधन है परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि परिसम्पत्ति-निर्माण नीति अपने आय जनन उद्देश्य में विफल हो गयी है और इसी कारण प्रोफेसर रथ महाराष्ट्र रोजगार गारण्टी योजना या राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के दिखाए मार्ग पर बड़े पैमाने पर भृति रोजगार कार्यक्रम को बढ़ावा देने का समर्थन करते है । अत: प्रोफेसर रथ के अनुसार केवल भूति रोजगार की नीति ही कार्यक्रम का मुख्य आधार होनी चाहिए ।

प्रोफेसर इन्दिरा हीरा वे प्रोफेसर रथ के दृष्टिकोण को सन्तुलित नहीं मानते । यह भूति-रोजगार के कार्यभाग पर अत्यधिक बल देता है और ग्राम समाज में स्वरोजगार के कार्य भाग की उपेक्षा करता है । प्रोफेसर हीरावे निर्धनों का दो वर्गों में भेद करते है- (1) वे जिनके पास कम से कम कुछ परिसम्पत्ति कुछ कौशल, शिक्षा या उद्यम है जिससे वे स्वरोजगार कायम कर सकते है, (2) वे जिनके पास न तो कोई परिसम्पद है, न ही कौशल, शिक्षा या उद्यम जिससे वे स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य कर सकें । पहली प्रकार के गरीबों के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन स्वरोजगार प्रणाली के द्वारा सहायता प्रदान करनी चाहिए और दूसरी प्रकार के गरीबों के लिए राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम या रोजगार गारण्टी योजना प्रणाली के आधीन लाभ पहुंचाना चाहिए । अत: यह तक दिया जाता है कि स्वरोजगार या मजदूरी-रूप रोजगार गरीबों को उनके औचित्य एवं स्वीकार्यता के आधार पर उपलब्ध कराना चाहिए । प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे का विचार सही है । क्योंकि भारतीय ग्राम समाज में ग्रामीण श्रम शक्ति का लगभग 63 प्रतिशत स्वरोजगार प्राप्त है । इतनी बड़ी ग्रामीण कार्यकारी जनसंख्या को मजदूरी रूपी रोजगार का विस्तार करना चाहिए ताकि भारतीय ग्राम अर्थव्यवस्था की श्रम को समाने की शक्ति उन्नत हो सके । स्वरोजगार भूति रोजगार के कार्यक्रम एक दूसरे के पूरक समझने चाहिए जिनसे अर्थ व्यवस्था की श्रम प्रयोग क्षमता बढ़ती है । सामाजिक तथा आर्थिक अध: संरचना के निर्माण के द्वारा मजदूरी रुपी रोजगार बढ़कर वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग उसी प्रकार बताती है जैसे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा स्वरोजगार बढ़ाकर ।

इसलिए प्रोफेसर रथ राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के आधीन अधिक मजदूरी रूपी रोजगार कायम करने के लिए अधिक बजट साधनों के आबंटन की सिफारिश करते है । परन्तु महाराष्ट्र से प्राप्त होने वाले प्रमाण के आधार पर के डी. डांडेकर (1983) यह संकेत देता है कि

ग्रामीण महाराष्ट्र के कमजोर वर्गों या गरीब परिवारों में कुल कार्यकारी आयु वाले कम से कम 10 प्रतिशत व्यक्तियों को पूर्णकालीन भृति रोजगार के समान काम उपलब्ध कराया गया । इसे लिए राज्यीय प्रशासन के पास तैयार परियोजनाओं की एक श्रृंखला होनी चाहिए ताकि जो करीब प्रशासन के पास अपना नाम पंजीकृत करवाते है, उन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जा सके । समन्वित प्राम विकास कार्यक्रम को इस काम को पूरा करने के लिए रोजगार गारण्टी योजना से सीख लेनी होगी

विकास प्रशासन के अधिकारी-तन्त्र, उधार संसाधनों और पंचायती राज संस्थानों के नेताओं में गठबन्धन समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम जैसे विशेष कार्यक्रमों की गैर-सहभागिता और अपारवच्यवन के लिए जिम्मेदार है । उच्च स्तर पर उधार मैं जो रियायतें स्वीकार की गई, वे गरीबों के पक्ष में व्यष्टि स्तर पर लागू नहीं की गई । सोफेसर इन्दिरा हीरावे के अनुसार, "ग्राम पंचायतें केवल एक ही वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करती है और वह है ग्रामीण समृद्ध वर्ग । अन्य सदस्य इस वर्ग द्वारा नामजद किए जाते है और इनका जनता से चुनाव नहीं होता । "विकास प्रशासन भी स्थानीय राजनीतिक नेताओं की लीक पर ही चलता है और इस प्रकार ग्राम समाज का ढ़ाँचा ग्रामीण निर्धनों के लिए निर्धनता विरोधी एवं भृति रोजगार कार्यक्रमों के बल को बहुत हद तक कमजोर कर देता है । राज्यीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के बारे में किए गए कई अध्ययनों में भ्रष्टाचार के संकेत मिले । जिनमें सामग्री का दुरूपयोग घटिया सामान का प्रयोग, झूठे हाजिरी के रजिस्टर तैयार करना और निर्धारित मजदूरी से कम भाग करना, शामिल है ।

अत: सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के गरीबों की भागिता को उन्नत करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ताकि इन प्रोग्रामों के पारच्यवन प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण बन जाए । प्रोफेसर हीरावे का सुझाव है- "ग्राम पंचायतों और तालुका पंचायतों को गरीबों के लिए तैयार किए गए प्रोग्रामों के कार्यान्वयन में कोई कार्य भाग नहीं देना चाहिए । इससे न केवल इनका हस्तक्षेप कम हो जायेगा । बल्कि विकास प्रशासन एवं बैंकिंग स्टाफ को भी अधिक स्वतन्त्र रूप में कार्य करने का अवसर मिलेगा । "यह एक नकारात्मक सुझाव है और इसे लागू करना बहुत कठिन होगा । एक और अधिक सकारात्मक सुझाव ग्रामीण निर्धनों का संघीकरण है और इन्हें इन प्रोग्रामों के कार्यान्वयन में प्रभावी प्रतिनिधित्व प्रदान करता है ।

14.8.4 जवाहर रोजगार योजना

प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने 20 अप्रैल, 1989 को जवाहर रोजगार योजना चालू करने की घोषणा की । उस समय चल रही सभी भृति रोजगार योजनाओं का विलयन जवाहर रोजगार योजना में कर दिया गया है । इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम को मिलाकर एक बड़े छत्र के आधीन कर दिया गया है जिसे जवाहर रोजगार योजना का नाम दिया गया है ।

योजना के मुख्य लक्षण

(1) राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम के सात वर्षों तक लगातार चलाए जाने के कारण ग्राम रोजगार प्रोग्राम देश भर में 55 प्रतिशत पंचायतों तक ही पहुंच पाए है । जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य प्रत्येक पंचायत तक पहुंचना है ।

(2) जबकि पहले इस योजना का प्रशासन ग्राम पंचायतों के आधीन होगा और इस प्रकार भारत में रहने वाले 440 लाख परिवार जो निर्धनता रेखा से नीचे है, ग्राम रोजगार कार्यक्रम से लाभ उठा सकेंगे ।

(3) जबकि पहले चल रहे ग्राम रोजगार कार्यक्रमों में केन्द्र एवं राजकीय सरकारी द्वारा दी गई सहायता का आधार 50:50 था, वहां जवाहर रोजगार योजना में यह तय किया गया कि केन्द्रीय सहायता द्वारा 80 प्रतिशत वित्त जुटाया जायेगा और राजकीय सरकारों का भाग केवल 20 प्रतिशत होगा।

(4) राज्यों में वित्त के आवंटन का आधार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात होगा ।

(5) इसके बाद जिला स्तर पर साधन के आवंटन के लिए पिछड़ेपन की कसौटियों को आधार बनाया जाएगा । इनमें है- जिले की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का भाग, कुल श्रम में कृषि मजदूरों का अनुपात और कृषि उत्पादित का स्तर । किन्तु भौगोलिक दृष्टि से विशेष पहचान वाले क्षेत्रों अर्थात् पहाड़ियों, मरूस्थलों एवं द्वीपों की आवश्यकताओं की पूर्ति का विशेष ध्यान रखा जाएगा ।

(6) जवाहर रोजगार योजना ग्राम पंचायतों को अपनी रोजगार योजनाएं चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन उपलब्ध कराएगी । औसत रूप में, ग्राम पंचायत जिसकी जनसंख्या 3000 से 4000 के बीच है, प्रतिवर्ष 80000 रुपये से 1 लाख रुपए तक राशि प्राप्त करेगी ताकि यह योजना को कार्यान्वित कर सके । इसके तहत गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के कम से कम एक सदस्य को 50 से 100 दिन के रोजगार की गारण्टी होगी ।

(7) योजना का मुख्य लक्ष्य यह है कि जनित रोजगार का 30 प्रतिशत स्त्रियों के लिए आरक्षित किया जायेगा । इसके अतिरिक्त सरकार खाना बदोष कबीलों के लिए रोजगार की व्यवस्था भी करेगी ।

(8) कुल संस्थानों का 60 प्रतिशत इन्दिरा आवास योजना के लिए राष्ट्रीय स्तर पर रखा गया है ।

(9) कुल संस्थानों का 20 प्रतिशत दस लाख कुओं की योजना के लिए आबंटित किया गया हैं ।

(10) श्रमिकों को साहायियत दरों जो कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली में वर्तमान है, 2 किलोग्राम खाद्यान्न प्रतिदिन दिए जाते है ।

(11) संसाधनों का कम से कम 60 प्रतिशत मजदूरी के अंश के रूप में खर्च किया जायेगा।

(12) ठेकेदारों एवं बिचौलियों को इसके आधीने किसी भी परियोजना को कार्यान्वित करने की इजाजत नहीं होगी।

(13) अनुसूचित जातियों, जनजातियों और मुक्त बन्दुआ मजदूरों की निजी भूमि को दस लाख कुओं की योजना के अन्तर्गत विकसित करने की अनुमति होगी। जवाहर रोजगार योजना के आधीन मुख्यत: निम्नलिखित कार्य कल्पित किए गए है-

(क) सदस्यों के लिए मकानों का निर्माण करना और इसके साथ-साथ अध:संरचना सुविधाओं का विकास करना।

(ख) आवंटित भूमि का विकास

(ग) सामाजिक वानिकी सम्बन्धी परियोजनाएं जैसे ईंधन के लिए लकड़ी, चरागाहों का सदस्यों की भूमि पर विकास।

(घ) छोटे सिंचाई के कुएं और सामूहिक कुंए, और

(ङ) पीने के पानी के कुएं।

14.8.5 जवाहर रोजगार योजना की प्रगति की समीक्षा

तीन वर्षों की अवधि (1980-91 से 1991-92) के दौरान जवाहर रोजगार योजना पर 7697 करोड़ रुपये का कुल परिव्यय किया गया जिससे 25.5 करोड मानव दिन रोजगार कायम किया गया। प्रति मानव दिन रोजगार जनन की लागत 302 रुपये बैठती है परन्तु रोजगार जनन के लक्ष्य पूर्णतया प्राप्त कर लिए गए है।

तालिका : 14.9

जवाहर रोजगार योजना के विलय एवं भौतिक लक्ष्य

	व्यय करोड सं०	रोजगार जनन (लाख मानव दिन) मानव दिन		
		लक्ष्य	प्राप्ति	लागत (रु0 में)
1989-90	2458	876	864	264
1990-91	2600	929	875	297
1991-92	2639	735	808	327
कुल	7697	2540	2547	302

दस लाख कुओं की योजना की आधीन, गरीबों, सीमान्त किसानों, अनुसूचित एवं जनजातियों और मुक्त बन्धु मजदूरों के लिए खुली सिंचाई के कुएं जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत उपलब्ध कराए जायेंगे? किन्तु जहां पर भौगोलिक कारणों के परिणामस्वरूप कुएं लगाने की संभावना नहीं, वही इस योजना का प्रयोग छोटी सिंचाई अर्थात सिंचाई के लिए तालाब आदि बनाने में किया जा सकता है। 1988-89 से 1991-92 की चार वर्षों की अवधि के दौरान 3.67 लाख कुएं कायम किए गए और इस कार्य के लिए 1916 करोड़ रुपए का व्यय किया गया। एक कुएं पर औसत खर्च 27682 रुपए हुआ।

इंदिरा आवास योजना के आधीन गरीब वर्गों के लिए 20 वर्ग मीटर क्षेत्र में मकान तैयार किए गए। प्रत्येक मकान में एक रसोई, बिना धुएं के चूल्हा और शौचालय की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक मकान पर 12700 रुपए के व्यय का प्रावधान है। 1985-86 से 1990-91 के छः वर्षो के दौरान, इन्दिरा आवास योजना के आधीन 1051 करोड़ रुपए खर्च किए और इसके परिणाम स्वरूप 1074 लाख मकानों का निर्माण किया गया। प्रति मकान औसत लगात 10720 रुपए बैठती है।'

योजना आयोग के प्रोग्राम मूल्यांकन संगठन ने 1991-92 में जवाहर रोजगार योजना का शीघ्र अध्ययन कर निम्नलिखित बातों का संकेत किया है-

(1) जबकि अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का रोजगार जनन में भाग 50 प्रतिशत से अधिक था, स्त्रियों का इसमें भाग जिला-स्तर पर 22-25 प्रतिशत और ग्राम पंचायत स्तर पर 15-18 प्रतिशत था।

(2) योजना में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्याशित स्तर तक रोजगार उपलब्ध न कराया जा सका क्योंकि 1988-89 में औसत रूप में एक व्यक्ति को 11.4 दिन का रोजगार 1990-91 के दौरान 15.7 दिन का रोजगार और 1991-92 मो 128 दर का रोजगार उपलब्ध कराया जा सका। यह वर्ष में 50-100 दिन के रोजगार के मौलिक लक्ष्य से कहीं कम है।

(3) परिसम्पतों के रख-रखाव के लिए पर्याप्त धन नहीं दिया गया।

(4) कुछ ग्राम पंचायतों ने कुछ परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए ठेकेदारों का प्रयोग भी किया।

(5) 89 प्रतिशत लाभ प्राप्तकर्ताओं के अनुसार निर्मित परिसम्पत् लाभदायक आंकी गई। इन्दिरा आवास योजना की समीक्षा-से पता चलता है कि (क) प्रति की औसत लागत लगभग 9000 रुपए थी। (ख) लगभग सभी ग्रामों में निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली अनुसूचित/जनजातियों के परिवारों की कसौटी का प्रयोग किया गया (ग) 50 प्रतिशत मकानों में निर्माण की गुणवत्ता अच्छी थी। (व) 84 प्रतिशत परिवारों ने उनको दिए गए मकानों के बारे में पूर्णतया या आशिक रूप में संतोष व्यक्त किया। (ङ) चाहे कुछ ग्रामों में इस कार्य के लिए ठेकेदारों का प्रयोग किया गया किन्तु स्वैच्छिक संस्थाओं का किसी प्रकार भी सहयोग प्राप्त न हुआ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जासकता है कि जवाहर रोजगार योजना के लक्ष्य सराहनीय है - ग्रामीण समाज में गरीबों तथा कमजोर वर्गों की सहायता करना। किन्तु जमीनी स्तर पर संगठनात्मक ढांचेका निर्माण करने की आवश्य करता है ताकि लक्षित लाभप्राप्तकर्ताओं को आवश्यक सहायता उपलब्ध कराई जा सके।

14.9 रोजगार प्रेरित विकास रणनीति

आयोजन के लक्ष्यों में बढ़ दिया गया कि कुल देशीय उत्पाद में 5-6 प्रतिशत का निरन्तर वृद्धि प्राप्त करनी चाहिए, निकट भविष्य में जविन स्तर मे लगातार एवं महत्वपूर्ण उन्नति होनी चाहिए, देश में आय तथा सम्पति का अधिक न्यायपूर्ण वितरण प्राप्त करना

चाहिए, क्षेत्रीय विकास का संतुलित ढांचा विकसित करना चाहिए देश के अन्दर औद्योगिक आधार कायम करने के उद्देश्य से मूल, भारी तथा प्रतिरक्षा उद्योगों का विस्तार करना चाहिए और इसके साथ-साथ निर्यात प्रोत्साहन एवं अग्रता प्रतिस्थापना को बढ़ावा देकर विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करनी चाहिए । इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि विकास की एक न्यायपूर्ण एवं युक्ति संगत प्रक्रिया में इन उद्देश्यों में संतुलन स्थापित करना आवश्यक है अधिकाधिक विशेषज्ञों की राय अब इस विचार के इर्द गिर्द केन्द्रित होती जा रही है कि भारत जैसे अल्पविकसित देश के लिए बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार प्रेरित रणनीति का निर्णय इसका सर्वोत्तम उत्तर है । ऐसी परिस्थिति में रोजगार प्रेरित रणनीति की रूपरेखा तैयार करना अत्यन्त लाभदायक है ।

किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि "सिद्धान्ततः या भारतीय अनुभव में अल्पकाल के दौरान उत्पादन की वृद्धि दर और रोजगार की वृद्धि दर के बीच कोई साधारण या अद्वितीय सम्बन्ध नही है, चाहे हमेशा ही यह मान्यता की गई कि आर्थिक विकास के परिणाम स्वरुप उत्पादन में वृद्धि होगी और उसके फलस्वरूप रोजगार मै वृद्धि होगी । किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आंकडे दर्शाते है । जाहिर है कि विनियोग की दर और कसालाजी का चुनाव रोजगार की वृद्धि दर निर्धारित करते है ।

ऐसा होने की स्थिति में विनियोग दर और ढांचे में परिवर्तन के साथ तकनालाजी के चुनाव में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप रोजगार की वृद्धि दर में भी परिवर्तन होता है । भारतीय अर्थवयवस्था में रोजगार-लोच सम्बन्धी आंकड़ों से पता चलता है कि सकल देशीय उत्पादन में 1 प्रतिशत की वृद्धि के परिणामस्वरूप 1972-73 से 1977-78 के दौरान रोजगार में 06 प्रतिशत की वृद्धि हुई यह आंकड़ा 1977-78 और 1983 के दौरान भी 0.55 प्रतिशत के उचित एवं ऊँचे स्तर पर ही रहा परन्तु 1983 से 1987-88 के दशक की रोजगार लोज के आधार रोजगार में 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि प्राप्त करनी होगी जोकि पूर्णतया अवास्तविक है । अतः इसलिए आवश्यक है कि निम्नलिखित दिशाओं में विकास प्रक्रिया को मोड़ा जाए ताकि देश में रोजगार के अवसरों का तेजी से विस्तार हो और सकल देशीय उत्पाद में 6 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ देश सन 2000 तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें । योजना आयोग ने सुझाव दिया है :

(1) आर्थिक संवृद्धि मुख्यतः उन क्षेत्रों से प्राप्त की जानी चाहिए जिनमें अधिक रोजगार क्षमता अधिक है और भविष्य में भी अधिक रोजगार क्षमता बनी रहने की संभावना

(2) समय संभरण एवं माँग के संतुलन (जिसमें निर्यात भी शामिल है) के सीमाबद्ध को ध्यान में रगो हुए प्रत्येक मुख्य में ऐसी वस्तुओं और उत्पादन प्रणालियों को उच्च प्राथमिकता देनी, होगी जिनमें रोजगार तीव्रता अधिक है ।

(3) विभिन्न उत्पादन दल-प्रणालियों में जहाँ कहीं भी संभव हो, ऐसी उत्पादन तकनीकों को प्रोत्साहन देना होगा जिनमें पूंजी की प्रति इकाई के लिए अधिक रोजगार प्राप्त हो और पूंजी गहनता में अन्धाधुन्ध और प्रायः अनावश्यक वृद्धि के निरूत्साहित करना होगा ।

(4) सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग को रोजगार प्रोत्साहन क्षेत्रों में प्रेरित करने के अतिरिक्त, राजकोषीय एवं उधार नीतियों का प्रयोग गैर-सरकारी क्षेत्र के विनियोग को इस प्रकार

प्रभावित करने के लिए करना होगा कि इससे ऐसे क्षेत्रों एवं तकनालाजी को बढ़ावा मिले जिससे रोजगार क्षमता तेजी से बढ़े।

इस समग्र ढांचे के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में रणनीति के मुख्य अंग इस प्रकार होने चाहिए।

कृषि तथा सम्बन्ध क्षेत्र

उच्च उत्पादन वृद्धि के क्षेत्रों में, रोजगार उत्पादन अनुपात के गिरने की प्रवृत्ति पाई गई है। प्रति हैक्टेयर श्रम-प्रयोग 1973-74 से 1983-84 के दौरान पंजाब में 77 से कम होकर 65 हरियाणा में 57 से 55 और उत्तर प्रदेश में 88 से कम होकर 86 हो गया। अत: उत्पादन में 1 प्रतिशत वृद्धि के विरूद्ध पंजाब में रोजगार की वृद्धि शून्य, हरियाणा में 0.07 और उत्तर प्रदेश में 0.19 प्रतिशत रही। ऐसा प्रतीत होता है कि इन क्षेत्रों में वृद्धि दर के सोत श्रम विस्थापन के रूप में परिवर्तित होते जा रहे है। किन्तु अन्य सभी राज्यों में प्रति हैक्टेयर श्रम-प्रयोग में वृद्धि हुई है।

विकास की जो रणनीति पिछड़े निर्धन क्षेत्रों की वृद्धि दर को त्वरित करना चाहती है, उसे कृषि में श्रम की खपत में समग्र गिरावट की प्रवृति को पलटना होगा और इसे साथ साथ इन क्षेत्रों में ग्रामीण श्रमिकों के औसत आय-स्तर को उन्नत करना होगा। ये आठ राज्य है - आंध्र प्रदेश बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल। इन राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे 80 प्रतिशत जनसंख्या रहती है और देश के कुल बेरोजगारों का इनमें 70 प्रतिशत है।

यह देखा गया है कि सिंचित क्षेत्र में 1 प्रतिशत की वृद्धि की परिणाम रूवरूप रोजगार में 0.38 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कृषि में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि आधर प्रदेश एवं कर्नाटक में बाएं गए एक हैक्टेयर सिंचित क्षेत्र द्वारा सिंचित क्षेत्र की तुलना में 50 से 150 प्रतिशत अतिरिक्त श्रम का प्रयोग होता है। अत: रोजगार के साथ विकास की रणनीति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि देश के मन्द वृद्धि वाले क्षेत्रों में सिंचाई का विस्तार किया जाए, विशेषकर छोटी सिंचाई परियोजनायें की सहायता द्वारा।

चूंकि मन्द विकास वाले क्षेत्रों का अधिकतर भाग वर्षा पर आधारित है, इसलिए इन क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों में पहले ही विकसित की जा चुकी है तकनालाजी का विस्तृत प्रयोग (विशेषकर मोटे अनाजों में) किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पानी संरक्षण और प्रबन्ध की दृष्टि से सामूहिक प्रयास इन क्षेत्रों में उत्पादन एवं रोजगार का विकास त्वरित करने में महत्वपूर्ण कारणतत्व बन सकते है।

अधिक मूल्य और अधिक श्रम प्रयोग वाली फसलों अर्थात सब्जियों एवं फलों को प्रोत्साहन देना चाहिए। सब्जियों फसलें में सबसे अधिक श्रम-प्रधान मानी गई है। हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में किए गए अध्ययनों द्वारा तैयार अनुमानों से ज्ञात हुआ है कि सेवो पर प्रति हैक्टेयर 180 और 170 मानव दिन और आमों पर गुजरात में 335 महाराष्ट्र में 124 उत्तर प्रदेश में 91 और कर्नाटक में 85 मानव दिन और इसकी समग्र औसत के रूप

में 140 मानव दिन का प्रति हैक्टेयर प्रयोग होता है । इन अनुमानो में इन फलो के लिए विपणन एवं विधायन के दौरान जनित रोजगार को शामिल नही किया गया।

अन्य सम्बन्धित कृषि क्रियाएं जिनमें अधिक रौजगार जनन होता है, पशुपालन एवं मत्स्य पालन है । कृषि पर राष्ट्रीय आयोग द्वारा इस्तेमाल किए गए मापदण्ड के आधार पर परन्तु विपणन एवं विधायन में रोजगार को न शामिल करते हुए यह, अनुमान लगाया गया है कि पशु पालन एवं मत्स्य क्षेत्रों में 1990-95 की अवधि के दौरान 615 लाख व्यक्ति-वर्ष रोजगार कायम किया जाएगा ।

इस कारण योजना आयोग का कहना है के "यदि क्षेत्रीय दृष्टि से विस्मृत लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ अधिक मूल्य वाली फसलों अर्थात फलों सब्जियों एवं अन्य नकद फसलों के पक्ष में खेती को बढ़ावा दिया जाए और इसके अतिरिक्त पशु पालन में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा जाय तो कृषि तथा सम्बन्द्ध क्षेत्रों गे रोजगार 25 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती है ।

ग्रामीण औद्योगीकरण

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और अल्प रोजगार दूर करने के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण का प्रोग्राम चालू, करना चाहिए । इस सम्बन्ध में मूल प्रश्न ऐसे उद्योगों के निर्धारित करने का है जो रोजगार की दृष्टि से चालू किए जाने चाहिए, इनका स्थिति निख्यन क्या हो और उन्हें संगठन की दृष्टि से कैसे अर्थ-क्षम बनाया जाए आदि । इस उद्देश्य कीं प्राप्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के टैक्नो- आर्थिक सर्वेक्षण किए जाने चाहिए, ताकि विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का अनुमान लगाया जा सके । भूतकाल में कृषि द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के मुख्य भाग का विधायन नगर आधारित उद्योगों द्वारा किया जाता रहा है । ग्रामीण औद्योगिकरण के प्रोग्राम में कृषि उत्पादन की उत्पादक केन्द्र के पास विधायन करने का विचार है ताकि इस प्रकार ग्रामीण को रोजगार मिले । न केवल यह बल्कि आनुषंगिक और पोषक उद्योग भी ग्राम क्षेत्रों या उनके आस-पास की कयाम किए जाने चाहिए । ग्रामीण औद्योगिकरण के ऐसे प्रोग्राम के लिए बहुत से प्रशासनिक तकनीकी वित्तीय एवं संगठनात्मक सहायक उपाय करने जरूरी है ।

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने योजना आयोग को सम्बोधित करते हुए दो मुख्य उद्देश्यों बेरोजगारी और ग्राम क्षेत्रों के विकास पर बल देने व आग्रह किया उन्होंने इसके लिए अध:संरचना को उन्नत करने की आवश्यकता और रोजगार क्षमता बढ़ाने के लिए सामाजिक सेवाओं को उपलब्ध कराने पर बल दिया । यह सलाह मूल रूप से सही है । गरीबी को दूर करने के लिए रोजगार का स्तर उन्न्त करना और अल्प रोजगार को कम करना जरूरी है । साथ ही रोजगार जनन के लिए सरकारी योजनाओ पर अत्यधिक निर्भर होने से एक ऐसी मनोवृति पनपती है जो आत्म-पोषित विकास के मार्ग में रूकावट बन जाती है । इस दृष्टि से अध:सरंचना (अर्थात् सिंचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण आदि) की राज्य सरकार द्वारा व्यवस्था करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, इसका बजाए कि सरकार प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को प्रोन्नत करें जो अफसरशाही नियन्त्रण को बढ़ाती है जिससे अन्ततोगत्वा ठेकेदारों या पूंजीपति वर्ग को

लाभ होता है जो कि अब ग्राम विकास करने के लिए इच्छुक हो गया है, विशेषकर कुछ राज्यों में ही क्रान्ति के प्रसार के पश्चात ।

ग्राम औद्योगिकीकरण के कार्यक्रम को निम्नलिखित प्रकार के उद्योगों की स्थापना करने की व्यावहारिकता पर विचार करना चाहिए -

(1) कृषि उत्पादक का विधायन

बहुत से लोगों को पूर्णकालीन रोजगार दिलाने के लिए बहुत सी औद्योगिक इकाइयाँ कायम की जा सकती है । ये किसानों और उनके परिवारों की अनुपूरक अंशकालीन रोजगार भी उपलब्ध करा सकते है । इस प्रकार के उद्योगों के कुछ उदाहरण है, चावल का विधायन, रूई से बिनौले निकालने, दूध एवं दूध से बनी वस्तुओं को तैयार करना, पटसन की निर्मित वस्तुएं और चीनी का उत्पादन ।

(2) फलों एवं सब्जियों का विधायन

बहुत से व्यक्तियों को फलों एवं सब्जियों के पैकिंग, डिब्बा बन्दी एवं सरंक्षण मुरब्बे, अचार एवं अन्य खाद्य पदार्थो के बनाने के लिए रोजगार दिया जा सकता है ।

(3) कृषि उप-उत्पाद के प्रयोग के लिए उद्योग

बहुत से कृषि उप-उत्पादों की विनिर्माण उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करने की तकनीकी संभावनाओं की छानबीन करने की काफी गुंजाइश है। इस प्रकार के उप-उत्पादों के महत्वपूर्ण उदाहरण है- शीरा और खोई से अल्कोहल, चावल के चोकर से तेल बनाना, आदि । ऐसे उद्योग ग्राम उद्योगों में रोजगार कायम करने के लिए उपयुक्त है और इनके विकास की काफी गुंजाइश है ।

(4) ग्रामीण हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों का विकास

कुटीर तथा ग्रामीण हस्तशिल्पों के विकास के लिए भारी क्षेत्र विद्यमान है। अब भी ग्रामीण हस्तशिल्प से तैयार की गई वस्तुएं विदेशी मुद्रा कमाने लगी है इसे और बढ़ावा देना चाहिए । इन ग्रामीण उद्योगों द्वारा केवल वहीं उपभोक्ता वस्तुएं नहीं बनाई जानी चाहिए जिनकी हमारे किसानों को जरूरत है जैसे हल, गती, बेलचा एक पहिया ठेला, आदि, इसके अतिरिक्त बचत से अनुषंगी एवं पोषक उद्योग ऐसी वस्तुओं का निर्माण भी कर सकते है 'जो अन्ततो गत्वा बड़े पैमाने के क्षैत्र में उत्पन्न की जाती है । कृषि मशीनरी के कुछ हिस्से या अन्य साज सामान निश्चित मानदण्ड के अनुसार ग्राम क्षेत्रों में उत्पन्न किया जा सकता है ।

(5) औद्योगिक क्षेत्र

भारत में औद्योगीकरण की क्रिया दूसरी पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ की गई और इस योजना द्वारा निर्धारित पथ पर देश लगभग तीन दशक तक चलता रहा है? प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रक्रिया से उत्पादन की तीव्र वृद्धि के साथ रोजगार की भी इतनी ही तीव्र वृद्धि हुई है? विनिर्माण उद्योगों के उत्पादन एवं रोजगार की प्रवृत्ति का विश्लेषण करने से निम्नलिखित बातें पता चलती है : -

पहली, विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन, रोजगार की तुलना में तीव्र गति से बढ़ा है। दूसरी, हल्के उद्योगों की तुलना में, विनियोग का ढांचा भारी उद्योगों के पक्ष में परिवर्तित हुआ है ।

परिणामत : भारी उद्योग अर्थात् धातु उत्पाद उद्योगों धातु-भिन्न, खनिज उत्पाद, मूल धातु उद्योगों रसायन और पैट्रोल-रसायन उद्योग की वृद्धि हल्के उद्योगों की तुलना में कहीं गति से हुई है । हल्के उद्योग अर्थात सूची वस्त्र जूता उद्योग, लकड़ी की वस्तुएं खाद्य और तम्बाकू निर्माण उद्योग अपेक्षाकृत अवरूद्ध रहे है। तीसरी, भारी उद्योग जिसमें अतिरिक्त पूंजी विनियोग का मुख्य भाग लगाया गया, अधिक पूंजी-प्रधान होने के कारण, हल्के उद्योगों की तुलना में रोजगार के विस्तार की बहुत कम गुंजाइश रखते है।

भारत के बारे मै अनुभव-जन्य प्रमाण मे पता चलता है विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार वृद्धि मुख्यत: संगठित क्षेत्र की तीव्र वृद्धि का परिणाम है। संगठित विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार-उत्पादक जो 1970-80 के दशक में 0.40 था गिरकर 1980-90 के दशक में लगभग 0.26 हो गया इसके और अधिक गहन अध्ययन से पता चलता है कि संगठित फैक्टरी क्षेत्र में यह अनुपात छोटे क्षेत्र के कारखानों में जहां, 100 से कम श्रमिक काम करते है 0.44 है किन्तु बड़े कारखानों के क्षेत्र में यह केवल 0.15 है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि विनिर्माण क्षेत्र में, कुटीर तथा लघु स्तर उद्योगों द्वारा मूल्य-वृद्धि में योगदान 42 प्रतिशत था किन्तु, इनका रोजगार में भाग 80 प्रतिशत था। जाहिर है कि रोजगार प्रेरित रणनीति के लिए यह वांछनीय होगा कि, 1990-2000 के दशक के दौरान उत्पादन का अधिकतर भाग इस क्षेत्र से प्राप्त क्रिया जाए। इस क्षेत्र की उत्पादित बढ़ाने के लिए यह अनिवार्य है कि तकनीकी उन्नति के कार्यक्रम चलाए जाऐ, भले ही इनके कारण प्रति इकाई उत्पाद के लिए रोजगार तें कुछ गिरावट आए।

इससे यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि सभी लघु-स्तर इकाईयां श्रम-प्रधान होती है और सभी वृहद-स्तर इकाइयां पूँजी-प्रधान होती है। यह मान्यता सत्य प्रमाणित नहीं हुई। पूंजी या श्रम की तीव्रता विनियोक्ता पूंजी के आकार पर निर्भर नहीं करती है। इसी प्रकार संगठित क्षेत्र में बहुत से उद्योग समूहों की रोजगार क्षमता काफी अधिक है।

योजना आयोग ने हाल हो में निम्नलिखित उद्योग समूहों की पहचान की है जिनमें रोजगार क्षमता अधिक है किन्तु वर्द्धमान पूँजी-उत्पाद अनुपात कम है। वे है- मछली की डिब्बाबन्दी और संरक्षण, बेकरी, चीनी और खांडसारी का उत्पादन, तम्बाकू उत्पादन, रूई से बिनौले निकालना, छपाई एवं रंगाई, खादी, हथकरघा सूती वस्त्र पावर लूम, ऊन कताई एवं बुनाई (कारखानों को छोड़कर अन्य इकाइयों में), ऊनी वस्त्रों की रंगाई और विरंजन, चमड़े की वस्तुएं दियासलाई, सूती वस्त्र, फलों तथा सब्जियों लै डिब्बाबन्दी., पटसन एवं मस्त की वस्तुएं, शीशा एंव शीरे की वस्तुएं। संरचनात्मक चिकनी मिट्टी बाइसिकल, धातु पदार्थो, पेट एवं वार्निश, डेरी उत्पादों, संश्लिष्ट वस्त्रों की छपाई एवं रंगाई, शराब, औषध एवं दबाइयों और बेट्रीज में भी उत्पादन के साथ रोजगार का अंश काफी ऊँचा है इनमें भी वर्द्धमान पूँजी-उत्पाद का अनुपात इतना अधिक नहीं पाया गया।

इस सारे तर्क का सार यह है कि विनियोग के ढांचे को प्रोत्साहनों की योजना के अनुसार इस प्रकार मोड़ा जाना चाहिए। कि इससे अधिक रोजगार क्षम वाले एवं कम पूंजी

उत्पाद अनुपात वाले उद्योगों से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाए और यह नीति संगठित एवं. असंगठित दोनों क्षेत्रों में लागू होनी चाहिए।

अन्य सेवाएं

सेवा क्षेत्र में अधिक रोजगार-क्षमता वाले दो क्षेत्र है - सड़क-निर्माण एवं गृह निर्माण। आज देश के 31 प्रतिशत गांव जिनकी जनसंख्या 1000 से 1500 के बीच है और 10 प्रतिशत बड़े ग्राम ऐसे है जो फीडर रोड से मिले हुए नहीं है। यदि 8 लाख किलोमीटर सड़क निर्माण का प्रोग्राम चलाया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप 228 लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार कायम हो सकेगा।

ग्रामीण और शहरी गरीबों के लिए गृह विनिर्माण का भारी कार्यक्रम तैयार करना चाहिए । इसके लिए गरीबों को न केवल भूमि के रूप में जगहे देनी होगी बल्कि उन्हें गृह निर्माण के लिए पर्याप्त संसाधन भी उपलब्ध कराने चाहिए गरीबों के लिए उधार की उदार रूप में व्यवस्था करने से' भी बहुत बड़ी मात्रा में रोजगार कायम किया जा सकता है ।

प्राथमिक स्तर पर एक अध्यापक वाले स्कूलों को 3-5 अध्यापकों वाले स्कूलों में परिवर्तित करने से रोजगार में वृद्धि को भी सहायता मिलेगी । पांचवे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1986) के अनुसार लगभग 28 प्रतिशत प्राथमिक स्कूल जिनकी संख्या 14800 थी, में केवल एक अध्यापक था इनमें 3 अध्यापकों की व्यवस्था करने से 3 लाख अतिरिक्त नौकरियां कायम हो सकेंगी।

डिस्पेंसरियों और अस्पतालों की संख्या बढ़ाकर और उन्हें आधुनिक सुविधाओं से लैस करके ग्राम स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास द्वारा 2.7 लाख अतिरिक्त नौकरियाँ कायम की जा सकती है। इनमें 10000 डाक्टर और शेष 2.6 लाख पैरा-चिकित्सक है । इस प्रकार ग्राम स्वास्थ्य अध: संरचना द्वारा रोजगार में और अतिरिक्त विस्तार की गुंजाइश है।

14.10 ग्रामीण रोजगार के लिए नई पहल

गरीबी की समस्या से निबटने के लिए अनेक उपाय अपनाए जाते रहे है। योजनाबद्ध विकास के अंतर्गत अनेक संस्थागत उपायों को बढ़ावा दिया गया और भारत सरकार के वार्षिक बजट प्रस्तावों को प्रस्तुत किए जाने के मौकों पर अनेक योजनाओं व कार्यक्रमों की घोषणा की जाती रही है। योजनाओं व कायक्रमों पर अमल की समीक्षा व नए उपायों को लागू करने का प्रक्रिया भी किसी न किसी रूप में चलती रही है । वर्ष 1999-2000 के लिए लोक सभा में पेश किए गए बजट में भी वित्त मंत्री ने ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण नीतिगत उपायों की घोषणा की ।

वित्त मंत्री श्री यशवंत सिन्हा ने ग्रामीणों के लिए आय अर्जन के नए अवसरों के सृजन की दृष्टि से वर्तमान स्वरोजगार व श्रम आधारित रोजगार के अवसरों में वृद्धि की जरूरत बताई तथा इसके लिए कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने का प्रस्ताव किया। उन्होंने चार-सूत्रीय रणनीति का मुख्य आधार बनाने की बात भी कहीं गई । इसमें जवाहर रोजगार योजना में संशोधन कर जवाहर ग्राम समृद्धि योजना शुरू करने, मजदूरी पर आधारित रोजगार कार्यक्रमों को श्रमिकों के पलायन वाले इलाकों में लागू करने, धन का उपयोग करने में पंचायती राज संस्थाओं

की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा विभिन्न स्व रोजगार योजनाओं को मिलाकर एक ही योजना स्वर्ण जयन्त ग्राम स्व रोजगार योजना चलाने की बात कही गई।

योजनाओं का पुनर्गठन

वित्त मंत्री की घोषणाओं के अनुरूप ही ग्रामीण क्षेत्र व रोजगार राज्य मंत्री श्री बाबा गोंडा पाटिल ने इस वर्ष मार्च मैं ग्रामीण विकास व गरीबी अन्मूलन कार्यक्रमों के पुनर्गठन की घोषणा के साथ ही इनकी नई रूपरेखा की जानकारी दी । राज्य सरकारों के साथ पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद निर्धारित की गई पुर्नगठित योजनाओं पर अप्रैल 1999 से अमल भी प्रारम्भ कर दिया गया है । उम्मीद सही की जा 'रही है कि इन योजनाओं का सामना बेहतर ढंग से कर सकेगी। यह आशा भी की जा रही है कि इन योजनाओं से मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के, बेरोजगार युवकों व विशेष रूप से अनुसूचित 'जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के बेरोजगार युवकों को लाभ प्राप्त होगा।

इस बार जो नई योजनाएं घोषित की गई है वे है- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना । पिछले अनेक वर्षों से चल रहे स्वरोजगार कार्यक्रमों की एक विशेषता यह रही है कि वे बेरोजगारों की आय में वृद्धि का अवसर प्रदान कर सतत गरीबी उन्मूलन में सहायक रही है परन्तु एक समस्या यह थी कि ऐसे स्वरोजगार कार्यक्रमों की संख्या अधिक थी और उनके बीच दुहराओ टकराव की स्थिति से भ्रम उत्पन्न होता था। अब ऐसे अनेक कार्यक्रमों का विलय करके स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना प्रारम्भ की जा रही है। जिन कार्यक्रमों का विलय किया गया है उनमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला व बाल विकास कार्यक्रम (इवाकरा), स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों का प्रशिक्षण (ट्राईसेम), ग्रामीण दस्तकारों के लिए सुधरे हुए औजार किट की आपूर्ति (सिटर।), गंगा कल्याण योजना तथा दस लाख कुओं की योजना शामिल है। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना को ऐसी समय योजना का रूप दिया गया है जिसमें लाभार्थियों के चयन, प्रशिक्षण, ढांचागत सुविधाओं, ऋण व विपणन सुविधाओ को स्थान दिया गया,' है। इसमें व्यक्तियों के बताये लक्ष्य-समूहों की तरफ ध्यान देकर किसी विशेष गति विधि को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया है। कार्यक्रमों की बैंक ऋणों पर निर्भरता को देखते हुए बैकों को भी योजनओं से जोड़ा जाएगा। प्रत्येक जिले में गरीबी उन्मूलन के लिए संसाधनों व रणनीति के बारे में विस्तार से विचार कर योजना तैयार की जायगी। चुने गये परिवार को तीन वर्ष के भीतर गरीबी रेखा से ऊपर लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ढांचागत विकास पर केन्द्रित होगी। जवाहर रोजगार योजना के इस संशोधित स्वरूप में अब आबंटित की गई समूची राशि ग्राम पंचायतों को दी जाएगी । इसमें श्रम आधारित कार्यक्रमों पर बल दिया जाता रहेगा परन्तु मजदूरी और सामग्री के बीच 60 तथा 40 के निर्धारित अनुपात में कुछ छूट का प्रावधान भी रखा जाएगा । पंचायतों को स्वयं ही 50000 रुपये तक के कम शुरू कराने की छूट दी गई है। पहले से बनी परिसंपत्तियों के रख-रखाव पर खर्च की सीमा भी 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दी गई है।

वास्तव में हाशिम समिति ने सिफारिश की थी कि जवाहर रोजगार योजना को गांव स्तर पर लागू किया जाना चाहिए ताकि गांव में बुनियादी ढांचे का विकास हो सके। उसी के अनुरूप योजना का स्वरूप बदला गया है।

पुनर्गठित योजनाओं में अक्टूबर 1993 में लागू की गई सुनिश्चित रोजगार योजना का स्वरूप नहीं बदला गया है। एकमात्र मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में इसे देश के सभी जिलों और ब्लाकों के स्तर पर जारी रखा जाएगा । तथा जिलों को आबंटित राशि का 70 प्रतिशत हिस्सा ब्लाकों को दिया जाएगा तथा 30 प्रतिशत हिस्सा जिला स्तर पर आरक्षित रखा जाएगा ताकि आपदाग्रस्त क्षेत्रों में उसका इस्तेमाल किया जा सके। इसका उपयोग कैसे हो इसका निर्धारण जिला परिषद द्वारा क्षेत्र के सांसद के साथ विचार विमर्श के बाद किया जाएगा । यद्यपि सुनिश्चित रोजगार योजना का विस्तार व्यापक है परन्तु देश के अधिक पिछड़े जिलों व अत्यधिक गरीबों को इसका लाभ पहुंचाने की दिशा में विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा।

मंत्रालय ने जिला ग्रामीण विकास एजेसियों को प्रशासनिक सहायता देने का निश्चय भी किया। इसके लिए जिला ग्रामीण विकास एजेंसी प्रशासन के लिए अलग से बजट रखने का प्रस्ताव भी है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की भर्ती पद्धति में सुधार, उपयुक्त चयन, उनके प्रशिक्षण तथा ठीक कार्मिक नीति तय करना शामिल है । जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों के नाम में व्यावसायिक दक्षता लाने की आवश्यकताओं को अस्वीकार किया गया है।

पंचायती राज संस्थाओं की प्रभावी भूमिका

पुर्नगठित ग्राम विकास कार्यक्रमो का नौवी योजना के लक्ष्यों और नीतियों के साथ भी पूरा तालमेल रखा गया है। नौवीं योजना में पंचायती राज संस्थाओं के अंतर्गत ही गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के बीच समन्वय किया जाएगा। स्थानीय स्वशासन की प्रभावी संस्था के रूप में पंचायती राज संस्थाएं जिला योजना समितियों की मदद से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं तैयार करेगी और उन पर अमल सुनिश्चित करेगी । स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना जैसी समन्वित योजना का एक उद्देश्य कार्यक्रमों के अमल में परिपाटी और भावी जरूरतों के बीच सार्थक समन्वय स्थापित करना भी है।

इन योजनाओं पर अमल में रणनीति की दृष्टि मे व्यक्ति-विशेष को लाभार्थी चुनने के बजाय समान हितों वाले समूह की पहचान की 'जायेगा। इसका लाभ यह है कि समूह की हित चेतना, भ्रष्टाचार और शिथिलता पर अंकुश लगाने में सफल सिद्ध हो सकती है। इसके अलावा स्थानीय स्तर पर कारोबार की सम्भावनाओं के अनुरूप ही समूहों का चयन भी किया जा सकता है ।

ग्रामीण विकास तथा बेरोजगारी उन्मूलन में आवास कार्यक्रमों तथा जल आपूर्ति कार्यक्रमों का भी विशेष महत्व है । ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इस दिशा में भी ध्यान दिया है।

अब त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के अंतर्गत धन आवंटन के वर्तमान मानदंड को बदल कर आवश्यकतानुरूप आवंटन के दायरे में लाया जाएगा। बदले हुए मानदण्ड के अनुसार जिन राज्यों 'में पेय' जल सुविधा से वंचित या दूषित जल की समस्याओं से गस्त क्षेत्र अधिक है। उन्हें अधिक धन आवंटित किया जायेगा । जल आपूर्ति व्यवस्था के केन्द्रीयकरण को धीरे-धीरे समाप्त कर गांव की आवश्यकताओं के अनुरूप सामुदायिक जल अपूर्ति को संस्थागत

रूप देंगे उनके लिए त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के अन्तर्गत आबंटित बजट का 20 प्रतिशत हिस्सा अलग सें रखा जाएगा। परन्तु इन राज्यों को इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि वे भाग के अनुरूप लचीली जल आपूर्ति की सेवाओं के लिए सुविधा प्रदान करें, उपभोक्ता लागत में वित्तीय संसाधनों का सहयोग दें तथा रख-रखाव की पूरी जेम्मेदारी स्वयं लें।

आवास के क्षेत्र में 13 लाख ग्रामीणी मकान बनाने के लिए यौजना आयोग के परामर्श से एक कार्य-योजना तैयार की गई है। इस कार्य-योजना के तहत राष्ट्रीय ग्रामीण आवास एवं पर्यावास मिशन की स्थापना की गई है। ऋण तथा सरकारी सहायता की नई योजना और इंदिरा आवास योजना के प्रावधानों में और सुधार लाना भी इस कार्य योजना में शामिल है। ग्रामीण क्षेत्रों में आवास ऋण की सुविधा में विस्तार और आवास की अभिनव योजनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए मंत्रालय ने आवास व नगर विकास (हुडको) को पूंजी प्रदान की है।

ग्राम सभा वर्ष

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 1999-2000 को ग्राम सभा वर्ष के रूप में मनाने का फैसला किया गया है। पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों का कामकाज अभी तक आशानुरूप नहीं हो पाया है। कुछ राज्यों में तोइ नका ढांचा तक नहीं बना पाया है और चुनाव भी नहीं हुए है । अभी तक ग्राम सभाओं की भूमि मुख्य रूप से सलाह देने की रही है परन्तु अब राज्य सरकारों से आग्रह किया गया है कि वे ग्राम सभाओं को अधिकार सम्पन्न बनाएं । उन्हें पर्याप्त अधिकार व वित्तीय साधन प्रदान किए जाएं।

पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ बना कर गरीबी उन्मूलन की रोजगार योजनाओं का संचालन करने का ताजा प्रयास पिछले अनेक वर्षों के अनुभवों का परिणाम है ,यह योजनाओं को धरती पर उतारने का एक व्यवहारिक उपाय है परन्तु अत : इनकी सफलता राज्य सरकारों का ध्यय-निष्ठा और पंचायत स्तर पर सक्रिय लोगों की संकल्प शक्ति पर निर्भर करेगी। राज्य सरकारी को पंचायतों ठगे अधिकार सौंपने और वित्तीय साधन प्रदान करने में व्याप्त जड़ता से निकलना होगा और पंचायतों को अपने कामकाज में दक्षता, पारदर्शिता और निष्पक्षता का प्रदर्शन कर अपनी सार्थकता को सिद्ध करना होगा ।

14.11 रोजगार नीति में परिवर्तन और जन शक्ति आयोजन हेतु सुझाव

निसन्देह योजना आयोग के ये शब्द, 'विकास एक प्रकार से रोजगार अवसरों के विस्तार का दूसरा नाम है", सराहनीय है । लेकिन विडम्बना तो यह है कि इन मार्मिक घोषणाओं के बावजूद हमारी योजनाएं, न केवल अविशिष्ट बेरोजगारी का समाधान कर सकी है बल्कि श्रम-शक्ति में नव प्रवेशकों को रोजगार दिलाने में सभी असमर्थ रही है । सच तो यह है कि भारतीय आयोजन को सबसे कमजोर कड़ी इसका रोजगार पक्ष ही है । हमारी सबसे बड़ी भूल यह रही है कि हमने आर्थिक विकास का अर्थ, उत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य से अलग बनाये रखा । इस प्रकार एक तरफ योजना आयोग रोजगार की व्यूह रचना से अनभिज्ञ बना रहा तो दूसरी और उद्योग पति वर्ग, 'विकेकीकरण " के नाम पर यन्त्रीकरण और नव प्रवर्तनों में संलग्न रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक स्थिरता लक्ष्य से भटकती गयी और रोजी रोटी से

निराश व हतोत्साहित जन समाज आर्थिक आयोजना के प्रति अपना विश्वास खौफ बैठा । प्रसनता की बात तो यह है कि सरकार ने समस्या की गम्भीरता को देखते हुए अब एक निश्चित रोजगार नीति की घोषणा कर दी है जिसका चौथी व पांचवी रोजगार नीति के लिए कुछ आवश्यक निर्देशक सिद्धान्तों का होना जरूरी है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न रूप में प्रस्तुत है: -

(1) निवेश के ढांचे में परिवर्तन

चूंकि भारत विकास की स्वयं-स्फूर्ति अवस्था प्राप्त कर चुका है अर्थात देश में सामाजिक उपरि-पूंजी और भारी उद्योगों का आधार तैयार हो चुका है इसलिए यह अधिक उचित होगा कि भविष्य में निवेश उन उद्योगों के लिए जाये जिनमें निवेश रोजगार अनुपात कम हो । इस दृष्टि से नया निवेश अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुत उद्योगों में किया जाना चाहिए जिससे दो लाभ होंगे- एक तरफ रोजगार बढ़ेगा तो दूसरी तरफ बढ़ती हुई कीमतों को नियमित किया जा सकेगा ।

(2) छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन

बड़े उद्योगों की अपेक्षा छोटे उद्योगों की स्थापना को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि ये श्रम-प्रशन होने के कारण अधिक रोजगार मूलक होते है।

(3) तकनीकी के चुनाव मे सतर्कता

नयी तकनीकी में श्रम-विस्थापन का प्रभाव अधिक होता है । इसलिए इनका प्रयोग करने से पूर्व रोजगार फैलाव और उसके सम्बद्ध प्रभावों का पूर्ण अध्ययन कर लेना चाहिए । संक्षेप में, श्रम प्रधान तकनीक को बढ़ावा देना चाहिए।

(4) छोटे नगरों में विकास केन्द्रों की स्थापना

तुलनात्मक रूप से बडे नगरों की अपेक्षा छोटे नगरों को विकसित केन्द्रों के रूप में विकसित किया जाए । इससे औद्योगिकरण के दुष्परिणामों से छुटकारा संकेन्द्रण पर रोक तथा रोजगार में वृद्धि हो कसती है।

(5) सरकारी आर्थिक सहायता का आधार

विभिन्न उद्योगों अथवा इकाइयों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता भविष्य में उनकी उत्पादन मात्रा पर आधारित न करके अतिरिक्त रोजगार जनन पर आधारित की जानी चाहिए।

(6) शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन

भारत में औद्योगीकरण के लिए प्रशिक्षित मानव शक्ति की जरूरत है न कि मैट्रिक व बी.ए.पास व्यक्तियों की । कला और विज्ञान में धडाधड ग्रेजूएट निकालते रहने में कोई अकलबन्दी नहीं, जबकि उनकी बाजार में मांग बहुत कम हो । आवश्यकता इम बात की है कि शिक्षा प्रणाली में निचले स्तर से ही आमूल परिवर्तन लाये जायें । शिक्षा रोजगार मूलक और व्यवसाय-प्रधान होनी चाहिए । उद्योग, व्यवसाय व व्यापार में श्रम की सम्भावित मांग को दृष्टि में रखते हुए नये कोर्स शुरू किए जाएं ताकि विद्यालय छोड़ने पर लोगों को नौकरी की तलाश में भटकना न पड़े ।

(7) समुचित सर्वेक्षण

जन शक्ति के सम्पूर्ण अनुमान क्षेत्र, लिंग, आयु, शहर, निवास, सामाजिक दर्जा व प्राप्त शैक्षिक योग्यता के आधार पर लगाए जाने चाहिए इसके लिए आवश्यक हैं कि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण की कार्य प्रणाली में सुधार किया जाए और उसका कार्य क्षेत्र विस्तृत किया जाये।

(8) संगठनात्मक सुधार

प्रत्येक राज्य में जन शक्ति नियोजन हेतु अलग से विभाग खोले जाएं, तो एक तरफ केन्द्रीय संगठन से तो दूसरी ओर जिला स्तर पर कार्यरत इकाईयों से सम्पर्क व समन्वय बनाए रख सकें ।

(9) ग्रामीण क्षेत्र में अधिक रोजगार

ग्रामीण क्षेत्र में फैली अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने के लिए नये सिरे से योजनाएं बनाई जाएं ताकि समस्या का शीघ समाधान हो सके।

14.12 सारांश

भारत एक विकासशील देश है जहां जनसंख्या का बाहुल्य में पिछले दशकों में जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है परन्तु रोजगार में वृद्धि धीरे-धीरे हो रही है इसलिए बेकारी विकराल रूप धारण पर रही है भारत में व्याप्त बेकारी उन्नत देशों से भिन्न है यह पूंजी या अन्य अनुपूरक साधनों के अभाव का परिणाम है । पुरूषों तथा महिला में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गो में बेकारी की विभिषिका व्याप्त है।

पिछले वर्षों में रोजगार संरचना में क्षेत्रीय ढांचा संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में परिवर्तन आये है । रोजगार बढ़ाने के लिए सरकार अधिक जागरूक हुई है । प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त विनियोग द्वारा अतिरिक्त रोजगार कायम करने के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न किया गया है । रोजगार बढ़ाने 'हेतु' ग्राम निर्माण, प्रोग्राम, छोटे किसानों के विकास की एजेन्सियों, कृषि सेवा केन्द्र, क्षेत्र विकास योजनाएं ग्राम रोजगार के लिए भारी कार्यक्रम बनाये गये। महाराष्ट्र सरकार ने तो रोजगार गारन्टी योजना चालू की वास्तव में इस योजना में काम के अधिकार को मान्यता दी गई।

सरकार ने समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना आदि' प्रारम्भ किये इन कार्यक्रमों से नये रोजगार सृजित भी हुए है परन्तु इन कार्यक्रमों 'में अपनी कुछ कमियां है जिसके कारण वांछित सफलता वही मिल रही है । वर्ष 1999-2000 के लिए लोक सभा में पेश किए गये बजट में वित्त मंत्री श्री यशवन्त सिन्हा ने श्रम आधारित रोजगार के अवसरों में वृद्धि की जरूरत बनाई तथा इसके लिए कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने का प्रस्ताव किया । उन्होंने चार सूत्रीय कार्यक्रम बनाने की पेशकश की इसमें जवाहर रोजगार योजना में संशोधन कर जवाहर ग्राम समृद्धि योजना शुरू करने मजदूरी पर आधारित रोजगार कार्यक्रमों को श्रमिकों के पलायन वाले इलाकों में लागू करने धन का उपयोग करने पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा विभिन्न स्वरोजगार योजनाओं को मिलाकर एक ही योजना स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना चलाने की बात की अप्रैल 1999 से इस पर अमल भी किया जा रहा है।

रोजगार योजना को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए निवेश के ढांचे में परिवर्तन छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन, तकनीक के चुनाव में सतर्कता, शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन समुचित सर्वेक्षण तथा संगठनात्मक सुधारों की अत्यधिक आवश्यकता है।

14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'भारत की दरिद्रता का उपाय अधिक रोजगार है। चर्चा कीजिये।
2. भारत में बेरोजगारी की समस्या का स्वरूप क्या है? बेरोजगारी कम करने के उद्देश्य से अपनाई गई भारतीय योजनाओं की कार्य-नीति के प्रमुख तत्वों का विवरण दे।
3. शिक्षित बेरोजगारी पर टिप्पणी लिखिये ।
4. भारत में रोजगार प्रदान करने वाली योजनाओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. समन्वित ग्राम विकास कार्य व राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के बारे में आप क्या जानते हैं?
6. भारत में नियोजन द्वारा बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सका है ।" इस कथन का विवेचन कीजिये।

14.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Raj Krishna, Rural Unemployment: A Survey of Concepts in Agricultural Development on India. Policy & Problems, Shoh, C.H. (ed) Orient Longman. 1979.
2. K. Puttaswamaiah, Unemployment in India : Policy for Manpower, oxford & IBH Co. Bombay.

इकाई 15
पूर्ण प्रतियोगिता व अपूर्ण प्रतियोगिता द्विपक्षीय - एकाधिकार मॉडल के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण

15.2.1 श्रम की माँग व माँग वक्र

15.2.2 श्रम की पूर्ति व पूर्ति वक्र

15.2.3 मजदूरी निर्धारण, उद्योग व -फर्म का सन्तुलन

15.3 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण

15.3.1 श्रम बाजार में एकाधिकार

15.3.2 श्रम बाजार में क्रेता-एकाधिकार

15.3.3 वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति

15.3.4 वस्तु बाजार में एकाधिकार की स्थिति

15.4 द्विपक्षीय एकाधिकार मॉडल

15.4.1 फैलनर मॉडल

15.4.2 फैलनर का वैकल्पिक मॉडल

15.4.3 कार्टर मॉडल

16.4.4 श्रम संघ के अधिमान - फलन

15.4.5 सेवायोजक के अधिमान - फलन

15.4.6 मजदूरी निर्धारण (श्रम की माँग की तीन स्थितियों के अन्तर्गत)

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.8 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 उद्देश्य

मजदूरी निर्धारण की समस्या न केवल अर्थशास्त्र वरन् सम्पूर्ण आर्थिक विश्लेषण की महत्वपूर्ण समस्या है । मजदूरी राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो श्रमिकों को उत्पादन प्रक्रिया मे अपने योगदान के फलस्वरूप प्राप्त होता है । विकसित व अविकसित दोनों प्रकार के देशों में अधिकांश परिवारों की आय मजदूरी से प्राप्त होती है। अत: समाज में आय के वितरण में

मजदूरी का विशेष महत्व है । दूसरी और उत्पादन लागत महत्वपूर्ण भाग होने के कारण मजदूरी काफी हद तक लाभ की मात्रा को निर्धारित करती है तथा उत्पादकों के निर्णयों को प्रभावित कर देश उत्पादन के साधनों का विभिन्न क्षेत्रों में आवंटन पर प्रभाव डालती है । रोजगार की मात्रा तथा कीमत स्तर पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव होता है । मजदूरी जो श्रम की कीमत हर प्रकार की अर्थव्यवस्था में वे सब कार्य करती है जो कीमत प्रणाली द्वारा किये जाते है।

श्रमिक एवं उनके संघ के दृष्टिकोण से मजदूरी एक ऐसी आय होती है जो समाज साहसियों के माध्यम सें उनमें बांटता है, जिन्होंने अपनी क्षमतानुसार "श्रम" की पूर्ति द्वारा सामाजिक कर्त्तव्य का निर्वाह किया है । समाज में श्रमिक वर्ग की हैसियत उसकी कार्यक्षमता व जीवन स्तर उसकी भविष्य की पीढ़ी का निर्माण, प्रबन्धक के प्रति लगाव व उत्पादकता बढ़ाने की प्रेरणायें आदि सब कुछ उसे मिलने वाली मजदूरी की मात्रा व ढंग पर निर्भर करता है । देश में औद्योगिक शांति व वांछित दिशा में आर्थिक विकास कें लिये सन्तुष्ट "श्रम" पहली शर्त है। ऐसी परिस्थितियों में श्रम संघ भी विरोध व हड़ताल का मार्ग न अपना कर रचनात्मक कार्यो को ही प्राथमिकता देते है । यह कथन अक्षरश: सत्य प्रतीत होना है कि मजदूरी वह धुरी है जिसके चारों और "श्रम" समस्यायें घूमती है।

श्रम की मिलने वाली मजदूरी पर्याप्त और न्यायपूर्ण है अथवा नहीं इसका ज्ञान श्रमिकों के हित में रूचि रखनें वाले सभी वर्ग के लिये आवश्यक है, अर्थशास्त्री हो या राजनीतिक नीति निर्धारक हो या समाज सुधारक, श्रम संघ के नेता हो या सेवायोजक संघ के प्रतिनिधि । अत: यहाँ हमारे अध्ययन का उद्देश्य यह ज्ञान प्राप्त करना है कि मजदूरी कैसे निर्धारित की जाती है इसका सैद्धान्तिक पक्ष क्या है? तथा व्यवहारिक स्थिति क्या है? यदि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता सिद्धान्त को अव्यवहारिक बना देती है तो प्रतियोगिता के अभाव मे मजदूरी निर्धारण पर कौनसे तत्व प्रभाव डालते है? आगे हमारे अध्ययन का विषय यह होगा कि वर्तमान में तीव्र औद्योगिकरण से सभी देशों में श्रम की मांग और साथ ही श्रम के शोषण की सम्भावनायें अधिक बढ़ गई है - अत: शोषित व असंगठित श्रमिकों को संगठित करके श्रम संघ श्रमिकों के पक्ष को मजबूत बनाते है और बड़े एकाकी सेवायोजक से अथवा सेवायोजक के संघ से द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति में सौदेबाजी करतें है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी द्वारा मजदूरी की दर तथा श्रम की सेवाओं की अन्य शर्तों का निर्धारण ही वर्तमान में अधिक होता है । इस व्यवहारिक स्थिति को समझने के लिये द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति (अथवा सामूहिक सौदेबाजी) का अध्ययन करना अर्थशास्त्र विशेष रूप से श्रम अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिए अतिआवश्यक होगा।

15.1 प्रस्तावना

मजदूरी निर्धारण का विवेचन करने से पूर्व "मजदूरी" को परिभाषित करना आवश्यक है । अर्थशास्त्र में मजदूरी शब्द का प्रयोग संकुचित एवं विस्तृत दोनों रूपों में किया गया है । संकुचित अर्थ में "मजदूरी..... वह भुगतान है जो किसी समझौते के अनुसार एक सेवायोजक अपने श्रमिक को उसकी सेवाओं के बदले में देता है" - बेन्हम । विस्तृत अर्थ में "श्रम की सेवा कें लिये दिया गया मूल्य मजदूरी है" - मार्शल । इस अर्थ मैं उन सभी श्रमिकों की सेवाओं का

पुरस्कार मजदूरी में सम्मिलित किया जायेगा जो स्वयं नियोजित हो या दूसरे के द्वारा नियोजित हो जैसे श्रमिक तथा लिपिक वर्ग, फैक्ट्री मैनेजर, सरकारी कर्मचारी, उच्चाधिकारी, व्यवसायिक लोग जैसे वकील, डाक्टर, अध्यापक तथा खुदरा व्यापारी आदि । अर्थशास्त्र मैं उपर्युक्त विस्तृत अर्थ में सम्मिलित सभी वर्ग के पुरस्कार को मजदूरी की संज्ञा दी जानी है तथा मजदूरी निर्धारण का सिद्धान्त इन सभी की मजदूरी निर्धारण पर लागू होता है यद्यपि इस सिद्धान्त की व्याख्या करते समय सरलता के लिए' मजदूरी का संकुचित दृष्टिकोण लिया जाता है जिससे श्रम की मांग तथा पूर्ति का सही अनुमान लगाया जा सकें।

मजदूरी निर्धारण कैसे होता है? इस सम्बन्ध में तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये । प्राचीन सिद्धान्तों का विवेचन करना हमारा उद्देश्य नहीं है फिर भी मजदूरी निर्धारण की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के रूप में इनका संक्षिप्त उल्लेख उपयुक्त होगा।

मजदूरी के अधिकांश प्राचीन सिद्धान्तों का उद्गम-स्थल एडम-स्मिथ के मजदूरी सम्बन्धी विचार रहे हैं । फिजियोक्रेटस (Physiocrats) परम्परा का निर्वाह करते हुये एडम-स्मिथ ने कहा कि श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु का विक्रय मूल्य जो उसे प्राप्त होना है वह उसकी ही मजदूरी है (श्रम का मूल्य सिद्धान्त' ' इस मजदूरी में वृद्धि पूंजी की उस मात्रा पर निर्भर करती है जो श्रम द्वारा उत्पादित तुओं को क्रय करने के उपयोग में आती है । यह पूंजी स्वयं बचत पर निर्भर है, जो अल्पकाल में स्थिर रहती है । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मजदूरी सिद्धान्त इन्ही विचारों पर आधारित रहे । उनका यही निष्कर्ष था कि पूंजी तथा बचत में वृद्धि अल्पकाल में सम्भव नहीं अत: दी हुई श्रम संख्या हो तो मजदूरी में वृद्धि नहीं हो सकती । दीर्घ कालीन मजदूरी के सम्बन्ध मेर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि वह जीवन-निर्वाह व्यय के बराबर होगी - इससे कम या अधिक नही हो सकती माल्थस एवं रिकार्डो ने इस विचार का समर्थन किया व जीवन-निर्वाह सिद्धानत (Subsistence Theory of Wages) के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । जर्मन अर्थशास्त्री लासले (Lassalle) ने इसे मजदूरी के लोह सिद्धान्त की संज्ञा दी की तथा अपने शोषण सम्बन्धी विचारों का आधार बनाया । काल-मार्क्स के अनुसार मजदूरी पर आदत, रीति-रिवाज व रहन-सहन का प्रयास महत्वपूर्ण होता है । 19वीं शताब्दी के अन्त में कुछ अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त में संशोधन करके जीवन-स्तर सिद्धान्त (Standard of Living Theory of Wages) प्रतिपादित किया। मिल (J.S.Mill) का मजदूरी कोष सिद्धान्त (Wage Fund Theory) और अमरीकन अर्थशारत्र वॉकर (Walker) का अवशेष-अधिकारी सिद्धान्त (Residual claimant Theory Of Wages) अपने समय में महत्वपूर्ण चर्चा का विषय रहे, परन्तु मजदूरी सिद्धान्त के विकास में इसका विशेष योगदान नहीं रहा ।

19वी शताब्दी के अन्त में मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का विकास इस श्रृंखला में क्रान्तिकारी मोड़ सिद्ध हुआ। अभी तक अधिकतर सिद्धान्त श्रम पूर्ति पक्ष पर बल देते रहे थे परन्तु अब अर्थशास्त्रियों (Walras, Wickstead, Jevons, J.B. Clark, J.R.

Hicks) ने श्रम की मांग एवं उत्पादकता पर ध्यान देना शुरू किया, परिणामस्वरूप इस सिद्धान्त का जन्म हुआ।

मजदूरी के सीमान्त उत्पादक सिद्धान्त के अनुसार श्रम की मांग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है । एक उत्पादक श्रम की अतिरिक्त इकाइयां उस समय तक नियुक्त करता है जब तक कि उसकी सीमान्त उत्पादकता (जो उत्पत्ति हास नियम के प्रभाव से नियुक्त श्रमिकों की संख्या बढ़ने के साथ घटती जाती है) श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी के बराबर न हो जाया अत: मजदूरी मुख्य रूप से सीमान्त उत्पादकता के बराबर रहने की प्रवृत्ति रखती है। यह सिद्धान्त इस तरह एक महत्वपूर्ण तथ्य की और संकेत करता।

इसकी मजदूरी में वृद्धि श्रमिकों को सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि द्वारा सम्भव है । इस विचार ने श्रम संघों के विकास का भी आधार प्रदान किया जबकि पूर्व सिद्धान्त इनकी गतिविधियों को हतोत्साह ही करते थे । फिर भी अव्यावहारिक मान्यतों पूर आधारित होने के कारण व विशेष रूप से एक पक्षीय होने के कारण इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की जाती है।

आगे चलकर मार्शल ने सीमान्त उत्पादकता के मांग पक्ष के साथ श्रम-पूर्ति का पक्ष जोड़कर इस सिद्धान्त को पूर्ण कर आधुनिक रूप दिया तथा कहा कि मजदूरी श्रम की सेवाओं की कीमत है इसलिये मजदूरी का निर्धारण भी अन्य कीमतों की तरह मांग व पूर्ति के सामान्य सिद्धान्त द्वारा होता है । परन्तु श्रम में मानवीय तत्व होता है तथा इसकी कुछ अपनी विशेषतायें है जो इसे न केवल अन्य वस्तुओं से बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधनों से भिन्न बना देती है । यही कारण है कि मजदूरी निर्धारण के लिये मांग व पूर्ति सिद्धान्त को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया जाता है । वास्तव में मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का ही एक विशिष्ट रूप है । आगे हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की समस्या का अध्ययन इसी सिद्धान्त के आधार पर करेंगे ।

15.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी-निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण का विवेचन करते समय हम यह मानकर चलते है कि श्रम बाजार में ही नही बल्कि वस्तु बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता का प्रचलन होता है । श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के प्रचलन का अभिप्राय है कि न तो उत्पादकों/फर्मों की ओर से और न ही श्रमिकों मैं किसी प्रकार का एकाधिकारी तत्व पाया जाता है । फर्म की संख्या अधिक होनी है, उनका आकार छोटा होता है इसलिए वह अपने व्यवसाय में कुल श्रम शक्ति का छोटा का अंश ही नियोजित करती है । प्रत्येक फर्म स्वतंत्र रूप सें कार्य करती है उनमें किसी प्रकार का समझौता नहीं होता, न ही उनके कोई संघ होते है । दूसरी ओर रोजगार चाहने वाले श्रमिकों की संख्या भी अधिक होनी है तथा सभी श्रमिक असंगठित अवस्था में होते है और व्यक्तिगत आधार पर उत्पादकों/ फर्मों कों अपनी सेवायें प्रस्तुत करते है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण कीमतों के सिद्धान्त के अनुरूप श्रम की मांग व पूर्ति की पारस्परिक शक्तियों के सन्तुलन से होता है । चूंकि श्रम एक वस्तु नहीं अत: श्रम की मांग व पूर्ति की अपनी जटिलतायें है, इनको प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का अध्ययन कर ही हम मांग व पूर्ति वक्रों को प्रस्तुत कर सकेंगे ।

15.2.1 श्रम की मांग व वक्र :

श्रम की मांग व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) है अर्थात श्रम की मांग उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की, मांग की लोच पर निर्भर करेगी।

दूसरे- श्रम की मांग अन्य सहयोगी साधनों की कीमतों पर भी निर्भर करेगी, उदाहरणार्थ यदि मशीनें महंगी है तो अधिक श्रमिक काम पर लगाये जायेंगे तथा श्रम की मांग बढ़ेगी, लेकिन शर्त यह है कि पूंजी का श्रम द्वारा प्रतिस्थापन सम्भव हो । इस प्रकार श्रम की मांग श्रम एवं अन्य साधनों के बीच प्रतिस्थापन की सम्भावनाओं सें प्रभावित होती है ।

तीसरे - श्रम की मांग तकनीकी तत्वों से भी निधारित होती है। यदि उत्पादन कार्य में श्रम की इकाइयों का अन्य साधनों के साथ अनुपात स्थिर है तो अन्य साधनों के अभाव में श्रम की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग भी स्थिर रहेगा, इसके विपरीत यदि श्रम की तकनीकी अनुपात परिवर्तनशील है तो श्रम की मांग की लोच अधिक होगी।

इन महत्वपूर्ण बातों पर विचार करने के पश्चात एक फर्म के लिये श्रम की मांग सीमान्त उत्पादकता द्वारा शासित होती है । उत्पादन कार्य में श्रम की एक इकाई और लगाने के कुल उत्पादन में होनी वाली वृद्धि को सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) कहते है तथा उसे मौद्रिक मूल्य (MPP X Price) को सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) एक ही होती है अर्थात् MRP= MPP X Price = VMP सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) मुद्रा में व्यक्त की जाती है, अत: स्पष्ट है कि फर्म की रूचि MRP में होगी न कि MPP में। अन्य बातों के समान रहते हुये जब एक फर्म श्रम की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि करती है तो एक सीमा के बाद (उत्पत्ति हास नियम लागू होने के कारण) श्रम की सीमान्त आगम, उत्पादकता घटती जायेगी। अत: प्रत्येक फर्म श्रम का प्रयोग उस सीमा तक करेगी जहां सीमान्त आगम: उत्पादकता उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर नहीं हो जाती । अत : फर्म द्वारा श्रम की मांग सीमान्त आगम उत्पादकता पर निर्भर करेगी, वास्तव में सीमान्त आगम उत्पादकता फर्म के लिये श्रम का मांग वक्र है जो मजदूरी की विभिन्न दरों पर मांगी जाने वाली श्रम की मात्रा को बताता है । सामान्यतया यदि मजदूरी की दर अधिक होती है तो श्रम की मांग कम होगी और मजदूरी कम होने पर श्रम की मांग अधिक होगी, अत: श्रम का मांग वक्र का ढाल MRP के समान बांये से दांये नीचे की ओर होता है । परन्तु मजदूरी निर्धारण के लिये व्यक्तिगत फर्म की मांग महत्वपूर्ण नहीं होती।

उद्योग की कुल मांग अथवा सभी फर्मों की मांग का कुल योग बारे में महत्व रखता है । कुल मांग वक्र/ उद्योग मांग वक्र सभी फर्मों के MRP वक्रों के किनारों के योग (Lateral Summation) द्वारा निकाला (Derived) जाता रेखा चित्र नं 15.1 (a) में एक फर्म के लिये रेख चित्र न. 15.1 (b) में उद्योग लिये श्रम मांग वक्र दिखाया गया है :-

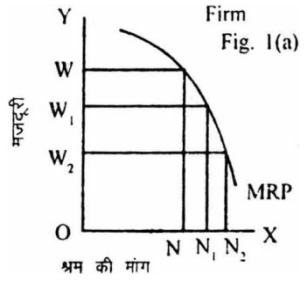

रेखाचित्र 15.1 (A)

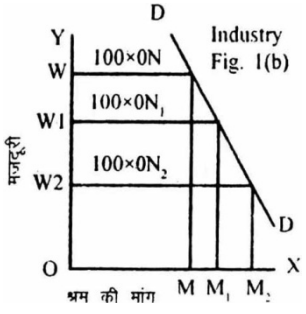

रेखाचित्र 15.1 (B)

दोनों रेखा चित्रों में Y अक्ष एक ही पैमाने पर किन्तु X अक्ष का पैमाना दोनों रेखा चित्रों में भिन्न-भिन्न है। यह मान लिया गया है कि उद्योग मे 100 फर्मे काम कर रही है। OW मजदूरी पर फर्म की मांग ON है किन्तु उसी मजदूरी पर सारे उद्योग की मांग OM है जो 100XON के बराबर है । इसी प्रकार OW^1 पर फर्म की मांग ON^1 है ओर उद्योग की मांग OM^1 जो $100XON^1$ कें बराबर है और OW^2 पर फर्म की मांग ON^2 तथा उद्योग की मांग OM^2 है जो $100XON^2$ के समान है।

रेखा चित्र न.15.1 (b) से स्पष्ट है कि मांग वक्र DD का ढाल बायें से दांये नीचे की ओर है। इसका कारण यह है कि MRP वक्र जिनके योग से DD वक्र बनाया गया है वह सम्बन्धित भाग में दांयी और नीचे को झुका हुआ है । इसका अर्थ है जितनी अधिक श्रम की मात्रा काम पर नियुक्त की जाती है, उसकी सीमान्त आय उत्पादकता उतनी ही घटती जाती है।

15.2.2 श्रम की पूर्ति व पूर्ति वक्र

श्रम पूर्ति का तात्पर्य एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की संख्या से हें जो मजदूरी की विभिन्न दरों पर अपनी सेवायें अर्पित करने को तैयार है तथा कार्य के घंटों से है जो विभिन्न मजदूरी दरों पर प्रत्येक श्रमिक कार्य के लिये देने को तैयार है। श्रमपूर्ति को तीन अर्थों में लिया जाता है-फर्म, उद्योग एवं अर्थव्यवस्था के लिये श्रमपूर्ति।

फर्म के लिये श्रमपृर्ति पूर्णतया लोचदार होती है क्योंकि प्रचलित मजदूरी दर पर फर्म चाहें जितने श्रमिक प्राप्त कर सती है । उद्योग के लिये श्रमपूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार नहीं होना। यदि उद्योग अधिक श्रमिकों की मांग करता है तो उसे मजदूरी दर बढ़ानी होगी ताकि अन्य मिलते-जुलते व्यवसायों (Similar Occupation) सें श्रमिक आकर्षित होकर इस उद्योग में आ सके। इसका अर्थ है ऊँची मजदूरी पर श्रम पूर्ति अधिक होगी तथा नीची मजदूरी पर कम

और इसी कारण उद्योग का श्रम पूर्ति वक्र बायें से दांये ऊपर की ओर उठता हुआ होगा (Slope upwards from left to right).

लेकिन उद्योग के श्रम पूर्ति वक्र का पूर्वानुमान लगाना उतना सरल नही है जैसा मांग वक्र का कारण श्रम पूर्ति को शासित करने वाले तन्त्र आर्थिक व गैर-आर्थिक दोनों प्रकार के, होते है :-

आर्थिक तत्वों में मजदूरी के अतिरिक्त मंहगाई भत्ता, मकान किराया, बोनस, पेन्शन, अन्य भत्ते तथा. नि:शुल्क सुविधाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है । कार्य का सुरक्षा, प्रतिष्ठा व पदोन्नति की सम्भावनायें भी ऊँची मजदूरी की तरह बड़ी हुई श्रम पूर्ति को आकर्षित करती है।

गैर आर्थिक तत्वों में श्रमिकों की अगतिशीलता है जो सामाजिक व पारिवारिक परिस्थितियों के कारण तथा वर्तमान रोजगार के प्रति मोह व जड़ना (Inertia) के कारण होती है । इसके कारण श्रमिक अन्य स्थानों व उद्योगों में ऊँची मजदूरी मिलने पर भी जाने को तैयार नहीं होते है । श्रम पूर्ति को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व कार्य अवकाश का अनुपात है । मजदूरी वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक घंटें काम करेंगे, अवकाश के स्थान पर कार्य प्रतिस्थापन करेंगे, इसे मजदूरी वृद्धि का प्रतिस्थापन- प्रभाव (Sub-situation Effect) कहते है जो सदैव धनात्मक हुआ करता है। दूसरी ओर मजदूरी वृद्धि से श्रमिकों की आय बढ़ती है, आय बढ़ जाने से श्रमिक अब अधिक अवकाश करना पसन्द करते है, इसी मजदूरी वृद्धि का आय प्रभाव कहते है जो ऋणात्मक होता है । मजदूरी वृद्धि होती हैं परन्तु एक सीमा के पश्चात यह सम्भव है ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण श्रमिक क्रम घंटे कार्य करें, जिससे श्रम पूर्ति कम हो जाय इस प्रभाव से एक सीमा के पश्चात एक व्यक्तिगत श्रमिक का श्रम पूर्ति वक्र (जिसे मजदूरी प्रस्ताव वक्र - Wage offer curve से प्राप्त किया है) पीछे की ओर मुड़ता है।

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये श्रम पूर्ति वक्र कई आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक आदि बातों पर निर्भर करता है । सारे देश की श्रम- पूर्ति मुख्यत : जनसंख्या के आकार, उनके आयु और लिंग के अनुसार वितरण पर कि और करती है । महिलाओं का कार्य के प्रति दृष्टिकोण, अंशकालीन (Part-time) कार्य करने की सुविधा, कानून तथा परम्परा के अनुसार कार्य करने घंटे (Working hours) एवं कार्य करने की आयु (Working age) तथा श्रमिकों की कार्य कुशलता पर श्रम की कुल समर्थ-पूर्ति (effective supply) निर्भर करती है । यदि किसी देश में मजदूरी बढ़ती जाय तो प्रारंभिक अवस्थाओं (initial stages) में श्रम की पूर्ति बढ जायेगी । मजदूरी यदि इसी तरह बढ़ती रहे तो एक अवस्था ऐसी आती है, जहां पर श्रमिकों का जीवन-निर्वाह आसानी से हो सके । इस अवस्था के बाद भी यदि मजदूरी दर बढ़ जाय तो श्रमिक दिन में कम घंटे काम करने लगेंगे या सप्ताह तथा मास में कम दिन काम करना प्रारम्भ कर देंगे। यह मजदूरी दर की वृद्धि का ऋणात्मक आय प्रभाव है : जिसका. उल्लेख व्यक्तिगत श्रमिक के प्रसंग में ऊपर किया है। इसका परिणाम सामान्यत : यह होता है कि एक विशेष अवस्था के बाद मजदूरी की दर बढ़ती जाय तो श्रम की पूर्ति घटने लगती है । इसका अर्थ यह निकलता है

कि एक अवस्था के बाद सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये श्रम की पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ना, आरम्भ कर देता है, जैसा रेखा चित्र नं. 15.2 में आपूर्ति वक्र बनाया गया है: -

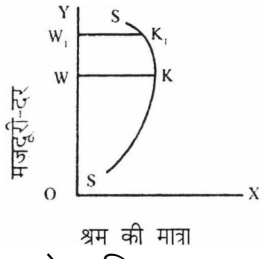

रेखा चित्र 15.2

उपर्युक्त रेखा चित्र से स्पष्ट है कि OW मजदूरी दर तक (अर्थात K बिन्दु तक) श्रम की पूर्ति वक्र ऊपर को चढ़ता हुआ है, परन्तु इसके उपरान्त पीछे की ओर मुड़ा हुआ है। ऊँची मजदूरी OW^1 पर श्रम पूर्ति W^1K^1 है जो नीची मजदूरी OW की श्रम पूर्ति WK से कम है ।

हमने श्रमपूर्ति की व्याख्या तीन दशाओं में की है, परन्तु मजदूरी निर्धारण के लिये उद्योग का श्रम पूर्ति वक्र ही लिया जायेगा जो बांये से दांये ऊपर की ओर चढता है।

15.2.3 मांग, और पूर्ति में सन्तुलन द्वारा मजदूरी निर्धारण

मांग और पूर्ति पक्षों का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् अब हम देख सकते है कि श्रम की मांग और पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन द्वारा मजदूरी की दर किस प्रकार निर्धारित होती है। रेखा चित्र न. 15.3(a) में DD मांग वक्र और SS पूर्ति वक्र बिन्दु E पर या OW मजदूरी की दर पर एक दूसरे को काटते हैं अत: OW (ME) मजदूरी की दर निर्धारित होगी क्योंकि इस दर पर ही मांग और पूर्ति सन्तुलन की अवस्था में है। सन्तुलन मजदूरी दर इससे भिन्न नहीं हो सकती। यदि मजदूरी इस दर से बढ़ती है तो मजदूरों की पूर्ति मांग से अधिक होगी तथा रोजगार पाने के लिये मजदूरों की आपसी प्रतिस्पर्धा इसे कम कर देगी और यह पुन: OW स्तर पर आ जायेगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी इस दर से कम होती है तो श्रम की मांग उनकी पूर्ति से अधिक होगी। ऐसी स्थिति मैं फर्मों की आपसी प्रतिस्पर्धा इस दर कों बढ़ा कर पुन: सन्तुलन स्तर पर ले आयेगी।

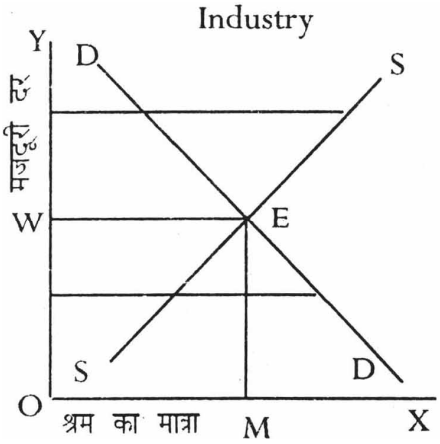

रेखा चित्र 15.3 (A)

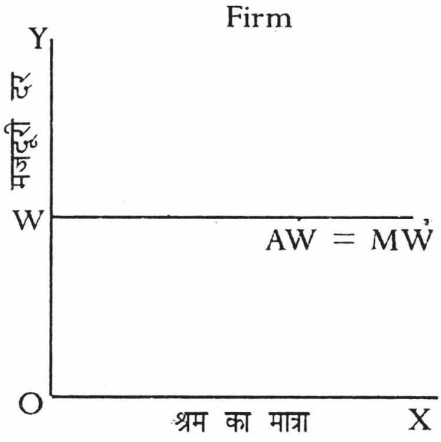

रेखा चित्र 15.3 (B)

रेखा चित्र न. 15.3(b) में फर्म की स्थिति दिखाई गई है। पूर्ण प्रतियोगिता में जब उद्योग में एक बार मजदूरी निर्धारित हौ जाती है तो व्यक्तिगत फर्म उसे स्वीकार कर लेती है। चित्र में उद्योग में प्रचलित मजदूरी दर OW है तौ किसी एक फर्म के लिये श्रम की पूर्ति वक्र OW स्तर पर पूर्णतया लोचदार होगा और उसका वक्र X अंश के समानान्तर बनेगा। इसका अर्थ है कि फर्म OW मजदूरी दर पर जितने चाहें श्रमिक लगा सकती, ऐसी स्थिति में एक अतिरिक्त श्रम को कार्य पर लगाने की सीमान्त लागत (अथवा सीमान्त मजदूरी MW) वही होगी जो औसत लागत (अथवा औसत मजदूरी AW) है, अर्थात यह समानान्तर वक्र औसत मजदूरी वक्र भी है और सीमान्त मजदूरी वक्र भी अत: AW = MW.

फर्म का सन्तुलन :-

दी हुई मजदूरी पर अधिकतम लाभ फर्म को उतने श्रमिक लगाने से होगा जहाँ सीमान्त आय उत्पादकता (MRP') और सीमान्त मजदूरी (MW) समान हो। MRP = MW फर्म के सन्तुलन की आवश्यक शर्त है। अल्पकाल में इस सन्तुलन पर श्रम के प्रयोग से फर्म को लाभ, सामान्य लाभ अथवा हानि की स्थिति हो सकती है । दीर्घकाल में विशेष लाभ व हानि की स्थिति समाप्त होकर केवल सामान्य लाभ की स्थिति रहती है। इन तीनों स्थितियों को रेखा चित्र नं. 15.4 (a), (b), (c) द्वारा स्पष्ट किया गया है :-

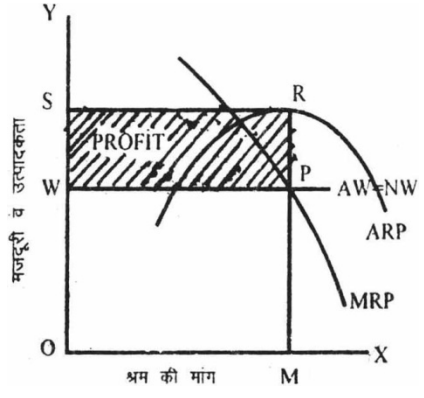

रेखा चित्र 15.4 (a)

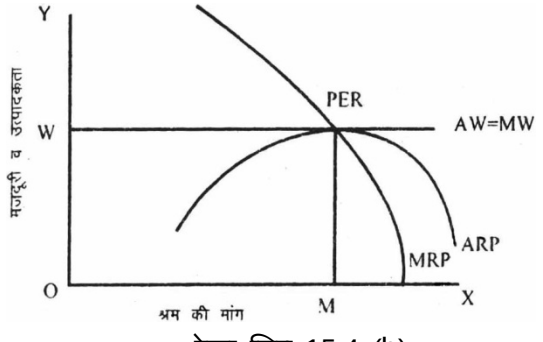

रेखा चित्र 15.4 (b)

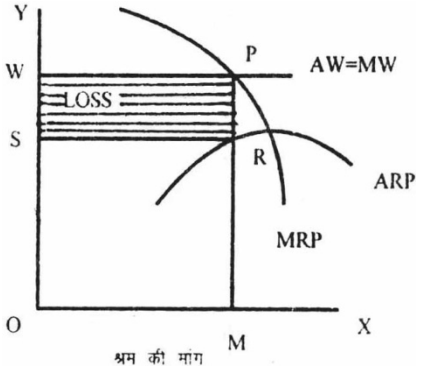

रेखा चित्र 15.4 (c)

उपेर्युक्त तीनों चित्रों में OY अक्ष पर मजदूरी कीं दर व श्रम की उत्पादकता और OX अक्ष श्रम की मात्रा दर्शायी गई है। मजदूरी का स्तर OW उपयोग द्वारा निर्धारित मजदूरी है,

जिसे फर्मों ने स्वीकार किया है। प्रत्येक चित्र में फर्म का सन्तुलन बिन्दु P है जहाँ MRP वक्र MW वक्र को काटता है। P बिन्दु से X अक्ष, पर डाला गया लम्ब उसे M बिन्दु पर काटता है, अत: OM श्रम की मात्रा है जिसे OW (PM) मजदूरी दर पर फर्म रौजगार पर लगाती है।

परन्तु अल्पकालीन सन्तुलन की इन स्थितियों में फर्म की लाभ-हानि की स्थिति ज्ञात करनें के लिये औसत मजदूरी (AW) की तुलना श्रम की औसत आय उत्पादकता. से करनी होगी, जिसे चित्रों में ARP वक्र द्वारा दिखाया गया है। OM रोजगार के. स्तर पर प्रत्येक चित्र में औसत आय उत्पादकता RM है, इसकी तुलना जब इम औसत मजदूरी (जो प्रत्येक चित्र में PM के बराबर है) से करते है तब चित्र न. 15.4(a) में साथ, RM>PM इसका अर्थ है, श्रमिक से फर्म की औसत आय RM उसे दी जाने वाली मजदूरी PM से अधिक है। अर्थात् प्रति श्रमिक सै फर्म को (RM-PM)= RP लाभ प्राप्त हो रहा है और कुल लाभ का क्षेत्र RPWS है। चित्र नं.15.4(b) में चूँकि RM = PM है औसत मजदूरी औसत आय उत्पादकता के बराबर ही है अत: फर्म को न लाभ हो रहा है न हानि - इसे ही सामान्य लाभ की स्थिति कहा जाता है। चित्र नं 15.4(c) में RM<PM है इसका अर्थ है श्रमिक की औसत आय उत्पादकता उसे दी जाने वाली औसत मजदूरी से कम है अर्थात् फर्म को प्रत्येक श्रमिक पर (PM - RM=)PR ..... के बराबर हानि है व कुल हानि का क्षेत्र PRSW है।

अल्पकाल में फर्मों को उपर्युक्त में से किसी भी एक प्रकार की स्थिति का सामना करना होता है । परन्तु दीर्धकाल में लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नई फर्मों का प्रवेश होता है अथवा हानि के कारण पुरानी फर्मों का उद्योग से बर्हिगमन होता है, इस प्रक्रिया से उद्योग में श्रम की मांग और उसके परिणामस्परूप मजदूरी स्तर में परिवर्तन होता रहता है जब तक प्रत्येक फर्म की स्थिति ARP = AW की नही हो जाती । अत: दीर्घकाल में विशेष लाभ और हानि की स्थिति समाप्त होकर फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा, और इस स्थिति में MRP = MW = AW = ARP चारों वक्र सन्तुलन बिन्दु P पर एक दूसरे के बराबर होंगे - यह फर्म के लिये दीर्घकालीन सन्तुलन की आवश्यक शर्त है । यह स्थिति ऊपर चित्र न. 15.4(b) में दिखाई गई स्थिति के समान ही होगी ।

इस तरह मजदूरी जो श्रम की कीमत होती है, दूसरी कीमतों की तरह मांग व पूर्ति सम्बन्धी शक्तियों की आपसी प्रतिक्रिया के द्वारा निर्धारित होनी है । मजदूरी दर के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात है कि सन्तुलन की स्थिति में मजदूरी सदैव सीमान्त आय उत्पादकता MRP के बराबर होती है ।

बोध प्रश्न - 1

प्रश्न-1 मजदूरी-निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का एक विशिष्ट रूप क्यों कहा है?

प्रश्न-2 श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के प्रचलन का क्या अभिप्राय है?

प्रश्न-3 श्रम की मांग को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों को बताइये ।

प्रश्न-4 MPP, MRP और VMP का अर्थ बताइये । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में इनका आपस में क्या सम्बन्ध होता है?

प्रश्न-5 एक फर्म के लिये श्रम का मांग वक्र कैसे प्राप्त किया जाता है MRP से इसका क्या सम्बन्ध है?

प्रश्न-6 फर्म के मांग वक्र से उद्योग की मांग वक्र कैसे निकालेंगे? चित्र की सहायता से समझाइये ।

प्रश्न-7 श्रम पूर्ति का तात्पर्य बताइये ।

प्रश्न-8 उद्योग के लिये श्रम पूर्ति वक्र की आकृति कैसे होनी है? श्रम पूर्ति और मजदूरी में क्या सम्बन्ध है?

प्रश्न-9 श्रमपूर्ति को प्रभावित करने वाले आर्थिक व गैर आर्थिक तत्व कौन-कौन से हैं?

प्रश्न-10 मजदूरी वृद्धि के प्रतिस्थापन प्रभाव व आय प्रभाव क्या है? श्रम पूर्ति पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है ।

प्रश्न-11 सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये श्रमपूर्ति किन बातों पर निर्भर होती है?

प्रश्न-12 पीछे की और मुड़ते श्रम पूर्ति वक्र को चित्र सहित समझाइये ।

प्रश्न-13 चित्र की सहायता से बताइये कि श्रम की मांग व पूर्ति के संतुलन की प्रक्रिया से मजदूरी का निर्धारण कैसे होता है?

प्रश्न-14 एक फर्म की लिये श्रमपूर्ति वक्र कैसे प्राप्त किया जाता है? इससे सीमान्त मजदूरी (MW) व औसत मजदूरी (AW) कैसे ज्ञात की जाती है?

प्रश्न-15 फर्म के सन्तुलन की आवश्यक शर्त क्या हैं? फर्म के लाभ व हानि की स्थिति चित्रों के माध्यम से समझाइये ।

प्रश्न-16 फर्म कौ दीर्घकालीन सन्तुलन चित्र सहित समझाइये।

15.3 अपूर्ण प्रतियोगिता कें अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण

वास्तविक जगत में श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति नहीं पाई जाती । औद्योगिकृत देर्शो में तो बहुत कम श्रम-बाजार ऐसे देखने को मिलते है, जिनमें दुर्ग प्रतियोगिता का प्रचलन होता हो । न तो वहाँ स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने वाले अनेक नियोजक होते है न ही, असंगठित श्रमिक । इन देशों के श्रम बाजारों में पूर्ण नहीं बल्कि अपूर्ण प्रतियोगिता ही देखने को मिलती है । अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रम बाजार विभिन्न प्रकार के हो सकते है :-

सर्वप्रथम - श्रम का एक विक्रेता (श्रम-संघ) और अनेक क्रेता पाये जा सकते है - इसे एकाधिकार की दशा कह सकते है । दूसरे - श्रम का केवल एक क्रेता और अनेक विक्रेता हो सकते हैं - इसे क्रेता-एकाधिकार की दशा कह सकते है । इसके अतिरिक्त श्रम बाजार में एक क्रेता तथा एक विक्रेता की स्थिति भी पाई जा सकतीं है, जिसे द्विपक्षीय-एकाधिकार (Bi-lateral-Monopoly) कहते है । इनमें से प्रत्येक स्थिति के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की व्याख्या अलग-अलग करना आवश्यक होगा ।

15.3.1 श्रम के विक्रय में एकाधिकार व क्रय में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी निर्धारण

यहाँ एक श्रमसंघ कें नियंत्रण में समस्त श्रम पूर्ति होती है लेकिन श्रम की मांग कई फर्मो/सेवायोजकों द्वारा की जाती है । ऐसी स्थिति में श्रम संघ रूप से ऊँची मजदूरी निश्चित करा सकते हैं, इसे कायम भी रख सकते है, लेकिन इससे रोजगार की मात्रा में गिरावट आ जाती है । रेखा चित्र नं. 15.5 से यह स्थिति स्पष्ट है :-

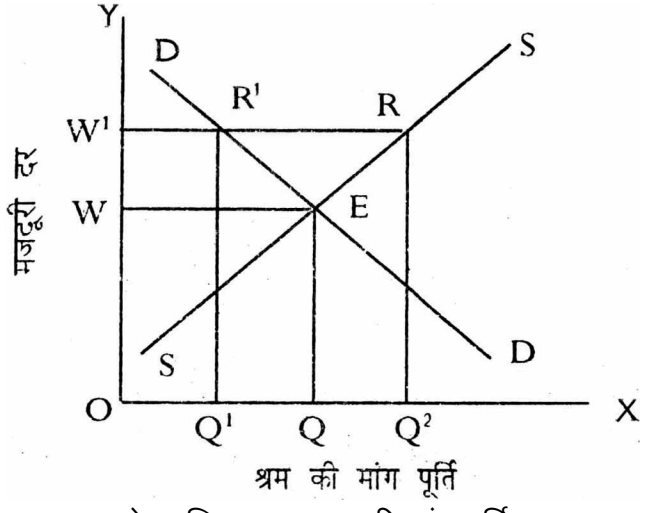

रेखा चित्र 15.5: श्रम की मांग पूर्ति

रेखा चित्र नं. 15.5 में सन्तुलन बिन्दु E पर मजदूरी दर OW व रोजगार स्तर OQ है । यदि श्रम संघ मजदूरी दर OW से बढ़ा कर OW^1 करा देते हैं तो श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक होगा (OQ^2-OQ^1) और इस अतिरिक्त पूर्ति Q^1Q^2 रोजगार से वंचित होना पड़ेगा । श्रम संघ ऐसे तरीके भी अपना सकते है जिससे रोजगार पर विपरीत प्रभाव न्यूनतम हो सके, जैसे श्रमसंघ अपने सदस्यों की संख्या सीमित कर श्रम पूर्ति कम कर सकते है अथवा श्रम की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि तथा श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग में वृद्धि के प्रयत्नों द्वारा श्रम मांग वक्र को आगे बढ़ाया जा सकता है, जिससे मजदूरी दर व रोजगार दोनों बढ़ सके । फिर भी यदि श्रम संघ अपनी एकाधिकारात्मक स्थिति का लाभ उठाते हुये फर्मों/सेवायोजकों को ऊँची मजदूरी देने के लिये विवश कर देता है तो उसका सम्भव प्रभाव यह पड़ेगा कि रोजगार की मात्रा कम हो जायेगा । अत: श्रम संघ को निर्णय लेना ही पड़ता है कि ऊँची मजदूरी और अधिक रोजगार में वह किसको वरीयता दे और कितनी मात्रा में ।

15.3.2 श्रम के क्रय में क्रेता-एकाधिकार एवं विक्रय प्रतियोगिता की स्थिति मे मजदूरी निर्धारण

इस प्रकार की स्थिति में श्रम का एक अकेला क्रेता या एक ही बड़ी फर्म क्रेता होती है। यह भी सम्भव है कि कुछ फर्मे आपस में मिलकर क्रेता-एकाधिकारी का रूप धारण कर लें - विशेषता यह है कि क्रेता-एकाधिकारी मजदूरी दरों को काफी सीमा तक प्रभावित करने की शक्ति रखता है । इसके विपरीत हम के विक्रेता अर्थात् श्रमिकों की संख्या अधिक होती है और उनका

कोई संगठन नही होता । अत: वे मजदूरी दर पर कुछ भी प्रभाव नही डाल सकते । श्रमिक नियोजक से व्यक्तिगत आधार पर ही सौदा करते है । श्रमिकों का असंगठित दशा में होना क्रेता एकाधिकार की स्थिति के लिये एक आवश्यक शर्त है क्योंकि यदि श्रमिकों का संगठन बना तो ये सामूहिक रूप से क्रेता एकाधिकारी सें सौदा करेंगे और स्थिति द्विपक्षीय एकाधिकारी की हो जायेगी । दूसरी महत्वपूर्ण शर्त है श्रम बाजार में श्रम अपेक्षाकृत कम गतिशील हो - भौगोलिक और व्यावसायिक दोनों प्रकार की अगतिशीलता क्रेता-एकाधिकारी द्वारा मजदूरों पर अपना प्रभाव बनाये रखने के लिये आवश्यक है, अन्यथा ऊँची मजदूरी मिलने पर श्रमिक दूसरे स्थानों व दूसरे उद्योग में जा सकते है । इस प्रकार श्रमिकों का असंगठित होना व उनकी अगतिशीलता क्रेता-एकाधिकार के अस्तित्व कों बनाये रखने के लिये आवश्यक शर्त है ।

क्रेता-एकाधिकारी अपने श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु को पूर्ण-प्रतियोगिता वाले वस्तु बाजार में बेचता है अथवा एकाधिकार की स्थिति मे इसका प्रभाव भी क्रेता-एकाधिकारी द्वारा मजदूरी निर्धारण पर पड़ता है ।

(i) पहले हम उस स्थिति को लेते है जहाँ श्रम बाजार का क्रेता-एकाधिकारी वस्तु बाजार-में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में अपनी वस्तु बेचना है - यहाँ क्रेता-एकाधिकारी के लिय श्रम का मांग वक्र सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) से ही प्राप्त होता है । चूँकि वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है अत: यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र और सीमान्त उत्पादकता के मूल्य का वक्र एक ही होता है

MRP × Price = MRP = VMP

क्रेता एकाधिकारी के लिये श्रम पूर्ति वक्र ऊपर चढ़ते वक्र (rising curve) के रूप में बनाया जाता है । इसके पीछे धारणा यह है कि अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने के लिये क्रेता-अधिकारी को अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी देनी होगी । अत: श्रमिकों की संख्या बढ़ने के साथ मजदूरी की दर (AW) बढ़ती जायगी इसलिये श्रम की सीमान्त मजदूरी (MW) औसत मजदूरी (AW) से ऊँची होगी व MW वक्र AW वक्र से ऊपर होगा, जैसा रेखा चित्र 15.6 में दिखाया गया है :-

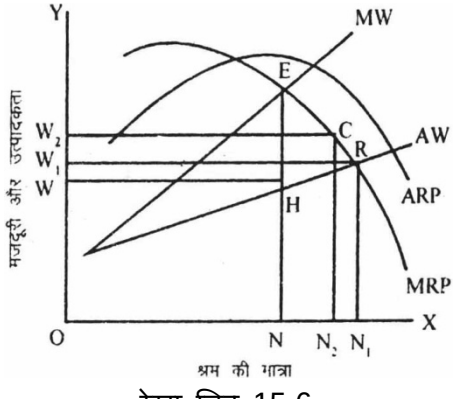

रेखा चित्र 15.6

क्रेता-एकाधिकारी E बिन्दु पर सन्तुलन में होगा जहाँ मांग वक्र (MRP) एवं सीमान्त लागत अथवा MW वक्र एक दूसरे को काटते है। चित्र 15.6 से है कि सन्तुलन बिन्दु E पर

क्रेता-एकाधिकारी द्वारा निर्धारित मजदूरी HN(=OW) स्पष्ट रूप से श्रमिक की सीमान्त आगम उत्पादकता EN से काफी कम है। प्रत्येक श्रमिक को अपनी सीमान्त आगम उत्पादकता से EH के बराबर (EN-HN) कम मजदूरी मिल रही है, स्पष्ट रूप से यह श्रमिकों का शोषण है। कुल शोषण का क्षेत्र EH×WH होगा। अर्थशास्त्री इसको क्रय-एकाधिकार जनित शोषण (monopolistic exploitation) कहते है।

यहां यह बात सुगमता से समझ में आ सकती है यदि पूर्ण प्रतियोगिता न हो और नियोजक क्रय-एकाधिकार की स्थिति में हो स्वभावत: वह श्रमिकों का शोषण करेगा और मजदूरी कम देगा। यदि पूर्ण प्रतियोगिता होती तो सन्तुलन बिन्दु R होता, जहाँ MRP वक्र AW वक्र श्रम पूर्ति वक्र को काटता है। सन्तुलन बिन्दु R से सम्बन्धित मजदूरी की दर OW^1 और रोजगार की मात्रा ON^1 निश्चित होती - स्पष्ट है कि क्रय एकाधिकार में मजदूरी और रोजगार दोनों कम होते है।

उपर्युक्त व्याख्या से एक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि क्रेता-एकाधिकार की स्थिति में श्रम संघ रोजगार में कमी लाये बिना मजदूरी में वृद्धि करा सकते है। रेखा चित्र नं. 15.6 में क्रेता-एकाधिकारी से सौदेबाजी द्वारा यदि श्रम संघ मजदूरी की दर OW^2 तक बढ़ाव ले तो रोजगार की मात्रा ON से बढ़कर ON^2 हो जायेगी। ऐसा सम्भव इसलिये है कि OW^2 मजदूरी की दर पर दोनों पक्षों का समझौता होने कें पश्चात क्रेता-एकाधिकारी के समक्ष औसत मजदूरी वक्र OW^2 स्तर पर एक क्षैतिजीय वक्र के रूप में होगा और सीमान्त मजदूरी वक्र इसमें समाहित होकर दोनों एक हो जायेंगे AW=MW, MRP वक्र इस नये AW=MW श्रम पूर्ति को C बिन्दु पर काटेगा अत: C नया सन्तुलन बिन्दु होगा जहाँ OW^2 मजदूरी पर ON^2 रोजगार की मात्रा होगी। स्पष्टत: अब मजदूरी दर व रोजगार स्तर दोनों ही अधिक है।

(ii)अब हम दूसरी स्थिति को देखेंगे जहाँ श्रम बाजार का क्रेता-एकाधिकारी वस्तु बाजार में एकाधिकार की स्थिति में अपनी वस्तु बेचता है - वस्तु बाजार में एकाधिकार की स्थिति में सीमान्त आय उत्पादकता वक्र (MRP) और सीमान्त उत्पाद का मूल्य (VMP) वक्र अलग-अलग होते है चूंकि :–

$$MRP = MPP \times MR$$

$$VMP = MPP \times AR$$

$$MR < AR \text{ (in monopoly)}$$

$$MRP < VMP$$

यही कारण है कि यहाँ MRP वक्र VMP वक्र के नीचे होगा, जैसा रेखा चित्र 15.7 में दिखाया गया है।

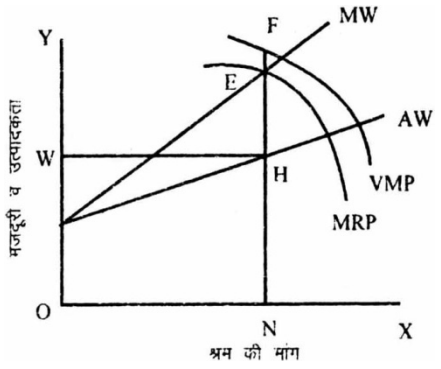

रेखा चित्र 15.7

श्रम पूर्ति वक्र अथवा AW पहले की तरह ऊपर चढ़ता वक है, और AW वक्र उसके ऊपर होगा। क्रेता-एकाधिकारी के लिये सन्तुलन बिन्दु E होगा जहाँ MRP वक्र MW वक्र कौ काटता है। इसके अनुसार OW (-NH) मजदूरी दर है तथा ON रोजगार का स्तर। यहाँ भाग लेने की मजदूरी की दर NH या केवल MRP सीमान्त आय उत्पादकता NE से कम है बल्कि VMP सीमान्त उत्पाद के मूल्य NF से भी कम है। NF - NE = EF का अन्तर वस्तु बाजार में एकाधिकार के कारण है जिसे अर्थशास्त्री एकाधिकार जनित शोषण कहते है। इस प्रकार श्रमिक का दोहरा शोषण होता है। एकाधिकार कें कारण श्रम को VMP से कम मजदूरी मिलती है और क्रेता-एकाधिकार के कारण MRP से कम मजदूरी मिलती है।

श्रम बाजार में क्रय-एकाधिकार के अतिरिक्त यदि अपूर्ण प्रतियोगिता को कोई अन्य रूप पाया जाय, उदाहरणार्थ एक के स्थान पर श्रमिकों के दो अथवा तीन क्रेता हो तो भी व्यक्तिगत क्रेता मजदूरों की दर को प्रभावित करने की स्थिति में होगा और सन्तुलन की स्थिति में मजदूरों की दर श्रमिक की सीमान्त एवं औसत उत्पादकता से कम होगी और इस प्रकार नियोजक श्रमिकों का शोषण करेंगे ।

अत: स्वाभाविक प्रश्न है कि इस शोषण को कैसे समाप्त किया जा सकता है? क्या श्रम संघ अथवा सरकार मजदूरी का स्तर ऊँचा करके यह शोषण समाप्त कर सकती है? जहाँ तक एकाधिकार-जनित शोषण का प्रश्न है ऊँची मजदूरी से वस्तु की लागत ही बढ़ेगी जो वस्तु की कीमत बढ़ा कर MRP व VMP का अन्तर और बढ़ा देगी, अत: यह शोषण इस प्रकार समाप्त नहीं होगा । यह शोषण समाप्त करने के लिये सरकार को ही एकाधिकार पर नियन्त्रण करके वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशायें उत्पन्न करने के प्रयत्न करने पड़ेंगे । जहाँ तक क्रेता-एकाधिकारी के प्रभाव का शोषण है श्रम संघों द्वारा सामूहिक-सौदेकारी के अन्तर्गत उचित समझोते कर मजदूरी और रोजगार दोनों को बढ़ाया जा सकता है - यह समस्या द्विपक्षीय एकाधिकार (अथवा सामूहिक-सौदेकारी) के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की है । इस समस्या का ही अध्ययन अब हम आगे करेंगे ।

बोध प्रश्न - 2

प्रश्न-1 अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रम बाजार के' विभिन्न प्रकार बताये ।

प्रश्न-2 श्रम बाजार में श्रम के विक्रय में एकाधिकार की स्थिति से क्या अर्थ है? इस स्थिति में

एकाधिकारी अपनी शक्ति प्रयोग करने में कहाँ तक सफल होता है?

प्रश्न-3 अपने सदस्यों को ऊँची मजदूरी दिलवाने के लिए श्रम संघ क्या उपाय करते है?

प्रश्न-4 श्रम बाजार में क्रेता-एकाधिकार की स्थिति कब होती है? इसके लिये आवश्यक शर्त क्या है?

प्रश्न-5 क्रेता-एकाधिकारी के लिये श्रम-पूर्ति वक्र कैसा होता है? चित्र सहित समझाइये ।

प्रश्न-6 चित्र द्वारा क्रेता-एकाधिकारी के सन्तुलन की स्थिति बताइये । यहाँ श्रम कें शोषण की स्थिति क्यों उत्पन्न होती है?

प्रश्न-7 चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये कि पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना मैं क्रय-एकाधिकार में मजदूरी और रोजगार दोनों कम होते है ।

प्रश्न-8 क्या क्रेता-एकाधिकार की स्थिति में श्रम संघ रोजगार में कमी लाये बिना मजदूरी में वृद्धि करा सकते हैं? चित्र की सहायता से समझाइये ।

प्रश्न-9 MRP और VMP का अर्थ व अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

प्रश्न-10 क्रेता एकाधिकार की स्थिति में एकाधिकार-जनित शोषण कब होता है क्यों?

15.4 द्विपक्षीय एकाधिकार मॉडल

"द्विपक्षीय एकाधिकार" बाजार की उस स्थिति कों कहते है जिसमें एक विक्रेता एक क्रेता का सामना करता है । एक श्रमिक संघ और एक सेवायोजक अथवा सेवायोजकों के संगठन कें बीच सामूहिक सौदेकारी द्विपक्षीय एकाधिकार का एक अनुगम उदाहरण है ।

एक फर्म या उद्योग के आधार पर गठित श्रम संघ अपने आधीन सभी श्रमिकों का प्रतिनिधि होता है, उनकी ओर से "एक व्यक्ति" की भांति सौदेकारी करता है, इस तरह श्रम संघ अपने उद्योग में श्रमिकों की सेवाओं का एकमात्र विक्रेता होता हैं दूसरे पक्ष पर एक बड़ा सेवायोजक या सेवायोजकों का संगठन श्रम सेवाओं का एक मात्र क्रेता होता है । यह स्थिति श्रम बाजार में द्विपक्षीय एकाधिकार की है और इसके अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण दोनों पक्षों के बीच सामूहिक सौदेकारी द्वारा होता है । अत: सामूहिक सौदेकारी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की समस्या द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की समस्या का ही एक रूप है ।

श्रम बाजार में द्विपक्षीय एकाधिकार में मजदूरी का निर्धारण उसी प्रकार अनिश्चित होता है जैसा कि वस्तु बाजार में द्विपक्षीय-एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य । द्विपक्षीय एकाधिकार (अथवा सामूहिक सौदेकारी) के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण के विश्लेषण से हम केवल दो सीमाओं को ही स्पष्ट कर पाते है - मजदूरी-दर की उच्चतम सीमा, जिसको श्रम संघ प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे और मजदूरी-दर की निम्नतम सीमाओं, जो सेवायोजक निश्चित करना चाहेगा । इन दो सीमाओं के बीच अन्तर (Range) में मजदूरी दर कहीं निश्चित होगी यह दोनों पक्षों की सापेक्ष सौदेकारी शक्ति पर निर्भर करेगा । सैद्धान्तिक रूप से उच्चतम और निम्नतम, सीमाओं के बीच वास्तविक रूप से निर्धारित मजदूरी निर्धारणीय होती है ।

फिर भी उपर्युक्त दो सीमाओं तथा उनके बीच अन्तर (Range) का जिसमें सामूहिक सौदेकारी द्वारा मजदूरी का निर्धारण होगा - विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है । इस विश्लेषण में श्रम संघों के उद्देश्य तथा व्यवहार सम्बन्धी विभिन्नता के कारण कठिनाई अवश्य आती हैं । श्रम संघों के उद्देश्य आर्थिक है तो नीति सम्बन्धी विभिन्नता हो सकती है । श्रम संघ की नीति अपने सदस्यों की आय को अधिकतम करने की हो सकती है अथवा श्रम संघ मजदूरी की उस दर की मांग कर सकते है जो उसके सदस्यों की संख्या अधिकतम करें । इसी प्रकार श्रम संघ रोजगार की मात्रा की चिन्ता न करते हुये मजदूरी की दर को अधिकतम सम्भव स्तर तक बढ़ाने की चेष्टा कर सकते हैं अथवा मजदूरी तथा रोजगार की मात्रा के इष्टतम संयोग को प्राप्त करने की । श्रम संघों के ये वैकल्पिक उद्देश्य है जिनके कारण नियोजक के साथ सौदेकारी करने में उनका व्यवहार सम्बन्धी ढांचा भिन्न-भिन्न होता है ।

15.4.1 फ्लैनर मॉडल

श्रम संघों के उद्देश्य व व्यवहार सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं पर आधारित द्विपक्षीय एकाधिकार (अथवा सामूहिक सौदाकारी) के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण के लिये अर्थशास्त्रियों ने पिछले कुछ दशकों में कई मॉडल (Models) प्रस्तुत किये है । इस सम्बन्ध में पहले हम विलियम फ्लैनर के दृष्टिकोण (Fellner's Approach) को लेते है, जिसकी व्याख्या उन्होंने 1949 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक Competition Among the Few में की है ।

आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में प्राय: माना जाता है कि श्रम संघों का मजदूरी और रोजगार के बीच अधिमान फलन (Preference Function) होता है । ये अधिमान फलन एकाधिकारी श्रम संघ के श्रम-पूर्ति वक्र का स्थान लेते है । महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन अधिमान फलनों अथवा इनसे सम्बन्धित तटस्थतवक्रों की आकृति क्या होगी । वास्तव में इन तटस्थता वक्रों की आकृति श्रम संघों के उद्देश्य सम्बन्धी मान्यताओं पर निर्भर करती है । फ्लैनर (Fellner) के विचार से यदि यह मान्यता सही है कि श्रम संघ अधिकतम सम्भव मजदूरी दर को प्राप्त करना चाहते है और इस बात की चिन्ता नहीं करते कि इसका प्रभाव रोजगार की मात्रा पर क्या होगा तो मजदूरी दर तथा रोजगार की मात्रा कें बीच श्रम संघों के तटस्थता वक्रों की आकृति क्षितिज के समान्तर सरल रेखाओं की होगी, जैसे रेखा चित्र 15.8 मे दिखाई है :-

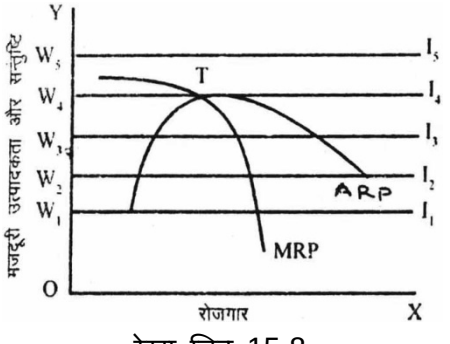

रेखा चित्र 15.8

रेखा चित्र 15.8 में Y अक्ष पर ऊपर बढ़ते तटस्थता वक्र (I_1, I_2, I_3, I_4, I_5) क्रमश: बढ़ती हुई मजदूरी (W_1, W_2, W_3, W_4, W_5) से प्राप्त सन्तुष्टि के स्तर को व्यक्त करते है । ऊपर की ओर जाते प्रत्येक दो तटस्थता वक्रों के बीच बढ़ती दूरी यह बताती है कि श्रम संघ की सन्तुष्टि में समान वृद्धि के लिये मजदूरी दर में उत्तरोत्तर अधिक वृद्धि की आवश्यकता होती है । चित्र 15.8 में ARP औसत आय उत्पादकता व MRP सीमान्त आय उत्पादकता के वक्र है । शक्तिशाली श्रम संघ अपने सदस्यों कें लिये ऊँची से ऊँची मजदूरी प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा । "यदि श्रमिक संघ सामूहिक सौदाकारी की समस्त शक्ति रखता है अर्थात् जब वह स्वयं मजदूरी की दर निर्धारित करने की स्थिति में है तो वह सीधी रेखा के तटस्थता वक्रों में उस मजदूरी रेखा का -चयन करेगा जो औसत उत्पादकता वक्र को स्पर्श करती है" - (फ्लैनर उपर्युक्त रेखाचित्र में यह OW^4 मजदूरी की दर है, जो ARP वक्र को T बिन्दु पर स्पर्श करती है । अत: श्रम संघ द्वारा मजदूरी की उच्चतम सीमा OW^4 निश्चित की जायगी । दी हुई स्थिति में यही मजदूरी की अधिकतम सम्भव सीमा है ।

मजदूरी की निचली सीमा सेवायोजक द्वारा रखी जायेगी जो नियोजक की एक पक्षीय सौदाकारी शक्ति की मात्रा पर निर्भर करेगी । परन्तु यह निम्नतम दर श्रम संघ को "कम से कम सम्भव" मजदूरी के रूप में स्वीकृत होनी चाहिये अन्यथा श्रम संघ अपने सदस्यों को हड़ताल पर जाने को कहेगा । मजदूरी की ऐसी कोई निम्नतम दर चित्र. 15.8 में किसी तटस्थता वक्र पर ही होगी । इसके अतिरिक्त नियोजक द्वारा निश्चित मजदूरी की निम्नतम दर व्यावसायिक दशाओं, वस्तु की मांग की लोच, श्रम व पूंजी में प्रतिस्थापना की सम्भावना, मजदूरी की प्रचलित दर तथा श्रमिकों के जीवन-निर्वाह व्यय आदि से भी प्रभावित होती है । मजदूरी की निम्नतम सीमा की धारणा यहाँ अस्पष्ट हैं।

इन दोनों सीमाओं के बीच मजदूरी दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदा-शक्ति पर निर्भर करेगी । यदि श्रम संघ शक्तिशाली है तो मजदूरी उच्चतम सीमा के निकट और यदि नियोजक के पास अधिक सौदा-शक्ति है तो मजदूरी निम्नतम सीमा के निकट होगी । अत: सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत वास्तविक मजदूरी की दर निर्धारणीय है ।

15.4.2 फ्लैनर का वैकल्पिक मॉडल

उपर्युक्त विश्लेषण में यह मान्यता है कि श्रम संघ मजदूरी दर निर्धारण के विषय में निर्णय लेते समय उसके रोजगार की मात्रा पर पढ़ने वाला प्रभाव का ध्यान नहीं लाते । परन्तु यह पूर्व धारणा इतनी वास्तविक नहीं है । अकेली फर्म के नियोजक से सौदाकारी करते समय श्रम संघ ऐसा दृष्टिकोण रख सकते हैं परन्तु उन्हें भी ऊँची मजदूरी की मांग के कारण बेरोजगार हुये अपने सदस्यों के विरोध का भय रहता है । सम्पूर्ण उद्योग से सम्बन्धित बड़े तथा केन्द्रीय श्रम संघ उद्योग के सेवा-योजकों के संगठन से सौदाकारी करते समय मजदूरी दर में वृद्धि के साथ रोजगार की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान रखते ही हैं, क्योंकि ऐसा हो सकता है कि श्रम संघ द्वारा निर्धारित ऊँची मजदूरी के कारण उद्योग की कुछ फर्मे हानि की स्थिति में आने के कारण बन्द हो जाय और उनके मजदूर बेरोजगार हो जाय । ऐसी फर्मो के श्रम संघ केन्द्रीय संघ से अलग होकर स्वतंत्र समझौते अपनी फर्म के सेवायोजक से कर सकते

है इससे श्रम संघ एकता में बाधा पड़ेगी । अत: एकता बनाये रखने की पहली आवश्यकता के कारण श्रम संघ मजदूरी दर तथा उस पर उपलब्ध रोजगार की मात्रा दोनों का ध्यान रखकर ही सामूहिक सौदेकारी करेंगे । वस्तुत: वे मजदूरी की दर तथा रोजगार की मात्रा का सर्वोतम संयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे ।

ऐसी स्थिति में मजदूरी दर तथा रोजगार की मात्रा में अधिमान फ्लिन को प्रदर्शित करने वाले तटस्थत वक्र क्षितिज के समानान्तर सीधी रेखा नह होकर मूल बिन्दु की ओर उन्नत (Convex) होंगे, जैसा रेखा चित्र 15.9 में दिखाया गया है, जिसमें तटस्थता वक्र I_1, I_2, I_3, I_4 और I_5 क्रमश: उच्चतर सन्तुष्टि देने वाले मजदूरी और रोजगार की मात्रा के संयोगों को व्यक्त करते है । MRP सीमान्त आय उत्पादकता और ARP औसत आय उत्पादकता के आवश्यक वक्र है ।

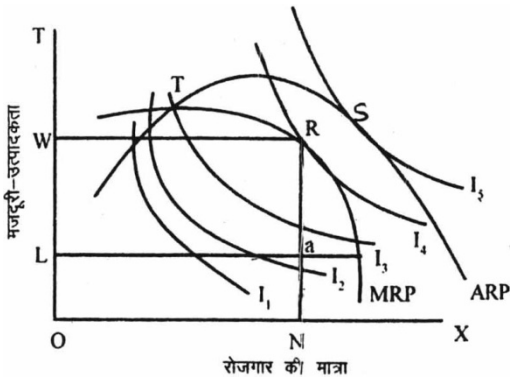

रेखा चित्र 15.9

उपर्युक्त रेखा चित्र से हम मजदूरी दर की उच्चतम व निम्नतम सीमा ज्ञात करेंगे । सामूहिक सौदाकारी में पहले मजदूरी दर का निर्णय होता है और इस प्रकार जो मजदूरी दर निश्चित होती है उस पर नियोजक रोजगार की मात्रा जितनी चाहे उपलब्ध करा सकता है । जैसा हम जानते हैं दी हुई मजदूरी दर पर नियोजक उतने ही श्रमिकों को रोजगार देगा जहाँ श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर हो जाय ऐसा करने ही उसके लाभ अधिकतम होंगे । अत: जो भी मजदूरी-रोजगार का संयोग निर्धारित होगा वह श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता वक्र के किसी बिन्दु पर होगा । श्रम संघ को भी सीमान्त आय उत्पादकता वक्र पर स्थिति उस बिन्दु पर अधिकतम सन्तुष्टि होगी जहाँ वह श्रम संघ के किसी तटस्थ वक्र को स्पर्श करता है। चित्र में यह बिन्दु R है जहाँ श्रम संघ का तटस्थ वक्र I_4 सीमान्त आय उत्पादकता वक्र को स्पर्ष करता है। स्पर्श बिन्दु R के अनुसार मजदूरी दर OW है, जिस पर नियोजक रोजगार को ON मात्रा उपलब्ध करायेगा। अत: स्पर्ष बिन्दु R द्वारा व्यक्त मजदूरी उच्चतम सीमा है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि दिये हुए MRP वक्र पर स्थित R बिन्दु पर अधिकतम सन्तुष्टि तब ही सम्भव है, यदि यह बिन्दु ARP वक्र के नीचे स्थित हो। यदि ऐसा स्पर्श बिन्दु ARP वक्र के ऊपर है (जो तटस्थता वक्रों को कुछ भिन्न आकृति देने से सम्भव है) तो श्रम संघ के लिये अधिकतम सन्तुष्टि का बिन्दु ARP वक्र का उच्चतम बिन्दु होगा, जो

चित्र में T बिन्दु है, और उस स्थिति मे मजदूरी की उच्चतम सीमा T बिन्दु के अनुसार व्यक्त होगी।

यह बता देना भी यहाँ उपयुक्त होगा कि यदि कोई श्रम संघ अत्यधिक शक्तिशाली है और निर्णय करने की एक पक्षीय सौदा शक्ति रखता है तो वह मजदूरी और रोजगार के उस संयोग को प्राप्त करने में भी सफल हो सकता है जो उसके उच्चतर तटस्थता वक्र और औसत आय उत्पादकता वक्र स्पर्श बिन्दु से व्यक्त हो - रेखा चित्र 15.9 में ऐसा बिन्दु S है।

अब मजदूरी दर की निम्नतम सीमा को लेते है, जो सेवायोजक द्वारा रखी जायेगी परन्तु श्रम संघ को "कम से कम" सम्भव मजदूरी के रूप में स्वीकृत होनी चाहिये। नियोजक का व्यवहार यहाँ MRP से ही निर्देशित होता है, उसके दृष्टिकोण से MRP वक्र पर स्पर्श बिन्दु R से जैसे-जैसे वह नीचे उतरता है, उसके लाभ की मात्रा बढ़ती जाती है। परन्तु श्रम संघ MRP वक्र पर जैसे-जैसे नीचे आता है वह निचले तटस्थता वक्रों पर आयेगा अर्थात् उसकी सन्तुष्टि का स्तर कम होता जायेगा। परन्तु श्रम संघ की सन्तुष्टि का एक ऐसा स्तर भी होगा जिसके नीचे वह कदापि नहीं जायेगा - मान लें रेखा चित्र 15.9 में I_2 तटस्थता वक्र संघ की निम्नतम सन्तुष्टि का स्तर है रेखा चित्र में I_2 तटस्थता वक्र MRP को Q बिन्दु पर काट रहा है अत: Q बिन्दु OL मजदूरी की दर और ON रोजगार की मात्रा का ऐसा संयोग है जो निम्नतम सीमा व्यक्त करता है।

अत: MRP वक्र का R बिन्दु उच्चतम सीमा और Q बिन्दु निम्नतम सीमा है। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत इन दो सीमाओं के बीच मजदूरी का निर्धारण दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदा शक्ति पर निर्भर करेगा। अत: यहाँ भी वास्तविक मजदूरी निर्धारणीय है।

15.4.3 कार्टर मॉडल

द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण के मॉडल (Model) को प्रो. A.M. Cartter ने और अधिक विकसित तथा परिष्कृत किया है। 1959 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Theory of Wages and Emloyment में उन्होंने अपने इस मॉडल की व्याख्या प्रस्तुत की है।

उपरोक्त वर्णित W. Fellner के मॉडल से इसमें दो महत्वपूर्ण सुधार है :-

1. फ्लैनर विश्लेषण में मजदूरी और रोजगार को एक दूसरे का स्थानापन्न (Substitutes) माना है परन्तु वर्तमान मे प्रचलित मजदूरी दर और रोजगार के स्तर पर इनकी निर्भरता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि कार्टर के दृष्टिकोण से मजदूरी और रोजगार किसी सीमा तक एक दूसरे के स्थानापन्न हो सकते है यह इस बात पर ही निर्भर करता है कि वर्तमान में प्रचलित मजदूरी-रोजगार का स्तर क्या है । कार्टर की इस धारणा की आगे पूर्ण व्याख्या की गई है ।
2. फ्लैनर विश्लेषण में सेवायोजक का सारा व्यवहार सीमान्त आय उत्पादकता MRP के आधार पर ही ज्ञात करना होता है जबकि कार्टर ने स्पष्ट रूप से सेवायोक्कों के व्यवहार के

लिये भी मजदूरी रोजगार के विभिन्न संयोगों से सम्बन्धित "लाभ तटस्थता वक्रों" की रचना की है ।

इस प्रकार कार्टर ने मजदूरी निर्धारण के द्विपक्षीय एकाधिकार के मॉडल का अत्यन्त सूक्ष्म और परिष्कृत विश्लेषण प्रस्तुत किया जो व्यावहारिक स्थिति के भी अधिक निकट है।

कार्टर के मतानुसार श्रम संघ मजदूरी और रोजगार को किसी सीमा तक एक दूसरे का प्रतिस्थापन मानते है यह इस बात पर निर्भर करता है कि वर्तमान में उसे मजदूरी व रोजगार का क्या संयोग प्राप्त है । दूसरे शब्दों में यह मजदूरी रोजगार के प्रचलित संयोग पर ही निर्भर करेगा कि रोजगार की कुछ कमी के लिये मजदूरी में कितनी वृद्धि की जाय और मजदूरी में कुछ कमी के लिये रोजगार कितना बढ़ाया जाय जिससे श्रम संघ सन्तुष्टि के उसी स्तर पर रह सके । कार्टर के अनुसार "इस बात की ही अधिक सम्भावना है कि एक समय मजदूरी रोजगार का जो संयोग श्रम संघ को पहले से ही प्राप्ति है उसमें रोजगार की कुछ कमी कमी क्षतिपूर्ति स्वरूप वह मजदूरी में पर्याप्त वृद्धि की मांग करेगा और मजदूरी में कुछ कमी की क्षतिपूर्ति स्वरूप वह रोजगार में पर्याप्त वृद्धि की मांग करेगा ।" श्रम संघ का ऐसा व्यवहार इसलिये होता है क्योंकि अपने अस्तित्व की रक्षा करना ही उसका प्रमुख उद्देश्य हें । यदि श्रम संघ वर्तमान में प्राप्त मजदूरी रोजगार स्तर में कमी स्वीकार करता है तो उसे अपने सह-कर्मियों को तीव्र विरोध का सामना करना होगा - इससे उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा ।. इसलिए यह फिर भी सम्भव है कि रोजगार में थोड़ी सी कमी के लिये मजदूरी में बहुत अधिक वृद्धि करके उसे इस बात के लिये तैयार किया जा सके । इसी प्रकार मजदूरी में थोड़ी सी कमी के लिये रोजगार में पर्याप्त वृद्धि देकर ही क्षतिपूर्ति की जा सकती है । यदि ऐसा है तो श्रम संघ के अधिमान फलन अथवा तटस्थत वक्र की आकृति बहुत कुछ ऐसी होगी, जैसी रेखा चित्र 15.10 में दिखाई गई है :-

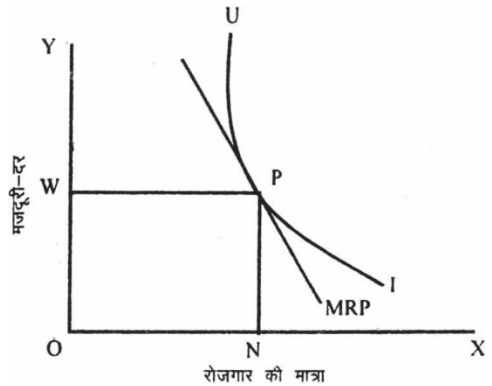

रेखा चित्र 15.10

रेखा चित्र 15.10 में MRP वक्र पर स्थित P बिन्दु संघ को वर्तमान में प्राप्त मजदूरी रोजगार का संयोग प्रदर्शित करता है । श्रम संघ के तटस्थता वक्र की आकृति से स्पष्ट है कि रोजगार की थोड़ी सी कमी के लिये मजदूरी में बहुत अधिक वृद्धि करनी होगी और मजदूरी में थोड़ी सी कमी कें लिये रोजगार में बहुत अधिक वृद्धि करनी होगी । इस तटस्थता वक्र का आकृति पूरक वस्तुओं के तटस्थतावक्र से मिलती है, परन्तु उनकी तरह सम-कोणीय (right-angled) नहीं है- कारण संघ के लिये मजदूरी व रोजगार पूर्ण रूप से पूरक नहीं है । इसका

संकेत इस बात से मिलता है कि संघ को एक वस्तु की कुछ मात्रा छोड़ने के लिये तैयार किया जा सकता है परन्तु इस त्याग की कीमत के रूप में दूसरी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा देनी होगी ।

एक युक्तिसंगत प्रश्न अब यह उठता है कि श्रम की मांग में वृद्धि अथवा कमी होने पर श्रम संघ की क्या प्रतिक्रिया होगी । कई श्रम अर्थशास्त्रियों का मानना है कि इस प्रतिक्रिया स्वरूप श्रमसंघों के व्यवहार में सामंजस्य नहीं पाया जाता । श्रम की मांग में वृद्धि होने पर श्रम संघ रोजगार से अधिक मजदूरी वृद्धि को वरीयता देते है, अर्थात् श्रम की मांग में वृद्धि से होने वाले लाभ को श्रम संघ अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी के रूप में लेने का प्रयत्न करेंगे न कि रोजगार की वृद्धि कें रूप में । इसके विपरीत यदि श्रम की मांग में कमी हो जाय तो श्रम संघ मजदूरी में कमी का कड़ा प्रतिरोध करेंगे, चाहे इसका प्रभाव रोजगार की स्थिति पर विपरीत ही क्यों न हो । श्रम संघ के ऐसे व्यवहार को आगे रेखा चित्र 15.11 से पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकता है ।

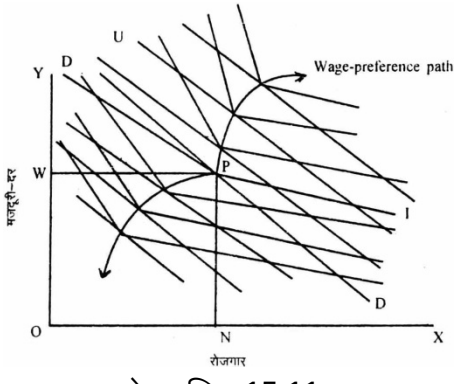

रेखा चित्र 15.11

रेखा चित्र नं. 15.11 में DD श्रम की मांग का वर्तमान स्तर है तथा UI श्रम संघ का तटस्थता वक्र है जो स्पर्ष बिन्दु P पर श्रम संघ को वर्तमान में प्राप्त मजदूरी-रोजगार का संयोग-प्रदर्शित करता है ।

UI तटस्थता वक्र की आकृति के अनुरूप सन्तुष्टि के विभिन्न स्तर के अन्य तटस्थता वक्र UI के ऊपर व नीचे बनाकर श्रम संघ का तटस्थता मानचित्र (Indifference Map) तैयार किया गया है । इस तटस्थता मानचित्र के साथ जब हम श्रम की मांग में वृद्धि व कमी के अन्य श्रम मांग वक्र खींच देते है तब इन विभिन्न श्रम मांग वक्रों व तटस्थतावक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाकर हम एक नया वक्र-मजदूरी अधिमान पथ अर्थात् Wage Preference Path प्राप्त होता है । श्रम की मांग में वृद्धि या कमी होने पर श्रम संघ इसी "पथ" (Wage Preference Path) का अनुसरण करेंगे । इस वक्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता दिखाई देती है कि यह वर्तमान में प्राप्त मजदूरी-रोजगार संयोग बिन्दु P पर विकुचित (Kinked) है जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि श्रम की मांग के वर्तमान स्तर में ऊपर और नीचे मजदूरी व रोजगार की वरीयता (Preference) में तीव्र अन्तर है । कार्टर के अनुसार कुंचित मजदूरी अधिमान पथ (Kinked Wage Prefernce Path) जैसा चित्र में दिखाया गया है बताता है

कि "श्रम की मांग वृद्धि के अवसर को श्रमसंघ मजदूरी में वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से प्रयोग करेंगे, रोजगार वृद्धि तब ही स्वीकार की जायेगी जब श्रम की मांग में पर्याप्त वृद्धि हो । इसी तरह श्रम की मांग में कमी के कारण होने वली मजदूरी में कटौती का प्रतिरोध किया जायेगा जब तक श्रम की मांग में कमी अत्याधिक ही न हों ।

यहाँ ध्यान दिया जाना चाहिये कि श्रम संघ के इस "मजदूरी अधिभार पथ" का प्रयोग श्रम-पूर्ति वक्र के रूप में किया जाता है ।

ऊपर हमने Prof. A.M. Cartter विश्लेषण के अनुसार श्रम संघ के अधिमान फलन की पूर्ण व्यवस्था प्रस्तुत की है । कार्टर का मानना है कि सेवायोजक के अधिमान फलन का अध्ययन भी आवश्यक है जिससे सामूहिक समझौते के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया की सूक्ष्मता को भलीभांति समझा जा सके ।

सेवायोजक के अधिमान फ्लिन को प्रदर्शित करने वाले तटस्थता वक्रों की परिकल्पना कार्टर ने लाभ तटस्थतावक्रों के रूप में की है । मान्यता यह है कि सेवायोजक का आर्थिक उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है अत: सेवायोजक की सन्तुष्टि प्रत्यक्ष रूप से लाभ की उस मात्रा पर निर्भर है जो विभिन्न मजदूरी सम्बन्धी समझौतों के अन्तर्गत वह अर्जित कर सकता है । मजदूरी रोजगार के विभिन्न संयोगों से सेवायोजक को प्राप्त लाभ की स्थिति दर्शाने के लिये कार्टर ने श्रम की औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) की धारणा का प्रयोग किया है ।

जैसा हम जानते हैं श्रम की औसत आगत उत्पति अथवा औसत सकल आगम उत्पत्ति (AGRP) में से अन्य साधनों का औसत प्रतिफल निकाल देने से यह श्रम की औसत विशुद्ध आयाम उत्पत्ति (ANRP) बन जाती है मान्यता, यह है कि हमें साहसी सहित अन्य सहयोगी साधनों के समग्र प्रतिफल को स्वतन्त्र रूप से जानकारी होती है कार्टर ने (ANRP) की जिस धारणा का प्रयोग लाभ तटस्थतावक्र के लिये किया है, उसे ज्ञात करने के लिये हमें श्रम की औसत आगम उत्पादकता (ANRP) में सह साहसी के अलावा वस्तु के उत्पादन में श्रम के साथ प्रयुक्त अन्य साधनों का ही औसत प्रतिफल घटाना होगा । अब यदि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी इस ANRP के बराबर है तो सेवायोजक का लाभ शून्य होगा । इस तरह यह ANRP के बराबर हैं तो सेवायोजक का लाभ शून्य होगा । इस तरह यह ANRP वक्र मजदूरी दर व रोजगार के स्तर के वे सब संयोग प्रदर्शित करता है जिन पर सेवायोजक का लाभ शून्य है । आगे चित्र- 15.12 में इसे ANRP वक्र I कहा गया है, यह मजदूरी-रोजगार दे वे सब संयोग प्रदर्शित करता है जिनमें सेवायोजक का लाभ शून्य है । अब यदि हम कुल आगम उत्पत्ति (TRP) में से न केवल श्रम के साथ प्रयुक्त अन्य साधनों का प्रतिफल बल्कि सेवायोजक को मिलने वाले लाभ का एक निश्चित दी हुई मात्रा कम कर दें, तब इससे श्रम को जो ANRP प्राप्त होगा वह सेवायोजक के लिये दी हुई लाभ की मात्रा के साथ मजदूरी और रोजगार के विभिन्न संयोग प्रदर्शित करने वाला दूसरा तटस्थतावक्र होगा, जिसकी स्थिति पहले तटस्थतावक्र से: - जो शून्य लाभ की स्थिति दिखाता है - नीचे होगी । यह दूसरा तटस्थतावक्र सेवायोजक के लिये शून्य से अधिक (धनात्मक) लाभ दिखाता है । तटस्थतावक्र I व II के बीच दूरी आरम्भ

में अधिक होकर धीरे-धीरे कम होती गई है कारण दूसरे तटस्थतावक्र के लिये हमने सेवायोजक के लाभ की एक निश्चित मात्रा ली है जो नियुक्त किये गये श्रमिकों की संख्या बढ़ने के साथ-प्रति इकाई पर शनै: नशे: कम होती जायेगी ।

हम कुल उत्पादित आय (TRP) में से सेवायोजक को मिलने वाले लाभ की विभिन्न निश्चित (Fixed) मात्रायें कम करते हुये विभिन्न स्तर के श्रम के औसत आगम उत्पति वक्र (ANRP) प्राप्त कर सकते है । सेवायोजक के लाभ की जितनी अधिक मात्रा हम कुल उत्पादित आय में से कम करते जायेंगे श्रम की औसत विशुद्ध उतर्गते वक्र (ANRP) उतना ही नीचा होता जायेगा अर्थात लाभ की जितनी मात्रा अधिक होगी ANRP वक्र उतना ही नीचा होता जायेगा । चूंकि एक ANRP वक्र मजदूरी-रोजगार के अनेक सम्भव सोग प्रदर्शित करता है जो लाभ का एक समान मात्रा प्रदान करते हैं उसे सेवायोजक का लाभ तटस्थतावक्र (Profit Indifference Curve) कहा जाता है । ऐसे कई वक्रों को चित्र में एक साथ दिखाकर तटस्थावक्रों का मानचित्र (Preference Map) बनाया जा सकता है - जैसा रेखा चित्र 15.12 में दिखाया गया है । यहाँ MRP वक्र (श्रम की सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र) जो श्रम का मांग वक्र है, ANRP वक्रों' को उनके उच्चतम बिन्दुओं को काटता हुआ निकलता है । सेवायोजक के लिये MRP का विशेष महत्व है क्योंकि दी हुई मजदूरी पर वह अपने निर्णय (रोजगार संबंधी) MRP के आधार पर ही करेगा जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके ।

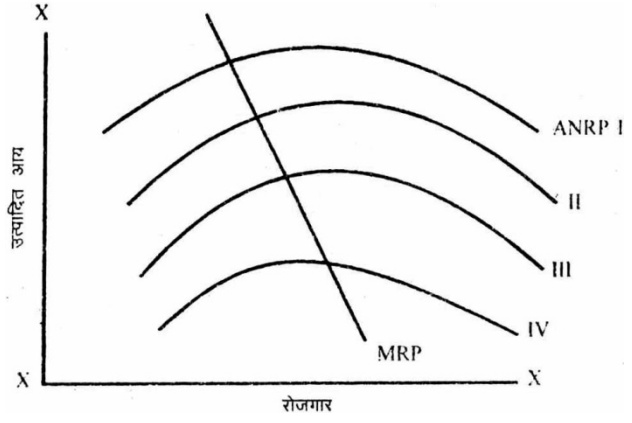

रेखा चित्र 15.12

कार्टर मॉडल के अनुसार सामूहिक समझौते अथवा द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति में मजदूरी निर्धारण :-

अब श्रम संघ व सेवायोजक के तटस्थता वक्रों के मानचित्रों (Preference Map) को मिलाकर मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया स्पष्ट की जा सकती है । इस सम्बन्ध में कार्टर ने दो मान्यताओं का उल्लेख किया है -

1) दोनों पक्ष एक दूसरे के अधिमान वक्रों के मानचित्र की पूरी जानकारी रखते हैं।
2) दोनों पक्ष समस्या का हल निकाल कर समझौता करने में उत्सुक है ।

कार्टर ने इन्हें पूर्ण सौदेकारी का शर्तें 'Perfect Bargaining Condition' कहा है । आगे मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन श्रम की मांग की विभिन्न स्थितियों में किया गया हैं, जैसे जब श्रम को मांग स्थिर है जब श्रम की मांग में वृद्धि अथवा कमी होती है ।

स्थिर मांग की स्थिति का अर्थ है कि वर्तमान समझोते के समय श्रम की मांग वही है जो पिछले समझोते के समय थी । स्थिर मांग की स्थिति में मजदूरी निर्धारण प्रक्रिया रेखा चित्र 15.13 से स्पष्ट की गई है :-

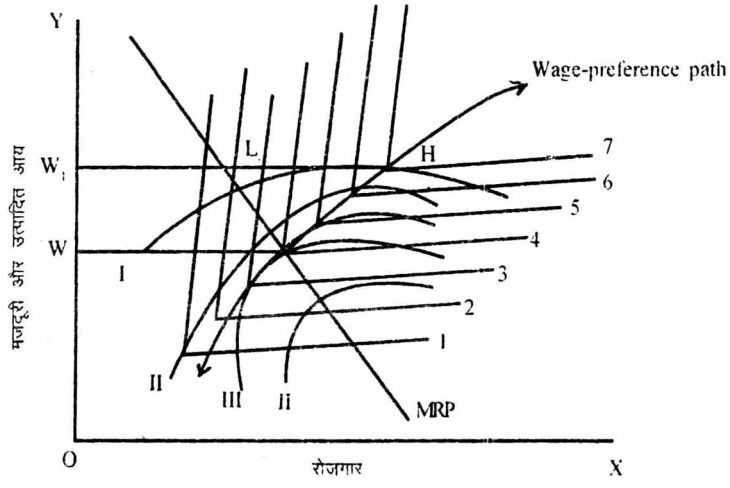

रेखा चित्र 15.13

रेखा चित्र 15.13 में MRP वक्र पर P सन्तुलन बिन्दु है जो वर्तमान में प्रचलित मजदूरी-रोजगार के संयोग को प्रदर्शित करता है । सेवायोजक का 'लाभ-तटस्थतावक्र' III और श्रम संघ का तटस्थतावक्र-4 भी e से गुजरते हैं सेवायोजक अपने लाभ में वृद्धि के लिये MRP वक्र पर नीचे जाना चाहेगा, परन्तु मांग स्थिर है व उसके लाभ में कोइ कमी नहीं हुई है अत: मजदूरी कम करने का जोखिम वह नहीं लेगा । दूसरी और श्रमसंघ को P से MRP पर ऊपर अथवा नीचे जाने में कोई लाभ नहीं है क्योकि इससे वह निचले तटस्थता वक्रों पर होगा जो संघ के लिये कम सन्तुष्टि वाले है । अत: दोनों पक्षों की ओर से यथास्थिति रखने पर ही समझौता होगा । श्रम संघ के लिये "मजदूरी अधिमान पथ" पर ऊपर H बिन्दु पर लाभ की स्थिति प्रतीत होती है क्योंकि इस पर मजदूरी OW^1 हो जायेगी परन्तु रोजगार घट कर W^4 स्तर पर आ जायेगा, कारण L बिन्दु श्रम संघ के निचले तटस्थतावक्र पर है, इससे श्रम संघ की स्थिति P की स्थिति से कम सन्तुष्टि को होगी अत: दोनों पक्ष वर्तमान स्थिति पर ही समझौता करने को अधिक उत्सुक होंगे ।

श्रम की मांग बढ़ने की स्थिति में मजदूरी निर्धारण एक जटिल समस्या है - वैसे वास्तविक स्थित इससे मिलती हुई होनी है । जब आर्थिक विकास और सम्बन्धित कारणों से श्रम की मांग बढ़ती है तो व्यवसाय में लाभ बढता है । इस बढ़े हुय लाभ ने श्रमिक और सेवायोजक अपना-अपना भाग लेना चाहेंगे अत: नये समझौते के लिये सौदेबाजी होगी। इस समझौते की प्रक्रिया रेखा चित्र 15.14 से स्पष्ट की गई है :-

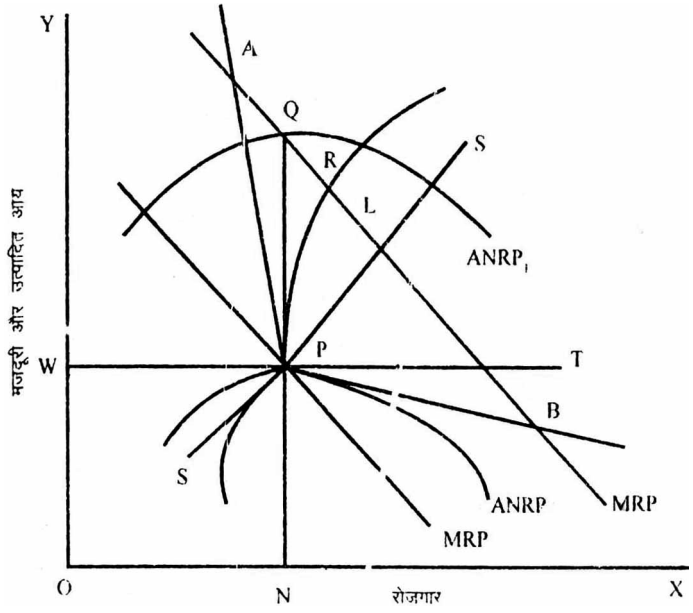

रेखा चित्र 15.14

रेखा चित्र 15.14 में MRP पद P बिन्दु वर्तमान स्थिति दिखाते है, जहाँ से सेवायोजक का लाभ तटस्थता (ANRP) तथा संघ का अधिमान वक्त UI गुजरता है। अब यदि श्रम की मांग बढ़ने से नया MRP^1 वक्र ऊपर की ओर बढ़ जाता है जब नया समझौता किन शर्तो पर होगा यह विचार हम इस मान्यता से आरम्भ कर सकते है कि जो भी नया समझौता होगा उससे दोनों पक्षों की स्थिति कम से कम उतनी अच्छी तो रहेगी ही जितनी वर्तमान सौदे के अन्तर्गत है। श्रम संध का अधिमान वक्र UI नये MRP^1 वक्र को ऊपर A बिन्दु व नीचे B बिन्दु पर काट रहा है, अत: संघ के दृष्टिकोण से नई मजदूरी दर कम से कम A अथवा B बिन्दु पर अथवा AB के बीच MRP^1 पर कहीं होनी चाहिये। फिर संघ उस ऊँची मजदूरी लेने के लिये प्रयत्नशील होगा जो उसके मजदूरी अधिमान पथ (Wage Preference Path) पर R बिन्दु से व्यक्त होती है, नया MRP^1 वक्र संघ के "मजदूरी अधिमान पथ" को R बिन्दु पर काट रहा है। अत: नई मजदूरी दर R के जितने पास होगी संघ की स्थिति उतनी ही अच्छी होगी। सेवायोजकों के दृष्टिकोण से यदि श्रम की मांग उसी लोच के साथ ऊपर बढ़ जाती है तो उतना ही लाभ जो वह P बिन्दु पर प्राप्त कर रहा है नये बिन्दु Q पर प्राप्त करेगा जहाँ उसका नया लाभ तटस्थतावक्र ($ANRP^1$) ऊपर की ओर नये MRP^1 को ठीक P के ऊपर काटता हें। अत: सेवायोजक के दृष्टिकोण से मजदूरी दर का नया समझौता या तो Q पर अथवा Q से नीचे नये MRP^1 वक्र दांयी ओर होना चाहिये। MRP^1 पर नीचे आने से सेवायोजक अधिक लाभ देने वाले ANRP पर होगा। मजदूरी दूर के नये समझौते की सीमायें (Range) निश्चित करते समय एक और बात ध्यान में रखी जानी चाहिये (श्रम की मांग वृद्धि की स्थिति में) कि मजदूरी की नई दर किसी भी स्थिति में प्रचलित मजदूरी दर से कम नहीं होगी। यहाँ प्रचलित मजदूरी दर OW है और इससे सम्बन्धित बिन्दु नये MRP^1 पर है, अत: नई मजदूरी

दर का T बिन्दु से नीचे जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। T बिन्दु पर सेवायोजक का लाभ अधिकतम होगा।

इस प्रकार R और T वे दो बिन्दु है जिनके बीच श्रम संघ व सेवायोजक के अधिमानों मे विरोध है, सेवायोजक नीचे T बिन्दु पर उतरना चाहेगा जबकि संघ का प्रयत्न ऊपर R बिन्दु पर जाने का होगा । इस प्रकार नया समझौता R और T बिन्दुओं के बीच कहीं होगा । यदि यह समझौता R से अधिक निकट होता है तो संघ अच्छी स्थिति में होगा और यदि समझौता T के निकट है तो सापेक्ष रूप से सेवायोजक की स्थिति लाभ की होगी । वास्तविक स्थिति दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदाकारी की शक्ति पर निर्भर करेगी । आर्थिक सिद्धान्त नहीं बता सकता कि R और T के बीच में वास्तविक समझौता किस बिन्दु पर होगा । अत: सिद्धान्त के दृष्टिकोण से मजदूरी R और T बिन्दुओं के बीच निर्धारणीय (Intermediate) है।

ऊपर के विश्लेषण में श्रम बाजार में सामान्य श्रम पूर्ति का प्रभाव यदि शामिल किया जाय तो श्रम पूर्ति वक्र SS नये MRP^1 को P के ऊपर L बिन्दु पर काटता है । इसका अर्थ है कि श्रम बाजार की स्थिति के अनुसार सेवायोजक L बिन्दु से व्यक्त मजदूरी रोजगार संयोग से कम किसी मजदूरी रोजगार के संयोग पर समझौता नहीं कर सकता । अत: अब समझौते के लिये दोनों सीमायें RT से कम होकर RL से कम होकर RL हो जायेंगी - इसके प्रभाव से समझौता शीघ्र व शान्तिपूर्ण हो सकेगा ।

श्रम की मांग में कमी की स्थिति तुलनात्मक रूप से अधिक सामान्य नहीं है । उद्योग में मांग की कमी तथा मन्दी की स्थिति के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है । श्रम की मांग में कमी के कारण सौदाकारी के लिये सीमायें क्या होगी इसे रेखा चित्र 15.15 से स्पष्ट किया गया है :

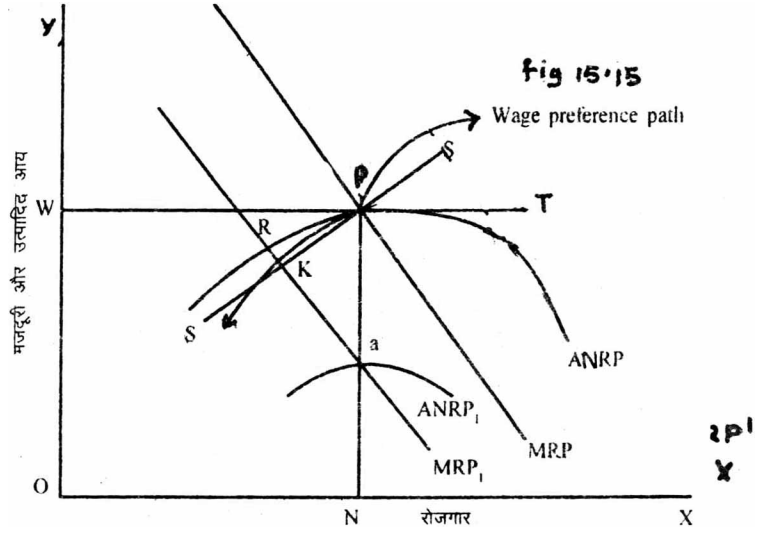

श्रम की मांग कम होने से नया MRP^1 वक्र MRP से नीचे आ जायेगा और सेवायोजक को उतना ही लाभ देने वाला नया $ANRP^1$ ठीक P के नीचे नये MRP^1 को Q पर काटेगा । Q से व्यक्त मजदूरी से अधिक मजदूरी यदि सेवायोजक को देनी पड़े अर्थात् Q से

ऊपर बांयी ओर तो उसकी स्थिति अपेक्षाकृत बुरी होगी । संघ के लिये नये MRP^1 पर प्रत्येक बिन्दु उसे नीचे के तटस्थनावक्र पर ले आयेगा, अत: हर स्थिति में उसका सन्तोष का स्तर कम होगा । संघ के लिये कम से कम बुरी स्थिति R पर होगी जहाँ उसका Wage Preference Path नये MRP^1 को काटता है । इसका अर्थ यही निकलता है कि R और Q वे सीमायें हैं जिनके बीच नया समझोता होगा । वैसे R और Q के बीच दोनों ही पक्षों की स्थिति पहले से बुरी है परन्तु श्रम की मांग में कमी के कारण जो हानि हुई है, उसे दोनों पक्षों को मिलकर बाँटना होगा ।

यदि श्रम बाजार में सामान्य रूप से श्रम की मांग कम हो गई है तो उसका कोई प्रभाव इस समझौते पर ही होगा । यदि श्रम की मांग में कमी उद्योग विशेष सें सम्बन्धित है तो श्रम बाजार की दशायें समझौते की निम्नतम सीमा को प्रभावित करेगी । चित्र में सामान्य श्रमपूर्ति वक्र SS नये MRP^1 वक्र को K बिन्दु पर काटता है,, अत: K से नीचे कोई भी मजदूरी-रोजगार संयोग समझौते की निम्न सीमा नहीं हो सकती । अब निम्न सीमा K बिन्दु पर होगी । अत: यहाँ भी सौदाकारी के लिये सीमायें (Range) RQ से घट कर RK रह गई है । वास्तविक मजदूरी इनके बीच निर्धारणीय है ।

द्विपक्षीय एकाधिकार के इन सभी न Models (मॉडल) में बुनियादी यह है कि श्रम संघ व सेवायोजकों द्वारा निर्धारित उच्चतम व निम्नतम, बिन्दुओं की दो सीमाओं के बीच आर्थिक सिद्धान्त के दृष्टिकोण से मजदूरी निर्धारणीय होती है । मजदूरी कहाँ निर्धारित होगी यह दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदाकारी शक्ति पर करता है । सेवायोजक का उद्देश्य केवल लाभ कमाना है, जबकि श्रम संघ मजदूरी में वृद्धि के साथ कुल रोजगार, कार्य की दशायें, सामाजिक सुरक्षा, कार्य के घंटे आदि सभी को उन्नत करने का उद्देश्य रखते है । सभी उद्देश्यों को सम्मिश्रित करने वाले मजदूरी निर्धारण के मॉडल और जटिल होते जायेंगे ।

बोध प्रश्न - 3

प्रश्न-1 द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति का क्या अर्थ है? सामूहिक सौदाकारी को द्विपक्षीय एकाधिकार क्यों कहा है?

प्रश्न-2 द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत उच्चतम व निम्नतम सीमा दो सीमाओं का अर्थ व महत्व बताइये ।

प्रश्न-3 श्रम संघों के वैकल्पिक उद्देश्य बताइये । द्विपक्षीय एकाधिकार में मजदूरी निर्धारण के मॉडल पर इनका क्या प्रभाव पड़ा है?

प्रश्न-4 मजदूरी रोजगार अभियान फलनों के तटस्थता वक्र क्षितिज के समानान्तर सीधी रेखा की आकृति के कब होंगे जहा इनसे श्रम संघ मजदूरी उच्चतम सीमा कैसे निर्धारित करेंगें - चित्र की सहायता से समझाइये ?

प्रश्न-5 व्यवहार मे श्रम संघ ऊँची मजदूरी के साथ रोजगार के स्तर का ध्यान भी रखतें है - क्यों ?

प्रश्न-6 फ्लैनर के वैकल्पिक दृष्टिकोण में मजदूरी-रोजगार फ्लनों के तटस्थता वक्र किसी आकृति के होंगे? यहाँ मजदूरी की उन्नत सीमा कैसे निश्चित की जाती है?

प्रश्न-7 फ्लैनर के वैकल्पिक दृष्टिकोण में मजदूरी की निम्नतम सीमा कैसे निश्चित होगी?

प्रश्न-8 प्रो. कार्टर ने फ्लैनर मॉडल में क्या सुधार किये है?

प्रश्न-9 कार्टर मॉडल में श्रम संघ मजदूरी-रोजगार अधिमान फलन, तटस्थता वक्र क्या आकृति लेंगे - कारण सहित समझाइये ।

प्रश्न-10 "मजदूरी अधिमान पथ" की अकर्ति व महत्व बताइये ।

प्रश्न-11 कार्टर के मॉडल में सेवायोजक के लिये लाभ तटस्थता वक्र किस आधार पर बनाये गये है व कैसे?

प्रश्न-12 कार्टर-मॉडल में श्रम की स्थिर मांग की स्थिति में मजदूरी निर्धारण के लिये समझौते की क्या प्रक्रिया होगी?

प्रश्न-13 श्रम की मांग वृद्धि की स्थिति में नया समझौता करने की आवश्यकता क्यों होती है? कार्टर मॉडल में यहाँ समझौते के उच्चतम व निम्नतम बिन्दु क्या होंगे - चित्र की सहायता से बताइये ।

प्रश्न-14 श्रम की मांग में कमी के कारण - कार्टर मॉडल के अनुसार-सौदाकारी की नई सीमायें क्या होंगी ?

15.5 सारांश

मजदूरी निर्धारण आर्थिक विश्लेषण की महत्वपूर्ण समस्या है, मजदूरी श्रम की कीमत के रूप में अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है जैसे समाज में आय का वितरण, उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न क्षेत्रों में आंवटन, कीमत स्तर व रोजगार की मात्रा आदि । श्रमसंघों के दृष्टिकोण से मजदूरी उनके उस श्रम का पुरस्कार है जो वे समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिये करते है अत: यह पुरस्कार उन्हें ठीक मात्रा में ठीक ढंग से उनके अधिकार के रूप में दिया जाना चाहिये । मजदूरी की यह ठीक मात्रा क्या है यह ज्ञात करने के लिये हमें श्रम बाजार की विभिन्न स्थितियों- जैसे पूर्ण व अपूर्ण प्रतियोगिता तथा द्विपक्षीय प्रतियोगिता तथा द्विपक्षीय एकाधिकार - में मजदूरी निर्धारण के सैद्धान्तिक व व्यवहारिक पहलू का अध्ययन करना होगा ।

विस्तृत अर्थ में मजदूरी श्रम की सेवा के लिये दिया गया मूल्य है अर्थात उन सभी श्रमिकों का पुरस्कार मजदूरी कहलाता है जो स्वयं नियोजित हो या दूसरे के द्वारा नियोजित हो - इस अर्थ में समाज का बड़ा भाग इस वर्ग में सम्मिलित हो जाता है, अत: मजदूरी निर्धारण की समस्या का अध्ययन और भी महत्वपूर्ण है । यही कारण है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने भी अपने समय की परिस्थिति के अनुसार मजदूरी निर्धारण की समस्या पर विचार किया । इस सम्बन्ध में एडम स्मिथ, माल्थस, रिकार्डो तथा काल-मार्क्स आदि के विचार महत्वपूर्ण रहे, उनसे मजदूरी का रहन-सहन के स्तर का सिद्धान्त विकसित हुआ । 19वीं शताब्दी के अन्त में क्लार्क, जेवन्स, वालरस व हिक्स आदि के प्रयत्नों से विकसित मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त एक क्रान्तिकारी मोड़ सिद्ध हुआ जिसने पहली बार "श्रम की मांग" का पक्ष प्रस्तुत किया । आगे चलकर मार्शल ने श्रम की मांग पक्ष के साथ पूर्ति पक्ष जोड़ कर मजदूरी निर्धारण

का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जो वास्तव में कीमत निर्धारण के मांग व पूर्ति कें सामान्य सिद्धान्त का ही एक विशिष्ट रूप है ।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे किसी प्रकार का एकाधिकारी तत्व नहीं पाया जाता । अनेक उत्पादक/फर्मे व अनेक असंगठित श्रमिक स्वतंत्र रूप से, सौदाकारी करते है । ऐसी स्थिति में मजदूरी निर्धारण के लिये पहले हम श्रम की मांग व पूर्ति का विशेष अध्ययन करना होगा चूंकि श्रम एक वस्तु नही है - मानवीय तत्व के कारण इसकी मांग व पूर्ति की अपनी जटिलतायें है ।

श्रम की मांग को निर्धारित करने वाले तत्वों में एक उन वस्तुओं की मांग की लोच है जिन्हें श्रम उत्पादित करता है (इसलिये श्रम की मांग को व्युत्पन्न मांग कहा जाता है (इसलिये श्रम की मांग को व्युत्पन्न मांग कहा जाता है) दूसरे श्रम के अन्य सहयोगी साधनों जैसे पूंजी की कीमत है जिनसे हम श्रम प्रतिस्थापना सम्भव हो। तीसरे तकनीकी तत्व है जो उत्पादन कार्य में श्रम की इकाइयों का अन्य साधनों के साथ अनुपात निश्चित करते, है । अन्त में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व श्रम की सीमान्त उत्पादकता है। दी हुई मजदूरी दर पर उतने ही श्रमिक नियुक्त किये जाते हैं जहाँ मजदूरी सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) के बराबर हो जाती है । उत्पत्ति हास नियम के प्रभाव से काम पर लगाये श्रमिकों की संख्या बढ़ाने के साथ MRP कम होती जाती है । अत: MRP वक्र ऊपर बाँये से दाहिने और नीचे गिरता है । वास्तव में यही फर्म/उत्पादक के लिये श्रम का मांग वक्र है जो श्रम की मांग व मजदूरी का विपरीत सम्बन्ध प्रदर्शित करता है । सभी फर्मों के MRP वक्रों के किनारे के योग द्वारा उद्योग के लिये श्रम का मांग वक्र निकाला जाता है, जो मजदूरी निर्धारण के लिये अधिक महत्वपूर्ण है । उद्योग मांग वक्र का ढाल MRP वक्र के समान बांये से दांये नीचे की ओर है, जिसका अर्थ है मजदूरी नीचे होने पर ही अधिक श्रमिक नियुक्त किये जाते हैं, ऊँची मजदूरी पर श्रमिकों की मांग कम होती है।

श्रम पूर्ति का अर्थ मजदूरी की विभिन्न दरों पर कार्य के लिये उपलब्ध श्रमिकों की संख्या से है । उद्योग के लिये श्रम पूर्ति वक्र बांये से दांये ऊपर ओर उठता हुआ होगा अर्थात्, ऊँची मजदूरी पर अधिक व नीची मजदूरी पर कम पूर्ति होंगी । फिर भी श्रम पूर्ति का पूर्वानुमान लगाना इतना सरल नही हैं, कारण इसे शासित करने वाले तत्व आर्थिक व गैर आर्थिक दोनों होते है । ऊँची मजदूरी पर कार्य-अवकाश का अनुपात भी श्रम पूर्ति को प्रभावित करता है जिससे श्रम पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ता हो सकता है अर्थात् एक सीमा के पश्चात् मजदूरी बढ़ने पर ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण श्रम कम घण्टे या सप्ताह/मास में कम दिन काम करना पसन्द करेंगे ।

विपरीत दिशा में जाने वाले मांग और पूर्ति वक्र जिस बिन्दु मर एक दूसरे को काटते है, मजदूरी की दर वहाँ निर्धारित होती है, जो संतुलन मजदूरी दर है, इससे भिन्न नही हो सकती है । उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी फर्म द्वारा स्वीकार कर ली जाती है, इसलिए फर्म के लिय श्रम पूर्ति इस दर पर पूर्णतया लोचदार होती है । फर्म को यह निर्णय करना होता है कि इस दर पर कितने श्रमिक रखे, इसका निर्णय MRP वक्र से किया जाता है, जहां

MRP=MW (सीमान्त मजदूरी) वही फर्म का संतुलन होता है । अल्पकाल में इस स्थित में फर्म को लाभ, हानि अथवा सामान्य लाभ प्राप्त हो सकता है, इसकी जानकारी हमें फर्म की औसत आय उत्पादकता व औसत मजदूरी (MRP=MW) की तुलना करके प्राप्त होती है । दीर्घकाल में कर्म केवल सामान्य लाभ कमा सकती हे अर्थात् ARP-AW ..... होनी चाहिये । अत: फर्म के दीर्घकालीन संतुलन का अर्थ है MRP-MW = ARP-AW

पूर्ण प्रतियोगिता की धारणा व्यवहारिक नही है । अधिकार पूर्ण नहीं बल्कि अपूर्ण प्रतियोगिता वाले श्रम बाजार पाये जाते है - अपूर्ण श्रम बाजार विभिन्न प्रकार के हो सकते है - (1) एक विक्रेता के साथ अनेक क्रेता की स्थिति में श्रम संघ के नियन्त्रण में समस्त श्रमपूर्ति होती है । अत: श्रम संघ ऊँची मजदूरी निश्चित करा सकते है, परन्तु इससे बहुधा रोजगार को मात्रा कम होने का भय रहता है । (2) श्रम का एक क्रेता और अनेक विक्रेता हो सकते हैं - इस स्थिति में रम का एक अकेला क्रेता एक बड़ी फर्म या कुछ फर्मे आपस में मिलकर क्रेता - एकाधिकारी का रूप धारण कर लेती है और काफी सीमा तक मजदूरी को प्रभावित करने की शक्ति रखती हैं । इसके विपरीत श्रमिक असंगठित होते है । और मजदूरी पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते । साथ ही श्रमिकों में अगतिशीलता पाई जाती है, ऊँची मजदूरी मिलने पर भी वे दूसरे स्थान/उद्योगों में नहीं जाते । श्रमिकों के असंगठित और अगतिशाल होने के कारण ही क्रेता-एकाधिकारी मजदूरी को प्रभावित करने की शक्ति रखता है ।

क्रेता-एकाधिकारी यदि अपनी वस्तु पूर्ण-प्रतियोगिता वाले बाजार में बेचता है तो उसका MRP और VMP वक्र एक ही होता है । पूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म से विपरीत क्रेता एकाधिकारी के लिये श्रम पूर्ति वक्र ऊपर की ओर चढ़ता होता है अर्थात अधिक श्रमिक लगाने के लिये उसे ऊँची मजदूरी देनी पड़ती है इस कारण सीमान्त मजदूरी वक्र औसत मजदूरी वक्र से अलग होकर उसके ऊपर होता है । सन्तुलन बिन्दु MRP=MW है । श्रम की मजदूरी (AW) उसकी सीमान्त आय उत्पादकता से कम होती है MRP>AW यह कम मजदूरी ही श्रम का क्रेता एकाधिकार जनित शोषण है । यदि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति यहाँ होती तो निश्चित रूप से मजदूरी की दर व रोजगार की मात्रा अधिक होती । क्रेता एकाधिक की स्थिति में यदि श्रमिक संगठित हो तब भी उनका श्रम संघ सौदाकारी द्वारा उन्हें ऊँची मजदूरी और अधिक रोजगार दिला सकता है।

क्रेता एकाधिकार यदि अपनी वस्तु एकाधिकार बाजार में बेचता है तो MRP व VMP के अलग-अलग होने से श्रम का शोषण और बढ़ जाता है । VMP का वक्र ऊपर और MRP का वक्र नीचे की ओर होता है । श्रमिक की उत्पादित वस्तु का मूल्य MP है, जबकि श्रमिक की मजदूरी MRP से भी नीचे AW के बराबर होती है, अत: यहाँ श्रमिक का दोहरा शोषण होता है ।MRP और AW का अन्तर क्रेता-एकाधिकार जनित शोषण है जबकि VMP air MRP का अन्तर एकाधिकार जनित शोषण है ।

इस शोषण से मुक्ति एकाधिकार नियंत्रण के कानून बना कर व बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशायें उत्पन्न कर सरकार ही दिला सकती है । क्रेता एकाधिकार के शोषण से

मुक्ति पाने के लिये श्रम संगठित होकर द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न कर सकते है और सामूहिक सौदाकारी से उचित मजदूरी श्रमिकों को दिला सकते है -

इसी स्थिति का अध्ययन आगे विस्तार से किया गया है ।

द्विपक्षीय एकाधिकार में एक विक्रेता व क्रेता का सामना रहा है । सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत जब एक श्रम संघ अपने सदस्यों के प्रतिनिधि की तरह एक विक्रेता के रूप में किसी बड़े सेवायोजक का सेवायोजकों के संगठन का एक क्रेता के रूप में सामना करता है तो यह स्थिति द्विपक्षीय एकाधिकार में कीमत निर्धारण की तरह अनिर्धारणीयता ज्ञाता है अधिक सिद्धांत केवल उन दो सीमाओं को उच्चतम और निम्नतम रूप कर पाता है, जिनके बीच मजदूरी का निर्धारण दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदा शक्ति पर निर्भर करता है।

आर्थिक सिद्धांत में इन दो सीमाओं को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण माना है । द्विपक्षीय एकाधिकार अथवा सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण के कई मॉडल पिछले दशकों में प्रस्तुत किये गये है, ये विभिन्न मॉडल श्रम संघों के विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्यों की मान्यताओं पर आधारित होने के कारण एक दूसरे से भिन्न है ।

आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में यह माना जाता है कि श्रम संघों का मजदूरी और रोजगार के बीच अधिमान फलन होता है जिन्हें तटस्थतावक्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है । फ्लैनर का पहला मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि रम संघ अधिकतम सम्भव मजदूरी प्राप्त करना चाहते है और इस बात की चिन्ता नहीं करते कि इसका प्रभाव रोजगार पर क्या पड़ेगा । ऐसी स्थिति में श्रम संघ के मजदूरी-रोजगार अधिमान फलन के तटस्थतावक्र क्षितिज के समानान्तर सरल रेखाओं के रूप में होगे । मजदूरी की उच्चतम सीमा उस सीधी मजदूरी रेखा से निश्चित होगी जो औसत उत्पादकता वक्र (ARP) को स्पर्श करती है । मजदूरी का निम्नतम बिन्दु इस विश्लेषण में अस्पष्ट है । मजदूरी इन दो बिन्दुओं की बीच दोनों पक्षों की सौदा शक्ति पर निर्भर करेगी ।

फ्लैनल ने अपने वैकल्पिक मॉडल में यह माना है कि वास्तव में श्रम संघ मजदूरी की दर में वृद्धि की मांग के साथ रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों च भी ध्यान रखते है बल्कि वे दोनों में सर्वोत्तम संयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करते है - ऐसी स्थिति में श्रम संघ के तटस्थतावक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नत (Convex) होंगे । मजदूरी की उच्चतम सीमा MRP के स्पर्श बिन्दु पर होगी । 'यदि कोई तटस्थतावक्र ARP को उसके उच्चतम बिन्दु को स्पर्श करता है तो मजदूरी का उच्चतम बिन्दु भी यही होगा । सेवायोजक का लाभ MRP वक्र पर नीचे आने पर है अत: MRP वक्र नीचे की ओर संघ के जिस तटस्थतावक्र को काटता है, उस बिन्दु पर सेवायोजक मजदूरी की निम्नतम सीमा निश्चित करना चाहेगा-परन्तु यह मजदूरी संघ कों "कम से कम" के रूप में स्वीकृत होनी चाहिये । इन दो बिन्दुओं के बीच वास्तविक मजदूरी दोनों पक्षों की सापेक्षिक सौदा शक्ति पर निर्भर करेगी ।

(b) प्रो. ऐ.एम. कार्टर ने अधिक सूक्ष्म, व्यावहारिक और परिष्कृत मॉडल प्रस्तुत किया है । एक ओर कार्टर ने सेवायोजक के अधिमान फलन की परिकल्पना लाभ तटस्थतावक्रों के रूप में की है दूसरी ओर कार्टर ने श्रम संघ के अधिमान फ्लन का सम्बन्ध वर्तमान में संघ को प्राप्त मजदूरी रोजगार के संयोग से करके स्थिति को अधिक व्यवहारिक बना दिया है । दूसरे

शब्दों में श्रम संघ मजदूरी और रोजगार को किस सीमा तक एक दूसरे का प्रतिस्थापन मानती है यह वर्तमान में उसे प्राप्त मजदूरी रोजगार संयोग पर निर्भर करेगा । वर्तमान स्थिति में कोई कभी संघ स्वीकार नहीं करेगा - इससे उसे अपने सदस्यों के विरोध का सामना करना पड़ेगा । मजदूरी की थोड़ी सी कमी के लिये संघ रोजगार में अत्यधिक वृद्धि की मांग करेगा । इस अधिमान के कारण संघ के तटस्थतावक्रों की आकृति कुछ पूरक वस्तु के तटस्थतावक्र के समान होगी परन्तु पूरी तरह समकोणीय नहीं । एक युक्तिसंगत प्रश्न है कि श्रम की मांग मे वृद्धि या कमी की क्या प्रतिक्रिया होगी । कार्टर के अनुसार श्रम की मांग वृद्धि से होने वाले लाभ को संघ अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी के रूप में लेने का प्रयत्न करते है । इसके विपरीत श्रम की मांग में कमी होने पर वे मजदूरी की कटौती का कड़ा प्रतिरोध करते है । इस प्रकार दोनों स्थितियों में मजदूरी रोजगार की वरीयता में स्पष्ट अन्तर है । संघ के इस व्यवहार के कारण मजदूरी अधिमान पथ (Wage Preference Path) जो श्रम मांग वक्रों व तटस्थतावक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाकर बनाया जाता है, वर्तमान में प्राप्त मजदूरी-रोजगार संयोग बिन्दु पर विकुंचित (Kinked) होता है । मजदूरी अधिमान पथ श्रम की पूर्ति वक्र का स्थान होता है । कार्टर ने सेवायोजक के अधिमान फ्लन लाभ-तटस्थतावक्रों के रुप में प्रकट किये है और इसके लिये ANRP श्रम की औसत विशुद्ध आय उत्पादकता की धारणा का प्रयोग किया है । कुल उत्पादित आय में से लाभ की विभिन्न मात्रायें घटाते हुये विभिन्न स्तर के ANRP वक्र प्राप्त कर सकते हैं । लाभ की जितनी मात्रा सेवायोजक के लिये अधिक होगी ANRP वक्र उतना ही नीचा होता जायेगा । समान लाभ के इन तटस्थतावक्रों (ANRP) को MRP वक्र उनके उच्चतम बिन्दुओं पर काटता गुजरता है - MRP महत्वपूर्ण है क्योंकि सेवायाजक अपने निर्णय इसके आधार पर ही लेता है । श्रम संघ व सेवायोजक के तटस्थतावक्रों के मानचित्रों (Preference Maps) को एक साथ लाकर मजदूरी निर्धारणा की प्रक्रिया स्पष्ट की जाती है ।

श्रम की स्थिर मांग की स्थिति में नया समझौता पुरानी शर्तों पर ही होगा ।

श्रम की मांग की वृद्धि की स्थिति में नई मजदूरी दर बड़े हुये मांग पर नये MRP पर होगी । श्रमसंघ उच्चतम मजदूरी उस बिन्दु के आधार पर मानेंगे जहाँ उनका मजदूरी अधिमान पथ नये बढ़े हुये न MRP काटता है । सेवायोजक प्रचलित मजदूरी दर को निम्नतम सीमा तय करेगा क्योंकि यही उसका निचला ANRP वक्र नये MRP को काटेगा । श्रम बाजार में श्रम पूर्ति की स्थिति इन दो सीमाओं का अन्तर (Range) और कम कर सकती हैं । श्रम की मांग में कमी की स्थिति में घटी हुई मांग का वक्र, नीचे की ओर आयेगा । इससे दोनों ही पक्ष अपेक्षाकृत बुरी स्थिति में होंगे, परन्तु मांग की कमी से होने वाली दोनों पक्ष मिलकर कर बाँट सकते है ।

15.6 शब्दावली

1. द्विपक्षीय-एकाधिकार : (Bi-Lateral Monopoly)
2. सामूहिक सौदाकारी : (Collective Bargaining)
3. प्रकृतिवादी : (Physiocrats)

4. श्रम का मूल्य सिद्धान्त	:	(Labour Theory of Value)
5. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री	:	(Classical Economics)
6. व्युत्पन्न मांग	:	(Derived Demand)
7. सीमान्त भौतिक उत्पादकता	:	(Marginal Physical Productivity or MRP)
8. सीमान्त आय उत्पादकता	:	(Marginal Physical Productivity of MRP)
9. सीमान्त उत्पादकता का मूल्य	:	(Value of Marginal Productivity or VMP)
10. कार्य-अवकाश अनुपात	:	(Work-Leisure Ratio)
11. प्रतिस्थापन प्रभाव	:	(Substitution Effect)
12. आय प्रभाव	:	(Income Effect)
13. मजदूरी प्रस्ताव वक्र	:	(Wage-Offer-Curve)
14. समर्थ-पूर्ति	:	(Effective Supply)
15. सन्तुलन दर	:	(Equilibirium Rate)
16. सीमान्त मजदूरी	:	(Marginal Wage (MW)
17. औसत मजदूरी	:	(Average Wage (AW)
18. औसत आय उत्पादकता	:	(Average Revenue Productivity or ARP)
19. एकाधिकार	:	(Monopoly)
20. क्रेता-एकाधिकार	:	(Monopsony)
21. श्रम की गतिशीलता	:	(Mobility of Labour)
22. क्रय एकाधिकार जनित शोषण	:	(Monopsonic Exploitation)
23. एकाधिकार जनित शोषण	:	(Monopolistic Exploitation)
24. अधिमान फलन	:	(Preference Function)
25. तटस्थता वक्र	:	(Indifference Curve)
26. मजदूरी अधिमान पथ	:	(Wage Preference Path)
27. औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता	:	(Average Net Revenue Productivity (ANRP)
28. कुल आगम उत्पादकता	:	(Total Revenue Productivity (TRP)
29. लाभ तटस्थता वक्र	:	(Profit Indifference Curve)
30. निर्धारणीय	:	(Indeterminate)

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. एच.एल आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त
2. टी.एन.भगोलीवाल : मजदूरी नीति और सामाजिक सुरक्षा
3. माइक्रो अर्थशास्त्र : एम.एल. सेठ
4. लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र
5. सुन्दर लाल यादव : मजदूरी नीति और सुरक्षा
6. H.L.Ahuja - Advanced Economic Theory
7. J.M.Joshi - Theory of Value Distribution and Welfare Economics
8. M.L. Jhingan - Micro Economic Theory
9. William Fellner - Competition Among the Few.
10. A.M. Cartter - Theory of Wages and Employment.

15.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 मजदूरी को परिभाषित कीजिये । मजदूरी किस प्रकार निर्धारित की जाती है ।

प्रश्न-2 श्रम की मांग की पूर्ति की विचित्रताओं की व्याख्या कीजिये तथा मजदूरी निर्धारण पर इनके प्रभाव बताइये ।

प्रश्न-3 ''पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी श्रम का सीमान्त एवं औसत आगम उत्पादकता के बराबर होती है'' कथन को रेखाचित्रों सहित समझाइये ।

प्रश्न-4 पीछे की ओर मुड़ने वाले श्रम के पूर्ति वक्र पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

प्रश्न-5 अपूर्ण प्रतियोगिता के आधीन मजदूरी कैसे निर्धारित होती है? क्या सामूहिक सौदेबाजी मजदूरी को प्रभावित कर सकती है?

प्रश्न-6 पूर्ण व अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया की तुलनात्मक समीक्षा कीजिये ।

प्रश्न-7 क्रय-एकाधिकार-जनित शोषण को परिभाषित कीजिये । उन परिस्थितियों की व्याख्या कीजिये । जिनके कारण यह उत्पन्न होता है ।

प्रश्न-8 द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति से मजदूरी की दर व रोजगार की मात्रा कैसे निश्चित होती है - पूर्णतया समझाइये ।

प्रश्न-9 द्विपक्षीय एकाधिकार अथवा सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत मजदूरी की उच्चतम व निम्नतम सीमाओं का क्या महत्व है? इस सम्बन्ध में विलियम फ्लैनर के दृष्टिकोण की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

प्रश्न-10 सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की समस्या के हल के लिये प्रो. ए. एम. कार्टर द्वारा प्रस्तुत मॉडल की पूर्ण व्याख्या कीजिये।

इकाई- 16
संस्थागत व सौदाकारी सिद्धान्त

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 मजदूरी के सौदाकारी सिद्धान्त व संस्थागत सिद्धान्त
16.2.1 मजदूरी की ऊपरी सीमा
16.2.2 मजदूरी की निम्नलिखित सीमा
16.3 सौदाकारी सिद्धान्त के बारे में जे.आर हिक्स का मत
16.4 सौदाकारी सिद्धान्त के बारे में शकल के विचार
16.5 सौदाकारी के बारे में पेन के विचार एवं उसका माडल
16.5.1 श्रमिकों की सौदाकारी अभिवृति
16.5.2 नियोक्ता की सौदाकारी-अभिवृति
16.5.3 पेन के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त का मूल्यांकण
16.6 सौदाकारी सिद्धान्त की आलोचनाएं
16.7 सौदाकारी को सफलता की शर्तें
16.8 सारांश
16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.10 अभ्यासों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

आर्थिक प्रगति के लिए औद्योगिक शान्ति अथवा सौहार्द आवश्यक होता है और औद्योगिक सौहार्द का विचार सेवायोजकों और श्रमिकों के मध्य समझदारी, सहयोग एवं साझेदारी की भावना की विद्यमानता पर आश्रित रहता है। इन दोनों वर्गो के हितों में विरोध होता है, किन्तु इनमें सहयोग के लिए व्यापक क्षेत्र होता है। सहयोग की भावना इस धारणा पर आधारित होती है कि सेवायोजक तथा श्रमिक दोनों यह अनुभव करते है कि, यद्यपि दोनों ही अपने अपने अधिकारों एवं हितों को सुरक्षित रखने में पूर्णत न्याय संगत है, उन्हें समाज के हितों को भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। अनावश्यक हड़तालें तथा तालाबन्दियां समाज के हितों के विरोध में होती है। श्रम सन्नियमों में कुछ भी, निर्धारित क्यों न किया जाए, महत्वपूर्ण बात सेवायोजकों एवं श्रमिक संघ नेताओं का दृष्टिकोण है तथा जब तक ये दोनों ही प्रबुद्ध नहीं होते, औद्योगिक सौसर्द अथवा शान्ति संभव नहीं होती। अत: औद्योगिक सौहार्द कौ बढ़ाने में सामूहिक सौदाकारी का महत्व बहुत अधिक है। औद्योगिक शान्ति को अधिक अच्छी तरह तब रखा जा सकता है जब सौदा करने वाले पक्ष सबल हों और उनमें नियोजित सामूहिक सौदाकारी की अभ्यस्त का विकास हो।

16.1प्रस्तावना

सामूहिक सौदाकारी जो आर्थिक जनतन्त्रीय का एक अति आवश्यक तत्व है, किसी पारस्परिक निश्चय द्वारा होने वाले समाधान को प्राप्त करने के लिए एक द्विपक्षीय विधि है इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी शब्द का प्रयोग उस क्रिया विधि (Procedure) का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनके द्वारा सेवा योजकों को मजदूरी की दरों और श्रमिकों की बुनियादी दशाओं के सम्बन्ध में व्यक्तिगत श्रमिक की बजाय श्रमिक संघों के साथ ही आवश्यक रुप से ठहराव (एग्रीमेन्ट) करना चाहिए । अन्य शब्दों में यह किसी सेवायोजक एवं किसी श्रमिक संघ के मध्य विचार विमर्श और वार्ता की वह विधि है जो अन्त में एक लिखित ठहराव या अनुबन्ध तथा ठहराव के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समायोजन के रुप में पूरी हो जाती है । जैसा कि लुई ई० हावर्ड ने लिखा है, सामूहिक सौदाकारी का अर्थ है एक साथ मिलना (मिलने जुलने का अधिकार), एक सामान्य संगठन में शामिल होना (सहयोग Association का अधिकार), यह निर्धारित करना कि कार्य की जो भी दशायें नियत की जाती है वे सभी श्रमिकों के लिए समान रहेंगी और इसकी पूर्ति के लिए सेवायोजकों के साथ सौदा करना संगठन (Combination) बनाने और सौदा करने (Bargaining) का अधिकार और अन्त में, यदि सेवायोजक ऐसे सौदे पर ठहराव करने या ठहराव होने के बाद उस पर अमल करने के लिए सहमत न हो तो संयुक्त रूप से काम पर जाने से मना करके या काम जारी रखने के लिए मना करके उसका सामना करना (हड़ताल करने का अधिकार) । इस प्रकार किसी भी सौदाकारी प्रक्रिया में आर्थिक दबाव या धमकी निहित हो सकती है । रिचर्डसन के शब्दों में सामूहिक सौदाकारी तक उतम होती है जब अनेक कामगार (Work People) एक सौदाकारी ईकाई के रूप में सेवायोजक या सेवायोजक वर्ग के साथ वार्ता चलाते है जिससे कि "सम्बद्ध कामगारों की रोजगार सम्बन्धी दशाओं के बारे में कोई ठहराव हो सकें । संक्षेप में सामूहिक सौदेबाजी मजदूरों और सेवायोजकों के संगठित दलों द्वारा कार्य की समूर्ण शर्तों के सम्बन्ध में सौदा करने की क्रिया का नाम है । श्रमिकों और सेवायोजकों की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति करने की एक तकनीक के रूप में सामूहिक सौदाकारी औद्योगिक समाज का एक अभिन्न अंग है । यह वास्तव में जनतन्त्रीय के सिद्धान्तों और व्यवहार को विस्तार मात्र है । यह एक गतिशील प्रक्रिया है और निरन्तर बढ़ रही है ।

16.2 मजदूरी के सौदाकारी व संस्थागत सिद्धान्त

मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन अर्थशास्त्री वेन्सन ने किया था । यह सिद्धान्त श्रम संघों का आधारभूत सिद्धान्त माना जाता है । मजदूरी निर्धारण के सभी अन्य सिद्धांतों में यह मान्यता है कि मजदूरी निर्धारण मे श्रम संघ कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते, क्योंकि मजदूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है । सौदाकारी सिद्धान्त के अनुसार वास्तविक मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों व नियोक्ताओं की सौदाकारी शक्तियों द्वारा होता है ।

आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मजदूरी का निर्धारण तीन विधियों से होता है- व्यक्तिगत सौदाकारी, सामूहिक सौदाकारी तथा सरकार द्वारा मजदूरी का कानूनी नियमन । व्यक्तिगत

सौदाकारी के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक अपने नियोक्ता से व्यक्तिगत रूप से मजदूरी का सौदा करता है । व्यक्तिगत सौदाकारी में श्रमिक के शोषण होने की गुंजाइश रहती है । सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत श्रमिकों व नियोक्ता के बीच मजदूरी के निर्धारण के लिए सामूहिक रूप से सौदेबाजी होती है । जो पक्ष जितना अधिक सुसंगठित, सुदृढ़ एवं सौदा करने में दक्ष होता है उसे अपने कार्य में उतनी ही अधिक सफलता मिलती है तथा जो पक्ष दुर्बल तथा कम दक्ष होता है उसे अपने कार्य में कम सफलता मिलती है । विकासशील देशों में श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति कमजोर होती है अत: वहां श्रमिकों का शोषण होता है क्योंकि श्रमिकों को मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मिलती है ।

जब कभी श्रमिक एवं नियोक्ता सामूहिक सौदाकारी द्वारा मजदूरी निर्धारण में असफल रहते है तो सरकार मजदूरी का नियमन कर देती है । सरकार कानून द्वारा मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित कर देती है । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतियोगिता ले लेकर चलते थे उनके अनुसार श्रमिकों को मजदूरी अपनी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलती है । इसलिए वे मजदूरी निर्धारण में श्रम संघों के हस्तक्षेप की आवश्यकता को नहीं मानते थे । इसके विपरीत सामूहिक सौदाकारी सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी निर्धारण में श्रम संघों का हस्तक्षेप बहुत आवश्यक है । क्योंकि वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा की दशा देखने को मिलती है तथा श्रमिकों को मजदूरी उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर नहीं मिलती है ।

मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त के दोनों पक्ष-श्रमिक व नियोक्ता मिलकर ही मजदूरी का निर्धारण करते है । "दोनों पक्षों का अपना अपना अस्तित्व होता है। सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त में मजदूरी दरों की दो सीमाएं होती है-

(i) मजदूरी दर की ऊपरी सीमा (Upper Limit)

(ii) मजदूरी दर की निम्नता सीमा (Lower Limit)

मजदूरी दर का निर्धारण इन्हीं दोनों सीमाओं के बीच होता है ।

16.2.1 मजदूरी की ऊपरी सीमा

मजदूरी की ऊपरी सीमा से तात्पर्य उस अधिकतम मजदूरी से है जो नियोक्ता प्रदान कर सकते है । यह सीमा निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

(i) **व्यवसाय की लाभदायकता -** यदि व्यवसाय लाभ में चल रहा है तो नियोक्ता अधिक मजदूरी दे सकते है तथा घाटे की स्थिति में है तो सामान्यत: नियोक्ता कम मजदूरी देंगे ।

(ii)**श्रम के स्थान पर मशीन के प्रतिस्थापन की संभावना -** यदि श्रम के स्थान पर मशीनों के प्रतिस्थापन की अधिक संभावना है तो नियोक्ता कम मजदूरी देंगे अन्यथा नियोक्ता अधिक मजदूरी देंगे ।

(iii) **श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं को मांग की लोच -** श्रमिक जिस वस्तु के उत्पादन में लगे हुए है उस वस्तु की मांग अधिक लोचदार है तो नियोक्ता श्रमिकों को कम मजदूरी देंगे और यदि उस वस्तु की मांग बेलोचदार है तो नियोक्ता श्रमिकों को अधिक मजदूरी देंगे ।

16.2.2 मजदूरी की निम्नतम सीमा

मजदूरी की निम्नतम सीमा से तात्पर्य उस निम्नतम मजदूरी से है जिस पर श्रमिक काम करना स्वीकार कर लेते है । निम्नतम मजदूरी सीमा का निर्धारण निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है-

(i) श्रमिक का जीवन स्तर - यदि श्रमिकों का जीवन स्तर नीचा है तो वे कम मजदूरी पर भी काम करना स्वीकार कर लेंगे और यदि श्रमिकों का जीवन स्तर ऊंचा है तो वे ऊंची मजदूरी की मांग करेंगे ।

(ii)जीवन निर्वाह लागत - यदि श्रमिकों की जीवन निर्वाह लागत कम आती है तो वे नीची मजदूरी लेना स्वीकार कर लेंगे यदि जीवन निर्वाह लागत ऊंची है तो वे ऊंची मजदूरी की मांग करेंगे ।

(iii) श्रम की गतिशीलता - यदि श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव है तो वे नीची मजदूरी पर काम करना स्वीकार कर लेंगे ।

(iv) श्रमिकों की आर्थिक दशा यदि श्रमिक आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर है तो वे कम मजदूरी पर काम करना स्वीकार कर लेंगे ।

(v)श्रम संघों की स्थिति - यदि श्रम संघों का संगठन शक्तिशाली है तो वे श्रमिक ऊँची मजदूरी की मांग करेंगे अन्यथा नीची मजदूरी पर काम करने को तैयार हौ जायेंगे ।

मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण इन दोनों सीमाओं निम्नतम व उच्चतम के बीच संलाग बिन्दु (स्टिकिंग पॉइन्ट) पर होता है । संलग्ण या स्टिकिंग पॉइन्ट वह बिन्दु होता है जहां पर मजदूरी का निर्धारण होता है । श्रमिक इस बिन्दु से नीचे मजदूरी लेना स्वीकार नहीं करते तथा नियोक्ता इस बिन्दु से अधिक मजदूरी देना नहीं चाहते ।

बोध प्रश्न- 1

अपना उत्तर लिखने के लिए छोडी गयी खाली जगह का प्रयोग करें

1. आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मजदूरी का निर्धारण किन विधियों से होता है
2. निम्नतम मजदूरी सीमा का निर्धारण किन बातों पर निर्भर करता है
3. मजदूरी के सौदागारी शक्ति सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण किस बिन्दु पर होता है?

16.3 सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त के बारे में जे.आर हिक्स का मत

अपनी पुस्तक 'The Theory of wages' में जे. आर. किक्स ने औद्योगिक विवादों के सिद्धान्त शीर्षक के अन्तर्गत मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त को बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है । जब श्रम संघ मजदूरी वृद्धि को मांग करते है अथवा मजदूरी कटोति का विरोध करते है तो नियोक्ता के सामने एक ही विकल्प रह जाता है कि या तो वे श्रम संघों की ऊंची मजदूरी की मांग को स्वीकार कर ले अथवा हड़ताल से कार्य दिनों की क्षति (अथवा उत्पादन क्षति) से होने वाली प्रत्यक्ष क्षति को वहन करने को तैयार रहें । यदि श्रमिक संगठित न हो तो हो सकता है कि नियोक्ता को कम हानि उठानी पड़े । यदि नियोक्ता श्रमिकों को

रियायत देने की अपेक्षा उनका विरोध करना सस्ता समझते हैं तो नियोक्ता विरोध करेंगे । यदि नियोक्ताओं को श्रमिकों का विरोध करने की अपेक्षा मजदूरी सम्बन्धी रियायत देना सस्ता जान पड़ता है तो वे श्रम संघ के दावे अर्थात ऊँची मजदूरी की मांग को स्वीकार कर लेंगे । यदि नियोक्ता के विरोध करने से श्रमिक काम पर आना बन्द (हड़ताल) कर देते है, जिससे कार्य दिनों (अथवा उत्पादन) की क्षति होती है । नियोक्ता ऊँची मजदूरी देने से होने वाली हानि की तुलना उत्पादन, न होने (हड़ताल होने) की हानि से करते है । दोनों स्थितियों में जो कम हानिकारक होती है नियोक्ता उसी को स्वीकार कर लेते हैं ।

नियोक्ता श्रम संघ की गतिविधियों की सम्भावनाओं (एकस्पेक्टेशन्स) एवं सीमाओं की जानकारी प्राप्त करके इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि किस विकल्प को स्वीकार करें । अन्य बातों के समान रहने पर हम केवल दो बातों पर ध्यान केन्द्रित करते है- मांग सारणी (डिमाण्ड शेडयूल) व हड़ताल की अवधि की सारणी । नियोक्ता मांग सारणी (एम्पलायर डिमाण्ड सेडयूल) व हड़ताल की अवधि की, सारणी बनाते है ।

नियोक्ता हड़ताल के कारण कार्यक्षति की लागत तथा श्रमिकों को सम्भावित रियायत (बढ़ी हुई मजदूरी) देने की लागत की तुलना करते है । यह देखा जाता है कि नियोक्ता कार्यक्षति की अपेक्षा उच्चतम मजदूरी देने को तैयार हो जाते है । नियोक्ता द्वारा दी जाने वाली उच्चतम मजदूरी पर कार्यक्षति की लागत व सम्भावित रियायत की लागत दोनों बराबर होती है । नियोक्ता इस उच्चतम मजदूरी से नीची किसी भी मजदूरी देर को देना स्वीकार कर लेंगे । किन्तु इस उच्चतम मजदूरी से ऊँची मजदूरी देने की अपेक्षा नियोक्ता कार्यक्षति को ही स्वीकार करेंगे । यह उच्चतम मजदूरी दर नियोक्ताओं के लिए मजदूरी की उच्चतम सीमा होती है । जैसा कि संख्या चित्र 16.1 में बताया गया है ।

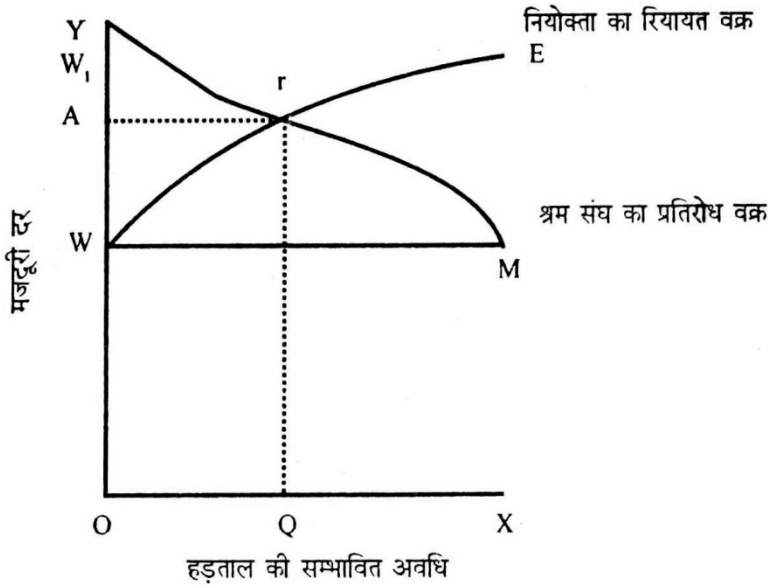

चित्र 16.1

रेखा चित्र 16.1 में क्षैतिजीय अक्ष पर हड़ताल की सम्भावित अवधि उदग्र अक्ष पर मजदूरी दर को मापा गया है। OW वह मजदूरी है जो श्रमिक असन्तोष से पूर्व दी जा रही है।

चित्र में WE नियोक्ता का रियायती वक्र तथा W_1E वक्र श्रम संघ का प्रतिरोध वक्र है। श्रम संघ OW मजदूरी दर से अधिक दर की मांग करते है नियोक्ता श्रम संघों द्वारा मांगी गई मजदूरी दर देना नहीं. है। श्रम संघ इसके विरोध में हड़ताल का आहवान करते है। हडताल को कई दिन हो जाते है जिससे दोनों पक्षों को हानि होती है। श्रमिकों को मजदूरी नहीं मिलती तथा नियोक्ताओं को उत्पादन की हानि होती है। परिणामस्वरूप नियोक्ता मजदूरों को रियायत (बढ़ा हुआ वेतन) देना स्वीकार कर लेते है। जैसे जैसे हड़ताल की अवधि बढ़ती है वैसे-वैसे ही नियोक्ता मजदूरी बढ़ाने का सोचते हैं जिसका नियोक्ता के रियायत वक्र W_1 M द्वारा प्रदर्शित किया गया है रियायत वक्र का ढाल घनात्मक है । दूसरी और श्रम संघ भी लम्बी हड़ताल से परेशान हो जाते है । हड़ताल से परेशान होकर नियोक्ता के प्रति अपना प्रतिरोध कम कर देते है, अब श्रमसंघ उस मजदूरी दर से कम मजदूरी लेना स्वीकार कर लेते है जो प्रारम्भ में मांग कर रहे थे । जैसे जैसे हड़ताल की अवधि बढ़ती जाती है श्रम संघों का प्रतिरोध कम होता जाता है । श्रम संघों के प्रतिरोध को W_1 M द्वारा प्रदर्शित किया गया है यह वक्र ऋणात्मक होता है जो इस बात को बताता है कि श्रमिक धीरे धीरे ऊँची मजदूरी की हठ छोड़कर कम मजदूरी पर काम करना स्वीकार कर लेते हैं।

चित्र रेखा 16.1 में नियोक्ता का रियायत वक्र तथा श्रमसंघ का प्रतिरोध वक्र एक दूसरे को P बिन्दु पर काटते है । इसी P बिन्दु पर मजदूरी दर OA का निर्धारण हो जाता है । नियोक्ता OW मजदूरी दर देने तथा श्रमिक OW_1 मजदूरी दर लेने की हठ त्याग देते है । P बिन्दु पर दोनों पक्ष सन्तुष्ट है । OA मजदूरी अधिकतम मजदूरी है । नियोक्ता OA मजदूरी से अधिक मजदूरी देने की अपेक्षा उत्पादन बन्द कर देना अधिक अच्छा समझेंगे । हिक्स शब्दों में "नियोक्ता का रियायत वक्र और श्रमसंघ का प्रतिरोध वक्र दोनों एक दूसरे को P बिन्दु पर काटेंगे, इस बिन्दु से सम्बन्धित OA मजदूरी अधिकतम मजदूरी है जो श्रमिक नियोक्ता से वार्तालाप प्राप्त कर सके है ।"

प्रो० पेन व शेकल ने हिक्स के मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त की आलोचना की है । प्रो० पेन का कहना है कि इससे नियोक्ता तथा श्रमिक संघ को यह पूर्व से मालूम है कि हड़ताल की अवधि OQ होगी तब सौदाकारी की समस्या ही नही रह जाती है । यदि हड़ताल की अवधि OQ_1 या OQ_2 रहती है तब सन्तुलन कैसे होगा ।

प्रो० शेकल का मानना है कि इस सिद्धान्त में हिक्स ने कोई नई बात नहीं कही है तथा मार्शल के कैंची के दो फलनों वाली बात को ही दोहराया है । जब एक वक्र ऋणात्मक तथा द्वारा घनात्मक होगा तो यह स्वाभाविक है कि दोनों वक्र कहीं न कहीं एक दूसरे को अवश्य काटेंगे ।

16.4 मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त के बारे मे प्रो. शेकल के विचार : -

शेकल के अनुसार श्रम संघ ऊँची मजदूरी की मांग करते है तथा नियोक्ता उन्हें स्वीकार नहीं करते है । श्रम संघ हड़ताल पर चले जाते है इससे दोनों पक्षों को नुकसान होता है ।

श्रमिकों को हड़ताल अवधि का वेतन नहीं मिलता जिससे उनका असन्तोष बढ़ता है तथा दूसरी और नियोक्ता को हड़ताल के दिनों में उत्पादन व लाभ की हानि होती है । इसलिए नियोक्ता हडताल को समत्व करने के लिए मजदूरी दर को बढाना स्वीकार कर लेते है । मजदूरी वृद्धि से श्रमिकों की सन्तुष्टि बढ़ती है । इस प्रकार जिस बिन्दु पर सन्तुष्टि व असन्तुष्टि (असन्तोष) बराबर हो जाते है वहीं साध्य की स्थिति आ जाती है तथा उसी बिन्दु पर मजदूरी दर का निर्धारण भी हो जाता है । शेकल ने अपने विचारों को रेखा चित्र 17.2 द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है ।

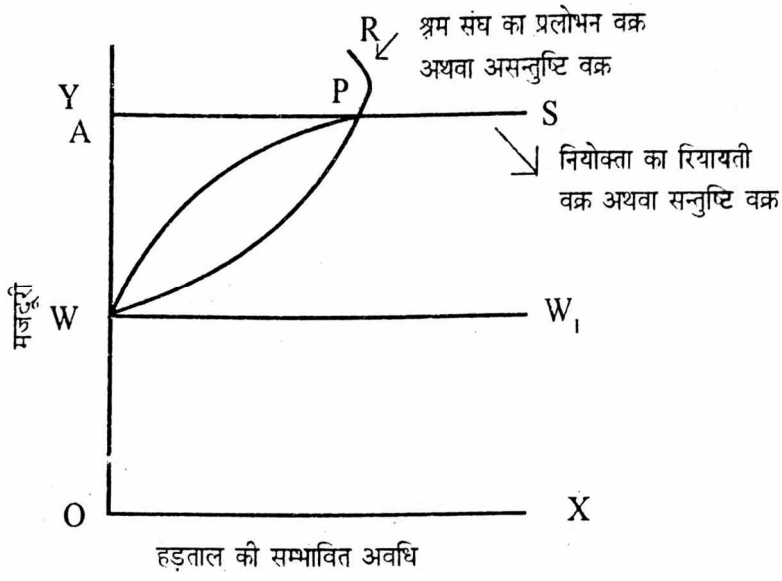

रेखा चित्र 16.2

रेखा चित्र 16.2 में प्रारम्भ में श्रमिकों को OW मजदूरी मिल रही होती है । अब श्रमिक या श्रमसंघ ऊँची मजदूरी की मांग करते है । नियोक्ता ऊँची मजदूरी देना नहीं चाहते जिससे श्रमिक संघ हड़ताल पर चले जाते है । हड़ताल के लम्बी अवधि तक चलने से श्रमिकों में असन्तोष बढ़ती जाता है क्योंकि उन्हें हड़ताल अवधि की । मजदूरी नहीं मिलती है । श्रमिकों के इस असन्तोष को श्रम संघ के प्रलोभन वक्र या अभिप्रेरणा अथवा असंतुष्टी वक्र WR द्वारा दिखाया गया है । असन्तुष्टि वक्र का ढाल-धनात्मक है जिसका अर्थ है कि हड़ताल की अवधि के साथ असन्तोष बढ़ता जाता है । दूसरी और हड़ताल के कारण नियोक्ताओं को लाभ का नुकसान होता है । जैसे-जैसे हड़ताल ही अवधि लम्बी खिंचती जाती है नियोक्ता थोड़ी मजदूरी बढ़ाना स्वीकार कर लेते है जिससे श्रमिकों की सन्तुष्टि बढ़ती है इसे नियोक्ता की रियायत वक्र WS द्वारा दिखाया गया है । रियायत वक्र धीरे धीरे ऊपर की और उठता हुआ है अर्थात इसका ढाल घनात्मक है जिसका तात्पर्य है कि जैसे जैसे नियोक्ता रियायत बढ़ाते है वैसे वैसे ही श्रमिकों, की सन्तुष्टि भी बढ़ती जाती है ।

जैसे हड़ताल की अवधि बढ़ती है वैसे ही दोनों पक्ष समझौता करो का मानस बनाने लगते है उपरोक्त चित्र 16.2 में P बिन्दु पर सन्तुष्टि और असन्तुष्टि बराबर है । इसलिए यहां

मजदूरी का निर्धारण हो जाता है OQ अवधि तक हड़ताल चलने के बाद OA मजदूरी दर निर्धारित होती है । अत : मजदूरी दर बराबर -

$$= \frac{\text{ऊंची मजदूरी की सीमान्त उपयोगिता अर्थात् सन्तुष्टि}}{\text{लम्बी हड़ताल की सीमान्त अनुपयोगिता अर्थात असन्तुष्टि}}$$

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शेकल के विचार अधिक तर्कयुक्त व वैज्ञानिक है । हिक्स के अनुसार जो अधिक शक्तिशाली होता है वह वार्तालाभ के अपनी बात को अधिक मनवा सकता है । किन्तु शैकल के अनुसार दोनों पक्षों के बीच शक्तिशाली संघर्ष होता है । संघर्ष में दोनों पक्षों की हानि वहन करनी पड़ती है अत: दोनों पक्ष एक दूसरे पर हावी न होकर अपने अपने हानि लाभ को देखकर समझौता करने की स्थिति में आते है और समझौता करने को तैयार हो जाते हैं ।

16.5 प्रो. पेन का सौदाकारी निर्धारण माडल

प्रो. पेन ने सौदाकारी सिद्धान्त को खेल का सिद्धान्त (Game Theory) कहा है । सौदाकारी करते समय दोनों ।पक्ष-नियोक्ता व श्रम संघ खिलाड़ियों की तरह व्यवहार करते है । कभी कभी मजदूरी निर्धारण को लेकर नियोक्ताओं व श्रमिकों के बीच विवाद उत्पन्न हो जाते है । श्रमिक जिस ऊँची मजदूरी की मांग करते है वह मजदूरी की अधिकतम दर होती है । नियोक्ता श्रमिकों को जो दर देना चाहते है वह मजदूरी की अधिकतम दर होती है । दोनों पक्षों में से कौन-सा पक्ष अपनी बात को अधिक मनवाने में सफल होता है यह दोनों पक्षों की सौदाकारी शक्ति पर निर्भर करता है । यदि श्रमिकों व नियोक्ता के मध्य पूर्ण सौदाकारी करने की दशाएं मोजूद है तो विवाद बिना कार्य दिवसों अथवा उत्पादन की हानि हु ये सुलझ जता है । यदि पूर्ण सौदाकारी करने की दशाएं मोजूद नहीं है तो श्रमिक संघ हड़ताल करते है तथा नियोक्ता को सौदाकारी के लिए तैयार करते हें । हड़ताल से उत्पादन व लाभ की हानि होती है इसलिए नियोक्ता सौदाकारी के लिए तैयार हो जाते है । पेन के अनुसार सौदाकसि श्रमिकों व नियोक्ता सौदाकारी अभिवृत्ति पर निर्भर करती है ।

16.5.1 श्रमिकों की सौदाकारी अभिवृत्ति :-

श्रमिकों की सौदाकारी अभिवृत्ति का निर्धारण नियोक्ता के साथ असन्तुष्ट होने की लागत तथा नियोक्ता के साथ सन्तुष्ट. होने की लागत द्वारा होता है ।

श्रमिकों की सौदाकारी अभिकृति - $\frac{\text{नियोक्ता के साथ असन्तुष्ट होने की लागत}}{\text{नियोक्ता के सहा संतुष्ट होने की लागत}}$

Workers Bargaining aptif.

श्रमिकों के असन्तुष्ट होने की लागत हड़ताल के दिनों. में उनकी मजदूरी की हानि तथा अन्य कठिनाइयों के बराबर होती है तथा श्रमिकों के सन्तुष्ट होने की लागत हड़ताल से पूर्व मिल रही मजदूरी तथा हड़ताल के पश्चात स्वीकृत करायी गयी मजदूरी के अन्तर के बराबर होती है ।

यदि उपर्युक्त सूत्र द्वारा प्राप्त श्रमिकों की सौदाकारी अभिवृत्ति का मूल्य एक से अधिक (WBA>1) आता है तो श्रमिक समझाना करनें के पक्ष में होंगे । यदि यह मूल्य एक

के बराबर (WBA=1) आता है तो श्रमिक आसानी से समझौता कर लेंगे । लेकिन यह मूल्य एक से कम (WBA>1) आता हैं तो श्रमिक समझौता करने के पक्ष में नहीं होगें ।

16.5.2 नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृत्ति (Employers Bargainings Attitude)

नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृत्ति का निर्धारण श्रमिकों के साथ असन्तुष्ट होने की लागत तथा श्रमिकों के साथ सन्तुष्ट होने न लागत द्वारा होता है ।

$$\text{नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृत्ति} = \frac{\text{श्रमिकों के साथ असन्तुष्ट होने की लागत}}{\text{श्रमिकों के साथ संतुष्ट होने की लागत}}$$

नियोक्ता की असन्तुष्ट की लागत हड़ताल की अवधि में उत्पादन न होने से लाभ का जौ नुकसान होता है उसके बराबर होती है । नियोक्ता की सन्तुष्टि की लागत श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी तथा हड़ताल के पश्चात सौदाकारी द्वारा निश्चित की गई ऊँची मजदूरी के अन्तर के बराबर होता है ।

उपर्युक्त सूत्र द्वारा निकाला गया नियोक्ता की सौदाकारी (EBA) का मूल्य एक सें अधिक (EBA>1) है तो नियोक्ता समझौते के पक्ष मे होता है। यदि यह मूल्य एक के बराबर (EBA=1) तो वह आसानी से समझोता कर लेगा। यदि यह मूल्य ईकाई से कम (EAB<1) है तो नियोक्ता समझौता करने पक्ष में नहीं होगा।

सौदाकारी शक्ति एवं सौदा करने की कुशलता पेन के अनुसार पक्ष के लड़ने की प्रवृत्ति (प्रेपिनसिटी टू फाइट) की माप उस पक्ष की सौदाकारी अभिवृत्ति से की जा सकती है। जौ पक्ष लड़ने की क्षमता अधिक रखता है अथवा जिसका सौदा करने की अभिवृत्ति अधिक है, समझौता उसी के पक्ष में होता है सौदाकारी शक्ति, समझौते कों रोक रखने की प्रवृत्ति व विरोधी के लड़ने कीं प्रवृत्ति को कम करने का फलन है। किसी पक्ष की सौदाकारी शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह पक्ष अपने विरोधी की लड़ने की प्रवृत्ति को कितना कम कर सकता है तथा समझौता होने को कितने समय के लिए रोक सकता है।

पेन ने सौदाकारी कुशलता को पाकर अथवा ताश के खेल को समान माना है। योकर के खेल का खिलाड़ी अपने विचारों को छुपा लेता है किन्तु विरोधी खिलाड़ी के विचारों को जान लेता है। इसी प्रकार सौदाकारी में भी दोनों पक्ष नियोक्ता व श्रम संघ अपने अपने विचारों को तो छिपाना चाहते है तथा विरोधी के भावों को जानने का प्रयत्न करते है, ताकि विरोधी पक्ष पर विजय प्राप्त की जा सके। दोनों पक्ष यह भी जानने का प्रयत्न करते है कि विरोधी पक्ष की सौदाकारी अभिवृति। का समझौते पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसी कारण से पेन ने सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त को खेल का सिद्धान्त (Game Theory) कहा है।

पेन के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त का मॉडल

पेन के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त निम्न मान्यताओं आधारित है-

(i) संतुष्टि/ अन्तुष्टि की लागत को द्रव्य में मापा जा है।

(ii) प्रत्येक पक्ष इस रूप मैं काम करता है ताकि वह अधिकृत संतुष्टि प्राप्त कर सके।

(iii) एक पक्ष की सन्तुष्टि संतुष्टि बढ़ने दूसरे पक्ष की असन्तुष्ट थोपा नहीं जा सकता, अर्थात् एक पक्ष की सन्तुष्टि बढ़ने से दूसरे पक्ष को कोई नुक़सान नहीं होता है ।

(iv) मोद्रिक लाभ के स्थान पर सन्तुष्टि का प्रतिस्थापन किया जा सकता है।

पैन का सौदाकारी मॉडल निम्न प्रकार है यह माडल समझौते लिए सौदाकारी के दोनों पक्षों को सन्तुष्ट करता है।-

$$\phi s\left[\frac{s(PS)-S(PS)}{B(PS)-S}\right]-ES\left[B(P)-BC\right]=0.....(i)$$

$$\phi s\left[\frac{s(Pd)-B(P)}{B(Pd)-BC}\right]-Ed\left[S(P)-SC\right]=0.....(ii)$$

माडल में पेन ने निम्न संकेतों का उपयोग किया है:

S= श्रमिकों का सन्तोष सन्तोष

B= नियोक्ता का सन्तोष

θ= जोखिम मूल्यांकन फलन

E= प्रत्येक पक्ष के लिए संघर्ष की जोखिम का अनुमान

P= विचाराधीन कीमत अर्थात् मजदूरी

Ps= वह कीमत (मजदूरी) जिसके लिए श्रमिक संघर्ष कर रहे है

Pb= वह कीमत (मजदूरी) जिसके न देने के लिए नियोक्ता संघर्ष कर रहे है।

C= संघर्ष अथवा विवाद के दौरान सन्तुष्टि का स्तर

Sc= वांछित कीमत अथवा मजदूरी तथा वास्तविक संघर्ष द्वारा प्राप्त की गई मजदूरी पर सन्तुष्टि का अन्तर

Bc= वांछित कीमत (मजदूरी) तथा वास्तविक (श्रमिकों के लिए) संघर्ष द्वारा निश्चित करायी गयी मजदूरी पर संतुष्टि का अन्तर (नियोक्ताओं के लिए)

$\left[E\left\{B(P)-BC\right\}\right]$ = विरोधी पक्ष के विरोध करने की इच्छा का अनुमान

S(Ps) वह मजदूरी दर जिसकी श्रमिक मांग कर रहे है

S(P)= वह मजदूरी दर जो नियोक्ताओं के विचाराधीन है।

पेन के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त के मॉडल की सरल व्याख्या इस प्रकार है- श्रमिक (श्रमसंघ) जिस मजदूरी के लिए संघर्ष कर रहे वह मजदूरी दर S(Ps) के बराबर है, किन्तु नियोक्ता के विचाराधीन जो मजदूरी दर है वह मजदूरी दर S(P) के बराबर है। श्रमिक जिस मजदूरी के लिए संघर्ष कर रहे है उस मजदूरी तथा नियोक्ता जो मजदूरी देने का विचार कर रहा हैं उसका अन्तर बराबर है = $\left[S(PS)-S(P)\right]$ । दोनों मजदूरी दरों का अन्तर अर्थात । $\left[S(PS)-S(P)\right]$ श्रमिकों, की संतुष्टि की लागत कहलाता है। श्रमिक जिस मजदूरी के लिए

संघर्ष कर रह है वह मजदूरी दर बराबर है । $[S(PS)]$ नियोक्ता समझोते के बाद जो मजदूरी देते है वह मजदूरी दर Sc कें बराबर है। इन दोनों मजदूरी दरों का अन्तर अर्थात् $[S(PS)-SC]$ श्रमिकों की असंतुष्टि की लागत कहलाती है।

श्रमिकों की समझौता करने की अभिवृत्ति को इस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है- श्रमिकों की सन्तुष्टि की लागत $[S(PS)-S(P)]$ में श्रमिकों की असन्तुष्ट की लागत । $[S(PS)-SC]$ का भाग देते है तथा जोखिम मूल्यांकन θ से गुणा करते है जो परिणाम शून्य आता हें उसमें से विरोधी पक्ष के विरोध $[B(P)-Bc]$ को घटाते है, घटाने पर जहां परिणाम शन्य आता है वहीं समझौता हौ जाता है। इसी प्रकार नियोक्ता के समझौते की अभिवृत्ति को शत किया जा सकता है।

16.5.3 पेन के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त का मूल्यांकन

पेन का सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त बताता है कि यदि नियोक्ता शक्तिशाली है नो मजदूरी नहीं बढ़ाते है और यदि बढ़ाते भी है तो अधिक नहीं. बढ़ाते है। इसके विपरीत यदि श्रम संघ शक्तिशाली है तो नियोक्ताओं पर दबाव डालकर मजदूरी बढ़वाने में सफल हे जाते है। पेन का सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है' कि जो पक्ष समझौता करने के लिए प्रथम प्रस्ताव रखता है वही पक्ष कमजोर होता है । इसके, अलावा यह सिद्धान्त इस बान पर भी जोर देता है कि समय स्वयं ही दोनों पक्षों को समझौता करने की अभिवृत्ति में ले आता है । जैसे जैसे हड़ताल की अवधि बढ़ती जाती), है वैसे वैसे ही दोनों पक्षों का समझौता करने की अभिवृत्ति भी बढ़ती जाती है । अन्त में दोनों पक्ष समझौता करने के लिए तैयार हो जाते है ।

16.6 मजदूरी के सौदाकारी सिद्धान्त की आलोचनाएं :

मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएं की जाती है-

(i) मजदूरी निर्धारण में केवल सौदाकारी शक्ति का ही एक मात्र हाथ नहीं रहता, बल्कि उद्योग की भुगतान क्षमता, विभिन्न उद्योगों में प्रचलित मजदूरी दरें, तथा श्रमिकों को सीमान्त उत्पादकता का भी महत्व होता है ।

(ii) यह आवश्यक नही है कि सौदाकारी द्वारा निर्धारित मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के मूलर के बराबर ही हो । यदि सौदाकारी द्वारा निर्धारित मजबूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक है तो नियोक्ता उत्पादन बन्द कर सकता है ।

(iii) सौदाकारी के माध्यम से हुए समझौते की सामाजिक व आर्थिक लगाते बहुत ऊँची होती है । हड़ताल व तालाबन्दी के दौरान उत्पादन की क्षति होती है तथा उपभोक्ता वर्ग को कष्ट उठाना पड़ता है । नियोक्ता को भी लाभ की हानि होती है ।

(iv) सौदाकारी सिद्धान्त की सबसे बड़ी दुर्बलता इसका अवसरवादी। गुण है । यदि समय श्रमिकों के पक्ष में है तौ समझोता श्रमिकों के पक्ष में हो जाता दृऐ तथा श्रमिक मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जाते है अन्यथा श्रमिक मजदूरी बढ़वाने मैं असफल रहते है ।

(v) विकसित देशो में कहा श्रमसंघ सुदृढ़ है के लिए यह सिद्धान्त ठीक हो सकता है किन्तु विकासशील देशों में जहां श्रमसंघ दुर्बल होते है वहां यह सिद्धान्त सफल नहीं हो सकता।

आलोचनाओं के बाद भी सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त में बहुत कुछ सरलता है । वर्तमान अर्थ-व्यवस्थाओं पर पूंजीवाद का प्रभाव अधिक है । पूंजीवाद में पूंजीपति नियोक्ता श्रमिकों का शोषण करते है । श्रमिकों को उनके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर मजदूरी नही दी जाती हैं । यदि श्रमसंघ सुदृढ़ व सुसंगठित है तो वे सौदाकारी शक्ति द्वारा सीमान्त उत्पादकता के बराबर मजदूरी प्राप्त करने मे सफल हो जाते है ।

16.7 सामूहिक सौदाकारी की सफलता की शर्तें।

इस बात को स्वीकार करना होगा कि सामूहिक सौदाकारी अनुबन्धों (Contracts) तथा दूसरे पक्ष के लिए सम्मान और व्यवसाय के लाभप्रद ढंग पर जारी रखने, निरन्तर रौजगारी एवं आय तथा औद्योगिक जोवन में कानून एवं व्यवस्था बनाये के सुदृढ़ आधार पर निर्भर करती है । साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि हड़तालों या तालाबन्दियों के घटित होने का अर्थ सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया की असफलता नहीं । राज्य द्वारा निर्धारित उचित आचरण के कुछ नियमों को ध्यान में रखते हुए की हड़ताल या तालाबन्दी अथवा इस तरह की कार्यवाही की आशंका को सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया के एक अभिन्न अंग कें रूप में स्वीकार किया जाता है । हड़ताल के अधिकार एवं इसकी सामर्थ्य के बिना एक श्रमिक संघ वास्तव में एक दुर्बल सौदाकारी रहेगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में सेवायोजक के लिए कोई समाधान निकालने या समझौता करने के लिए थोड़ी प्रेरणा ही मिलेगी ।

यदि कुछ शर्तो की. पूर्ति हो जाए तो सामूहिक सौदाकारी संघर्षों को सुलझाने और श्रमिकों के हित को बढ़ाने का एक अत्यन्त प्रभावशाली साधन हो सकती है-

(i) सुसंगठित मान्यता प्राप्त श्रम संघ:-

सामूहिक सौदाकारी की सफलता की प्राथमिक शर्त सुसंगठित एवं सुनिश्चित नीतियों वाले पूर्णतया मान्यता प्राप्त श्रम संघ होना आवश्यक है । यदि एक उपक्रम में एक ही श्रम संघ हो तो समूहिक सौदाकारी अधिक सफल हो सकती है क्योंकि हर एक श्रम संघ अलग अलग राजनीतिक पार्टियों से जुड़े होते है ऐसी स्थिति में दो अलग अलग राजनैतिक विचार धारा वाले संघ आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में लगे रहते है जिसका भरपूर फायदा सेवा योजक उठाने की कोशिश करते हुए श्रम संघों को आपस में लड़ाते रहते है ।

(ii) श्रमिक संघ एवं सेवायोजक के मध्य लेने देने की भावना

जब सेवायोजक एवं श्रमिकों के मध्य लेने देने (Give And Take) की भावना होती है तब समूहिक सौदाकारी औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने की एक प्रभावशील तकनीक बन जाती है । दोनों में से यदि एक भी पक्ष अड़ियल रूख अपनाता है तब यह विधि अपर्याप्त होती है ऐसी स्थिति में कानूनी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है ।

(iii) आपसी विश्वास

सामूहिक सौदाकारी द्वारा ऐच्छिक आधार पर किये गये ठहराव और दशाओं के पीछे कोई वैधानिक समर्थन नहीं होता, इसलिए सम्बन्धित पक्षों को पारस्परिक ठहराव के आधार पर

विश्वास के साथ अपनी कार्यविधियों एवं कार्यकलाप करने चाहिए तथा दोनों पक्षों को समझौते का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

(iv) नैतिक बल

श्रमिक नेताओं और सेवायोजकों के नैतिक बल पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है । एक दूसरे के दृष्टिकोण को पूर्ण तथा वास्तविक रूप में समझना और उसका आदर करना चाहिए । श्रमिकों और सेवायोजकों के प्रतिनिधियों के मध्य आमने सामने बैठकर होने वाली सभाओं द्वारा किसी लाभप्रद उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जबकि दोनों ही पक्ष अपनी परम्परागत द्वेष भावनाओं को दूर रखें । श्रमिकों एवं सेवायोजकों दोनों को यह भली भांति जान लेना चाहिए कि नैतिकता के बल पर विरोधी को झुकाया जा सकता है ।

(v) अन्य बातें :

दोनों पक्षों को यह अनुभव करना चाहिए कि मूल्य स्थिरीकरण, आवश्यक है तथा बाजार मूल्य एवं मजदूरी में पर्याप्त तालमेल होना चाहिए ।

दोनों पक्षों को राजकीय नियमन का पालन करने के लिए तैयार होना चाहिए ।

समझोते हेतु ईमानदार, योग्य तथा उत्तरदायित्व पूर्ण नेतृत्व आवश्यक है तथा यह नेतृत्व अनुबन्ध को लागू करने में सक्षम होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 01 सामूहिक सौदेकारी को सफलता की शर्ते बताइए ?

16.8 सारांश

नियोक्ताओं एवं श्रामिकों के मध्य पारस्परिक हितों मे टकराव के कारण समस्याएं उत्पन्न होती रहती है । इन समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न प्रकार की विधियों की खोज की जाती रही है । इन्हीं विधियों मैं सै एक सामूहिक सौदेबाजी भी है जिसका प्रारम्भ बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ । सामूहिक सौदेबाजी को औद्योगिक सम्बंधों का अभिन्न अंग माना गया है ।

नियोक्ता एवं श्रमिकों में किसी समस्या के समाधान के लिए किये वार्तालाभ की प्रक्रिया को सामूहिक सौदेबाजी कहते है । इसके अन्तर्गत किसी तीसरे पक्षकार की सहायता लिए बिना नियोक्ता व श्रमिक विद्यमान या भावी मन भेदों को बातचीत । के द्वारा निपटाने का प्रयास करते है । सामूहिक सौदेबाजी वार्ता करने एवं समझौता करने की एक प्रक्रिया है । ऐसी वार्ता या समझौता दो पक्षकारों के मध्य सम्पन्न होता है, जिसमें से एक या दोनों की पक्ष उन व्यत्तियों के समूह का अंग होता है जो कि संयुक्त । रूप से सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्यरत हों सामूहिक सौदेबाजी शब्द का प्रयोग अंग्रेज अर्थशास्त्री वे द्वारा सर्वप्रथम 1891 में किया था ।

मजदूरी के सौदाकारी शक्ति सिद्धान्त में मजदूरी दरों की 2 सीमाएं होती है । मजदूरी दर ऊपरी सीमा - यह व्यवसाय की लाभदायकता श्रम के स्थान पर मशीन का प्रतिस्थापन, श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग की लोच पर निर्भर करती है । मजदूरी की निम्नतम सीमा

यह श्रमिकों का जीवन स्तर, जीवन निर्वाह लागत, श्रम की आर्थिक दशा, श्रम संघों की स्थिति पर निर्भर करती है ।

मजदूरी का निर्धारण इन दोनों सीमाओं के बीच अंसलाग बिन्दु (सिंकिंग पाइन्ट) पर होता है । श्रमिक इस बिन्दु से नीचे मजदूरी लेना स्वीकार नहीं तथा नियोक्ता इस बिन्दु से अधिक मजदूरी देना नही चाहते ।

सौदाकारी सिद्धान्त के बारें में हिक्स का विचार है कि नियोक्ता श्रमिकों की ऊँची मजदूरी की मांग और सम्भावित हड़ताल से क्षति दौनों की तुलना करता है दोनों स्थितियों में जो कम हानिकारक हो नियोक्ता उसे ही चुनता है । नियोक्ता द्वारा, दी जाने वलि उच्चतम मजदूरी पर कार्य क्षति की लागत व सम्भावित रियायत की लागत दोनों बराबर होती है । मजदूरी दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होती है जहां नियोक्ता का रियायती वक्र तथा श्रम संघ का प्रतिरोध वक्र एक दूसरें को काटते है ।

हिक्स के विचारों को अर्थशास्त्री शैकल व पेन ने आलोचना की है । पेन का मानना है कि हिक्स विधि से उस समय की मजदूरी तय हो सकती है जब सम्भावित हड़ताल अवधि को पता हो । शैकल का मानना है कि इस सिद्धान्त मैं कोई नई बात नहीं है यह मार्शल की कैंची के दो फलनों वाली बात को दोहराना मात्र है ।

सौदाकारी सिद्धान्त के बारे में शैकल का विचार है कि सामूहिक सौदाकारी श्रमिकों व नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृत्ति पर निर्भर करती है । श्रमिकों की अभिवृत्ति का निर्धारण नियोक्ता के साथ असन्तुष्ट हौने की लागत तथा नियोक्ता के साथ सन्तुष्ट होने की लागत द्वारा होता है । यदि श्रमिकों की सौदाकारी अभिवृत्ति का मूल्य एक से अधिक आता है तो श्रमिक समझौता करने के पक्ष मे होंगे । यदि यह मुल्य एक कम है तो श्रमिक समझौता करने के पक्ष में नहीं होंगे ।

नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृति का निर्धारण श्रमिकों के साथ असन्तुष्ट होने की लागत तथा श्रमिकों के साथ सन्तुष्ट होने की लागत द्वारा होता है । यदि नियोक्ता की सौदाकारी अभिवृत्ति का मूल्य 1 से कम है तो नियोक्ता समझोता नहीं करेंगे । इसके विपरीत यह मूल्य यदि 1 से अधिक है तो सेवायोजक आसानी से समझौते के पक्ष में होंगे । पेन ने सौदाकारी को होकर अथवा ताश के खेल के समान करना है जो पक्ष लड़ने की प्रवृत्ति अधिक. रखता है समझौता उसी के पक्ष में होगा ।

पेन का खेल सिद्धान्त बताता है कि यदि नियोक्ता शक्तिशाली है तो मजदूरी नहीं बढ़ाते है और यदि बढ़ाते भी है तो बहुत कम बढ़ाते है इसके विपरीत यदि श्रम संघ शक्तिशाली है तो मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जाते है । पेन के अनुसार जो पक्ष समझौता करने के लिए प्रथम प्रस्ताव रखता है वही पक्ष कमजोर होता है । पेन के अनुसार समय स्वयं ही दोनों पक्षों को समझौते की स्थिति में ले आता है जैसे जैसे हड़ताल की अवधि बढ़ती जाती है समझौता करने की अभिवृत्ति बढ़ती जाती है ।

मजदूरी के सौदाकारी सिद्धान्त की आलोचनाएं भी की गई है (मजदूरी निर्धारित में केवल सोदाकारी शक्ति का ही हाथ नहीं रहता है बल्कि उद्योग की भुगतान क्षमता, श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता का भी हाथ होता है । यह आवश्यक नहीं कि सौदाकारी, द्वारा निर्धारित

मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही हो । सौदाकारी के, माध्यम से हुए समझौतों की सामाजिक व आर्थिक लागतें बहुत होती है । सौदाकारी की दुर्बलता उसका अवसरवादी होना है । यह विधि उन देशों में अधिक सफल है जहां सुदृढ़ श्रम संघ है ।

सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिए - सुसंगठित मान्यता प्राप्त श्रम संघ, श्रमिक संघ एवं सेवा योजक के मध्य लेने और देने की भावना, आपसी विश्वास नैतिक बल आवश्यक है ।

16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें-

1. Richardson J.H. An Introduction to the study of Industrial Relations.
2. Indian Labour Journal.
3. Adolf sturmlthal, Contemporary Collective Bargaining.
4. Harold W.Davery, Contemp porany Collective Bargaining.
5. Report on the National Commission on the Labour.
6. आर सी. अग्रवाल एवं एन.एस कोसरी - श्रम सन्नियम एवं सामाजिक सुरक्षा
7. आर सी अग्रवाल एवं एन एस कोठारी - औद्योगिक सम्बन्ध
8. वी.सी सिन्हा - श्रम अर्थशास्त्र
9. टी. एन. भगोलीवाल - श्रम अर्थशास्त्र

16.10 अभ्यासों के उत्तर:

बोध प्रश्न 1

1. तीन विधियों से होता है
   (i) व्यक्तिगत सौदाकारी
   (ii) सामूहिक सौदाकरी तथा
   (iii) सरकार द्वारा मजदूरी का कानूनी नियमन
2. (i) श्रमिक का जीवन स्तर
   (ii) जीवन निर्वाह लागत
   (iii) श्रम की गतिशीलता
   (iv) श्रमिकों की आर्थिक दशा
   (v) श्रमसंघों की स्थिति
3. मजदूरी का निर्धारण उच्चतम एवं निम्नतम सीमाओं के बीच संलाग बिन्दु (स्टिकिंगप्वाइन्ट) पर होता है।

बोध प्रश्न 2

1. (i) सुसंगठित मान्यता प्राप्त श्रम संघ
   (ii) श्रमिक संघ एवं सेवायोजक के बीच लेन दो की भावना
   (iii) आपसी सुविश्वास
   (iv) नैतिक बल

इकाई 17
मजदूरी ढ़ाँचा और मजदूरी भिन्नता

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 मजदूरी भिन्नता
17.2.1 मजदूरी भिन्नता के कारण
17.2.2 समकारी अन्तर
17.2.3 असमकारी अन्तर
17.3 मजदूरी भिन्नता के प्रकार
17.4 पुरूषों तथा स्त्रियों की मजदूरीयों में अन्तर के कारण
17.5 सारांश
17.6 निबन्धात्मक प्रश्न

17.0 उद्देश्य

व्यवहार में विभिन्न उद्योगों में मजदूरी दरें बहुत विभिन्न देखी जाती है और एक ही उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी में भी अन्तर देखा जाता है। समान कार्य करने वाली महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा सामान्यतया कम वेतन दिया जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अभाव के कारण मजदूरिया कम है जबकि शहरों में अधिक । हम इस इकाई में मजूदरी भिन्नता का ही अध्ययन करेंगे और जानने का प्रयास करेंगे कि आखिर वे कौन-कौन से प्रमुख कारण है, जिनकी वजह से एक ही उद्योग में कार्य करने वाले और अलग उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरियां अलग अलग दी जाती है? आर्थिक विकास का मजदूरी भिन्नता पर क्या प्रभाव पड़ता है ।

17.1 प्रस्तावना

प्राय: देखा गया है कि श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण उत्पादक श्रमिकों को कम से कम मजदूरी देने का प्रयास करता है । इतना ही नहीं एक ही व्यवसाय. में विभिन्न श्रमिकों को अलग अलग मजदूरी दी जाती है । कारण श्रमिकों की योग्यता, कुशलता, गतिशीलता में अन्तर हो सकता है श्रमिक यदि अस्थायी है तो स्थायी श्रमिक की तुलना में कम मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है । विभिन्न व्यवसायों में भी मजदूरी दरों में भारी अन्तर देखने को मिलता है । ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में अलग-अलग समयों पर मजदूरियां अलग-अलग देखी जा सकती है प्रश्न उठता है कि आखिर ये मजदूरी विभिन्नताओं क्यों उत्पन्न होती है, क्षेत्रीय आधार लिंग के आधार पर महिलाओं और' पुरूषों को क्यों मजदूरी विभिन्नताओं का सामना करना पड़ता है? समान योग्यता और कुशलता देने पर भी मजदूरियों में भेदभाव एक गम्भीर समस्या है ।

17.2 मजदूरी भिन्नता :

विभिन्न क्षेत्रों अथवा उद्योगों या एक ही उद्योग की विभिन्न इकाईयों अथवा एक ही रोजगार एवं श्रेणी के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य मजदूरी की दरों के पाये जाने वाले अन्तर को "मजदूरी-भिन्नता" कहते है । मजदूरी की यह भिन्नता अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तरउद्योगीय दोनों ही प्रकार की हो सकती है । कभी-कभी अपूर्ण बाजार की परिस्थितियों के कारण तथा श्रमिकों की कुशलता में अन्तर होने के फलस्वरूप एक ही उद्योग की विपन्न इकाईयों अथवा विभिन्न श्रेणियों के श्रमिकों के बीच मजदूरी - विभिन्न पायी जाती है । यदि रोजगार के समूर्ण क्षेत्र में श्रमिकों की स्वतन्त्र गतिशीलता पाई जाये तो वास्तविक मजदूरी की प्रकृति प्रत्येक प्रकार के रोजगार में संलग्न श्रमिकों की सापेक्षिक कुशलता के अनुपात में रहने की होगी । इस प्रकार की स्थिति में समान रूप से कुशल श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी भी समान होगी । किन्तु व्यावहारिक जीवन में श्रमिकों की स्वतन्त्र गतिशीलता अनेक सामाजिक एवं आर्थिक कारणों के फलस्वरूप सीमित हाती है । इस प्रकार मजदूरी में अन्तर्क्षेत्रीय एवं अन्तर व्यवसायी अन्तर होना स्वाभाविक है । अधिकांश व्यवसायों में मजदूरी-दरों की भिन्नता श्रमबाजार की दशाओं में अन्तर का कारण होती है, जबकि वास्तव में यह भिन्नता लागत और रहन सहन के स्तर के रूप में तथा उसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास के स्तर के रूप में अधिक प्रकट होती है । श्रम की सापेक्षिक, अधिकता वाले क्षेत्र में एक अविकसित क्षेत्र की तथा श्रम की न्यूनता वाले क्षेत्र में एक विकसित क्षेत्र की विशेषताएँ पायी जाती है ।

17.2.1 मजदूरी भिन्नता के कारण

विभिन्न व्यवसायों, उद्योगों, क्षेत्रों तथा श्रमिक के बीच पायी जाने वाली मजदूरी भिन्नता के अनेक कारण उत्तरदायी होते है, जो निन्नलिखित है :

श्रम बाजार में अप्रतियोगी समूहों की उपस्थिति

सैद्धान्तिक विश्लेषण करते समय श्रमिकों को सजातीय माना जाता है, जबकि वास्तविक स्थिति यह होती है कि शारीरिक एवं मानसिक गुणों, शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी योग्यता के आधार पर श्रमिको को अनेक वर्गों में विभक्त कर सकते है, जैसे कुशल श्रमिक वर्ग, अकुशल श्रमिक वर्ग, अर्द्धकुशल श्रमिक वर्ग, अध्यापक वर्ग, चिकित्सक वर्ग आदि । एक वर्ग के श्रमिकों में परस्पर प्रतियोगिता पाई जाती है, किन्तु श्रमिकों के विपिन वर्गो के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती । अत : श्रमिकों के विभिन्न वर्ग अप्रतियोगी कहलाते है । प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों की मजदूरी उनकी मांग और पूर्ति की दशाओं के आधार पर निर्धारित होती है । अत: विभिन्न अप्रतियोगी वर्गों के श्रमिकों की मजदूरियों में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों की मांग पूर्ति की दशायें भिन्न होती है उदाहरणस्वरूप डाक्टरी की शिक्षा और प्रशिक्षण में अधिक समय और धन व्यय होता है । अत: इनकी पूर्ति सीमित और मजदूरी की दर उच्च होती है । इसके विपरीत कुशल या अर्द्धकुशल श्रमिकों की पूर्ति बहुत अधिक होने के कारण उनकी! मजदूरी की दर नीची होती है । कभी-कभी अप्रतियोगी वर्ग के अन्तर्गत भी एक गैर प्रतियोगी वग, पाया जाता है, जैसे- चिकित्सकों के अप्रतियोगी वर्ग के अन्तर्गत बाल-

रोग विशेषज्ञों-नाक, खन, दांत या आख विशेषज्ञों के अप्रतियोगी वर्ग । इस प्रकार एक वर्ग के अन्तर्गत जो विभिन्न अप्रतियोगी वर्ग पाये जाते है, उनकी मजदूरियों में भी अन्तर पाया जाता है । अत : अप्रतियोगी वर्ग का विचार उन विभिन्न कार्यो अथवा व्यवसायों में मजदूरी भिन्नता के अभिप्राय को स्पष्ट करने में सहायक होता है, जिनके लिए योग्य एवं उपयुक्त श्रमिकों की उपलब्धता सीमित होती है ।

17.2.2 समकारी अन्तर

मजदूरी के वे अन्तर जो कार्यों अथवा व्यवसायो के अमौद्रिक लाभों के अन्तर की क्षतिपूर्ति करते है, उनको समकारी अन्तर कहते है, कुछ कार्य अथवा व्यवसाय अमौद्रिक लाभों के परिणामस्वरूप अधिक आकर्षक होते हें, जबकि इसके विपरित कुछ कम आकर्षक अथवा सुखप्रद होते है, कयोंकि उनमें अमौद्रिक लाभ न के बराबर या बहुत कम होता है । अथवा उनमें अत्यधिक जोखिम होता है या स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालते है । कम सुख प्रद कार्यो अथवा व्यवसायों के लिए यह आवश्यक है कि वह श्रमिक को आकर्षित करने की दृष्टि से उनको अमौद्रिक लाभों की क्षतिपूर्ति के रूप मैं, अन्य कार्यों या व्यवसायों की अपेक्षाकृत अधिक मौद्रिक मजदूरी प्रदान करें । इस प्रकार, अमीद्रिक कारणों से विभिन्न कार्यो या व्यवसायों की मजदूरियों में पाये जाने वाले अन्तर को ही "समकारी" अन्तर कहते है ।

मजदूरी - भिन्नता उत्पन्न करने वाले अमौद्रिक तत्व

(1) कार्य का स्थायित्व एवं नियमितता - जिन व्यवसायो में श्रमिकों का कार्य अनियमित अथवा अस्थायी प्रकृति का होता है, उनमें श्रमिकों की नियमित एवं स्थायी कार्य वाले व्यवसायों की तुलना में मजदूरी अधिक देनी पड़ती है । अस्थायी अथवा अनियमित व्यवसायों के श्रमिक बीच बीच में बेरोजगार होते रहते है । अत : बेरोजगारी के. समय में परिवार का लालन-पालन की दृष्टि से उन्हें अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी प्रदान करनी पड़ती है ।

(2) कार्य की प्रगति - जोखिम वाले तथा स्वास्थ्य कुप्रभाव डालने वाले व्यवसायों में श्रमिकों की पूर्ति करने की दृष्टि से उनको अन्य व्यवसायों की अपेक्षा उच्च मजदूरी देनी पड़ती है ।

(3) कार्य का दायित्व एवं विश्वसनीयता - जिन कार्यों एवं व्यवसाय के लिए अधिक विश्वास एवं उतरदायित्व आवश्यक होता है । जैसे- बैक मैनेजर कोषाध्यक्ष आदि (उन कार्यों के लिए श्रमिकों को अपेक्षाकृत उच्च मजदूरी प्रदान करनी पड़ती है ।

(4) कार्य की अरूचिपूर्णता - जिन कार्यो में श्रमिकों की अरूचि होती है तथा जिसे सामाजिक प्रतिष्ठा नीची होती है, उन कार्यों के लिए श्रमिकों को उच्च मजदूरी प्रदान की जाती है । किन्तु जिन कार्यों को अकुशल श्रमिक कर सकते है तथा सामाजिक अथवा अन्य कारणों से दूसरा कार्य नहीं कर सकते जैसे - कसाई, भंगी आदि कार्य, उन कार्यों में मजदूरी दर नीची होती है ।

(5) कार्यविधि : जिन व्यवसायों में दैनिक कार्य के घण्टे अधिक तथा अवकाश की कम सुविधायें होती है उनमें भी श्रमिकों को अपेक्षाकृत उच्च मजदूरी प्रदान करनी पड़ती है ।

(6) प्रशिक्षण सम्बन्धी लागत और कठिनाई - जिन कार्यों के लिए प्रशिक्षण पर अधिक व्यय होता है या अधिक परिश्रम करना पड़ता है, उन कार्यों में मजदूरी की दर अपेक्षाकृत उच्च रहती है ।

(7) भावी उन्नति की आशा - भविष्य में उन्नति के उत्तम अवसर रखने वाले व्यवसायों में श्रमिको की मजदूरी प्राय : नीची होती है ।

(8) स्थान - विशेष पर मूल्य स्तर छोटे-छोटे कस्बों की तुलना में बड़े नगरों में वस्तुयें तथा सेवायें अत्यधिक महंगी होती है । अतएव बड़े नगरों के व्यवसायों में श्रमिकों को अपेक्षाकृत उच्च मजदूरी देनी पड़ती है ।

(9) अन्य सुविधायें - जिन व्यवसायों में श्रमिकों को नि:शुल्क चिकित्सा सुविधा, नि:शुल्क आवास, बच्चों, के लिए नि:शुल्क शिक्षा आदि अनेक सुविधायें प्राप्त होती है, उनमें सामान्यत: नकद मजदूरी की दर नीची रहती है ।

17.2.3 अ-समकारी अन्तर

वास्तव में संसार में समस्त श्रमिक समान योग्यता एवं गुणों वाले नहीं होते है, अत : उनकी मजदूरियों में विद्यमान समस्त भिन्नताओं का विश्लेषण समकारी अन्तरों के द्वारा सम्मव नहीं है । प्राय: एक ही व्यवसाय या एक समान कार्यो में लगे हुए श्रमिकों को मजदूरियों में भी भिन्नता देखने को मिलती है, उसका विश्लेषण अ-समकारी अन्तर के द्वारा सम्भव है ।

अ-समकारी अन्तर दो प्रकार के होते है (1) बाजार सम्बन्धी अपूर्णता यों तथा (2) श्रमिकों के गुण में अन्तर । भौगोलिक एवं संस्थान अथवा सामाजिक अगतिशीलतायें, एकधीकारी प्रवृत्ति तथा सरकारी हस्तक्षेप आदि बाजार सम्बन्धी आर्णताओं को उत्पन्न करने है । किसी भी व्यवसाय में शक्तिशाली श्रमिक संघ का होना अथवा सरकारी हस्तक्षेप के फलस्वरूप मजदूरी की दर उच्च होती है । इसी प्रकार एक व्यवसाय में दो स्थानों या क्षेत्रों के बीच श्रमिको की भौगोलिक अगतिशीलता के फलस्वरूप भी मजदूरी की दरों में भिन्नता सम्भव हो सकती हैं । प्राय: श्रमिक पारिवारिक अथवा सामाजिक बन्धनों के कारण अन्य स्थानों पर अच्छे कार्य के अवसरों उच्च उन मजदूरी के सम्बन्ध में श्रमिकों की अज्ञानता, नई परिस्थितियों के साथ सामन्जस्य करने की अनिच्छा विभिन्न क्षेत्रों के बीच भाषा समस्या, खान पान और रीति रिवाज सम्बन्धी अन्तर आदि अनेकों कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने को इच्छुक नही होते । बाजार सम्बन्धी आर्णता ओं के अलावा भी श्रमिकों की व्यक्तिगत कुशलता अनुभव शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी अन्तरों के कारण भी मजदूरी में अन्तर होता है ।

17.3 मजदूरी भिन्नता के प्रकार

मजदूरी सम्बन्धी भिन्नता मुख्यत : तीन प्रकार की होती है

1. रोजगार बाजारों की अपूर्णताओं के कारण उत्पन्न मजदूरी भिन्नताएं
2. सामाजिक मूल्यों तथा पक्षपात के फलस्वरूप उत्पन्न मजदूरी भिन्नताएं
3. व्यावसायिक मजदूरी भिन्नताएं

रोजगार बाजार की अपूर्णताओ के कारण उत्पन्न मजदूरी भिन्नतायें विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में होती है । रेयनोन्डस के अनुसार "अन्तर्द्योगीय व मजदूरी की भिन्नता की प्रवृति औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अधिकतम तथा उसके उपरान्त धीरे-धीर घटने की होती है ।" इसका कारण यह है कि विकसित देशों की तुलना से अल्पविकसित देशों रोजगार बाजरों में पूर्णतायें अधिक दृष्टिगोचर होती है । प्रतिस्पर्धी परिस्थितियों में अन्ताउद्यमीय मजदूरी अन्तर प्राय : तीन कारणों से विद्यमान होते है

(1) विभिन्न फर्मो द्वारा कार्य पर लगाये गये श्रमिकों की श्रेणी में अन्तर,

(2) श्रम बाजार की अपूर्णतायें, और

(3) साज-सज्जा एवं प्रबन्ध कौशल में अन्तर ।

विकसित देशों में छोटे-बड़े सभी व्यावसायिक संस्थान एक ही रोजगार बाजार में श्रमिक के लिए पारस्परिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते है । अत : विकसित देशों में रोजगार-बाजार की पूर्णतया से उत्पन्न मजदूरी-अन्तर कम व्यापक होते है । इसके विपरीत, अल्पविकसित देशों में बड़े एवं छोटे व्यवसायिक संस्थानों के बीच विद्यमान मजदूरी अन्तर अधिक व्यापक होता है, क्योंकि इन देशों में औद्योगिक संस्थान श्रमिकों के सामान्य आधिक्य के कारण अलग-अलग रोजगार-बाजार निर्मित कर लेते है ।

सामाजिक मूल्यों तथा पक्षपातों के फलस्वरूप मजदूरी - भिन्नताओ पर आर्थिक शक्तियों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पड़ता है ।

मजदूरी में व्यावसायिक अन्तर, कुशलता सम्बन्धी भिन्नताओं पर आधारित होने के कारण असीमित रूप में पाए जाते है, जबकि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत इन मजदूरी भिन्नताओं में कमी होने की प्रवृति होती है । एम डब्ल्यू. रैडर के अनुसार, “प्रतिस्पर्धा दशाओं के अन्तर्गत, दीर्घकाल में एक निशचित वर्ग के श्रमिकों को जो मजदूरी एक उद्योग में प्रदान की जायेगी वह मजदूरी उस क्षेत्र के अन्य उद्योगों में लगे वैसे ही श्रमिकों को मिलेगी । "कुशल एवं अकुशल श्रमिक का मज़दूरियों में अन्तर विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में अधिक होता है । शारीरिक तथा गैर शारीरिक श्रम की मजदूरियों में अन्तर विकासशील देशों में बढता जा रहा यहाँ अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या विभिन्न प्रकार की मजदूरी भिन्नताओ अपरिहार्य है? जनशक्ति, राष्ट्रीय लाभांश की वृद्धि तथा आर्थिक संसाधनों के लिए आवंटन से मजदूर-भिन्नता की समस्या आर्थिक एवं सामाजिक मुष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार, "अधिकतम आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण एक सीमा तक इस प्रकार के मजदूरी अन्तरों पर आधारित होता है, जो अथव्यवस्था के विभिन्न उद्योग व्यवसाय एवं भौगोलिक क्षेत्रों के बीच श्रमिकों का विभाजन इस प्रकार से कर सकें कि राष्ट्रीय उत्पादन अधिकतम हो सके । आर्थिक संसाधनों का समुर्ण शोषण हो सके और आर्थिक विकास की उच्च दर स्थापित करना सुविधाजनक हो सके । "किसी भी देश में मजदूरी में प्रवृत्ति तथा सीमा, श्रम बाजार की दशाओं संघवाद का विस्तार तथा श्रमिकों एवं सेवायोजकों

की सापेक्षिक सौदेबाजी की शक्ति, उत्पादकता वृद्धि की दर अधिकृत नियमन, रीति रिवाजों तथा परम्पराओं का केन्द्रित होना आदि बातों पर निर्भर करती है ।

आर्थिक विकास तथा मजदूरी संबंधी विविधताएं

आर्थिक विकास के साथ-साथ मजदूरी सम्बन्धी अन्तर कम होते जोते है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के विभिन्न प्रतियोगी वर्गो की मजदूरी दरें श्रम बाजार की दशाओं पर निर्भर करती है । साम्यवादी अर्थव्यवस्था से निजी सम्पति के उसूल द्वारा अनार्जित आय से उत्पन्न आय के अन्तरों को समाप्त करने के उपरान्त भी मजदूरी सम्बन्धी भिन्नताएं पायी जाती है । अत : मजदूरी सम्बन्धी भिन्नताओ को अपरिहार्य स्वीकार किया जाता है ।

17.4 पुरुषों एवं स्त्रियों की मजदूरियों में अन्तर के कारण

औद्योगिक विकास के आधार पर विभिन्न देशों में मजदूरी की भिन्न-भिन्न दरें पाई जाती है । औद्योगिक विकास की दृष्टि से उन देशों में मजदूरी की उच्च दरें होती है तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों में यह देर कम होती है । उद्योगों में भी इसी प्रकार की स्थिति होती है । जिन उद्योगों की भुगतान क्षमता अधिक होती है, वे प्राय : अपने श्रमिकों को. उच्च मजदूरी प्रदान करते है, इसे विपरीत जिन उद्योगों की भुगतान क्षमता कम होती है उनमें मजदूरी की दर भी कम होती है । मजदूरी का यह भेदभाव देशों, उद्योगों के अतिरिक्त लिंग के आधार पर भी किया जाता है । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों कौं सदैव कम मजदूरी प्रदान की जाती है ।

इस प्रकार यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मजदूरी न केवल राज्य-राज्य, ।, वर्ग-वर्ग में भिन्न होती है अपितु यह लिंग-लिंग में भो भिन्नता रखती है । प्राय : स्त्री कौ, पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है । ऐसा भारत में नहीं अपितु संसार के दूसरे देशो में भी होता है । रित्रयो को पुरूषों कई' अपेक्षा कम मजदूरी देने के अग्रलिखित : कारण है-

(1) साधारणतया पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति और कार्यक्षमता कम होती है. उनमें पर्याप्त शिक्षा का अभाव रहता है । वे केवल हल्के, सरल और छोटे कार्य कर सकती है । फलत : उनकी उत्पादन शक्ति कम होती है और मलिए उन्हें कम मजदूरी प्राप्त होती हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक न होगा कि यह बहुत विवाद ग्रस्त प्रश्न है । यह एक पर्म मात्र ही है कि स्त्रियों मैं शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम की शक्ति कम होती है, वेनिस अनुभाव भी इस बात का समर्थन करता है ।

(2) अधिकांशतया स्त्रियां किसी भी कार्य को स्थायी रूप से नहीं ग्रहण करती, । ने अल्पकाल के लिए कार्य करना पसन्द करती है । पचास प्रतिशत सै भी अधिक स्त्रियां विवाह के पश्चात कार्य करना छोड़ देती है । साथ ही उन्हें परिवार के पालन पोषण की पुरुषों की अपेक्षा कम उठानी पड़ती है । कम मजदूरी से भी उनका कार्य चल । है अस्थायी श्रम सदैव ही कम मजदूरी पाता है । नियोजक भी ऐसा अनुभव करते है. उनके प्रशिक्षण आदि पर व्यय करना लाभप्रद नहीं है, क्योंकि प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात आवश्यक नहीं है कि स्त्री श्रमिक कार्य ही करें । उनकी अस्थायी प्रवृत्ति के कारण उन पर उत्तरदायित्व का कार्य छोडने में डरते है । उनकी दृष्टि में स्त्री सै पुरूष अधिक विश्वास योग्य होता है ।

(3) स्त्री श्रमिकों का कार्य क्षेत्र सीमित है । उनके लिए व्यवसाय गिने-चुने है । प्राय : अकुशल कार्य के लिए रक्खी जाती है जिनकी कि मजदूरी को दर कम रहती है, व्यवसायों के सीमित होने के कारण श्रम की मांग भी सीमित रहती है ।

(4) पुरुषों की भांति स्त्री श्रम का संगठन कम होता है । स्त्री श्रमिक संघ के अभाव में असंगठित रहकर अपनी मजदूरी बढ़ाने में असमर्थ रहती है ।

(5) प्राय: स्त्रियां अपनी मजदूरी को परिवार की आय में थोडी सी वृद्धि कर लेना मात्र अथवा अपने शौकों की पूर्ति का साधन समझती है । वे इस विषय में तनिक भी चिन्तित नहीं रहती है कि उन्हें कितनी मजदूरी प्राप्त होती है । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को संगठित करना कठिन होता है । नि: सन्देह इसका एक कारण यह है कि बहुत सी अविवाहित लडकियों को, जो माता पिता के साथ ही उनके घर रहती है, अपने जीवन निर्वाह के पूर्ण उत्तरदायित्व का सामना नहीं करना पड़ता, भले ही वे स्वयं अपना तथा अन्य व्यक्तियों को भी व्यय उठाती है और उन्हें उतने ही धन से सन्तोष हो जाता है जो उनके जेब खर्च तथा अपने निजी वस्त्र खरीदने के लिए पर्याप्त हो । नियोजक इस बात का पूर्ण लाभ उड़ाते है और उन्हें कम मजदूरी प्रदान करते है ।

(6) स्त्रियो पर अनेक सामाजिक प्रतिबन्ध है । अनेक रीति रिवाज जैसे- पर्दे प्रथा, इत्यादि इस मार्ग में रूकावट डालते है । अनेक कार्य उनके लिए वर्जित है । पालियों में कार्य करना उनके लिए कारखाना अधिनियम के अनुसार वर्जित है ।

(7) स्त्री श्रमिक, पुरुष श्रमिक की भांति अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं: कर सकती है । अत : पुरुषों की अपेक्षा उन्हें कम मजदूरी प्रदान की जाती है ।

(8) स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक अवकाश तथा अन्य सुविधायें प्रदान की जाती है । फलत : उन्हें अपेक्षाकृत कम मजदूरी प्रदान की जाती है ।

उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है। परन्तु आजकल स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार कें कारण यह मांग तीव्र होती जा रही है कि स्त्री पुरुष दोनों ही समान मजदूरी दी जाये । हमारा संविधान भी समान कार्य के लिए समाज मजदूरी की व्यवस्था करता है । चाहे कार्य करनें वाला पुरुष हो अथवा स्त्री । वास्तव में स्त्री श्रमिक को दी जाने वाली वास्तविक मजदूरी पुरुष श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी से सदैव अधिक होती है, क्योंकि उन्हें मातृत्व लाभ आदि अनेकों सुविधायें प्रदान करनी पड़ती है जिन पर काफी. धन व्यय करना पड़ता है । सामाजिक दृष्टि से पुरुष और स्त्री को समान मानना चाहिए परन्तु समान वेतन के सिद्धान्त से स्त्री श्रमिक के रोजगार में कमी हो जायेगी । इस सिद्धान्त को लागू करने पर यह प्रत्यक्ष रूप से हुआ भी है । कुछ नियोजकों ने स्त्री श्रमिकों के स्थान पर पुरूष श्रमिकों की भर्ती कर ली है । इस प्रकार समान वेतन का सिद्धान्त हानिकारक है क्योंकि इससे बेरोजगारी के कारण स्त्री श्रमिक अपना समस्त मजदूरी से वंचित रह जायेगी ।

पाश्चात्य देशों में स्त्री श्रमिक सव सुदृढ एवं संगठित होते जा रहे है । धीरे-धरि स्त्रियों पर से सामाजिक प्रतिबन्ध भी समाप्त होते जा रहे है । जिनका परिणाम 'यह हो रहा है कि धीरे-धीरे स्त्रियों की मजदूरी में वृद्धि हो रही है । समाजवाटी व्यव्स्था के देशों में तो स्त्री पुरुष

भिन्नता न रख दोनों को समान अधिकार प्राप्त है । इन देशों का अनुभव है कि स्त्रियां पुरुषों से किसी कार्य मे पीछे नही है । यह विचार भ्रमात्मक है किए सभी व्यवसायों और उद्योगों में स्त्री श्रमिकों को कम मजदूरी प्रदान की जाती है । कुछ व्यवसाय तौ प्रकृति में ऐसे होते है कि उनके लिए स्त्री श्रमिक ही अधिक उपयुक्त होती है तथा उनमें पुरुषों की अपेक्षा- उन्हें अधिक मजदूरी प्राप्त होती है । समान मूल्य के कार्य के लिए पुरुष और महिला श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय संख्या 100 के कार्यान्वयन के प्रश्न पर 27 - 28 सितम्बर 1974 को हुए श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में विचार विमर्श किया गया था । श्रम मनी सर्व सम्मति के सम्मेलन में इस बात के लिए सहमत थे कि जिन राज्यों से अभी तक इस अभिसमय को अक्षरश और भावना के अनुकूल पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं किया हैं, उन्हें शीघ ही ऐसा करना चाहिए राज्य सरकारों आदि से अनुरोध किया गया है कि वे इस विषय में समुचित कार्यवाही करें ।

रोजगार व रोजगार के अवसरों और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 के अनुसार महिलाओं कौ बराबर पारिश्रमिक के भुगतान के मामलों मैं महिलाओं के प्रति भेदभाव को रोकने के विचार से महिला सेल, महिला श्रमिकों के कल्याण की दृष्टि से नीतियां एवं कार्यक्रम तैयार करते हैं ।

17.5 सारांश

विभिन्न क्षेत्रों अथवा उद्योगो या एक ही उद्योग की विभिन्न इकाईयों अथवा एक ही रोजगार एवं श्रेणी के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य मजदूरी की दरों में पाये जाने वाले अन्तर को मजदूरी भिन्नता कहते है । मजदूरी भिनक के उत्तरदायीकारण श्रम बाजार में अप्रतियोगी समूहों की उपस्थिति नया समकारी अन्तर है । कुछ अमौद्रिक तत्व जैसे- कार्यों का स्थायित्व एवं नियमितता कार्य की प्रकृति कार्य का दायित्व एवं विश्वसनीयता कार्य अवधि, प्रशिक्षण संबंधी लागत और कठिनाई के भावी उन्नति की आशा स्थान विशेष पर रहन सहन की समान तथा अतिरिक्त सुविधाएं आदि मजदूरी भिन्नता उत्पन्न करती है । प्राय : एक ही व्यवसाय या एक समान कार्य में लगे हुए श्रमिको की मजदूरियों में भी भिन्नता देखने को मिलती है । इसका प्रमुख कारण बाजार संबंधी अपूर्णताएं तथा श्रमिकों के गुणों मैं अन्तर है ।

मजदूरी भिन्नता के मुख्यत : तीन प्रकार है :-

(1) रोजगार बाजारों की अपूर्णताओं के कारण उत्पन्न मजदूरी भिन्नताएं,

(2) सामाजिक मूल्यों तथा पक्षपात के फलस्वरूप उत्पन्न मजदूरी भिन्नताएं

(3) व्यावसायिक मजदूरी भिन्नताएं

आर्थिक विकास साथ साथ मजदूरी संबंधी अन्तर कम होते जाते है पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में श्रमिकों के विभिन्न प्रतियोगी वर्गों की मजदूरी दरें श्रम बाजार की दशाओं पर निर्भर करती है । साम्यवादी अर्थव्यवस्था में निजी सम्पति के मूलधन द्वारा अनार्जित आय। से उत्पन्न आय के अन्तरों को समाप्त करने के उपरान्त भी मजदूरी संबंधी भिन्नताएं पाई जाती है । अत : मजदूरी अन्तर अपरिहार्य माना जाता है ।

औद्योगिक विकास के आधार पर विभिन्न देशों में मजदूरी की विभिन्न पाई जाती है उन्नत देशों में मजदूरी दरें उच्च होतीं है तथा आर्थिक हानि से पिछड़े देशों में दरें कम होती है । प्राय : स्त्री श्रमिकों में पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है क्योंकि ' अशिक्षित होती है वे स्थायी रूप से कार्य ग्रहण नहीं कर पाती । विवाह के पश्चात् या पारिवारिक उत्तरदायित्व के कारण 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं कार्य छोड़ देती है । उनमें गतिशीलता कम होती है । अत: अपने घर के आस पास कार्य करने की विवशता के कारण जो मजदूरी मिल जाती है उसे ही स्वीकार करना पड़ता है । महिलाओं पर घर चलाने का पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं होता, उनकी आय परिवार की अतिरिक्त आय ही होती है अत उन्हें जो भी कम अधिक मिलता है उससे ही संतुष्ट हो जाती है । स्त्रियों के श्रम संगठन नही होते है । और श्रम संघों में भी स्त्रियां के श्रम संगठन नही होता है और श्रम संघों में भी स्त्रियों की भागीदारी केवल कागजी होती 'है अत : वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं कर पाती और अधिक काम करने के बावजूद कम मजदूरी प्राप्त करती है सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण महिलाओं का कार्य क्षेत्र सीमित रह जाता - जिसका विपरीत प्रभाव उनकी मजदूरी पर पड़ता है ।

17.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दरों में अन्तर के कारण बताईये?
2. विभिन्न उद्योगों में ओर एक ही उद्योग में विभिन्न मजदूरों की मजदूरी विभिन्न दरों में क्यों दी जाती है?
3. मजदूरी दरों में भिन्नता क्यों होती है? महिलाओं की मजदूरी प्राय : पुरुषों की मजदूरी से कम क्यों होती है?

इकाई 18
मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 मजदूरी बनाम वेतन

18.3 न्यूनतम मजदूरी, आजीविका मजदूरी एवं उचित मजदूरी ।

18.4 मजदूरी पद्धतियाँ एवं 'उनके प्रकार

18.4.1 समयानुसार मजदूरी पद्धति,

18.4.2 कार्यानुसार मजदूरी पद्धति

कार्य कें अनुसार बढ़ती हुई मजदूरी

कार्य के अनुसार घटता हुई मजदूरी

समयानुसार मजदूरी पद्धति बनाम कार्यानुसार मजदूरी पद्धति,

तूलनात्मक अध्ययन

18.5 विभिन्न प्रेरणात्मक पद्धतियाँ

18.5.1 सामान्य प्रेरणात्मक योजनाएं

शेष अथवा ऋण योजना

शत-प्रतिशत बोनस योजना,

सर्पी अथवा विषय मूल्य पर आधारित पद्धति,

लाभ-भागिता पद्धति ।

18.5.2 विशिष्ट प्रेरणात्मक योजनाएं

हाल्से प्रीमियम योजना,

रोवन योजना,

टेलर भिन्न कार्यानुसार योजना,

बहु खण्ड अथवा मैरिक योजना

इमर्सन कार्यक्षमता बोनस योजना,

गैण्ट कार्यभार एवं बौनस योजना,

बेडो की बिन्दु प्रीमियम योजना, तथा

जीवन निर्वाह लागत मजदूरी विधि

18.6 बोनस (Bonus)

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 निबन्धात्मक प्रश्न

18.0 उद्देश्य

आप इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् इस योग्य हौ सकेंगे कि मजदूरी का आशय जान सकें, वेतन तथा मजदूरी में अन्तर समझ सकें, विभिन्न प्रकार की ऐसी मजदूरी पद्धतियों कौ जान सके, जो कि दीर्घ समय से चली आ रही है, ऐसी मजदूरी से त योजनाओं के गया को ग्रहण कर सके, जो विभिन्न प्रबन्ध - शास्त्रियों अथवा अभियंताओं ने प्रतिपादित की है। इसी प्रकार, आप बोनस की नवनिनम प्रवृत्ति (Recent Trends) के, में भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

मजदूरी, नियोक्ता द्वारा श्रमिक कों उसके कार्य के प्रतिफल में दिया गया - पारिश्रमिक है । श्रमिकों के लिय मजदूरी, आय का मूल सोन नाथ अभिप्रेरणा का प्रमुख साधन होती है । प्रबन्धशास्त्रियो का, मजदूरी के बारे में यह कहना है कि यह न केवल मजदूरों के रहन-सहन के स्तर का निर्धारक होती है अपितु यह एक ऐसी धुरी है जिसके चारों ओर श्रम समस्याएं चक्कर -लगती है । इसे प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों और श्रमिकों को देय मौद्रिक, माना जाता है। और ऐसा मौद्रिक क्षतिकारक', उन्हे नियोक्ता के लिए माल ताश सेवाएं प्रदान करने के बदले में प्रदान किया जाता है । इसे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक आधार दिया जाता है ।

फर्म के दृष्टिकोण से, मजदूरी उद्गमन लागत का प्रमुख घटक होती और संगठन के लाभों के निर्धारण में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है । मुक्त व्यापार नीति (Laissez faire Policy) के अनुसार भी, मजदूरी कों कर्मचारी द्वारा सेवाओं को बेचने के ऐ, नियोक्ताओं द्वारा चुकाया गया मूल्य माना गया है । यह एक प्रकार से, अनुबन्धात्मक मानी जाती थी और वर्तमान में भी इसका मूल स्वरूप वही है, हाँ, परिस्थितिनुसार कुछ गिरवाना अवश्य दृष्टिगोचर होतें है ।

वैसे यह ज्ञात होना आवश्यक है कि मजदूरी में विभिन्न प्रकार के., यथा "यात्रा भले", "प्रावधायी निधि में नियोक्ता का अंशदान", "आवासीय-सुविधा", "कल्याणकारी वृत्तियाँ", "सेवा-निवृत्ति पर: ग्रेच्यूती", अधि-समय भुगतान तथा अन्य पारिवारिक भत्ते सम्मिलित नही किए जाने है ।

इस प्रकार, उत्पादन के पांच प्रमुख घटको क्रमश: भूमि श्रम, पूँजी, एवं साहस में 'श्रम' अपना विशिष्ट स्थान रखता है और इसके सहयोग पर ही उद्योग की समृद्धि नब निर्भर करती है जबकि श्रमिकों को अन्य सुविधाओं के साथ-साथ पर्याप्त मजदूरी भी जाए । वस्तुत मजदूरी, श्रमिकों और प्रबन्धकों के मध्य सदैव विवाद का विषय रही है ।

18.2 मजदूरी बनाम वेतन

(i) मजदूरी सें आशय उस भुगतान से होता है जो कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों तथा अपर्यवेक्षकीय कार्य करने वाले कर्मचारियों को कार्य के पुरस्कार के रूप दिया जाता है ।

(ii)वेतन वह भुगतान है जो कि एक निश्चित समय के लिए, निश्चित राशि कें रूप में कार्यालय के कर्मचारियों प्रशासकीय अधिकारियों, प्रबन्धकों तथा अन्य पेशेवर व्यक्तियों को प्रदान किया जाता तै ।

18.3 न्यूनतम मजदूरी, आजीविका मजदूरी तथा उचित मजदूरी

न्यूनतम मजदूरी : सामान्य जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक धनराशि को न्यूनतम मजदूरी कहा जा सकता है । न्यूनतम मजदूरी मौद्रिक रूप में गिलने वाली वह धनराशि है, जिससे श्रमिक स्वयं का तथा अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके तथा कार्य करने, के लिए वांछित क्षमता बनाए रख सकें । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए युक्त मजदूरी के अन्तर्गत शिक्षा तथा चिकित्सा सुविधाए भी सम्मिलित की जाती है ।

आजीविका मजदूरी : यह वह मजदूरी है जो श्रमिक की भोजन व्यवस्था, आवास और वस्त्र व्यवस्था तथा बचत सम्बन्धों आवश्यकताओं की संतुष्टि करती हैं ।

उचित मजदूरी : किसी उद्योग में प्रचलित मजदूरी की दर, जो उसी प्रकृति के अन्य उधोंगों में प्रचलित मजदूरी की दर सें कम नहीं हो, उचित मजदूरी की श्रेणी में आती है ।

18.4 मजदूरी पद्धतियाँ और उनके प्रकार

औद्योगिक क्षेत्र मैं, श्रमिकों को पुरस्कर्ता(प्रतिफल देने हेतु) करने के लिए विभिन्न संगठनों में, मजदूरी पद्धतियों का प्रयोग' किया जाता है । मजदूरी पद्धतियाँ., संगठन कें आंतरिक ढांचे, वित्तीय व्यवस्था तथा बहुत कुछ बाहय घटको पर निर्भर करती है । संगठन के लिए, प्रबन्धक वर्ग जैसी पद्धति को अनुकूल समझता है, उसी दृष्टिकोण से वह लागु, करने के लिए प्रयत्नशील्न रहता है । दूसरी ओर, अर्थशास्त्रियों का यह भी मत है कि जिस प्रकार की भुगतान पद्धति से मजदूर संतुष्ट रहता हो और प्रबन्ध का कार्य न्यूनतम लागत पर: प्रर्ण किया जा सकता हौ, उसी पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए । इसके लिए, उद्योग की प्रकृति, उत्पादन प्रणाली तथा कर्मचारी की योग्यता का स्तर देखा जाना आवश्यक माना जाना चाहिए ।

18.4.1 समयानुसार मजदूरी पद्धति (Time Wage System)

इस मजदूरी पद्धति का आधार 'समय' होता है । इसका श्रमिक द्वारा उत्गदकता वस्तु की मात्रा से कोई सम्बद्ध नहीं होता है और श्रमिक को प्रति घंटा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति पखवाड़ा अथवा प्रति माह के अनुसार मजदूरी प्रदान की जाती है । इस पद्धति में कार्य की मात्रा अथवा उसकी किस्म के सम्बन्ध में कोई शर्त निर्धारित नहीं की जाती है, केवल श्रमिक से यह 'आशा ' की जाती है कि वह बनाए गए प्रमाप के अनुरूप कार्य करेगा । इस पद्धति में, प्रत्येक श्रमिक का यह विश्वास बना रहता है कि 'कार्य - समय ' की समाप्ति के पश्चात् उसे एक निशचित राशि अवश्य ही मिलेगी । वर्तमान में, भारत के लगभग 95 % से अधिक उद्योगों / कारखानों / संघटनों अथवा कमानियों में, इसी पद्धति को, मजदूरी भुगतान के लिए काम में लाया जाता है ।

इस विधि के अनुसार देय मजदूरी की गणना करते समय श्रमिक द्वारा संसद में लगाए गए समय को निश्चित मजदूरी - दर से गुणा कर दिया जाता है । इसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

सूत्र श्रमिक को देय मजदूरी = समय x दर

उदाहरणार्थ एक श्रमिक ने 20 दिन काम किया और उसकी मजदूरी दर, यदि 22 रूपये प्रतिदिन है तो उसे देय मजदूरी होगी अर्थात् 20 x 22 रूपया प्रतिदिन = 440 रुपए ।

इस मजदूरी पद्धति को अपनाने से, संगठनों तथा श्रमिकों को कई लाभ प्राप्त होते है । इसलिए, यह पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय है ।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के लाभ

1. यह कुशल एवं शिल्पकारी कार्यो के लिए श्रेष्ठ पद्धति है : इस पद्धति में समय-सीमा नहीं होने के, कारण, श्रमिक को कार्य समाप्त करने की कोई जल्दी नहीं होती है और उसे अपनी कुशलता को प्रदर्शित करने का पूरा अवसर मिलता है ।

2. पूर्ण मजदूरी प्राप्त होने की निश्चितता रहती है : इसमें श्रमिको को यह विश्वास रहता है कि निधारित समय के पश्चात् एक निश्चित मजदूरी अवश्य मिलती रहेगी । इसके फलस्वरूप, वह अपने काम को पूरी लगन और तत्परता से करता है ।

3. प्रमाणीकरण की आवश्यकता वही होना : इस विधि मे मजदूरी का भुगतान कार्य के आधार पर नहा किया जाता है, अतएव कार्य को प्रमाणित करने की अवश्यकता नहीं होती है।

4. किसी घटना के पंक्ति हो जाने पर भी मजदूरी की निश्चितता, होना : श्रमिक को यह विश्वास रहता है कि चाहे वह अस्वस्थ अथवा दुर्घटनाग्रस्त हो जाए, तो भी उसे निश्चित पारिश्रमिक अवश्य मिलेगा । मजदूरी की सुरक्षा और निश्चितता की भावना, उसे अन्दाजा मासिक बजट संतुलित बनाए रखने में सफलता प्रदान करती है ।

5. श्रम-संघो द्वारा स्वीकृति प्राप्त होना : एक वर्ग के क्रमिक को एक सी मजदूर दिये जाने के कारण उनमें कुशल-अकुशल का भेद पैदा नही होता और संघों में सभी श्रमिकों की स्थिति एक जैसी रहती है । यही कारण है कि श्रम-संघ इसे पसन्द करते है ।

6. प्रशासनिक व्यय कम होना : श्रमिक निश्चित समय पर काम पर आते है और निश्चित समय पर ही स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हुए समय पर संगठन को छोड़कर जाते हैं । फलस्वरूप, प्रशासन व्यय भी कम होते हैं । यदि समयबद्धता नहीं होती तो प्रत्येक कार्य के लिए बार-बार श्रमिकों को ढूंढने और उन्हें बुलाने का प्रशासनिक भार, अत्यधिक बढ़ जाता ।

7. साधनों का समुचित प्रयोग होना : इस विधि में श्रमिकों को कार्य समाप्त करने की 'शीघ्रता ' नहीं होती । फलस्वरूप, उत्पादन के लब्ध साधनों, तथा कच्चा माल, उपकरणों और मशीनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग भी नहीं होता तथा अन्य साधनों की बर्बादी पर रोक लगती है ।

8. उत्पादन - नियोजन में सुविधा रहती है : कोई भी संगठन, जहाँ कच्चे माल को पक्के माल में निर्मित करने प्रकिया निरन्तर चलती रहती है, वहाँ आवश्यकता इस बात की रहती है कि सभी विभागों का प्रक्रिया मे समयबद्ध तालमेल बना रहे । श्रमिक, निश्चत समय में

कार्य करता है, अतएव इस उद्देश्य को, समय सार मजदूरी पद्धति के द्वार पूर्ण किया जा सकता है ।

9. श्रमिकों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव नही पड़ना : इस' में, कार्य की मात्रा के साथ मजट्री के न जुड़े होने से श्रमिक को अति - श्रम (Overwork) नहीं करना पड़ता है । इससे श्रमिकों की कार्यक्षमता बनी रहती है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा । नहीं पड़ता है ।

10. निर्देशन एवं नियंत्रण व्ययों में कभी होना : इस पद्धति के सिद्धान्तों के अनुसार, श्रमिक समय पर आते है और अपना कार्य करके चले जाते हैं । इसलिए, इन्हें अधिक निर्देशन देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है और ना ही उनकी क्रियाओं को नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है । इससे. वस्तु की लागत भी कम हो जाती है ।

प्रबन्धशास्त्रियों का कहना है कि प्रत्येक पद्धति में जहां एक ओर कुछ लाभ होते है, वहां वह दोष रहित भी नहीं होती । अतएव, इसके दोषों का विवेचन करना भी, यहाँ अनावश्यक नही होगा ।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के दोष

1. कुशलता के लिए प्रेरणा का अभाव पाया जाना : समय के आधार पर मजदूरी दिए जाने के कारण, यह पद्धति कुशल और अकुशल श्रमिकों में कोई भेद मही करती है । यह पद्धति ना तौ अधिक कुशल श्रमिक को पुरस्कृत करती है और ना ही अकुशल श्रमिक को दंड देती है । परिणाम स्वरूप, कुशल' श्रमिक हतोत्साहित हो जाता है और पूर्ण कुशलता के साथ कार्य नहीं कर पाता ।

2. श्रमिक पर अनैतिक प्रभाव पड़ता है : इस पद्धति में, श्रमिक में यह प्रवृत्ति आ जाती है कि "कार्य उतना करो, जिससे नौकरी बनी रहे ।" इससे श्रमिक का नैतिक पतन प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् वह पूर्ण ईमानदारी से उस कार्य को पूरा नहीं करना चाहता है । एक कुशल श्रमिक काम से जी चुराने लगता है ।

3. कार्यो में अनावश्यक विलम्ब होता है : श्रमिकों में कार्य को समय पर समाप्त न करने की प्रवृत्ति पनपने से 'उत्पादन - लक्ष्य' समय पर पूरे नही हो पाते हैं । ग्राहकों द्वारा दिए गए आदेशों की प्राप्ति भी समय पर नहीं हो पाती है और लालफीताशाही पनपने लगती है।

4. यह एक अनार्थिक विधि है : इस विधि में किसी दिन कार्य कम होने अथवा बिल्कुल नहीं होने पर भी श्रमिकों को पूरी मजदूरी का भुगतान करना पड़ता है । इस प्रकार, उद्योगपतियों को कुल मिलाकर, आनुपातिक तौर पर अधिक मजदूरी का भुगतान करना पड़ता है । इससे, निरीक्षण लगाते भी, इस विधि में बढ़ जाती हैं । इस विधि से किसी कार्य को पूरा करने का समय एवं मौद्रिक लागतें भी अधिक आती हैं ।

5. औद्योगिक संघर्षो में वृद्धि होना : इस पद्धति में श्रम एकता को बढ़ावा मिलता है और श्रम संघ अपने प्रभाव का अनुचित प्रयोग करने लगते हैं । यह स्थिति मालिक और मजदूर (पूंजी और श्रम) के सम्बन्धों को बिगाड़ती है । इसके अतिरिक्त, इस विधि में श्रमिकों को स्थायी-अस्थायी तथा प्रशिक्षु आदि कई भागों में बाँट दिया जाता है, जिससे औद्यौगिक संघर्षो में वृद्धि होने लगती है ।

6. सापेक्षिक कुशलता निर्धारित करने मे कठिनाई होना : इस पद्धति में श्रमिक के व्यक्तिगत उत्पादन का हिसाब नहीं रखा जाता है । अतएव, उत्पादन की प्रति इकाई में श्रम लागत का निर्धारण करना कठिन हो जाता है और इसी कारण, व्यक्तिगत कुशलता के मापदंड का, इस विधि में, कोई औचित्य नहीं रह जाता है ।

7. श्रमिकों में स्वाभाविक रुचि का अभाव होना : समयानुसार मजदूरी पद्धति में बहुत से श्रमिक ऐसा कार्य करते हैं जिसमें न तो उनकी रुचि होती है और ना ही वे विशिष्ट योग्यता धारण करते हैं । कई श्रमिक तो मात्र जीवन-यापन के लिए ही ऐसा कार्य करते हैं.। इससे, नियोक्ता और श्रमिक एवं अर्थव्यवस्था, तीनों को ही हानि होती है ।

8. प्रबन्धकों का पुर्वानुमान सही नही होना : जब यह निश्चय करना संभव नही हो कि किसी कार्य को पूरा करने में कितना समय लगेगा, तब लागत का सही अनुमान लगाना भी संभव नहीं हो पाता है । इसीलिए, प्रबन्धक वर्ग उत्पादित वस्तु की दर का अग्रिम-निर्धारण करने में, अपने आपको असहाय महसूस करने लगता है ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, आपने समयतसार मजदूरी पद्धति के लाभों एवं दोषो का अध्ययन किया है । प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इस पद्धति की उपयुक्तता, कहाँ पर सिद्ध होती है? इसके लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना है :

उपयुक्तता की दशाएँ

1. जहाँ कार्य को मापा जाना संभव नहीं हो सकता है ।
2. जहाँ कार्य कोई प्रकृति ऐसी हो कि समय सार मजदूरी' देने में ही मालिक को लाभ हो;
3. जहाँ निर्मित होने वाली वस्तुओं को इकाईयों में विभाजित वर्ग किया जा सकता हो;
4. जहाँ क्सिम पर ध्यान देना आवश्यक हो; तथा,
5. जहाँ उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाना हो तथा कार्य की.प्रकर्तिक निरीक्षणात्मक हो।

18.4.2 कार्यानुसार मजदूरी पद्धति (Piece Wage System)

इस पद्धति में श्रमिकों दो निष्पादित कार्य के अनुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है । अन्य शब्दों में, जो श्रमिक जितना और जैसा कार्य करता है, उसी के अनुसार, उसे मजदूरी का भुगतान किया जाता है । कार्य को करने में श्रमिक कितना समय लगाता. है, इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है । इस पद्धति के अनुसार, जो श्रमिक जितना अधिक कार्य करता है, उसको उतना ही अधिक पारिश्रमिक प्राण होता है । श्रमिक दुवारा किए जाने वाले ऐसे कार्यो पर सेवानियोजक, अप्रत्यक्ष नियन्त्रण रखता है ।

इस मजदूरी को दो उप - पद्धतियों में विभाजित किया जाता है :

(अ) कार्यानुसार बढ़ती हुई मजदूरी पद्धति

यह उप - पद्धति उत्साही श्रमिकों के लिए अत्यन्त लाभप्रद एवं प्रेरणास्पद रहती है । इसमें जो श्रमिक जितनी अधिक इकाईयों का उत्पादन करता है, उसे उतनी ही अधिक मजदूरी प्राप्त होती है । किन्तु एक सीमा के पश्चात् चह मजदूरी सीमित भी रह जाती है । ऐसा

इसलिए होता है क्योंकि व्यक्ति की कार्यक्षमता सीमित होती है । प्राय : यह दृष्टिगोचर होता है कि उद्योगपति, इस विधि का विरोध करते हैं क्योंकि उनका कहना यह है कि उत्पादन विधि में केवल श्रमिकों का ही सहयोग नहीं होता है अपितु मशीनों, उत्पादन विधियों, अवसरों, प्रबन्धकीय तथा पूतिकर्ताओं का भी सहयोग होता है ।

(ब) कार्यानुसार घटती हुई पद्धति

इस उप - पद्धति में, श्रमिकों का काम जैसे जैसे बढ़ता जाता है, मजदूरी की राशि को क्रमश : प्रति इकाई कम कर दिया जाता है । यह पद्धति वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित नहीं है, क्योंकि इसमें सेवा नियोजकों को तो लाभ होता है परन्तु श्रमिकों को, इससे हानि होती है । मजदूरी का निर्धारण भी, सेवानियोजकों, द्वारा ही, विगत अनुभवों के आधार पर किया जाता है। श्रमिकों द्वारा जो उत्पादन किया जाता है, उसे एक कार्ड में लिखा जाता है और अन्त में कुल उत्पादित इकाईयों को जोड़कर, मजदूरी की गणना करके श्रमिकों को प्रदान कर दी जाती है।

गणना की विधि - कार्यानुसार मजदूरी की गणना करते समय, मजदूरों द्वारा बनाई गई कार्यो को प्रति इकाई मजदूरी दर से गुणा कर दिया जाता है ।

इसकी गणना का सूत्र इस प्रकार है -

मजदूरी = संख्या x दर

E=Nr

जहाँ अर्थात्

E = Earning of the labour. (श्रम का प्रतिफल)

N = Number of unit produced.(उत्पाद इकाइयों की संख्या)

r = Rate (दर)

उदाहरण के लिए, एक श्रमिक 20 इकाई बनाता है और एक इकाई की दर 5 रूपया है तो उसे देय मजदूरी होगी -

20 x 5 = 100 रूपया

इस पद्धति का विकास, समयानुसार मजदूरी पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए हुआ कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के लाभ

1. यह प्रेरणात्मक है : इस पद्धति- में श्रमिक की कार्य - योग्यता का मूल्यांकन होता है, जिससे श्रमिकों को अधिकाधिक श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । यh पद्धति, कुशल और अकुशल श्रमिकों के बीच अन्तर को स्पष्ट करती है ।

2. कार्यक्षमता और उत्पादकता को बढ़ावा देती है : श्रमिक को मिलने वाली प्रत्यक्ष प्रेरणा के कारण वह अधिक उत्पादन करने के लिए प्रयत्नशील रहता है, जिससे उसकी कार्य क्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है ।

3. संगठन के कुल उत्पादन में वृद्धि करती है : प्रत्येक श्रमिक अधिक से अधिक उत्पादन की ओर उन्मुख रहता है । जिससे, अल्प समय में अधिक उत्पादन किया जाना संभव हो जाता है, जिससे उत्पादन लागतों में भी कमी आती है ।

4. पर्यवेक्षणीय लागतों में कमी आ जाती है : इस पद्धति में, ऐसा इसलिए संभव है कि श्रमिकों से कार्य कराने के लिए, उन्हें मार्गदर्शन या निर्देशन की आवश्यकता नहीं पडती है । इसका परिणाम, यह होता है कि ऐसी लागतों में कमी होने से संगठन को आर्थिक लाभ प्राप्त होता है ।

5. औद्यौगिक - सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण बने रहते हैं : यह पद्धति, सेवा नियोजक एवं श्रमिक, दोनों के लिए हितकारी है । दोनों पक्ष, इसलिए प्रसन्न रहते हैं कि एक ओर चाहे गए अनुसार सैवानियोजक को 'वांछित' लक्ष्य अथवा उत्पादन की प्राप्ति होती है, तो दूसरी ओर, कुशल श्रमिक को न्यायोचित मजदूरी की प्राप्ति होती है ।

6. श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि होती है : जिन श्रमिकों कों, न्यायोचित मजदूरी नहीं मिलने को मानसिक - स्थिति बनी रहती हो तो वे श्रमिक समान प्रकृति वाले अन्य ऐसे उद्येगों में, जहाँ कार्यरत संगठन की अपेक्षा अधिक मजदूरी प्रदान की जाती हो, वर्तमान संगठन को छोड्कर अन्य संगठनों में जा सकने में स्वतन्त्र होता है ।

7. उपभोक्ताओं को भी लाभ प्राप्त होता है : यह पद्धति न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन को संभव बनाती है । इससे, उपभोक्ताओं को श्रेष्ठ वस्तुएं कम लागत प्राप्त होने लगती

8. श्रमिकों को तुलनात्मक, कार्यक्षमता का ज्ञान होता है : इस पद्धति में, श्रमिकों द्वारा किए गए कार्य के आधार पर, इस प्रकार पहचाना जा सकता है कि कौन - सा श्रमिक कुशल है, कौन-सा अर्द्धकुशल और कौन-सा अक्षम है? इससे सेवा नियोजक को श्रमिकों. की तुलनात्मक कार्यक्षमताओं की जानकारी हो जाती है ।

9. यन्त्रों एवं उपकरणों की सुरक्षा बनी रहती है : श्रमिक को यह ज्ञात होता है कि जितने समय तक यंत्र एवं उपकरण खरब रहेंगे, उसे व्यर्थ ही रोजगार के अवसर गवाने पड़ेंगे और मजदूरी पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा'। अतएव, वह उनकी सुरक्षा हेतु पूरी सावधानी से कार्य करता है ।

10. श्रमिकों को उच्च जीवन स्तर प्राज़ होता है : प्रदान और परिश्रम के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण श्रमिक अधिक 'परिश्रम करके, (क्षमतानुसार) मजदूरी कमाते है, जिससे उनका जीवन स्तर उचां उठता है और समाज में भी वे एक 'समान जनक स्थिति प्राप्त करने में सफल रहते है ।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति मे भी कुछ दोष गाए गए है । इस पद्धति को प्राय : ऐसे कार्यो के भुगतान हेतु प्रयोग मे. ताया जा]ग है जिसमें एक ही प्रकृति का कार्य किया जाता है । इस पद्धति को, उस स्थिति में लागू करने में कठिनाई आती है जब विभिन्न इकाइयों का माप

करना सम्भव नहीं हो और एक ही कार्य के लिए विभिन्न योग्यता वाले श्रमिक काम पर लगाए जाते ही ।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के दोष

1. यह कलात्मक कार्यो के लिए अनुपयोगी है : कौशलपूर्ण कार्यो को करने में समय अधिक लगता है और एक श्रमिक को., आनुपातिक रूप से उतनी मजदूरी नहीं मिल पाती, जितना वह परिश्रम करता है । इसलिए, इस पद्धति में कलाकारों का कोई महत्व नहीं है ।

2. श्रमिक एकता नही रख पाते हैं : इस पद्धति में, मजदूर अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लिए कार्य में व्यस्त रहते हैं और श्रम-संघों की कार्यवाहियों में भाग नही ले पाते, जिससे श्रमिक एकता में कमी होने लगती है । इस कारण श्रम - संघ, इस विधि को पसन्द नहीं करते है ।

3. श्रमिकों को कार्य स्वतंत्रता-नही मिल पाती है : इसमें सेवा नियोजक निर्धारित किस्म एवं मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को बार-बार निर्देश देता है तथा प्रत्यय मे हस्तक्षेप करता है । इससे, कार्मिक लगन एवं अपनत्व से कार्य नहीं कर पाते हैं ।

4. इसमें यंत्रों और कच्चे माल का दुरूपयोग होता है : श्रमिक, अपने उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने कें लिए, यंत्रों का अधिकतम प्रयोग करते हैं । इससे यंत्रों की अनुचित घिसावट अथवा उनका हश्र होता है । इसी प्रकार, किस्म सुधारने की पुनरावृत्ति के कारण कच्चे माल का भी अपव्यय होने लगता है, जो अंतत : संगठन और श्रमिक के लिए अहितकर होता है ।

5. अकुशल श्रमिकों को निर्वाह - योग्य मजदूरी नही मिलती है : यह पद्धति, अकुशल श्रमिकों के प्रतिकूल मानी जाती है । इस विधि में, मजदूरी कार्य पर आधारित होती है तथा न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित नहीं होती है । अतएव, अदक्ष श्रमिकों कौ तो न्यूनतम मजदूरी भी शान नहीं होती है ।

6. उच्च उत्पादन करने पर भी अधिक लाभ नही होता है : यदि संगठन में कार्यानुसार घटती हुई मजदूरी पद्धति रखी जाती हो तो उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ मजदूरी की दरें घटती चली जाती है । इससे, श्रमिकों को उच्च - उत्पादन के लाभ प्राप्त नहीं हो पाते है ।

7. स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है : इस पद्धति में, श्रमिकों का ध्यये उत्पादन स्के बढकर, अधिक मजदूरी प्राप्त करने का रहता है । इस कारण, श्रमिक अपने स्वास्थ्य और विश्राम पर समुचित ध्यान नहीं दे पाता है । श्रमिक अपने परिवार पर भी कम ध्यान दे पाता है । जिससे, कई सामाजिक बुराइयों पैदा होने की संभावना रहती है और फिजूल खर्चो की आदत पड़ जाती है ।

8. उत्पादन बनाम निरीक्षण व्यय : श्रमिक, अपने लिए अधिकतम उत्पादन की मात्रा पर ध्यान देते है और किस्म - नियन्त्रण (Quality Control) पर कोई ध्यान। नही देते हैं । जबकि सेवा नियोजक की दृष्टि से मात्रा और किस्म, दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं ।फलस्वरूप, निर्धारित स्तरों को बनाए रखने के लिए निरीक्षण 'अवस्थाओं पर अधिक राशि खर्च करनी पड़ती है ।

9. श्रमिक के लिए अवकाश को कोई महत्व नही होता है : इस पद्धति में, मजदूरी कार्य पर आधारित होती है और अवकाश के दिनों में मजदूरी का कोई औचित्य नहीं होता है । अतएव, किसी दिन अवकाश होने पर तो श्रमिक का पारिश्रमिक कम ही, हो जाता है ।

10. औद्योगिक विवादों का पनपना तथा श्रम संघों द्वारा विरोध होना : श्रमिकों द्वारा सामाजिक तथा नैतिक आधार पर इस पद्धति का विरोध किया जाता है क्योंकि इससे श्रम - संघों के महत्व में कमी आ जाती है । दूसरी और, सेवा नियोजकों और श्रमिकों के मध्य, श्रम लागतों, यंत्रों तथा उपकरणों की टूट-फूट की दशा में मजदूरी का भुगतान अथवा वस्तु की मरम्मत और किस्म आदि बातों पर परस्पर औद्यौगिक विवाद पनपने लगते हैं जो संगठन के लिए अहितकारी होते हैं ।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति की उपयुक्तता की दशाएं

निम्नलिखित स्थितियों में ही कार्यानुसार मजदूरी पद्धति उपयुक्त रहती है -

1. जहाँ एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन संभव हो
2. जहाँ कार्य को मापा जा सकता हो, तथा
3. जहाँ कार्य प्रणाली में बार-बार परिवर्तन नहीं होता है ।

समयानुसार मजदूरी पद्धति बनाम कार्यानुसार मजदूरी पद्धति (Time wages system V/s Piece rate System)

औद्योगिक संगठनों की परिस्थितियों के रूप, दोनों ही पद्धतियों का अपना-अपना महत्व है । यह संगठन को निर्धारित करना होता है कि किस मजदूरी भुगतान पद्धति को अपनाया जाए? दोनों ही पद्धतियों के कई लाभ हैं तो दूसरी ओर दोष भी हैं । प्रमुख बात, आपको यह ध्यान में रखनी है कि जहां कार्य का प्रमाणीकरण और मापन संभव नहीं हो, वहाँ समयानुसार मजदूरी पद्धति तथा जहां वस्तु की किस्म पर 'ध्यान नहीं दिया जाता हो, और उसकी मात्रा पर ही अधिक ध्यान, दिया जाता हो तो वहाँ कार्यानुसार मजदूरी प:द्धतिको अपनाना श्रेयस्कर रहता है । व्यवहार में यह देखा गया है कि संस्था के' आकार, उत्पादित वस्तु की प्रकृति और भुगतान क्षमता के अनुरूप दोनों ही पद्धतियों को अपनाया जा सकता है ।

तुलनात्मक 'अध्ययन एवं विश्लेषण' अथवा 'अन्तर'

उपयुर्क्त दोनों पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है-

अन्तर का आधार	समयानुसार मजदूरी पद्धति	कार्यानुसार मजदूरी पद्धति
1. शिल्पी एवं कलात्मक कार्यों हेतु	यह विधि (पद्धति), ऐसे कार्यो के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी गई है ।	शिल्पकारिता के लिए उपयुक्त नहीं मानी गई है । इसका प्रमुख हेतु कारण, कार्य में समय का अधिक लगना परन्तु औसत समय के आधार पर मजदूरी का कम मिलना है।
2. क्षतिपूरक राशि	इसमें, श्रमिक को एक निश्चित	इस पद्धति में, कार्य समाप्ति के

	(मजदूरी) की निश्चितता	समय समाप्ति (यथा -दैनिक, निश्चितता साप्ताहिक पाक्षिक और मासिक) के पश्चात् एक निश्चित राशि अवश्य प्राप्त होती है ।	पश्चात्, श्रमिक का कार्य पर होना आवश्यक नहीं होता। अतएव, मजदूरी का प्राप्त होना आवश्यक नहीं होता है।
3.	सेवा में स्थायित्व होना	सेवा पद्धति श्रमिकों को सेवा स्थायित्वता का आश्वासन प्रदान करती है।	इसमे श्रमिक को आवश्यक नहीं कि सेवा - नियोजक उसे स्थायी करे ही सही।
4.	श्रमिक और लाभप्रदता	यह कुशल और कारीगरी की योग्यता रखने वाले श्रमिकों के लाभप्रद नहीं होती है ।	यह कुशल श्रमिकों के लिए लाभप्रद होती है ।
5.	कार्य हेतु प्रेरणा प्राप्त करना	यह पद्धति, श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं करती है ।	इसमें कार्य के आधार पर मजदूरी प्राप्त होने के कारण श्रमिकों को अधिक कार्य करने की निरन्तर प्रेरणा मिलती रहती है ।
6.	निरीक्षण की आवश्यकता	इसे पद्धति में निरीक्षण की आवश्यकता अधिक होती है। अतएव, निरीक्षण - व्यय बढ़ जाते हैं ।	इसमें निरीक्षण की आवश्यकता निरीक्षण - व्यय भी, सेवा नियोजक को कम करने पड़ते है।
7.	अवकाश की मजदूरी का आकर्षण	श्रमिकों को इस पद्धति में अवकाश की भी मजदूरी (सवेतन अवकाश) प्राप्त होती है, अत : अवकाश का आकर्षण बना रहता है ।	इस पद्धति में, अवकाश होने औसतन उतनी ही मजदूरी काट ली जाती है । यह काम नहीं तो मजदूरी नहीं के सिद्धान्त पर आधारित होती है।
8.	माल की किस्म में सुधार पर ध्यान	इस पद्धति में, समय की सीमा नहीं होने के कारण, माल की किस्म में सुधार पर अधिक ध्यान दिया जाता है ।	इसमें कार्य - आधारित मजदूरी के कारण माल की किस्म पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है ।
9.	उत्पादन की मात्रा पर ध्यान	श्रमिक उत्पादन की मात्रा पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं । इसका प्रमुख कारण उत्पादन बढ़ाने पर भी मजदूरी समय के आधार पर ही मिलती है ।	इस पद्धति में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि पर आवश्यक ध्यान दिया जाता है क्योंकि अधिक उत्पादन पर मजदूरी अधिक मिलती है ।
10.	श्रम - संघों का दृष्टिकोण	यह पद्धति श्रमिकों में एकता उत्पन्न करती है। अतएव,श्रमसंघ इस पद्धति का समर्थन करते हैं।	श्रमिक कार्यो में व्यस्त रहने के कारण, श्रम संघों की गतिविधियों में भाग नहीं पाते। अतएव, श्रम संघ, समर्थन नही करते हैं ।

18.5 विभिन्न प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियाँ अथवा प्रीमियम पद्धतियां अथवा प्रगतशील पद्धतियां

ये पद्धतियां, समयानुसार मजदूरी पद्धति और कार्यानुसार मजदूरी पद्धति का मिश्रित स्वरूप है । ये विधियाँ अथवा पद्धतियां उत्पादित वस्तु की मात्रा में वर्धी करने और किस्म नियंत्रण करने पर पूर्ण रूप से ध्यान देती हैं । इन पद्धतियों के द्वारा कुशल और अकुशल श्रमिक में न्यायसंगत विभेद किया जा सकता है । इन पद्धतियों में -

(अ) प्रमाणित समय में निर्धारित कार्य करने वाले श्रमिक को सामान्य रूप से मजदूरी प्रदान की जाती है;

(ब) श्रमिक द्वारा सामान्य (निर्धारित) कार्य सें अधिक कार्य करने पर प्रेरणा स्वरूप अधिलाभांश (Bouns or Premimum) प्रदान किया जाता है ।

(स) उत्पादन में वृद्धि होने पर अधिक मजदूरी प्रदान की जाती है और उत्पादन में कमी होने पर कम मजदूरी प्रदान की जाती है, तथा

(द) इन मजदूरी पद्धतियों में एक 'कार्य - आधारित दर ' (Job base Rate) होती है अर्थात् निर्धारित प्रमाप तक उत्पादन करने पर निश्चित मजदूरी की गारंटी अवश्य होती है ।

इन मजदूरी पद्धतियों का लाभ यह है कि इनके माध्यम से अधिकतम उत्पादन के लिए सामग्री और मानव शक्ति का अधिक से अधिक सदुपयोग किया जाता है । उत्पादन में वृद्धि होने से प्रति इकाई लागत में कमी आती है और इससे सेवा नियोजकों को लाभ प्राप्त होता है । ये पद्धतियां कर्मचारियों मैं अनुशासन बनाए रखती है तथा वैज्ञानिक ढंग पर आधारित होने कें कारण, श्रमिकों के मनोबल में भी वृद्धि करती है ।

18.5.1 सामान्य प्रेरणात्मक योजनाएं (पद्धतियां)

1. शेष अथवा ऋण योजना (Balance or Debt Plan)

इस पद्धति को समयानुसार और कार्यानुसार मजदूरी पद्धति का सम्मिश्रण कहना ही उचित होगा । इसमें कार्यानुसार मजदूरी प्रदान की जाती है परन्तु समयानुसार न्यूनतम मजदूरी प्रदान करने को गारंटी दी जाती है । श्रमिक के द्वारा कार्य करने के पश्चात् यह देखा जाता है कि यदि कार्यानुसार मजदूरी, समयानुसार मजदूरी से अधिक है तो उसके खाते में, उस बड़ी हुई अथवा अतिरिक्त अथवा आधिक्य राशि कौ जमा (Credit) कर दिया जाता है । यदि समयानुसार मजदूरी की दर गणना करने के बाद अधिक आती है तो उसके खाते में उस कम राशि को नाम' (Debit) कर दिया जाता है, यदपि समयानुसार जो मजदूरी एक श्रमिक को मिलनी चाहिए थी, वह उसे अवश्य प्राप्त हो जाती है और आधिक्य राशि अथवा कम प्राप्य राशि का आगामी तिथियों पर समायोजन कर लिया जाता है । इस पद्धति को, निम्न उदाहरण द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है -

मान लीजिए, महेश और सुरेश को समय के आधार पर प्रतिदिन 10 रूपये और कार्यानुसार 1 रूपया प्रति इकाई मिलते हैं । यदि महेश 8 इकाइयों को और सुरेश, 12 इकाईयों को निर्मित करते है वो महेश के खाते में 2 रूपये 'नाम ' (Debit) लिख दिए जाएंगे तथा 10 रूपए तो उसे उसी समय दे दिए जायेंगे । सुरेश ने 12 इकाइयाँ उत्पादित की हैं अर्थात् 2 इकाइयाँ अधिक उत्पतिदीत की हैं तो उसे 12 रूपए मिलने चाहिये परन्तु उसे 10 रूपए उसी समय दे दिए जाते हैं तथा 2 रूपए उसके खाते में संस्था द्वारा 'जमा ' (Cradit) कर दिए 'जाते हैं तथा कभी भी, वह उस राशि कौ खाते में से निकाल सकता है । '

तालिका 18.1

'मजदूरी - गणना'

श्रमिक का नाम	श्रमिक द्वारा उत्पादित इकाइयां	प्रति ईकाई मजदूरी (रूपये)	कुल मजदूरी (रूपए)	समयानुसार मजदूरी(रूपए)	श्रमिक की जमा राशि (Credit)	श्रमिक की नाम राशि (Debit)	खाते का शेष (-) (+)
महेश	08	01	08	10	-	02	(-)02
सुरेश	12	01	12	10	02	-	(+)02

2. शत प्रतिशत बोनस योजना : (Cent Percent Bonus Plan)

यह पद्धति, घंटे के लिए घंटा' योजना भी कहलाती. है। एक नव स्थापित कम्पनी के कारोबार में वृद्धि करने अथवा विमान कंपनियों द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक - बाजार में सफलता प्राप्त करने क लिए, श्रमिकों को प्रेरणा देने के दृष्टिकोण से, यह पद्धति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। इसमें प्रमाणित 'कार्य और प्रमाणित समय पहले से ही निश्चित कर लिए बाते हैं। सामान्य मजदूरी का निर्धारण भी प्रारम्भ में ही कर लिया जाता है।

प्रत्येक उस श्रमिक को, जीतने समय वह कार्य करता है, उसे उसकी समयानुसार मजदूरी, दे दी जाती है और प्रमाणित समय में से जो समय वह बचाता है, उसे शत-प्रतिशत (100 %) अधिलाभांश अथवा बोनस दे दिया जाता है।

उदाहरण के रूप में :

(अ) प्रति इकाई प्रमाणित समय = 01 घण्टा

(ब) प्रमाणित कार्य = 10 इकाई

(स) प्रति घण्टा सामान्य मजदूरी = 01 रूपया.

(द) प्रमाणित समय (कुल) = 10 घंटे

(य) बोनस (अधिलाभांश) = बचाए हुए प्रमाणित समय का 100 %

यदि कोई श्रमिक 10 घंटे में 1 इकाइयों का उत्पादन करता है तो उसकी मजदूरी, उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर क्या होगी?

गणना

मजदूरी = (कार्य में लिया गया समय प्रति घंटा दर)

+

(बचाया हुआ समय X प्रति घंटा दर)

अर्थात् = (10 X 10 रू० (+) (04 X 01) रू०

10 + 04 = 14 रुपए

3. सर्पी अथवा विरूप मूल्य पर आधारित पद्धति

इस पद्धति को फिसलन पैमाना योजना' अथवा श्रमिक दर योजना (Sliding Scale Plan) भी कहा जाता है। इसे भावनात्मक मजदूरी पद्धति भी कहा जाता है। इस पद्धति में, श्रमिकों की मजदूरी दर को संस्था द्वारा अर्जित लाभ से जोड़ दिया जाता है अर्थात् श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु की बिक्री बढ़ती है तो मजदूरी भी, उद्योगपतियों और श्रम - संघों की परस्पर सहमति से निर्धारित दर से बढ़ती जाती है और विक्रय मूल्य कम होने से (लाभ कम हो जाता है) मजदूरी भी घट जाती है। परन्तु, एक निर्धारित और निश्चित दर से कम मजदूरी किसी भी रूप में प्रदान नहीं की जाती है। वस्तुत ऐसा सामूहिक सौदेबाजी की शर्तो पर निर्भर होता है।

इस पद्धति के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं

(अ) सेवा नियोजकों एवं श्रमिकों के मध्य समझौता हो जाने से औद्यौगिक - सम्बन्ध सुदृढ़ बन जाते हैं।

(ब) श्रमिक वर्ग अधिक मजदूरी प्राप्ति' की आशा में किस्म में पर्याप्त सुधार करता है जिससे विक्रय मूल्य बढते हैं और न केवल संस्थागत पक्षकार लाभाविन्त होते है अपित्व उपभोक्ताओं को भी लाभ मिलता है तथा

(स) एक सीमा से कम मजदूरी नहीं मिलने से श्रमिकों को रोजगार की गारन्टी मिलती है।

4. लाभ - भागिता पद्धति : (Profit Sharing Method)

प्राचीन आर्थिक विचारधारा का अवलोकन किया जाय तो ज्ञात होता है कि उस समय लाभ पर केवल पूंजीपति का ही अधिकार माना जाता था जो उसके दृष्टिकोण से, जोखिम का पुरस्कार होता था परन्तु, वर्तमान विचारधारा यह कहती है कि 'श्रम' उत्पादन का एक महत्वपूर्ण घटक है और इसकी क्रियाशीलता, प्रयत्न और परिश्रम से ही संगठन को लाभ प्राप्त होता है। अतएव, श्रमिकों को लाभ में हिस्सा (भाग) दना अपरिहार्य है।

अर्थ - सामान्य शब्दों में, लाभ भागिता से आशय किसी संगठन द्वारा समझौते के अधीन अपने श्रमिकों को निश्चित मजदूरी के अतिरिक्त लाभ का एक अंश देने से होता है। इस हेतु श्रमिकों और सेवा नियोजकों के मध्य एक अनुबन्ध हो जाता है कि 'उपक्रम के लाभ स्त्री एक निश्चित भाग श्रमिकों का, मजदूरी के अतिरिक्त प्रदान किया जाएगा।

लाभ भागिता के मुख्य लक्षण निम्न है

(अ) श्रमिकों को लाभ में से दिया जाने वाला भाग लाभ होने के पूर्व हो निश्चित कर लिया जाता है।

(ब) लाभ का ऐसा भाग शुद्ध लाभ में से ही वितरित किया जा सकता है।

(स) लाभ का ऐसा भाग संगठन के अंशधारियों को लाभांश देने के पश्चात् ही प्रदान किया जाता है।

(द) श्रमिकों को यह लाभ प्राय: वार्षिक लेखा वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् ही दिया जाता है।

(य) लाभ के ऐसे भाग को नकद के रूप में, अंशपूँजी के रूप में अथवा प्रावधायी-निधि' (Provident Found) मे जमा करके दिया जाता है।

(र) लाभ के रूप में दी जाने वाली ऐसी राशि, लाभ में वृद्धि ओर कमी होने के अनुरूप, कम या अधिक होती रहती है। यह ज्ञातव्य है कि संगठन को हानि होने पर, श्रमिक इस हानि को बांटने में सहयोग नहीं दते हैं।

इस पद्धति के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:-

(i) इससे उत्पादक में- वृद्धि एवं उत्पादन लागत में कमी होती है।

(ii) वस्तु की किसम में सुधार होता है तथा औद्यौगिक सम्बन्धों में ड्ढ्ढता और सौहार्द्रता उत्पन्न होती है।

(iii) अंशों के रूप में लाभ की राशि प्रदान करने से श्रमिक सह-स्वामी (Co- onenar) के रूप में संगठन के अंतर्गत अपनत्व और लगन से कार्य करते हैं।

(iv) साधारण मजदूरी के अतिरिक्त लाभ भी मिलने से श्रमिकों के जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

इस पद्धति के विपक्ष मे प्रमुख तर्क इस प्रकार माने गए हैं :

(i) पूंजीपतियों द्वारा इस पद्धति का विरोध किया जाता है क्योंकि श्रमिक लाभ मैं तो भागीदार बन जाते हैं परंतु संगठन के ऊपर संकट आने और हानि होने पर, किसी भी प्रकार का सहयोग देने से मना भी कर देते हैं।

(ii) श्रमिक - संघ उसे पूंजीपतियों की शोषण करने एक चाल समझते हैं। इस योजना में भिन्न-भिन्न अनुपात में लाभ मिलने से. परस्पर वैमनस्य को भी जन्म मिलता है। दूसरा कारण यह है कि कुशल और अकुशल कर्मचारी में कोई स्पष्ट भेद, यह पद्धति नहीं कर पाती है।

(iii) यदि संगठन में लाभ के स्थान पर हानि होती है तो श्रमिक को ऐसी, प्रकाशित आय से वंचित रहना पड़ता है।

(iv) श्रमिकों को लाभ कम प्रदान करने वे उद्देश्य से प्रबन्धकों द्वारा वार्षिक लेखों मैं अनियमितताएं बरतने की संभावना अधिक रहती है।

(v) लाभ मे, हिस्सा होने का लालच होने के कारण श्रमिक संस्था छोड़कर नही जा पाता है। इससे श्रमिक की गतिशीलता प्रभावित होती है।

18.5.2 विशिष्ट प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति

विशिष्ट प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियां निम्नलिखित है।

1. हाल्ये प्रीमियम योजना

इस मजदूरी पद्धति को विकसित करने का श्रेय, रैण्ड ड्रिल कम्पनी ऑफ शेखड, कनाडा सुपरिन्टेन्डेट श्री एफ एंव हाल्से (F. A. Halsey) को जाता है। इन्होंने सर । 1890 में उक्त कम्पनी में इस पद्धति का प्रायोगिक - अनुभव लिया था।

इस पद्धति में

(अ) उत्पादन का प्रमाप (अर्थात् कितना उत्पादन श्रमिक को करना है) और उसे पूरा करने का प्रमाणित समय (अर्थात् कुल दिए गए उत्पादन में कितना समय लगाना है) पहले से ही पुराने संदर्भों (Records) के आधार पर निश्चित कर दिया जाता है।

(ब) यदि श्रमिक अपना कार्य प्रमाणित समय से पहले ही पूरा कर लेता है तो बचे हुए समय को श्रमिक का शेष समय मान लिया जाता है।

(स) बचे हुए समय के लिए, प्रीमियम' के रूप में श्रमिक को अतिरिक्त पारिश्रमिक देय होता है।

(द) यह अतिरिक्त पारिश्रमिक मजदूरी दर का से 33 $\frac{1}{3}$ लेकर 50% तक होता है।

(य) यदि श्रमिक दिए गए कार्य का प्रमाणित समय में पूरा नहीं का पाता है तो भी उसे समयानुसार निर्धारित की गई मजदूरी अवश्य प्रदान की जाती है अर्थात् इस पद्धति में 'न्यूनतम - मजदूरी ' का आश्वासन अवश्य रहता है ।

(र) $33^1/_2$ से 50% की प्रीमियम श्रेणी (Range) इसलिए निर्धारित की जाती है कि अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग प्रीमियम दर ' निर्धारित की जाती है जिससे किसी श्रमिक द्वारा एक कार्य में असफल रहने पर, दूसरे कार्य में भी बाधा नहीं पड़े अथवा उस श्रमिक पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़े । जैसे, श्रमिक को आरा - मशीन पर कार्य करने की दशा में 50% प्रीमियम दिया जा सकता हैं तो एक गड्ढा खोदने वाले श्रमिक को 35% प्रीमियम ही प्रेरणास्पद हो सकेगा।

इस पद्धति में, मजदूरी का निम्न सूत्र के आधार पर आकलन (गणना) किया जा सकता है-

कार्य समाप्त करने का वास्तविक समय X मजदूरी की दर प्रति घंटा)

+

(प्रीमियम की दर X बचाया हुआ समय X प्रति घंटा दर)

उदाहरणार्थ

निश्चित' प्रमाणित कार्य	= 30 इकाई
निश्चित प्रमाणित समय	= 15 घंटे
निश्चित न्यूनतम मजदूरी	= 1 रूपया प्रति घंटा
प्रमाणित समय से पूर्व कार्य पूरा करने पर प्रीमियम की दर	= 50%

यदि एक श्रमिक निर्धारित कार्य को 10 घंटे मे पूरा कर लेता है तो उपर्युक्त सूत्र के आधार पर मजदूरी गणना निम्न प्रकार से होगी -

$$10 \times 1 + 50\% \times 5 \times 1$$

= 10 + 2.50

= 12.50 रुपए

अब आप शेष बचाए गए समय की समयानुसार मजदूरी से अधिक मिलने वाला प्रीमियम निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं -

$$\text{समयानुसार मजदूरी} \times \frac{\text{बचाया गया समय}}{\text{लिया गया कुल समय}}$$

रू० 12.50 X 5/10 + 6.25 रू०

अतएव श्रमिक कुल मजदूरी प्राप्त होगी = 12.50 + 6.25 रू०

= 18.75 रू

इस प्रकार, इस पद्धति के अनुरूप एक श्रमिक को न्यूनतम निश्चित मजदूरी से भी 3.75 रू० (18.75 - 15.00 रू०) अधिक मिला है ।

लाभ

(i) यह पद्धति सरल है ।

(ii) इससे श्रमिकों का शोषण नही होता, तथा

(iii) नियोक्ता लाभान्वित होता है ।।

दोष

(i) यह वैज्ञानिक पद्धति नहीं कही जा सकती क्योंकि पिछले अनुभवों के पर प्रमाणित समय का निर्धारण किया जाता है ।

(ii) श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी की गारन्टी रहती है और वास्तविक रूप में 50% मजदूरी पूर्ण वैज्ञानिक रीति से प्रतीत नहीं होती है । अतएव, श्रमिक रूचि नहीं लेते हैं ।

2. रोवन प्रीमियम योजना (Rowan Premimum Plan)

इस मजदूरी पद्धति के विकास का श्रेय स्कंटलैड की एक फर्म ड,एबिट रोबन एण्ड सन्स' ग्लासगो के संस्थापक री जेम्स रोवन क्रो जाता है! इस पद्धति में श्रमिकों को इस समथ की सामान्य मजदूरी दी जाती है जिसमें उन्होंने कार्य किया है । इसमें, हाल्से योजना की तरह 50% की प्रीमियम निर्धारित नही होती है । निर्धारित समय और प्रमाणित कार्य, दोनों का पहले से ही निश्चय कर लिया जाता है । हाल्से योजन कें विपरित इस पद्धति में श्रमिक जितना अधिक समय बचाता है, प्रीमियम की राशि उतनी ही कम हो जाती है ' जेम्स रोवन का कहना यह है कि बचाए गए घण्टों का प्रीमियम कुल प्रमाणित मजदूरी से,' किसी. भी दशा में अधिक नहीं होना चाहिये। श्रमिक को दिए जाने वाले प्रीमियम की गणना उसके द्वारा बचाए गए समय के साथ जोड़ दी जाती है ।

गणना का सूत्र

$$\text{प्रीमियम} = \frac{\text{बचाया गया समय}}{\text{निर्धारित समय}} \times \text{कार्य पूरा करने में लिया गया समय} \times \text{घंटा}$$

उदाहरणार्थ :

निश्चित परमपिता समय : 10 लाभ

निश्चित प्रमाणित कार्य : 20 इकाई

निश्चित न्यूनतम मजदूरी : 1 रू० प्रति इकाई

यदि श्रमिक 8 घण्टे में ही कार्य पूरा कर लेता हो तो रोवन प्रीमियम के अनुसार मजदूरी निम्न प्रकार से ज्ञात की जायेगी -

मजदूरी = लिया गया समय = प्रति घण्टा दर

= 8 × 1 = 8 रुपये

उपर्युक्त सूत्र को लागू करने पर -

= 2/ 10 x 8 x 1

इस प्रकार = 1.60 रूपया

कुल मजदूरी, जो एक श्रमिक मे प्राप्त होगी - 8.00 + 1. 60 रू० = 9.60 रूo

लाभ - दोष

इस पद्धति में समय की बात की प्राथमिक अवस्था में श्रमिकों को प्रीमियम देकर अधिक प्रेरणा दी जा सकती है परन्तु यह विधि न्यायसंगत नहीं कही जा सकती क्योंकि आनुपातिक रूप से श्रमिक घाटे मैं ही रहता है ।

3. टेलर - भिन्न कार्यानुसार योजना अथवा टेलर की विभेदात्मक कार्यानुसार योजना (Taylor's Differential piece rate system)

आधुनिक व्यावसायिक जगत को वैज्ञानिक प्रबन्ध से परिचित कराने वाले सुप्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री फेडरिक विन्सलो टेलर ने, इस पद्धति को सन् 1880 में प्रतिपादित किया था तथा अपने निबन्ध "Piece Rate System'' में दिये गए तथ्यों के आधार पर सन 1884 में सबसे पहले मिड वेल स्टील कम्पनी, फिलाडेल्फिया में लागू किया था ।

इस पद्धति की तीन बातें प्रमुख हैं.

(i) पद्धति में, मजदूर देने की दो दरें हैं । प्रथम, ऊंची दर और द्वितीय, नीची दर ।

(ii) उन श्रमिकों को जिनके द्वारा प्रमाणित कार्य अथवा इससे अधिक कार्य किया जाता है, उन्हें "ऊंची - दर. से तथा निश्चित प्रमाणित कार्य को निर्धारित समय में पूरा नहीं करने पर उन्हें 'नीची - दर" से मजदूरी का भुगतान किया जाता है । कार्य का प्रमाप, 'समय और गति अध्ययन ' के आधार पर तय किया जाता है ।

(iii) मजदूरी की इन दरों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है, जिससे यह पद्धति कुशल श्रमिकों के लिए तो प्रेरणादायक है परन्तु अकुशल श्रमिकों को, एक प्रकार से दंड का भागी बनाती है ।

उदाहरणार्थ :

1. निश्चित प्रमाणित कार्य : 30 इकाई
2. प्रमाणित कार्य करने पर दर : 1 रूपया प्रति इकाई

3. प्रमाणित कार्य न करने पर दर: 80 पैसा प्रति इकाई

यदि A श्रमिक 30 इकाई बनाता हों और 8 श्रमिक 25 इकाई बनाता हो तो उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर टेलर पद्धति के अनुसार मजदूरी का आकलन इस प्रकार होगा -

(a) A को मिलेंगे (प्रमाणित कार्य x प्रमाणित इकाईयाँ x प्रमाणित कार्य नहीं करने पर दर)

= (25 x .80)

= 20. 00 रुपया मात्र

4. बहु - खंड अथवा मैरिल योजना (Multiple piece Rtae System or Merrick Plan)

मैरिक ने मजदूरी की तीन दरें निश्चित की हैं -

प्रथम - प्रमाणित कार्य के 83% तक के लिए मजदूरी,

द्वितीय - प्रमाप बिन्दु 100% पर मजदूरी, तथा

तृतीय - प्रमाप बिन्दु से ऊपर के लिए मजदूरी ।

इस पद्धति में, जो श्रमिक प्रमाणित कार्य का 83% तक उत्पादन करते है, उन्हें कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है। 83% से ऊपर कार्य करनें पर सामान्य मजदूरी के अलावा 10% बोनस तथा प्रमाणित कार्य अथवा उससे अधिक कार्य करने पर सामान्य मजदूरी + 10% बोनस + 10% अतिरिक्त बोनस दिया जाता है।

यह योजना, टेलर की योजना में एक सुधान मानी जा सकती हें। इस पद्धति में 'कार्यक्षमता' को अधिक स्पष्ट रूप सें व्यक्त किया गया है। परन्तु, इस विधि में कार्य - प्रमाप' इतने उच्च होते है कि कर्मचारियों को कार्य - प्रेरणा' नही मिल पाती है।

5. इमर्सन कार्यक्षमता मजदूरी पद्धति (योजना) : (Emerson's Efficiency Bouns Plan)

इस पद्धति के आविष्कार सुप्रसिद्ध प्रबन्ध शास्त्री श्री हैरिगटन इमर्सन माने गऐ है। इस पद्धति में श्रमिको को एक निश्चित काम सौपा जाता है, उसे पूरा करने के लिए समय भी निश्चित कर दिया जाता है, श्रमिक को दी जानें वाली साधारण मजदूरी की दर भी निर्धारित कर दी जाती है।

इस पद्धति में

(i) उस श्रमिक को बोनस दिया जाता है जो प्रमाणित कार्य का, कम से कम 66 $\frac{2}{3}$ या $\frac{2}{3}$ भाग, प्रमाणित समय में पूरा कर 'लेता है। ।

(ii) कार्यक्षमता बढ़ने के साथ-साथ बोनस भी 100% तक पहुंच जाता है।

(iii) बोनस मासिक आधार पर देय होता है।

(iv) इस पद्धति के. अनुसार -

(अ) 66 $\frac{2}{3}$ से 90% तक की क्षमता पर 10% बोनस,

(ब) 90% से 100% क्षमता पर 20% बोनस,

(स) 100% से 120% क्षमता पर 40% बोनस तथा

(द) 120% से 40% क्षमता पर 60% बोनस देय होता है तथा इसी क्रमिक दर से वृद्धि होती जाती है।

(v) यदि श्रमिक की क्षमता 66 $\frac{2}{3}$ सें कम होती है तो उसे पूरी सामान्य मजदूरी अवश्य ही प्राप्त होती एंव।

(vi) जो श्रमिक प्रमाणित समय में निश्चित उत्पादन कर लेता है उसकी कार्य - क्षमता 100% मान ली जाती है।

उदाहरणार्थ :

प्रमाणित समय = 10 घंटे

प्रमाणित कार्य = 12 इकाइयाँ

न्यूनतम मजदूरी= 1 रू० प्रति घंटा (समयाधारिता)

मजदूरी गणना :

(अ) यदि कोई श्रमिक 5 घंटे में ही प्रमाणित कार्य पूरा कर लेता तो उसे 200% क्षमता पर बोनस प्राप्त करने का अधिकार. होगा। उसे राशि प्राप्त होगी :

रू० 10 + 10 20.00 रूपए

(ब) यदि कोई श्रमिक 10 घंटे में प्रमाणित कार्य (12 इकाईयां) पूरी कर लेता है तौ उसे 100% क्षमता पर 20% बोनस मिलेगा अर्थात्

रू० 10 + 02 = 12.00 रूपए

(स) यदि कोई श्रमिक बजाय 10 घंटे के 20 घंटे में कार्य पूरा करता है तो उसे बोनस नहीं मिलगा।

इस पद्धति को प्रेरणादायक माना गया है। ऐसा इसलिए है कि बोनस मासिक आधार पर दिया जाता है। इसलिए श्रमिक कभी भी अपने कार्य की गति को तीव्र करके बोनस कमा सकता है। परन्तु, यह पद्धति खर्चीली अधिक है तथा श्रमिक बोनस कमाने के प्रयास में, कार्य की गति तेज तो कर देते हैं परन्तु किस्म पर कोई ध्यान नहीं दें पाते है।

6. कार्यभार एवं अधिलाभांश योजना

गैण्ट अथवा अधिलाभांश योजना (Gantt Task and Bouns Plan)

इस पद्धति के प्रतिपादक एफ० डब्ल्यू० टेलर के सहयोगी श्री एच० एल० गैण्ट थे। इन्होंने टेलर की 'कार्यानुसार भिन्न मजदूरी पद्धति में कुछ सुधार करके डस पद्धति को निम्न विशेषताओं के साथ प्रस्तुत किया है -

(i) श्रमिक को एक निश्चित कार्य (Task) सौप दिया जाता है।

(ii) कार्य का पूरा करनें का प्रमाणित समय भी निर्धारित कर दिया जाता है।

(iii) जो श्रमिक निर्धारित समय में प्रमाणिक कार्य कर लेता है, तो कार्यानुसार मजदूरी देय होती है। साथ ही उसे बोनस भी प्रदान किया जाता है।

(iv) जिस पद्धति में, प्रमाणित समय का 20% से 50% तक बोनस दिया जाता है। अध्ययन और विश्लेषण से ज्ञात होता है कि श्री- गौन्ट ने $33\frac{2}{3}$ बोनस देने कों सबसे अधिक उचित बताया था अर्थात् वे इसे उचित दर मानने थे।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

(i) कार्य को पूरा करनें का प्रमाणित समय = 6 घंटे

(ii) प्रति घंटा दर = 1 रूपया

(iii) बोनस = 25%

आकलन :

(अ) यदि K कार्य को पूरा करनें में 7 घंटे लगाना है तो उसकी मजदूरी होगी -

सूत्र : प्रति घंटा दर x कार्य पूरा करने का प्रमाणित समय

= 1 x 6 = 6 रूपए मिलेंगे।

(ब) यदि R उसी प्रमाणित कार्य को पुरा करने में 6 घंटे लगाता है तो उसकी मजदूरी होगी :

सूत्र : (प्रति घंटा दर x कार्य पूरा करनें का प्रमाणित समय)

(कार्य पूरा करने का प्रमाणित समय x बोनस दर)

= (1 x 6) + (6 x 25%)रू०

= (6 +1.50) रूपया = 7.50 रूपया

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रमिक द्वारा एक घंटा पूर्व अथवा निश्चित समय में काम करते ही, उसे 1.50 रूपये का तुरन्त लाभ प्राप्त होता है ।

इस पद्धति में, श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी सदैव सुरक्षित रेहती है । श्रमिकों और सेवा नियोजकों के लिए समान रूप से लाभकारी है क्योंकि श्रमिकों को बोनस मिलता है और सेवा नियोजकों को मजदूरी में कटौती करने के लिए बार-बार पर्यवेक्षण व्यय नहीं करने पड़ते हैं ।. इस पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि प्रति इकाई उत्पादन लागत बढ़ जाती है क्योंकि जो श्रमिक प्रमाणित कवि तो पूरा नही का पाना हैं उसे भी न्यूनतम मजदूरी देनी पड़ती है ।

7. छिद्रों की बिन्दु प्रीमियम योजना (Bedaux Plan)

इस पद्धति का प्रीतागदन प्रोफेसर -चार्ल्स बैडोंबस न, सन 1911 में किया था । इस मजदूरी योजना को न्युर्याक सिटी के कई अर्हत् कारखानों में लागू किया गया था और यह पद्धति उस समय अत्यन्त लोकप्रिय हुई थी । इसे ' बिन्दु अथवा अंक' योजना भी कहा जाता है: इस योजना में -

(i) पर्याप्त सावधानी के साथ कुछ बिन्दुओं (Points) का निर्धारण कर दिया जाता है, जिन्हें बॉक्स ने इकाइयाँ भी माना है

(ii) प्रमाणित किए गए समय को 'मिनट' में व्यक्त किया जाता है ।

(iii) एक मिनट को एक बिन्दु अथवा एक अंक माना जाता है और मजदूरी भी प्रति अंक के अनुसार ही निर्धारित की जाती है ।

(iv) यदि किसी श्रमिक द्वारा 60 बिन्दुओं तक ही कार्य किया जाता है तो उसे सामान्य दर से मजदूरी प्रदान की जाती है । जो श्रमिक 60 बिन्दुओं से ऊपर कार्य करता है उसे 100% बोनस (निर्धारित दर से) दिया जाता है ।

उदाहरणार्थ :

मजदूरी की दर (देय) है = 10 पैसे प्रति बिन्दु

श्रमिक A ने 59 बिन्दु कार्य किया है ।

श्रमिक B ने 90 बिन्दुओं का कार्य किया है ।

मजदूरी आकलन :

A को 59 x .10 = 5.90 रू०

B को 60 x .10 + .10 = 6.00 + 3.00 = 9.00 रू० मिलेंगे ।

इस पद्धति में मुख्य बात यह याद रखनी है कि अतिरिक्त बिन्दु (इकाइयॉ) उत्पादित करने पर श्रमिक को निर्धारित दर से 100% बोनस मिलता है न कि 66 $\frac{2}{3}$- या 20 - 50% बोनस ।

इस मजदूरी विधि को, अर्थशास्त्रियों ने न्यायोचित माना है परंतु उनका यह कहना भी है कि 'कार्य - विश्लेषण' के लिए तकनीकी विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है जिससे इसमें जटिलता, अवश्य आ जाती है ।

8. जीवन निर्वाह लागत मजदूरी विधि : (Cost of living Wages Method)

इस पद्धति को, प्राय : समयानुसार मजदूरी पद्धति के साथ अपनाया जाता है जिससे -

(i) मुद्रा स्फीति के समय मूल्य वृद्धि का श्रमिकों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े,

(ii) संगठन के प्रयासों से प्राप्त लाभ को न्यायोचित आधार पर मजदूरों और सेवा नियोजकों में विभाजित किया जा सकता है।

(iii) औद्यौगिक सम्बन्धों में पर्याप्त सुधार किया जा सके, तथा

(iv) इस पद्धति में, मजदूरी को जीवन निर्वाह लागत निर्देशांकों. (Cost of living Index) से जोड़ दिया जात है । इन निर्देशांकों के घटने -बढ़ने के साथ-साथ मजदूरी की दर भी घटती-बढ़ती रहती है ।

इस पद्धति का सबसे दोष यह है कि मंदी के समय मजदूरी कम हो जाती है तथा मूल्य परिवर्तनों के अनुरूप संगठन द्वारा मजदूरियों में शीघ्र समायोजन नहीं किया जा सकता है।

18.6 अधिलाभांश (Bouns)

आपको ज्ञात होगा कि एक वृहद् संगठन में, लाभ में से अंशधारियों को जो भाग प्रदान किया जाता है, 'उसे लाभांश (dividend) कहा जाता है और लाभ का जो भाग कर्मचारियों को प्रदान किया जाता है, उसे अधिलाभांश (Bouns) कहा जाता है । अधिलाभांश भी आज की आर्थिक पस्थियियों में, मजदूरी का एक अंग बन चुका है और एक सीमा तक मजदूरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को, विधिक रूप से (Legally) इसे देना आवश्यक हो गया है ।

इसके लिए सन् 1965 में "अधिलाभांश अधिनियम, 1965' बनाया गया था । यह अधिनियम वित्तीय संस्थाओं, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, बीमा कम्पनियों, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया तथा अन्य कुछ संस्थाओं के अतिरिक्त सभी संस्थाओं में लागू होता है । इसके लिए, यह आवश्यक है कि उस संस्था में, अधिलाभांश प्राप्त करनें के लिए कम से कम 20 श्रमिक अवश्य कार्यरत होने चाहिए । वे श्रमिक जिन्होंने एक वर्ष में कम से कम 30 दिन कार्य किया हो, अधिलाभांश पाने के अधिकारी होते हैं ।

अधिलाभांश प्राप्त करने के लिए, किसी भी कर्मचारी श्रमिक की मजदूरी की सीमा 2500 रूपए प्रतिमाह रखी गई है । परन्तु, श्रमिक को अधिलाभांश इस प्रकार, से देय होगा, मानो उसे 1600 रूपया प्रतिमाह ही प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् 2500 रूपए कुल वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारी/श्रमिक को अधिलाभांश तो मिलेगा परन्तु 1600 रूपए पर जितना अधिलाभांश बनता है, उतना ही उसे प्राप्त होगा, उससे अधिक नहीं ।

जहाँ तक अधिलाभांश प्रदान करने का प्रश्न है, पृथक-पृथक विभागों में, भिन्न-भिन्न, दरों पर दिया जा सकता है । उदाहरणार्थ, रेल्वे एवं डॉकतार कर्मचारियो को अधिलाभांश प्रदान करने की प्रवृति प्राय: 25 दिन से 29 दिन तक के वेतन के बराबर देने की रही है । परन्तु, अधिनियम की व्यवस्था के अनुरूप यह आवश्यक है कि एक कर्मचारी/श्रमिक को मजदूरी का न्यूनतम 8.33% अवश्य ही प्रदान किया जाना चाहिए, चाहे उस संस्था को लाभ हुआ हो, अथवा नहीं । अधिकतम अधिलाभांश की सीमा 20% रखी गई है अर्थात् -20 प्रतिशत से आर्थिक अधिलाभांश, किसी भी रूप में नहीं दिया जा सकता है ।

मजदूरी पद्धति कैसी हो?

किसी भी संगठन में एक मजदूरी पद्धति में निम्नलिखित बातें होना आवश्यक है-

(i) श्रमिको कौ संतुष्ट करने वाली तथा श्रम-शक्ति का निर्माण एवं विकास करने वाली होनी चाहिए ।

(ii) एक समान (प्राक्रति) कार्य करने वाले उद्यमों में एक ही प्रकार. मजदूरी निर्धारित की जानी चाहिए जिससे श्रम की गतिशीलता में कम कराई जा सके।

(iii) यह राष्ट्र की आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखकर निर्धारित की जानी चाइए, जिससे अथव्यवस्था में, योगदान प्राप्त हो सके ।

(iv) प्रत्येक संगठन में, प्रत्येक कर्मचारी को न्यूनतम - मजदूरी की गारन्टी अवश्य ही होनी चाहिए ।

(v) जैसे-जैसे संगठन में उत्पादकता बढ़ती जाए, मजदूरी की दरों में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए ।

(vi) एक ही श्रेणी के श्रमिकों को पृथक-पृथक दर से मजदूरी नहीं दी जानी चाहिए ।

18.7 सारांश

आपने विभिन्न मजदूरी - पद्धतियों का अध्ययन और विश्लेषण किया है । आपने यह भी पाया होगा कि कलात्मक अथवा शिल्पी कार्यो के लिए समायनुसार मजदूरी पद्धति हा सबसे

उपयुक्त मानी गई है और जहां किस्म' का औचित्य नहीं हो, संगठन का शीघ्र उत्पादन करने का दृष्टिकोण प्रतिपादित होता हो, वहाँ कार्यानुसार मजदूरी पद्धति की महत्ता बढ़ जाती है । जहाँ तक प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों का प्रश्न है, इसके बारे में सर्वभूत सत्य यही है कि संगठन की प्रकृति, आकर तथा भुगतान करने की क्षमता' के आधार पर, इनमें से किसी भी पद्धति को. लागू किया जा सकता है । साथ ही प्रथम अवस्था में अपेक्षित परिणाम नहीं मिलने पर पुन: दूसरी पद्धति को संगठन में लागू किया जा सकता है ।

उपर्युक्त तथ्यों में, इस बात को भी स्पष्ट किया गया है कि चाहे मजदूरी - पद्धति, किसी संगठन में, कोई सी भी (समय सार, कार्यानुसार अथवा प्रेरणात्मक) लागू की जाए, परन्तु वह

(अ) श्रमिकों की उत्पादकता को बढ़ावा देने वाली होनी चाहिए ।

(ब) सेवा नियोजकों और श्रमिकों में सौहार्द्रपूर्ण श्रम - सम्बन्ध स्थापित करने वाली होनी चाहिए,

(स) श्रमिकों के सम्मान और जीवन-स्तर में वृद्धि करने वाली होनी चाहिए, तथा

(द) राष्ट्रीय मजदूरी नीति के अनुरूप होनी चाहिए.।

18.8 शब्दावली

(अ) मजदूरी	:	शारीरिक श्रम के बदले, किसी श्रमिक को दिया जाने वाला पारिश्रमिक।
(ब) उत्पादन के घटक	:	श्रम, पूंजी, भूमि, माल, मशीन एवं साहस ।.
(स) वेतन	:	मस्तिष्क श्रम के आधार पर', लिपिकीय एवं पेशेवर व्यक्तियों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक!
(द) प्रति इकाई लागत	:	संगठन में किए गए कुल उत्पादन की एक इकाई पर किया गया व्यय ।
(य) श्रम-संघ	:	श्रमिकों का संगठित समूह जो आने सदस्यों के हितार्थ कार्य करता है।
(र) निश्चित प्रमाप	:	लक्ष्य को प्राप्त करने के लिय पूर्व निर्धारित किए गए समंक।
(ल) अधिलाभांश	:	सामूहिक सौदेबाजी अथवा विधिक आधार पर देय लाभ का कर्मचारियों/श्रमिकों को दिया जाने वाला भाग।

18.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समयानुसार मजदूरी पद्धति से आपका क्या आशय है । सामयनुसार मजदूरी पद्धति एवं कार्यानुसार मजदूरी पद्धति में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
2. एफ० डब्ल्यू टेलर तथा एच० एल० गैण्ट की मजदूरी पद्धतियों में क्या सम्बन्ध है? यह भी बताइए कि इनमें मूल अन्तर क्या है?

3. "कार्यानुसार मजदूरी पद्धति शिल्पकारी कार्यो हेतु, कसौटी पर खरी नहीं उतरती है ।. क्या आप इस कथन से सहमत है? यह भी बताइए कि समयनुसार मजदूरी पद्धति में कौन से गुण पाए गए हैं?
4. हाल्ये और रोवन द्वारा प्रतिपादित मजदूरी पद्धतियों को उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए उनकी तुलना कतिए ।
5. प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति क्या है? वर्णन कीजिए तथा सामान्य प्रेरणात्मक. योजनाओं का विवेचन कीजिए।
6. टिप्पणियां लिखिए -

   (अ) न्यूनतम मजदूरी

   (ब) इमर्सन कार्यक्षमता मजदूरी पद्धति,

   (स) बैडो की बिन्दु प्रीमियम योजना,

   (द) अधिलाभांश ।

इकाई- 19

विकासशील देशों में मजदूरी नीति:

न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी, एवं पर्याप्त मजदूरी

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 मजदूरी नीति से आशय

19.2.1 मजदूरी नीति के प्रमुख उद्देश्य

19.2.2 मजदूरी नीति का महत्व

19.2.3 भारत में राष्ट्रीय मजदूरी नीति की आवश्यकता

19.3 न्यूनतम मजदूरी

19.3.1 न्यूनतम मजदूरी का अर्थ

19.3.2 न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य

19.3.3 न्यूनतम. मजदूरी, निर्धारित करने के आर्थिक प्रभाव

19.3.4 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के प्रमुख प्रावधान

19.4 उचित मजदूरी

19.4.1 जीवन निर्वाह, न्यूनतम तथा उचित मजदूरी

19.4.2 उचित मजदूरी की व्यवहारिकता में कठिनाईयां

19.5 पर्याप्त मजदूरी

19.5.1 पर्याप्त मजदूरी का निर्धारण

19.6 सारांश

19.7 प्रश्न

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

भारत एक विकासशील देश है । इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समस्त उत्पादन संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग होना अत्यन्त आवश्यक है श्रम उत्पादन का सबसे सक्रिय साधन है वह एक और उत्पादक है तो दूसरी और उपभोक्ता श्रम में अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएं है जैसे श्रम को श्रमजीवी से पृथक नहीं किया जा सकता और श्रम नश्वर है आदि । इस कारण श्रमिक से किया जाने वाला व्यवहार उत्पत्ति के अन्य साधनों से भिन्न होता है । श्रमिकों के हितों को संरक्षण देने के उद्देश्य से मजदूरी नीति बनायी जाती है । मजदूरी नीति से हमारा तात्पर्य शासन द्वारा अपनायी गई नीति से है हम इस इकाई में मजदूरों नीति से आशय, आवश्यकता का अध्ययन करेंगे । न्यूनतम मजदूरी क्या है । न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य, न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने में आर्थिक प्रयास, तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

1948 के प्रमुख प्रावधानों की जानकारी लेंगे । जीवन निर्वाह. मजदूरी तथा उचित मजदूरी के संबंध में भी अध्ययन करेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

एक विकासशील अर्थ व्यवस्था में श्रमिकों की उत्पादन में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है श्रमिक ही प्राकृतिक साधन पूंजी तथा उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करते हुए उत्पादन सम्भव बनाते है । श्रमिक को अपने कार्य के बदले मजदूरी मिलती है मजदूरी उत्पादन लागत का एक अभिन्न अंग है । सेवायोजक. सामान्यतया अपने लाभ को बढ़ाने के लिए उत्पादन लागत के अधिक अंग मजदूरी में कटौती करते है । और साथ ही यदि श्रमिक असंगठित है तो वे उनका शोषण करने में सफल भी हो जाते है । इससे श्रमिकों की स्थिति दीन हीन होने लगती है जो आर्थिक विकास के लिए खतरा पैदा करती है । आर्थिक विकास की सफलता के लिए एक आधारभूत शर्त यह है कि हमारा श्रम जीवी सन्तुष्ट एवं सुखी हो । वह सुखी तभी हो सकता है जब उसे मजदूरी उसके योगदान के अनुसार प्राप्त हो इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार मजदूरी नीति घोषित करती है मजदूरी कई प्रकार की होती है न्यूनतम पर्याप्त तथा जीवन निर्वाह मजदूरी ।

19.2 मजदूरी नीति से आशय

सामान्यत: मजदूरी नीति से अभिप्राय मजदूरी के सम्बन्ध में शासन द्वारा अपनाई गई नीति से है । सैद्धांतिक अर्थ में मजदूरी नीति से आशय उस वैधानिक अथवा सरकारी कार्यवाही से है जो आर्थिक एवं सामाजिक नीति के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मजदूरी-स्तर अथवा कलेवर अथवा दोनों पर प्रभाव डालती है । प्रत्येक देश तथा समाज में श्रमिकों का जीवन स्तर, उनका नैतिक एवं चारित्रिक स्तर, प्रबन्धकीय के प्रति उनका दृष्टिकोण, उद्योग दृष्टिकोण, उद्योग से उनका लगाव एवं उत्पादकता वृद्धि के प्रति उनकी मनोवृति वास्तव में उनका जीवन दर्शन आदि सब कुछ " मजदूरी नीति " पर निर्भर करता है ।

भारत सरकार द्वारा न्यूनतम भित्ति अधिनियम, वृति भुगतान अधिनियम बोनस अधिनियम बोनस अधिनियम आदि सनियम शासन की मजदूरी नीति के महत्वपूर्ण तत्व है जो निश्चित रूप से देश में मजदूरी के स्तर तथा कलेवर को प्रभावित व नियंत्रित करते है।

19.2.1 मजदूरी नीति के प्रमुख उद्देश्य

एशिया महादीप के देशों की श्रम नीति के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा प्रकाशित पुस्तक में विकासशील अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरी नीति के निम्नलिखित उद्देश्य बताए गये है

1. श्रम संघों के स्वस्थ विकास के लिए प्रयास करना ।
2. आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप मिलने वाले लाभों में श्रमिकों को उचित व पर्याप्त भाग दिलाना ।
3. कार्यानुसार भुगतान को प्रोत्साहित करना ।
4. अधिक निम्न मजदूरी को समाप्त करना ।

5. बढ़ती हुई कीमतों के दुष्प्रभाव से मजदूरी कमाने वाले श्रमिकों के हितों की रक्षा करना।
6. उचित श्रम मानकों की स्थापना करना ।
7. मजदूरी के अन्तरों को कम करना।
8. सामूहिक सौदेबाजी के विकास के लिए अलग से प्रयत्न करना ।
9. उन श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना जिनकी सौदा करने की शक्ति कम है क्योंकि या तो वे असंगठित है अथवा कुशल रूप से संगठित है ।

19.2.2 मजदूरी नीति का महत्व

मजदूरी नीति का महत्व न केवल श्रमिकों के लिए ही है, अपितु प्रबन्धकों एवं सेवायोजकों एवं सरकार के लिए भी इस नीति का अत्यन्त महत्व है ।

(1) प्रबन्धकों एवं सेवायोजकों के लिए मजदूरी का महत्व

मजदूरी उत्पादन लागत का एक प्रमुख अंग होती है । अत : प्रबन्धकों एवं सेवायोजकों की दृष्टि से इसका बहुत अधिक महत्व है । अन्य घटकों के समान मजदूरी एक ऐसा तत्व है जिसे एक सेवायोजक प्रभावित करता है । प्रबन्धकों के लिए मजदूरी के महत्व का दूसरा कारण यह है कि अधिक मजदूरी और उत्तम कार्य दशाओं के लिए जो मांगें की जाती है वे मूल्य, बाजार एवं उत्पादन सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न कर देती है । औद्योगिक कुशलता के सम्बन्ध में मजदूरी की समस्या आधारभूत महत्व रखती है । यदि मजदूरी पर्याप्त नहीं है तो श्रमिक अपनी कुशलता को कायम नहीं रख सकता।

(2) सरकार के लिए महत्व

मजदूरी के सम्बन्ध में सरकार को भी सर्तक दृष्टि रखती पड़ती है । इसका कारण यह हें कि सरकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह समाज के सभी वर्गों को अन्तत. न्याय दिलाये और मजदूरी नीति सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं को सुलझाये । वास्तव में, श्रमिकों को उत्तम कार्य एवं रहन-सहन की दशायें उपलब्ध कराने वाले कल्याण कार्यो की मलना में उचित परितोषण की गारण्टी मधुर औद्योगिक सम्बन्धों और इस प्रकार देश की आर्थिक समृद्धि के लिए सबसे सुदृढ़ आधार प्रदान करती है । एक सन्तोषजनक मजदूरी का भुगतान श्रमिक से सहयोग प्राप्त कर सकता है और उसे राष्ट्र के विकास कार्यक्रमों में एक भागीदार के रूप में अपना स्थान ग्रहण करने में समर्थ बनाता है ।

19.2.3 भारत में राष्ट्रीय मजदूरी नीति की आवश्यकता

विश्व के प्राय : सभी उन्नतिशील देशों में मजदूरी की समस्या को हल करने के लिए वैधानिक व्यवस्थायें की गई है । विश्वविख्यात संस्था अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी अपने लक्ष्यों में उचित जीवन यापन मजदूरी तथा समान मूल्य के कार्य के लिए समान मजदूरी को प्रमुखता प्रदान की है । इस प्रकार विश्व के उन्नतिशील देशों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने मजदूरी की समस्या का विशेष महत्व है । भारत में आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं के अध्ययन के परिणामस्वरूप एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति की आवश्यकता को अनुभव किया गया । इसकी आवश्यकता के प्रमुख कारण निम्नलिखित रहे है

1. देश में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य को उचित मजदूरी नीति के. क्रियान्वयन के फलस्वरूप ही प्राप्त किया जा सकता है ।
2. मजदूरी का वैधानिक, प्रशासकीय एवं अर्द्ध न्यायिक आधार पर नियत किया जाना उसी दशा में सम्भव है जब एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति हों ।
3. आर्थिक नियोजन तथा इसके लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति का निर्माण किया जाये तथा निष्ठा के साथ उसका परिपालन भी किया जाये।
4. आर्थिक नियोजन तथा इसके लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति का निर्माण किया जाये तथा निष्ठा के साथ उसका परिपालन भी किया जाये।
5. एक निश्चित राष्ट्रीय नीति होने पर ही उसे राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार सुविधा से संशोधित किया जा सकता है ।
6. एक दृढ एवं स्वस्थ श्रम संघ आन्दोलन तथा श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से भी उचित मजदूरी नीति का होना बहुत आवश्यक है ।

एक न्यायसंगत राष्ट्रीय मजदूरी नीति के निर्धारण हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए-

(क) मजदूरी नीति के निर्धारण में सार्वजनिक व निजी दोनों की क्षेत्रों के उद्योगों का ध्यान रखना चाहिए तथा इस दृष्टि से राष्ट्रीय नीति समन्वित होनी चाहिए ।

(ख) न्यूनतम व अधिकतम मजदूरी में कम से कम अन्तर होना चाहिए ।

(ग) अनावश्यक एवं अत्यधिक वेतन मान न रखे 'जायें ।

(घ) मजदूरी नीति के निर्धारण में सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों के उद्योगों का ध्यान रखना चाहिए तथा इस दृष्टि से राष्ट्रीय नीति समन्वित होनी चाहिए ।

19.3 न्यूनतम मजदूरी

प्रारम्भिक

न्यूनतम मजदूरी का आशय उस न्यूनतम परितोषण से है, जो कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक है । और जो उन्हें एसे सामान्य आराम प्रदान कर सकें, जिनसे उनमें अच्छी आदतें विकसित हों, आत्मसम्मान की भावना पैदा हो और वे एक सम्मानित नागरिक की भांति समाज में रह सकें ।

19.3.1 न्यूनतम मजदूरी का अर्थ

भारत सरकार द्वारा नियुक्त उचित मजदूरी समिति ने न्यूनतम मजदूरी को निम्न प्रकार परिभाषित किया - न्यूनतम मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि न केवल वह श्रमिक के जीवन - निर्वाह के लिए व्यवस्था करें वरन उनकी ।कुशलता को सुरक्षित रखने में भी सहायता करें । इस आशय के लिए न्यूनतम मजदूरी को थोड़ी शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं एवं अन्य सुविधाओं की भी पूर्ति करनी चाहिए ।

उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी की दर सदैव के लिए निश्चित नहीं होती, वरन रहन-सहन की लागतों में (कीमत 'स्तर में वृद्धि: के परिणाम स्वरूप) परिवर्तन होने पर न्यूनतम

मजदूरी की दर में भी परिवर्तन किया दाता है । यह किसी एक या कुछ उद्योगों के लिए निर्धारित की जा सकती है या देश के सभी उद्योगों के लिए । जब वह देश के सभी उद्योगों के लिए निर्धारित की जाती है, अब उसे राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी कहा जाता है।

19.3.2 न्यूनतम- मजदूरी के उद्देश्य

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य दो है - प्रथम, श्रमिकों में शोषण रोकना और अत्यन्त नीची मजदूरी वाले उद्दगों मैं मजदूरी बढ़ाना । दूसरे, श्रमिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं और सुविधाओं की पूर्ति करना ताकि वे सन्तुष्ट रहें और औद्योगिक शान्ति बढ़े । न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी -अधिनियम या तो उस मजदूरी-दर को स्पष्ट रूप से बता देते है जिसे न्यूनतम समझा जाना चाहिए या 'न्यूनतम मजदूरी दर के निर्धारा एक प्रशासकीय आयोग पर छोड देते है प्रशासकीय आयोगों को न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का कार्य सौपान अधिक अच्छा है क्योंकि वह परिवर्तन की आर्थिक दशाओं पर ध्यान रख सकता है और आवश्यकता अनुसार न्यूनतम मजदूरी की दर में संशोधन करता रह सकता है ।

19.3.3 न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के आर्थिक प्रभाव

न्यूनतम मजदूरी या तो एक या कुछ उद्धयोगों के लिए' निर्धारित की जा सकती है या सभी उद्योगों के लिए । दोनों दशाओं में आर्थिक परिणाम अलग-अलग होते है । आइये उद्योग विशेष पर पड़ने वाले आर्थिक परिणामों की विवेचना करें । चाहे मजदूरी संघ न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करें चाहे, सरकार, दोनों दशाओं में कुछ उद्योगों के लिए इसे लागू करने के परिणाम समान होंगे । ये परिणाम अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते है । उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी लागू करने के प्रमुख हानि कारक परिणाम निम्न प्रकार होंगे':

(1) बेकारी फैलने की सम्मावना

प्राय: न्यूनतम मजदूरी प्रतिस्पर्धात्मक मजदूरी से कुछ ऊँची निर्धारित की जाती है । इससे उद्योग में बेकारी फैलने कि सम्भावनाएं है । ये सम्भावनाएं निम्न प्रकार है :

(i) **मजदूरी ऊँची होने से लागत एवं परिणाम स्वरूप वस्तु की कीमत** बढ़ना

मजदूरी ऊँची निर्धारित होने से वस्तु की लागत बढ़ जायेगी और परिणाम स्वरूप वस्तु विशेष की कीमत भी बढेगी । यदि उस वस्तु की मांग लोचदार है तो कीमत बढ़ाने पर उसकी मांग कम हो सकती ' है । अत : उत्पादक बढ़ी हुई लागत के बोझ' को (ऊँची कीमत के रूप में) उपभोक्ताओं 'पर नहीं डाल सकता । वस्तु की ऊँची कीमत पर उपभोक्ता अपनी मांग घटा देंगे । जिससे ' उत्पादकों को उत्पादन घटाना पड़ जायेगा और वे पहले की अपेक्षा कम मजदूर लगायेंगी, जिससे उद्योग विशेष में बेकारी फैलेगी । नि:सन्देह कुछ बेकार हुए श्रमिकों को अन्य उद्योग में जिनमें कि न्यूनतम मजदूरी लागू नहीं है, काम मिल जायेगा पर वहाँ उन्हें कम. मजदूरी ही मिलेगी । इस प्रकार बेरोजगार होने या नीची मजदूरी पर अन्य उद्योगों कम काम करने, दोनों ही दशाओं में श्रमिक घाटे में रहेंगे ।

(ii) अधिक श्रम-बचत मशीनों का प्रयोग किया जाना

मजदूरी ऊँची निर्धारित होने पर जब लागत बढ़ने लगती है तब सेवा योजक श्रम बचत मशीनी का प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रेरित होते हैं इससे भी श्रमिकों में बेकारी फैलेगी ।

(iii) लाभ घटने से उत्पादन मे कमी करना

यदि न्यूनतम मजदूरी स्पर्धात्मक मजदूरी से ऊँची निर्धारित की गई है तो सम्बन्धित उद्योग के लाभ कम हो जायेंगे और कुछ कम कुशल उत्पादक तो दिवालिया हो जायेंगे तथा कार्य बन्द कर देंगे । इन उद्योगों में नई पूंजी लगाना भी रूक जायेगा जब तक कि उत्पादन की कमी वस्तु की कीमत को इतना ऊँचा न उठा दे कि उद्योग विशेष में भी अन्य उद्योगों जैसे अछे लाभ के अवसर हो जायें । इस बीच उत्पादन में ही होने के कारण अनेक श्रमिक बेकार हो जायेंगे ।

(2) श्रमिकों का उद्योगों में पुनर्वितरण होना

यदि निर्धारित की गई न्यूनतम मजदूरी इतनी उँची है कि अन्य उद्योगों से अधिक कुशल श्रमिक उद्योग विशेष में मौजूदा कम कुशल श्रमिकों के स्थान पर काम करने को तत्पर हो जायेंगे, तो सेवायोजक मौजूदा श्रमिकों के स्थान पर अन्य उद्योगों से आये श्रमिकों को रखने लगेंगे, जिससे विभिन्न उद्योगों में श्रमिकों को पुनर्वितरण हो जायेंगे ।

इस प्रकार उद्योग विशेष में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से वहां रोजगार घटने की सम्भावना उत्पन्न हो. जाती है । परन्तु बेकारी के प्रगट होने में कुछ समय लगेगा। कारण, स्थिर प्लाण्ट वाले साहसी उस प्लाण्ट से कार्य लेते रहेंगे और लगभग पहले जितने श्रमिकों को रोजगार देते रहेंगे चाहे उनकी अब कम लाभ होगा । परन्तु प्लाण्ट के घिसने पर वे उसे प्रतिस्थापित नहीं करेंगे । या कोई अन्य बेहतर प्लाण्ट लगायेंगे जिसमें कम श्रमिकों से ही काम चल जाए। अत, मजदूरी बढने के काफी समय बाद श्रमिकों को नौकरी से हटाया जायेगा, परन्तु इसे सामान्यतया साहसी की अकुशलता या श्रम बचत उपायों के प्रयोग का फल समझना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी का नहीं ।

अच्छे अथवा लाभदायक परिणाम

उद्योग विशेष या कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से सदैव हानिप्रद या बुरे परिणाम नहीं होते, वरन् अच्छे या लाभप्रद परिणाम भी हो सकते है जो निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित है

(1) कुछ दशाओं में बेकारी न फैलना

निम्नांकित दशाओं में न्यूनतम मजदूरी के निवारण से बेरोजगारी फैलने की सम्मावना नहीं है :

(i) विशिष्ट या स्थिर ' प्लाण्ट वाले उद्योगों मे रोजगार कम न होना

जिस उद्योग या उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी लागू की गई है, वह यदि स्थिर या विशिष्ट प्लाण्ट का प्रयोग कर रहा है, तो उत्पादन रीतियों में सहज ही और शीघ्र ही परिवर्तन करना सम्भव नहीं होगा। इससे इन उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी के फलस्वरूप उत्पादन लगने बढ़ने से साहसियों अथवा सेवायोजकों का लाभ कुछ कम तो अवश्य हो जायेगा। परन्तु श्रमिकों के रोजगार में कमी नही लेगी । अर्थात अधिक लाभ घटकर सामान्य स्तर पर आ जायेंगे और रोजगार में घाटे कि संभावना कम रहेगी।

(ii) अधिक बेलोचदार मांग वाली वस्तु के उद्योग मे बेकारी बहुत कम होना

यदि न्यूनतम मजदूरी वाला उद्योग ऐसी वस्तु से सम्बन्धित हो जिसकी माँग बहुत बेलोचदार है, तो बढ़ी हुई मजदूरी के बोझ को साहमीगण ऊँची कीमत के रूप में उपभोक्ता पर डाल सकेंगे, जिससे उद्योग विशेष में श्रमिकों की बेरोजगारी बहुत कम होगी ।

(iii) न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरी से कम होने 'की दशा में

श्रमिको की मांग बढ़ेगी रोजगार बढ़ेगा और फिर प्रतियोगी मजदूरी में भी वृद्धि की सम्भावना बढ़ जयेगी।

(iv) मजदूरी का कुल लागत में मामूली माग होना

ऐसी दशा में सेवायोजक वस्तु की कीमत में मामूली वृद्धि करके ही अपनी क्षति की पूरा कर लेगा, जिससे रोजगार में कमी होने का अवसर नहीं आयेगा ।

(2) श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि होना

जब किसी उद्योग में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है. तब मजदूरियों -का स्तर ऊँचा हो जाता है । इससे श्रमिकों की आय बढ़ जाती है। और वह पहले की उपेक्षा पौष्टिक एवं कार्यक्षमता वर्धक आवश्यक वस्तुएं प्रयोग करने लगते है। इससे उनकी कुशलता बढ जाती है द्रव्य की चिन्ता घटने से, भी वे अधिक लगन के साथ काम करने में समर्थ होते है । परिणाम यह होता है कि वे अधिक मात्रा में उत्पादन करते है, जिससे प्रति इकाई श्रम लागत कम हो जाती है । तथा वस्तु की कीमत भी घटती है । वस्तु की कीमत घटने से मांग बढती है और फलस्वरूप रोजगार भी बढ़ता है । (सिद्धान्त की दृष्टि से तो: यह विश्लेषण ठीक है किन्तु व्यवहार मे मजदूरी बढ़ने के फलस्वरूप श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि होने के कोई स्पष्ट प्रमाण रही मिलते, है ।

(3) श्रमिकों का शोषण रूकने

यदि उद्योग या कुछ उद्योगों में श्रमिकों का शोषण किया जा रहा है तो वहां न्यूनतम मजदूरी लागू कर देने से श्रमिकों का शोषण नियन्त्रित किया जा सकेगा और श्रमिकों को. लाभ होगा, क्यौकि श्रमिकों की मजदूरी सहज ही बढ़ जायेगी ।

(4) निर्धन व्यक्तियों के पक्ष में धन का हस्तान्तरण

सरकारें धनी व्यक्तियों पर कर लगाकर बेरोजगारी लाभ फण्ड की व्यवस्था करती है और न्यूनतम मजदूरी लागू करने से उद्योग विशेष में यदि कुछ श्रमिक बेकार हो जाते है तो उन्हें फण्ड में से पुरानी मजदूरी के बराबर राशि आर्थिक सहायता के रूप में दे दी जाती है । इस प्रकार, न्यूनतम मजदूरी धनिकों से निर्धनों के पक्ष में धन के हस्तांतरण का साधन होती है।

19.3.4 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के प्रमुख प्रावधान

श्रमिकों की मजदूरी एवं उत्पादकता में प्रत्यक्ष एवं सीधा सम्बन्ध होता है । जिस देश में श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी दी जाती है उस देश के श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा होता है, उनकी कार्यक्षमता अधिक होती है और उनकी उत्पादकता -भी अधिक होती है । भारत में

नियोक्ताओं की प्रवृत्ति सदैव श्रमिकों का शोषण करने की ही है । श्रमिकों को नियोक्ताओं के शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 पारित किया गया । इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है- (1)श्रमिकों के शोषण पर प्रतिबन्ध लगाना (2) औद्योगिक अशान्ति जैसे - हड़ताल, तालाबन्दी आदि को हतोत्साहित करना (3) श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करना (4) असंगठित श्रमिकों के हितों की रक्षा करना, (5) श्रमिकों के जीवन स्तर का विकास करना (6) श्रम संघों को सुदृढ़ बनाना (7) सेवायोजकों के बीच प्रतिस्पर्धा को रोकना (8) श्रमिकों के बीच प्रतिस्पर्धा को समाप्त करना (9) श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों कों मधुर बनाना (10) श्रमिकों को आर्थिक एवं सामाजिक न्याय प्रदान करना। (11) श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाकर राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना आदि। इस अधिनियम के कुछ मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है

(1) **क्षेत्र -** जिस उद्योगों में यह अधिनियम लागू होता है उनके नाम अधिनियम की अनुसुची में वर्णित है। अनुसूची में व्यवसाय एवं उद्योगों को दो भागों में विभाजित किया गया है-

(अ) अनुसूचित रोजगार - प्रथम भाग (1) ऊनी गलीचे बनाने अथवा शाल बुनने सम्बन्धी रोजगार (2) चावल आटा या दाल मिल में रोजगार (3) तम्बाकू से सम्बन्धित (बीड़ी सहित) रोजगार (4) बागान में रोजगार (5) स्थानीय सत्ता के आधीन रोजगार (6) सड़कों और इमारतों के निर्माण या देख रेख सम्बन्धी रोजगार (7) तेल मिल में रोजगार (8) लाख के कारखानों में रोजगार (9) पत्थर तोड़ने या पत्थर फोड़ने के रोजगार (10) अभ्रक के कारखानों में रोजगार (11) सार्वजनिक मोटर यातायात में रोजगार (12) चमड़े या खालें साफ करने के कारखानों में रोजगार (13) मैगनीज की खानों में रोजगार (14) मिट्टी की खानों में रोजगार (15) बॉक्साइट की खानों में रोजगार (16) तांबे की खानों में रोजगार (17) काय नाइट की खानों में रोजगार (18) चीनी मिट्टी के कारखानों में रोजगार (19) चमकीले पत्थर या सफेद पत्थर की खानों में रोजगार (20) हवाई पट्टी की निर्माण व देख रेख तया भवन की देख रेख सम्बन्धी रोजगार

(ब) अनुसूचित रोजगार - द्वितीय भाग - (1) भूमि को जोतना एवं खेती करना (2) डेरी व्यवसाय (3) कृषि उद्यान की वस्तुओं को उगाना '(4) फसल तैयार करना (5) पशुपालन (6) मुर्गी या मधुमक्खी पालन (7) वन उद्योग (8) लकड़ी काटने सम्बन्धी उद्योग (9) खेत पर उत्पन्न की गई वस्तुओं के बाजार या गोदामों में ले जाने से सम्बन्धित कार्य. सरकार इस सूची में अन्य रोजगार को भी सम्मिलित कर सकती है।

(2) न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण

इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों सभी प्रकार के श्रमिकों (चाहे वे शारीरिक कार्य करते हों या मानसिक) के लिए विभिन्न प्रकार की न्यूनतम मजदूरी की दरों का निर्धारण कर सकती है। जैसे (1) न्यूनतम समय दर - समयानुसार भुगतान के लिए मजदूरी 'की न्यूनतम दर (2) न्यूनतम कार्य दर - कार्यानुसार मजदूरी के लिए न्यूनतम दर (3) संरक्षित समय दर - कार्यानुसार मजदूरी भुगतान पर लगाये गये श्रमिकों के लिए

पारिश्रमिक की न्यूनतम संरक्षित देर। (4) अधिसमय दर - निर्धारित समय से अधिक कार्य करने के लिए अधि समय दर।

न्यूनतम मजदूरी की दरों का निर्धारण निम्नलिखित वर्गों के लिए किया जा सकता है - (1) विभिन्न अनुसूचित रोजगारों के लिए (2) एक अनुसूचित रोजगार की विभिन्न क्रियाओं के लिए (3) प्रौढ़ किशोरों, बालकों, स्त्रियों तथा काम सीखने वाले श्रमिकों के लिए (4) विभिन्न 'स्थानों के लिए भिन्न भिन्न मजदूरी की न्यूनतम दरें।

न्यूनतम मजदूरी की दरों का निर्धारण निम्नलिखित किसी एक या अधिक मजदूरी अवधियों के आधार पर किया जा सकता है- (1) घण्टों के आधार पर (2) प्रतिदिन के आधार (3) प्रतिमाह के आधार पर (4) अन्य लम्बी अवधि के' आधार पर जो इस अधिनियम में निर्देशित की जाये।

(3) न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें

इस अधिनियम के अनुसार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है (1) श्रमिक की न्यूनतम आवश्यकतायें (2) श्रमिक के परिवार के सदस्यों की औसत संख्या (3) श्रमिकों की कार्य कुशलता एवं (4) उद्योग की भुगतान क्षमता।

(4) मजदूरी के भुगतान का स्वरूप

इस अधिनियम के अनुसार श्रमिकों को मजदूरी नकदी में दी गायेगी परन्तु 'इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों को यह भी निर्देश दियो गया है कि आवश्यकता पड़ने पर वे सम्पूर्ण या आशिक मजदूरी का भुगतान वस्तुओं के रूप में करने का अधिकार सेवा योजकों को दे सकती है।

(5) न्यूनतम मजदूरी की दरों में संशोधन

एक बार अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित 'कर देने के बाद जब भी सरकार उचित समझे न्यूनतम मजदूरी की दर में संशोधन कर सकती है। साधारणतया यह संशोधन 5 वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही किया जायेगा जुलाई 1980 में हुए श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया हें कि न्यूनतम मजदूरी की दर में संशोधन 2 वर्ष के अन्दर अथवा उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के 50 अंक तक बढ़ जाने पर (जो भी दोनों में पहले हो) किया जाना चाहिए।

(6) जाँच समितियों तथा सलाहकार समितियों की नियुक्ति

इस अधिनियम के अनुसार सरकार न्यूनतम मजदूरी की दर कें निर्धारण के सम्बन्ध में जांच समितियों की नियुक्ति कर सकती है और न्यूनतम मजदूरी दर के निर्धारण के सम्बन्ध दशाओं में संशोधन करने के लिए सरकार सलाहकार समितियों की भी नियुक्ति कर सकती है।

(7) केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना

इस अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना करेगी जिसका' कार्य केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों की सलाह देश एवं राज्य के सलाहकार बोर्डों का समन्वय करना होगा।

(8) जाँच निरीक्षकों की नियुक्ति

इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की दरों का सम्बन्धित उद्योगों में क्रियान्वयन हो रहा है या नहीं, इस तथ्य की जाँच करने के लिए सरकार जाँच निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती है। और दोषी सेवा योजकों की दण्डित कर सकती है।

(9) अवकाश का निर्धारण

इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों को उद्योग में साप्ताहिक अवकाश निश्चित करने का अधिकार भी दिया गया है ।

"उचित मजदूरी" की समस्या महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है जिसने कि प्रत्येक देश में अर्थशास्त्रियों का ध्यान अपनी और आकर्षित किया है । भारत में श्रम की केन्द्रीय परामर्श समिति ने उचित मजदूरी समिति नियुक्त की थी, जिसने अपनी रिपोर्ट अप्रैल,1947 मैं प्रस्तुत की थी । रिपोर्ट के आधार पर एक प्रस्ताव तैयार कर जून, 1950 में प्रस्तुत किया गया था, जो कि स्वीकृत न हो सका था ।

19.4 उचित मजदूरी से तात्पर्य

न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देने मात्र से वर्तमान युग में मजदूरी की समस्या समाप्त नहीं हो जाती है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी भी हो, वह इससे कम भी हो सकती है । उचित मजदूरी क्या है? उचित मजदूरी को सरल तथा स्पष्ट रूप में परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है फिर भी विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर थोड़ा बहुत ज्ञान इस दृष्टि से प्राप्त किया जा सकता है । उचित मजदूरी किसी भी देश की विशेष परिस्थितियों तथा उद्योग या क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखकर निशचित की जानी चाहिए ।

सामाजिक विज्ञानों के विश्लेषण के अनुसार, उचित मजदूरी वह है जो समान कुशलता, कठिनाई या रूचिपूर्ण कार्य के करने वाले श्रमिकों को दी जाती है । प्रो. पीगू के मतानुसार, ' 'मजदूरी की दर संकुचित के व्यवसाय में ऐसे ही श्रमिकों के लिए प्रचलित दर के समान हो । " सामान्य दृष्टि से मजदूरी तब उचित होती है, जबकि समूचे देश तथा विभिन्न व्यवसायों में उसी प्रकार के कार्यों के लिए, प्रचलित दर के समान हो । " मार्शल के अनुसार ' 'कुछ व्यवसायों में जो कार्य करने पड़ते है, वे एक समान ही अरूचि वाले और समान कठिनाइयों वाले होते है तथा उनको प्रतिपादित करनें के लिए सम लागत के प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है । ऐसे व्यवसायों में औसत रूप में मजदूरी प्रदान की जाती है उसी मजदूरी कें स्तर पर ही जो मजदूरी निश्चित ही जायेगी, वह उचित मजदूरी कहलायेगी । "

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सुझावों के अनुसार, ' 'न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए उस उद्योग को आदर्श मानकर चलना चाहिए जिसमें श्रमिक उचित रूप से संगठित हो तथा जिन्होंने सामाजिक सौदे को प्रणाली को प्रभावशाली बना लिया है । यद्यपि इस प्रकार का आदर्श नहीं है, तो देश में प्रचलित मजदूरी की दरों को अथवा विशेष स्थान की दरों को उपयोग में लाया जाना चाहिए । "

उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी के लिए न्यूनतम मजदूरी सीमा तक जीवनयापन मजदूरी, उच्चतम सीमा पर स्वीकार की जानी चाहिए । जहाँ तक उच्चतम सीमा का प्रश्न है, इसका निर्णय "उद्योगों की मृग तान-क्षमता के आधार पर निश्चित करना चाहिए। यह निम्न तत्वों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए

(1) श्रम को उत्पादकता

(2) उसी उद्योग अथवा निकट के उद्योग में प्रचलित मजदूरी की दर,

(3) राष्ट्रीय आय का स्तर एवं उसका वितरण तथा

(4) देश की अर्थ व्यवस्था में उद्योगों 'का स्थान ।

वास्तविकता तो यह कि उचित मजदूरी की वैज्ञानिक परिभाषा चाहे जो हो, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि सें उचित मजदूरी वह है जिससे श्रमिक, जीवन की कम से कम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सामाजिक स्तर के अनुसार सुन्दर जीवन स्थली कर सकें ।

19.4.1 जीवन-निर्वाह, न्यूनतम और उचित मजदूरी

उचित मजदूरी के तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए जीवन-निर्वाह, न्यूनतम और उचित मजदूरी के अन्तर को स्पष्ट करना आवश्यक है । न्यूनतम मजदूरी वह मजदूरी है जो कि न केवल जीवन-यापन के लिए आवश्यक है अपितु उससे कुछ अधिक होतो हैं, श्रम की केन्द्रीय परामर्श समिति के अनुसार, न्यूनतम मजदूरी न केवल यौवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करें अपितु वह श्रमिकों को कार्य क्षमता की सुरक्षा करें । इस के लिए न्यूनतम मजदूरी, शिक्षा, चिकित्सा आदि की सुविधायें प्रदान करके ।

जीवन निर्वाह मजदूरी क्या है? यह न्यूनतम मजदूरी के स्तर से, ऊँची होती है । न्यूनतम मजदूरी इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि वह पुरुष श्रमिक को अपने तथा अपने परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कुछ आराम संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जैसे-जैसे बच्चों की शिक्षा, अस्वस्थता से संरक्षण वृद्धावस्था आदि में बीमा आदि में समर्थ बनाये । यही जीवन निर्वाह मजदूरी बन जानी है ।

नियोजकों के अनुसार न्यूनतम मजदूरी, मजदूरी की वह दर है जिससे न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । परन्तु उचित मजदूरी समिति के विचार सै, ' 'न्यूनतम मजदूरी मे- श्रमिकों की केवल न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं होती है, अपितु उसको अपनी कार्य करने के स्थिर रखने का भी अवसर प्राप्त होत है । "

उपर्युक्त विवरण के पश्चात यहां पर पुन उचित मजदूरी के प्रशन पर विचार करेंगे । समिति के अधिकांश सदस्यों के विचारानुसार उचित मजदूरी, न्यूनतम तथा जीवन-निर्वाह मजदूरी के बीच कहीं पर निश्चित होनी चाहिए । परन्तु जिस समय जीवन-निर्वाह और न्यूनतम मजदूरी एक समान हो तो वह मजदूरी के स्तर के बराबर होनी चाहिए ।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि उचित मजदूरी को किस प्रकार से तथा कहां पर निश्चित करना चाहिए । उचित मजदूरी समिति के अनुसार तो यह न्यूनतम और जीवन-निर्वाह मजदूरी के मध्य में किसी बिन्दु पर निश्चित की जानी चाइए। यदि यह दोनों दर समाज

है तो उचित मजदूरी की दर भी इससे अनुरूप ही होनी चाहिए । समिति के अनुसार उचित मजदूरी को न्यूनतम सीमा, न्यूनतम मजदूरी के द्वार निर्धारित होना चाहिए, लेकिन उसकी उच्चतम सीमा उद्योग की भुगतान क्षमता के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए । इस दृष्टि से उचित मजदूरी समिति का मत था कि उचित मजदूरी निश्चित करते समय हमें केवल उत्पादन की मात्रा पर ही ध्यान नहीं देना चाहिये अपितु यह भी देख लेना चाहिए कि उत्पादन में से कौन-कौन से व्यय घटा दिये जायें, यद्यपि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से प्रत्येक व्यय का भुगतान लाना कठिन कार्य है । इसी कठिनाई को अनुभव करके समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रुप से लिखा है कि, "हमारा उद्देश्य यह नहीं होना चाहिए कि हम अमूर्त रूप से उचित मजदूरी निश्चित करने का प्रयत्न करें । हमको ये देखना है कि वर्तमान स्तर पर ही रोजगार न बना रहे अपितु इसमें लगातार वृद्धि होती रहे । इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मजदूरी का स्तर इस प्रकार होना चाहिए जिससे कि विभिन्न उद्योगों कुशलता के साथ अपने उत्पादन को बनाए रख सकें । अत: इस मूलभूत आधार को लेकर ही उद्योगों की देय क्षमता का निर्धारित मजदूरी के परिमण्डल द्वारा किया जाना चाहिए ।"

19.4.2 मजदूरी की व्यवहारिकता में कठिनाइयाँ

उचित मजदूरी के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करने की दृष्टि से भारत में अनेकों कठिनाइयां है । भारत औद्योगिक दृष्टि से एक पिछड़ा देश है और इस प्रकार यहां के उद्योगों की भुगतान क्षमता कम होने के फलस्वरूप वे श्रमिकों को उचित मजदूरी प्रदान करने में असमर्थ रहते है । इनके साथ-साथ भारतीय श्रमिकों में अधिकांश अशिक्षित है, जो अधिकारी की प्राप्ति के लिए बोलते तक नहीं । दूसरे भारत में श्रमिकों की संख्यामय की अपेक्षा बहुत अधिक है । इस प्रकार बेरोजगारी की स्थिति चारों ओर दृष्टिगोचर होती है । प्राय नियोजक श्रमिक का -शोषण करने में सफल हो जाते है । संक्षेप में, यह कह सकते है कि बेरोजगारी तथा उचित मजदूरी का निकट का सम्बन्ध है । जब तक बेरोजगारी समस्या का भारत से निराकरण नहीं होगा उचित मजदूरी की 'व्यवस्था लागू करने में विशेष सफलता प्राप्त नहीं होगी ।

भारत के भिन्न क्षेत्रों में न केवल वस्तुओं के भावों में अन्तर है, अपितु उनके मूल्य स्तरों में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है, जो उचित मजदूरी के निर्धारण में बाधा डालते है । एक निर्धारित समय में प्रचलित मूल्यों में वृद्धि हो जाने पर वही दर उचित मजदूरी की दृष्टि से कम हो जाती है । इस प्रकार उचित मजदूरी की दर में समय-समय पर परिवर्तन करते रहने की नितान्त आवश्यकता है । मूल्य स्तरों की निरन्तर परिवर्तन परिवर्तन से मजदूरी निश्चित करने की दृष्टि से आधार वर्ष के चुनावों में भी कठिनाई होती है ।

उचित मजदूरी की दृष्टि से सबसे कठिन एवं जटिल समस्या देय क्षमता निश्चित करने की है । कुछ व्यक्तियों के विचार है कि एक क्षेत्र. विशेष में उद्योग विशेष की क्षमता ही को देय क्षमता का आधार स्वीकार कर उसको समस्त देश में उस उद्योग विशेष का प्रतिनिधि स्वीकार किया जाये । परन्तु इस प्रकार आधार स्वीकार करना पूर्णत भ्रामक एवं असत्य है । इस दृष्टि से उचित मजदूरी समिति ने कहा है कि, ' 'हमारे विचार में किसी उद्योग की मजदूरी प्रदान करने की क्षमता का निर्धारण करने में उद्योग की किसी एक इकाई पर समस्त देश के

सभी उद्योगों को शक्ति के आधार पर स्वीकार करना त्रुटिपूर्ण होगा । अत उत्तम तो यही होगा कि किसी विशेष उद्योग को इस क्षेत्र में सभी इकाईयां का आधार स्वीकार किया जाये । स्पष्टतया मजदूरी निश्चित करने वाले परिमण्डल के लिए किस उद्योग कि प्रत्येक इकाई की देय क्षमता का अनुमान लगाना सम्भव होगा " । समिति के उपरोक्त कथन सं स्पष्ट है कि उचित मजदूरी को प्रचलित मजदूरी की दरों से सम्बन्धित रखना ठीक होगा।

"उचित मजदूरी" को निर्धारित करने की दृष्टि से समिति ने प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग प्रमंडलों की स्थापना करने का सुझाव दिया है । इन परिमण्डलों में समान संख्या में नियोजकों एवं श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ कुछ स्वतन्त्र सदस्य भी होंगें । इसके साथ-साथ जिन 'उद्योग में मजदूरी निश्चित की जाती है। उनमें क्षेत्रीय परिमण्डल की व्यवस्था का सुझाव भी समिति ने दिया है ।

19.5 पर्याप्त मजदूरी

"पर्याप्त मजदूरी से हमारा आशय कम से कम इतनी' मजदूरी से है जो कि किसी श्रमिक की अनिवार्यताओं आरामदायक आवश्यकताओं कों पूरा करने के लिए पर्याप्त हो । इसके अन्तर्गत प्राय मजदूरी के उस स्तर. का समावेश किया जाता है जिससे श्रमिक केवल स्वयं की तथा अपने परिवार के अन्य सदस्यों की मूलभूत आवशकताओं को ही सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं होता, वरन् वह उन आरामदायक आवश्यकताओं को पूरा करने में भी समर्थ होता है, जिससे वह सभ्य नागरिक की भांति समर्थ में आराम से जीवन व्यतीत कर सकें ।

पर्याप्त मजदूरी के अर्थ कौ भली प्रकार समझने के लिए निमांकित परिभाषाओं पर मनन करना नितान्त आवश्यक है :

(1) दक्षिण आस्ट्रेलिया की औद्योगिक संहिता- 1920

"पर्याप्त मजदूरी से तात्पर्य यह है कि श्रमिक को कम से कम पा परितोषण अवश्य दिया जाये कि जिस क्षेत्र में वह नियुक्त हो, वहां की सामान्य दशा के अनुसार वह अपनी उचित व आधारभूत आवश्यकताओं को पूरी करने में समर्थ सके ।"

(2) कामनवेल्थ माध्यस्थ्य न्यायालय

"पर्याप्त मजदूरी से आशय यह है कि श्रमिक को दिया जाने, पारितोषण समाज के सभ्य नागरिक के रूप में सामान्य आवश्यकताओं को के लिए पर्याप्त होना चाहिए ।"

(3) उत्तर प्रदेशीय श्रम जाँच समिति- 1946

''श्रमिक का परितोषण उतना पर्याप्त होना चाहिए कि वह जीवन-नार्वे,ह पर व्यय करने के उपरान्त इतना धन बचा ले कि 'अन्य सामाजिक आवश्यकताओं (जैसे- मनोरंजन, दवा, पत्र व्यवहार आदि). की सन्तुष्टि कर सकें । "

उत्तर प्रादेशिक श्रम जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट में चार प्रकार के जीवन स्तरों कि व्याख्या की है- (1) गरीबों का स्तर, (2) न्यूनतम निर्वाह स्तर (3) उचित- निर्वाह स्तर तथा (4) आरामदायक स्तर । "गरीबी का स्तर से तात्पर्य यह है कि श्रमिक की मजदूरी इतनी अपर्याप्त है किए वह रोटी कपड़ा व मकान सम्बन्धी मूलभूत आवश्यकताओं की भी सन्तुष्टि

नहीं कर सकता । न्यूनतम निर्वाह-स्तर का आशय यह है कि श्रमिक को केवल इतना परितोषण मिलता है कि वह अपनी शारीरिक कार्य कुशलता को कायम रख सके । न्यूनतम निर्वाह के अतिरिक्त आराम, मनोरंजन अथवा विलासिता के लिए उसके पास कुछ भी शेष नहीं रहता । एक दिन के लिए भी कार्य से अनुपस्थित रहने पर जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता है । उचित निर्वाह स्तर का आशय यह है कि श्रमिक का वेतन इतना होता है कि वह जीवन-निर्वाह पर व्यय करने के उपरान्त इतना धन बचा लेता है कि अन्य सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो सके । सामाजिक आवश्यकताओं के अन्तर्गत निम्न का समावेश किया जा सकता है । मनोरंजन, बीमा, दवा-दारू, अच्छे वस्त्र, सामान्य शिक्षा व यात्रा । इन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे न तो अपना पेट को काटना पड़ता है और न ही ऋण ही लेना पड़ता है । "आरामदायक-स्तर" से आशय यह है कि श्रमिक प्रत्येक प्रकार की अनिवार्यता (अर्थात जीवन-रक्षक, कार्यक्षमता-रक्षक तथा सामाजिक) कि संतुष्टि करने के उपरान्त इतना धन शेष बचा लेता है जिससे कि वह आरामदायक आवश्यकताओं की भी सन्तुष्टि कर सकैं । बीमारी के समय वह अच्छे इलाज की व्यवस्था कर सकता है । उच्च शिक्षा पर खर्च कर सकता है अच्छे फर्नीचरयुक्त मकान में रह सकता है तथा यात्रा एवं मनोरंजन पर भी व्यय कर सकता है।

19.5.1 पर्याप्त मजदूरी का निर्धारण

उत्तर प्रदेशीय श्रम जांच समिति के विवेचन के आधार पर पर्याप्त मजदूरी का निर्धारण आसानी से किया जा सकता है । गरीबी तथा न्यूनतम निर्वाह-स्तरों की विचारधारा तो महत्वहीन है । भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों को देखते हुए आरामदायक-स्तर अधिक ऊँचा प्रतीत होता है । अत समिति के मतानुसार उचित-निर्वाह स्तर ही 'पर्याप्त मजदूरी " के निर्धारण का आधार कहा जा सकता है । श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी इस स्तर के अनुकूल होनी चाहिए जिससे कि वे अपनी अनिवार्यताओ की पूर्ति कर सकें तथा स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता को बनाये रखने में भी समर्थ हो सकें ।

यहां यह लिखना अनावश्यक न होगा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त उचित मजदूरी समिति, 1948 के अनुसार " पर्याप्त मजदूरी का स्तर आरामदायक-स्तर है । इस समिति के शब्दों में, ' 'पर्याप्त मजदूरी एंव अभीष्ट या अन्तिम लक्ष्य है, जिसको प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

19.6 सारांश

श्रम उत्पत्ति का अनिवार्य तथा सक्रिय साधन है (श्रम नश्वर है) श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता । विकासशील देशों में श्रम से सम्बधित अपनी समस्याएं है जैसे - जनसंख्या का आधिक्य बेकारी अशिक्षा, संगठन का अभाव, निर्धनता आदि । इन समस्याओं के कारण श्रमिकों की सोदाशक्ति कम होती है ।

सेवायोजक कम से कम मजदूरी तथा विपरीत परिस्थितियों में अधिक से अधिक काम श्रमिकों से करवाना चाहते है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके । श्रमिकों को शोषण से

बचाने के लिए सरकार, मजदूरी नीति बनाती है सैद्धान्तिक अर्थ में मजदूरी नीति से आशय उस वैद्यानिक अथवा सरकारी कार्यवाही से है जो आर्थिक एवं सामाजिक नीति के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मजदूरी स्तर अथवा कलेवर अथवा दोनों पर प्रभाव डालती है । मजदूरी नीति का महत्व प्रबन्धकों एवं सेवायोजकों तथा सरकार दोनों के लिए है ।

मजदूरी के कई प्रकार है जो निम्नलिखित रुप में वर्णित है

(i) न्यूनतम मजदूरी का आशय उस न्यूनतम परितोषण से है जो कि श्रमिकों को एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने के लिए आवश्यक है । न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य श्रमिकों का शोषण रोकना नाथ अत्यन्त नीची मजदूरी वाले उद्योगों में मजदूरी बढ़ाना है । न्यूनतम मजदूरी निर्धारा का प्रभाव उद्योग विशेष तथा सभी उद्योगों पर अच्छे तथा बुरे दोनों है । क्योंकि मालिक अधिक श्रम बचत मशीनों का प्रयोग करने लगते है । वस्तुत की मांग यदि बेलोचदार है तो बेकार) कम उन्नत होगी क्योंकि बढ़ी हुई मजदूरी के बोझ की साहसी गण ऊँची कीमत के रूप में उपभोक्ता पर डाल सकेंगे । वास्तव में जब किसी उद्योग में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है । तब मजदूरियों का स्तर ऊँचा हो जाता है इससे श्रमिकों की आय बढ़ जाती है और वह पहले की अपेक्षा पौष्टिक एवं कार्यक्षमता वर्धक आवश्यक वस्तुएं प्रयोग करने लगता है' जिससे उनकी कार्य कुशलता बढ़ जाती है । परिणाम यह होता है कि वे अधिक मात्रा में उत्पादन करतें है जिससे प्रति इकाई श्रम लागत कम हो जाती हैं, । भारत सरकार ने 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाया है इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य श्रमिकों के शोषण पर प्रतिबन्ध, औद्योगिक अशान्ति को हतोत्साहित करना, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करना, श्रमिकों को आर्थिक तथा सामाजिक ज्ञान प्रदान करना है । इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें सभी प्रकार के श्रमिकों चाहे वे शारीरिक कार्य करते हों या मानसिक के लिए विभिन्न प्रकार की न्यूनतम मजदूरी दरों का निर्धारण किया है।

(ii)उचित मजदूरी किसी भी देश की विशेष परिस्थितियों तथा उपयोग या क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखकर निश्चित की जानी चाहिए । उचित मजदूरी का निर्धारण कठिन कार्य है ।

(iii) पर्याप्त मजदूरी से तात्पर्य यह है कि श्रमिक को कम से कम इतना परितोषण अवश्य दिया जाए कि जिस क्षेत्र में वह नियुक्त हो । वहां की सामान्य दशओ के अनुसार वह अपनी उचित व आधारभूत आवश्यकताओं से पूरी करने में समर्थ हो सके ।

19.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय उद्योगों में राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के महत्व का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. उचित मजदूरी के अर्थ को स्पष्ट करो । सिद्धान्त को व्यवहारिकता प्रदान करने में भारत में कौन-कौन सी कठिनाइयां अनुभव की जा रही है?
3. क्या मजदूरी का वर्तमान कलेवर सन्तोषजनक है? सब पक्षों के हर से एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता?

इकाई- 20
भारत में न्यूनतम मजदूरी

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 न्यूनतम मजदूरी निर्धारण
20.2.1 दूसरे उद्योगों के चसमान मजदूरी
20.2.2 जीवत रहने लायक मजदूरी
20.2.3 उद्योग की भुगतान क्षमता के अनुसार
20.3 उच्च मजदूरी की अर्थव्यवस्था के निहितार्थ
20.4 विभिन्न उद्योगों तथा राज्यों में श्रमिकों की मजदूरी
20.5 राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी
20.6 भारत में न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता
20.7 न्यूनतम मजदूरी कानून के उद्देश्य
20.8 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम
20.8.1 अधिनियम की कमियां
20.8.2 न्यूनतम मजदूरी की क्रियान्वयन
20.9 भारत में बोनस की समस्या
20.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.0 उद्देश्य -

किसी भी देश की लोक कल्याणकारी सरकार का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य वहां के श्रमिकों को देश की परम्पराओं एवं आय के अनुरूप न्यूनतम जीवनस्तर उपलब्ध कराना है । इसके लिए प्रत्येक देश में न्यूनतम मजदूरी तय की जाती है । इसी संदर्भ में इस इकाई में आपको यह जानकारी दी जायेगी कि न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण किन तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है? भारत में न्यूनतत मजदूरी, की क्या आवश्यकता है? इसके साथ ही न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों एवं इस अधिनियम की कमजोरियों से भी आपको अवगत कराया जाएगा ।

20.1 प्रस्तावना

प्रारम्भ में हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय आय तथा सामान्य आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये ही मजदूरी तय करने के सिद्धान्तों का विकसित किया जा सकता हैं । राष्ट्रीय आय के किसी भी स्तर पर ऐसा न्यूनतम मजदूरी का एक निश्चित स्तर अवश्य होना चाहिये, जिसे कि समाज बर्दाश्त कर सके । यदि समाज इस न्यूनतम स्तर को स्वीकार नहीं कर पाता है तो रोजगार के अवसरों में कमी होती है। फलस्वरूप

राष्ट्रीय आय अस्तव्यस्त हो जाती है । किसी भी मजदूरी नीति का तब तक अर्थशास्त्रीय रूप से सबल नहीं माना जा सकता है जब तक कि वह राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी न करे, तथा इस हुयी बढ़ोतरी में मजदूरी के उचित स्तर को प्राप्त न कर ले ।

न्यूनतम मजदूरी के नियमों में इस संदर्भ में काफी अन्तर है कि ' उन्हें तय करने में किन-निर्धारकों अथवा आधारों को स्वीकार किया गया है । जिन आधारों पर यह दरें तय की गयी है वह प्राथमिक महत्व के होते है । तथा इसका द्वितीयक उद्देश्य मजदूरों को शोषण से बचाना है, जिससे संगठन में उन्नति हो सके । शोषण से बचाने के लिए विभिन्न नियम, कई प्रकार के प्रावधान बनाते है, जैसे रहने का उचित स्तर, दूसरे समूह की मजदूरी के बराबर मजदूरी आदि । जबकि कुछ नियम इन मजदूरी दरों के बारें में कोई सीधा दिशा निर्देश नहीं देते है अपितु वह एक ऐसी मशीनरी के गठन की बात करते है जोकि न्यूनतम मजदूरी तय कर सकें । इस प्रकार इसमें समस्त अधिकार अधिकारियों की समिति में निहित होते है तथा वे वही तय करते है, जिन्हें वे उद्योग की तत्कालीन परिस्थितियों में सर्वाधिक उपयुक्त मानते है । क्योंकि इस समय उद्देश्य औद्योगिक शान्ति का बनाये रखना है, इसलिए जीवित रहने लायक मजदूरी का सिद्धान्त तथा उद्योग की क्षमता के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है ।

20.2 न्यूनतम मजदूरी निर्धारण

इस समय न्यूनतम मजदूरी तय करने में निम्न पक्षों को ध्यान में जाना है -

1. दूसरे उद्योगों के समान मजदूरी
2. जीवित रहने लायक मजदूरी
3. उद्योग की भुगतान क्षमता के अनुसार मजदूरी

20.2.1 दूसरे उद्योगों के समान मजदूरी : -

ऐसे देशों में जहाँ पर श्रम शक्ति मजबूत है तथा उसमें सौदेबाजी. (Bargaining) करने को लाता है, और वहाँ के कुछ उद्योगों में मजदूरी का स्तर काफी अच्छा है तो वहाँ पर यह सिद्धानत काफी प्रभाव है । लेकिन भारत जैसे देश में जहाँ पर मजदूर अभी काफी कमजोर है । मजदूरी का दरें बहुत कम है वहाँ पर यह सिद्धांत तो एक असंतोषजनक स्थिति से दूसरी अमतोषजनक स्थिति से तुलना करना जैसा होगा । यद्यपि कुछ विशिष्ट परस्थितियों में यह सिद्धान्त काफी उपयोगी हो सकता है । इस प्रकार अधिक परिश्रम वाले उद्योग अथवा ग्रह उद्योगों में मजदूरी तय करते समय इन उद्योगों से तुलना करने वाले सम स्वभाव उद्योगों को ही आधार के रूप में लेना चाहिए । यदि दो उद्योग एक जैसे है तथा एक ही स्थान पर स्थित है तौ मजदूरी की दरें तय करने में वहाँ के लोगों को ही काफी प्रभाव रहना है । दूसरे शब्दों में एक दिये गये वर्ग के लोगों की न्यूनतम मजदूरी उन जैसे अन्य लोगों की मजदूरी के आधार पर या विभिन्न उद्योगों मे दी जा रही मजदूरी के औसत के आधार पर तय की जा सकती है।

20.2.2 जीवित रहने लायक मजदूरी -

मजदूरी तय करने का प्रमुख व सबसे पुराना सिद्धांत यही है इस सम्बन्ध में विभिन्न लोगों की राय अलग-अलग है -

1. आस्ट्रेलियन कामनवेल्थ कोर्ट के अनुसार यह मजदूरी ऐसी हो जिसमे मजदूर अपना पत्नी व तीन बच्चा के साथ समुदाय म सभ्य तरीको से रह सके ।
2. क्षण आस्ट्रेलिया के नियमानुसार यह मजदूरी ऐसी हो जिसमें व्यक्ति उस क्षेत्र में संतोषजनक ढंग से रह कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके जहाँ पर वह कार्य कर रहा हैं ।
3. अमेरिका की दृष्टि में यह मजदूरी ऐसी हो जिसमें श्रमिक जीवित रहने, स्वास्थ्य को बनाये रखने तथा कल्याण की अन्य योजनाओं हेतु उसे उचित धन मिल सकें ।
4. यह मजदूरी ऐसी हो जिससे वह उचित प्रकार से तथा तर्क संगत ढंग से जीवित रहने के लिए आवश्यक सुविधाऐं जुटा सकें ।

उपर्युक्त संदर्भ में उचित तथा तर्कसंगत शब्द बहुत ही सापेक्षिक है । संक्षेप में यहाँ पर मजदूरी की दर व्यक्ति के रहने के स्तर के साथ जुडी हुयी है ।

जीवित रहने लायक मजदूरी एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक उद्योग से दूसरे. उद्योग में अलग-अलग होगा । "फेयर वेज कमेटी" के अनुसार "एक व्यक्ति की न्यूनतम मजदूरी इतनी अवश्य होनी चाहिए जिससे न केवल भोजन, कपड़ा और घर की व्यवस्था हो सके बल्कि उसे आवश्यक सुविधायें जैसे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, जरूरी सामाजिक दायित्वों की पूर्ति तथा वृद्धावस्था सहित किसी अनहोनी घटना का सामना करने हेतु बीमा आदि की सुविधा हो ।"

न्यूनतम मजदूरी तय करने की इकाई मुख्यत: परिवार का माना जाता है । बंगाल, मध्यप्रदेश में परिवार का आकार उत्तर प्रदेश तथा बिहार की तुलना में बड़ा होता है । उपयोग की इकाई एक सामान्य परिवार में, मजदूरी प्राप्त करने वाले के हिसाब से अलग-अलग होती है यह यदि झरिया में 1.46 है तो जमशेदपुर में 2.69 भोजन (Phiological Diet) है । किसी भी आहार का न्यूट्रीशियन मूल्य, कैलोरेफिक कन्टेनट के आधार पर तय किया जा सकता है जो कि एक व्यक्ति के कार्य करने में खर्च की गयी ऊर्जा की पूर्ति से सम्बन्धित है । हल्के व्यवसायों में काम करने में व्यक्ति की उतनी ऊर्जा खत्म नही होती जितनी कि कठिन परिश्रम वाले नव सायों में होती है । डा. डस्तुआर आर्कवायड के अनुसार मध्यम श्रेणी के काम में 2600 कैलोरी, ऊर्जा खत्म होती है । इसलिए डा मुखर्जी ने एक व्यक्ति के लिए 3000 केलोरी की आपूर्ति को उचित माना है । इसके अतिरिक्त कार्य के स्वभाव के अनुसार अतिरिक्त कैलोरी की भी व्यवस्था निम्न तालिका के अनुसार ही जानी चाहिए ।

तालिका 20.1

कार्य के स्वभाव के अनुसार अतिरिक्त कैलोरी की आवश्यकता

कार्य का स्वभाव	अतिरिक्त कैलोरी प्रति घण्टा
हल्का कार्य	75 कैलोरी
मध्यम स्तर का कार्य	75 से 150 कैलोरी
कठिन कार्य (परिश्रम वाला)	150 से 300 कैलोरी
अत्यधिक परिश्रम वाला कार्य	300 से या इससे अधिक कैलोरी

20.2.3 उद्योग की भुगतान क्षमता के अनुसार मजदूरी -

मजदूरी की दरों का निर्धारण उद्योगों की भुगतान करने की, क्षमता के आधार पर होना चाहिए । इसरो आधिकांश मजदूर, नियोक्ता, औद्योगिक संगठन, वेतन, करने वाली समितियाँ आदि राजी है । इस सम्बन्ध में फेयर वेज कमेटी के विचारों को उद्धन करना आवश्यक है, उसके अनुसार "किसी उद्योग की भुगतान करने की क्षमता की व्याख्याएं कई तरीके से हो सकती है । जहाँ तक मजदूरी की दरों का निर्धारण संगठित व्यक्तियों द्वारा । प्रक्रिया निर्भर करना, है तो इसमें उस उद्योग की भुगतान करने की क्षमता मजदूरी ' में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है । यह बहुत अधिक व्यवहारिक नही होगा यदि मजदूरी को औसत के आधार पर तय किया दिया जाये, क्योंकि बहुत से औद्योगिक संगठन इस स्तर पर भुगतान करने में सक्षम नही होंगे जिसका कि राष्ट्र की आर्थिक दशा पर पुरा प्रभाव पड़ेगा अत : इसकी रक्षा की जानी चाहिये । यह अधिक अच्छा तथा संभव होगा यदि मजदूरी का भुगतान उद्यौग की क्षमता के हिसाब से किया जायें, इससे उद्योगों पर भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा परंतु न्यून मजदूरी की समस्या आ सकती है । परिणाम स्वरूप बहुत से कम कुशल श्रमिक अपनी नौकरी खो सकते है । कुछ अकुशल श्रमिकों को व्यवसाय से बाहर किया जा सकता है । विभिन्न पद्धतियों में न्यूनतम मजदूरी तय करने में निम्न निधिक तत्व हो सकते है -

(i) फर्मों की मजदूरी भुगतान क्षमता, -

सभी फर्मो की उत्पादन क्षमता तथा लाभ की दर एक जैसी नहीं होती । यह फर्म की संगठन क्षमता, उत्पादन का स्तर, बाजार में पहुँच तथा अन्य कारकों पर निर्भर करती है । अब प्रश्न यह उठता है कि किस फर्म के भुगतान करने की क्षमता को आदर्श मानकर अन्य पर भी उसे लागू किया जा सके । इसके लिए हमें ऐसी फर्म का चुनाव करना चाहिए जिसकी न तो अत्यधिक उन्नति हो रही है तथा उसमें सामान्य कुशल श्रमिक हों ।

(ii) रोजगार (श्रमिक) की मात्रा के अनुसार, मजदूरी की भुगतान क्षमता-

कभी-कभी यह भी सुझाव दिया जाता है कि मजदूरी की दर इस आधार तय की जानी चाहिये कि नियोक्ता नियुक्ति के समय उसे उद्योग से जुडे सभी व्यक्तियों को कितना भुगतान करने में सक्षम है । इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी उद्योग में बेरोजगारी की स्थिति है तो उन उद्योग को अपनी क्षमता से अधिक भुगतान करना होगा, जबकि जिस उद्योग में खाली जगह है वाह पर भुगतान की दरें कम होगी । एक उद्योग जो तकनीकी बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त है, वह आने सभी बेरोजगार श्रमिकों को पुन : व्यवसाय में स्वीकार नहीं कर सकता। यदि किसी उद्योग के उत्पादनों की मांग अत्यधिक अनमनी है तथा इसके लिए आवश्यक श्रम शक्ति कम है तो मजदूरी दरों में काफी कमी हो सकती है ।

यदि मजदूरी की दरों में लगातार सामाज़ स्थापित इस आधार पर किया जाता रहा की उद्योग से जुड़े सभी लोगों को पूरा रोजगार मिलता रहे तो मजदूरी धीरे-धीरे बढेगी तथा उसके उत्पादन की मांग में भी बढ़ोतरी होगी । वहाँ पर नौकरी के लिय कोई खाली जगह नहीं होगी तथा यह संभव नही होगा कि ऐसे किसी श्रमिक को वही पर रखा जा सकें जो कि कही पर

नौकरी से निकाल जा चुका है या कम विकसित उद्योग में कार्यरत है तथा उन्हे वहाँ कम वेतन मिल रहा है।

(iii) मजदूरी दरों पर तकनीकी का प्रभाव -

किसी भी उद्योग की मजदूरों की क्षमता इस तथ्य से भी काफी प्रभावित होती है कि पर उत्पादन की नई तकनीकों का कितना प्रयोग किया गया हे। उदाहरणार्थ, ब्रिटेन में विश्व मे युद्ध के पश्चात् कोयला खान के मालिकों ने कहा कि यदि खानों मे नयी तकनीकी का प्रयोग किया जाये तो मजदूरों को अधिक मजदूरी दी जा सकती है । अत: हमें इस अन्तर को ध्यान में रखना चाहिये कि उद्योग वर्तमान में मजदूरी की क्या दरें देने में सक्षम है तथा यदि उचित तकनीकी का प्रयोग कर लिया जाये तो वह कितना भुगतान करने में सक्षम होगा।

20.3 उच्च मजदूरी की अर्थव्यवस्था के निहितार्थ (Implication of an economy of high wages)

उद्योग की भुगतान करने की क्षमता के अनुसार मजदूरी की दरें तय की जायें इस सिद्धान्त का नियोक्ताओं द्वारा काफी स्वीकार किया गया है जब कि दूसरी तरफ श्रमिकों के प्रतिनिधि इस बात की मांग करते है कि मजदूरी की दरें उच्च मजदूरी की अर्थव्यवस्था के द्वारा निर्धारित होनी चाहिये । यह सिद्धान्त दो विश्व युद्धों के बीच के समय में काफी प्रचलित रहा है । इस सिद्धान्त में यह माना जाता है कि भुगतान करने की क्षमता पर वर्तमान की मजदूरी दरों का काफी प्रभाव होता हें । तथा यह भी माना जाता है कि उद्योगों की भुगतान करने की क्षमता का निर्धारण उस उद्योग में वर्तमान में दिये जा रहे मजदूरी के भुगतान के स्तर पर भी निर्भर करता है।

उच्च मजदूरी के सिद्धान्त का अर्थ यही है कि जब उद्योग में समानता बढ़ेगी तो मजदूरी अधिक होगी तथा यदि उत्पादन में कमी होती है तो मजदूरी भी कम होगी। क्योंकि -

1. उच्च मजदूरी के कारण श्रमिकों की कार्य शीलता में इतना सुधार हो जाता है कि उत्पादन की प्रति इकाई का अन्तिम मूल्य कम हो जाता है।
2. उन मजदूरी नियोक्ता को नये-नये तरीकों तथा तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे मजदूरी की कीमत अपने आप ही कम हों जाती है। तथा नियोक्ता पर अधिक मजदूरी का भार नहीं पडता हैं ।
3. सामान्य जन की क्रय शक्ति को बढ़ाकर श्रमिकों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बाजार में मांग को बढाया जा सकता है । तथा उच्च मजदूरी की समस्या से निपटा जा सकता है ।

यदि श्रमिकों की उत्पादन करने क्षमता बढा दी जाये तथा अन्य चीजे सामान्य रहे तो, भी उत्पादित वस्तु की प्रति इकाई लागत कम हो जोती है। मजदूरी में की गई बढ़ोतरी यदि कुल उत्पादित वस्तुओं की बढ़ोतरी के अनुरूप नही है नो वस्तु की सामान्य कीमत में बढ़ोतरी हो जायेगी। यदि मजदूरी बाढायी गयी तथा वस्तुओं की कीमत में तदनुसार परिवर्तन न हुआ तो उद्योग कर्ता के लाभ पर इसका असर पडेगा। अत: मजदूरी बढाने के लिए उत्पादन बढाना सबसे उपयुक्त आधार है। न्यूनतम मजदूरी के निर्धारा का नौकरी के साथ भी बड़ा महत्वपूर्ण

सम्बन्ध है । क्योंकि भारत जैसे देश में निश्चित वेतन के बजाय नौकरी मै रहना ज्यादा महत्वपूर्ण है।

मजदूरी नीति को समझने के लिए श्रम शक्ति तथा वेतन की संरचना और विभिन्न प्रभागों द्वारा प्राप्त किये जा रहे वेतन के बारे में जानना आवश्यक है। संक्षेप में मजदूरी नीति भारत के संगठित, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के 22.9 मिलियन श्रमिकों से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त 33 प्रतिशत श्रमिक अपने जीवनयापन हेतु असंगठित क्षेत्र से सम्बन्धित है। जिसमें 25 प्रतिशत कृषि श्रमिक तथा 8 प्रतिशत कृषि के अलावा अन्य कार्यो में लगे श्रमिक है। लगभग 57 प्रतिशत श्रमिक अपने-अपने कार्यों में लगे है, इसलिए ये सही मायने में श्रमिकों की श्रेणी में नहीं आते है। यदि श्रमिक शब्द को वृहद रूप में देखा जाये तो इसमें काम करने वाले वे सभी व्यक्ति आ जाते है जो कि अपने जीविकोपार्जन के लिए किसी सम्पति की आय पर निर्भर नहीं है। राष्ट्रीय मजदूरी नीति इतनी व्यापक होनी चाहिए जिसमें संगठित क्षेत्र के साथ-साथ. असंगठित क्षेत्रों तथा स्वीकार्य में लगे मजदूरों की स्थिति तथा मजदूरी से सुधार आ सकें।

तालिका 20.2

प्रति व्यक्ति श्रमिक कार्य शक्ति की संरचना तथा आय 1981

	कार्य शक्ति लाख	%	कुल आय करोड़	%	प्रति श्रमिक औसत वार्षिक 3/1 आय	सभी श्रमिकों औसत वार्षिक आय (-100) का सूचकांक
1.वेतन वेतन कमाने वाले	965	43.4	43,121	49.1	4,468	113.2
A. संगठित क्षेत्र	229	10.3	24,850	28.3	10,851	274.8
(i) सार्वजनिक क्षेत्र	155	7.0	16,496	18.8	10,643	269.6
(ii)निजी क्षेत्र	74	3.3	8,354	9.5	11,289	285.9
B. असंगठित क्षेत्र	736	33.1	18,271	20.8	2,482	62.9
(iii)कृषि श्रमिक	555	25.0	9,454	10.8	1,703	43.1
(iv)अकृषि श्रमिक	181	8.1	8,817	10.0	4,871	123.4
II. स्व रोजगार	1,264	56.6	44,719	50.9	3,549	89.9
(c) खेती हर	925	41.6	27,748	31.6	3,000	76.6
(d) खेती हर	335	15.0	16,971	19.3	5,066	128.3
कुल I+II	2,225	100.0	87,840	100.0	3,948	100.0

स्रोत - बेस्ट स्टेटिस्टिक्स रिलेटिंग टू द इण्डियन इकोनॉमी, खण्ड, 1 आल इण्डिया, अगस्त 1988

तालिका 20.2 से पता चलता है कि कृषि श्रमिकों की हालत अन्य वर्गों के श्रमिकों की तुलना में अत्यधिक खराब है। इनकी वार्षिक आय 1703 रुपये है जबकि जो लोग स्वयं अपना

कोई काम करते है वह 30000 रुपये तक कमा लेते है। इन दोनों वर्गों में श्रम शक्ति का लगभग 66.6 प्रतिशत (148मिलियन) श्रमिक आते है। परन्तु संगठित क्षेत्र काम करने वाले श्रमिकों की दशाएं काफी बेहतर है, तथा उनकी वार्षिक आय लगभग 10851 रुपये है, जोकि सामान्य श्रमिकों की तुलना में 2.75 प्रतिशत अधिक है।

तालिका 20.3

निर्माण उद्योगों मे कार्यरत (1962-82) कर्मचारियों की वास्तविकता आय का सूचकांक, जिनकी आय रु.400 तथा 1000 से कम है।

वर्ष	धनार्जन का सूचकांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता सूचकांक(आधार1961=100)	वास्तविक आय का मूल्य सूचकांक सूचकांक COL.2/3-2
उन श्रमिकों के लिए जिनकी आय 400 रु से कम है।			
सन 1961= 100			
1962	106	103	103
1972	199	194	103
1973	210	228	92
1974	207	293	71
1975	207	310	67
वह श्रमिक जिनकी आय 1000 रु. से कम है (आधार सन 1976=100)			
1977	112	108	104
1980	137	132	104
1982	153	160	96

स्त्रोत - इण्डियन लेबर इयर बुक 1987, पेज 38.

तालिका 20.3 धन प्राप्ति इंडेक्स तथा वास्तविक आय की इन्डैक्स (उपभोक्ता मूल्य इंडेक्स में हुये परिवर्तनों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए) के सन 1961 से 1975 के बीच के समय को दर्शाती है । इससे पता चलता है कि श्रमिक अपनी केवल 1961 की वास्तविक आय को बनाये रखे हुये है। 1972 के बाद स्थिति में काफी गिरावट आयी और वास्तविक मजदूरी इंडेक्स में सन 1975 में 1961 की तुलना में 67 बिन्दुओं की गिरावट आयी। चूंकि सन 1976 में श्रमिकों की परिभाषा में काफी[परिवर्तन हुआ, तथा उसमें 1000 रुपये से कम अर्जित करने वाले व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया । 1976 के बाद भी ऐसे प्रमाण

कम मिलते है जिससे पता चले कि वास्तविक मजदूरी में बहुत बढ़ोतरी हुयी है । इस सम्पूर्ण विवेचन का सार यह है कि देश के मजदूरों के आय आज भी 1961 के स्तर की है और यह हमारे देश के लिए एक दुखद बात है जिसकी संविधान की प्रस्तावना में ही समाजवाद शब्द पर बडा जोर दिया गया है।

मजदूरी तथा प्रतिव्यक्ति आय -

वास्तविक मजदूरी के सूचकांक तथा प्रतिव्यक्ति के सूचकांक के सम्बन्ध में जो सूचनाएं उपलब्ध है उनके आधार पर कहा जा सकता है कि वास्तविक मजदूरी सूचकांक में 1960 से 1983 के मध्य, यदि बिन्दुवार तुलना की जाये तो 51 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुयी हें। जबकि इसी अवधि के लिए तीन वर्षीय बदलता औसत निकाला जाये तो यह बढ़ोतरी 43.4 प्रतिशत होती है। जबकि 1960 से 1983 के मध्य बिन्दुवार तुलना करने पर प्रतिव्यक्ति आय में 36.5 प्रतिशत प्रगति हुयी है। यदि इसे तीन वर्षीय बदलते औसत के आधार देखा जाये तो यह प्रगति 28.9 प्रतिशत दिखाई पडती है। दुसरे शब्दों में जो वास्तविक मजदूरी है वह प्रतिव्यक्ति आय की तुलना में अधिक बढी है। यह इसलिए संभव हो सकता क्योंकि असंगठित क्षेत्रों में वास्तविक मजदूरी प्रतिव्यक्ति आय की तुलना में उचित अनुपात में नहीं बढ सकी। परिणामत: संगठित क्षेत्र, असंगठित क्षेत्रों की कीमत पर अपनी वास्तविक मजदूरी बढना में सफल हुये।

20.4 विभिन्न उद्योगों तथा राज्यों में श्रमिकों की मजदूरी -

नीचे दी गयी तालिका 20.4 से स्पष्ट है कि 1980 में विभिन्न उद्योगों में प्रतिव्यक्ति के कार्य दिवस के बदले प्राप्त आय में काफी विभिन्नता है -

तालिका 20.4

निर्माण क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों की प्रति दिन औसत आय

(कटौतियों से पूर्व) सन 1980 में

क्र.स.	उद्योग	श्रमिक	पर्यवेक्षक तथा प्रबन्धन स्टाफ	कुल कर्मचारी
1	2	3	4	5
1.	नशीले पेय पदार्थ तथा तम्बाकू	12.5	57.17	15.12
2.	तम्बाकू उत्पादन	22.68	59.15	24.34
3.	सूती कपडा मिल, ऊनी, रेशमी तथा सैन्थेटिक धागा मिल	20.76	56.40	23.05
4.	जूट, भांग, और मेस्टा मिल	21.67	57.49	22.85
5.	टैक्टाइल उत्पादन	15.24	47.64	17.94
6.	लकडी, लकडी उत्पाद, फर्नीचर	12.74	35.62	15.15
7.	कागज और कागज उत्पाद	24.23	57.16	27.26
8.	चमडा और चमडा उत्पाद	20.79	60.66	23.47
9.	रबड, प्लास्टिक, पैट्रोलियम व कोयला	28.50	75.24	34.65

	उत्पाद			
10.	कैमीकल एवं कैमीकल उत्पाद	29.30	85.41	38.18
11.	बिजली की मशीन तथा उपकरण	29.97	68.02	36.47
12.	परिवहन उपकरण एवं पुर्जे	30.80	65.21	34.90
13.	भण्डारण तथा भण्डारागार	10.30	33.86	11.79
14.	समस्त उद्योग	33.61	64.03	27.44

स्रोत - इण्डियन लेबर ईयर बुक (1987)

प्रतिदिन की उच्चतम आय उद्योगों में कैमीकल्स वर्ग में पायी गयी, जो कि 38.18 रुपया है। इसके पश्चात दूसरा स्थान बिजली मशीनरी के क्षेत्र को मिला जहाँ यह आय 36.47 है। तीसरे स्थान पर परिवहन उपकरण क्षेत्र आया जहाँ पर यह आय 34.90 पायी गयी तथा कम' आय 11.79 रुपया भण्डारण के क्षेत्र में पायी गयी।

इस प्रकार इस तालिका में स्पष्ट दिखाई पडता हैं कि अधिकतम तथा न्यूनतम मजदूरी में काफी ज्यादा अन्तर है । आनुपातिक रूप में इसे 3.24:1 के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से जो श्रमिक बेरोजगार है वह कम मजदूरी स्वीकार कर लेते है । मजदूरी देने में कुछ अन्य कारण जैसे फर्म की भुगतान करने की क्षमता, यूनियनों की भूमिका आदि का भी प्रभाव पडता हैं। परन्तु प्रतिव्यक्ति कार्य दिवस की औसत आय में अन्तर निश्चित रूप से यह सूचित करता है कि राष्ट्र की मजदूरी नीति में सुधार की कमी है।

विभिन्न राज्यों में भी आपस में मजदूरी दरों में अन्तर दिखाई पडता है । महाराष्ट्र में सर्वाधिक प्रतिव्यकित आय 34.37 रूपया जबकि त्रिपुरा में न्यूनतम आय 12.47 रुपया है।

20.5 राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी (A National Minimum Time Wage)

राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी का कानूनी स्थिरीकरण आने प्राथमिक उद्देश्य, कठिन परिश्रम करने वाले मजदूरों के हितों की रक्षा करने के साथ देश कें हित में लाभांश पर भी ध्यान देता है । जितना अधिक राष्ट्रीय लाभांश को बढाया जायेगा उसी अनुपात में राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी पर ध्यान देना होगा । यदि सभी उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की गणना की जाये तो अकुशल श्रमिक इतनी कम मजदूरी पाते है कि यह जनता के लिए चिन्ता का विषय हो सकता है । इसीलिए राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी प्रथा की शुरूआत की ताकि असहाय मजदूरों के हितों की रक्षा की जा सकें । इसी कारण से अब यह तय हो गया है कि कोई भी श्रमिक उसकी कार्यक्षमता कुछ भी हो उसे कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी नही दी जा सकती।

कानूनी न्यूनतम मजदूरी से बचाव -

यदि इस न्यूनतम समय मजदूरी प्रथा लागू होने का क्षेत्र छोटा होगा तौ हौ सकता है कि नियोक्ता अपने श्रमिकों को कानून द्वारा निर्धारित मजदूरी से कम राशि देगा। परन्तु यदि इसका क्षेत्र सम्पूर्ण राष्ट्र या बडा भाग होगा तो कोई भी ऐसा मजदूर नहीं होगा जिसे यह न्यूनतम मजदूरी नहीं मिल सके।

न्यूनतम मजदूरी तथा बेरोजगारी -

राष्ट्रीय न्यूनतम समय मजदूरी प्रथा के लागू होने का एक परिणाम यह हो सकता है कि निजी उद्योगों में कम वेतन पाने वाले श्रमिकों की छटनी हो जाये । इन मजदूरों की संख्या और भी अधिक हो सकती है यदि न्यूनतम मजदूरी का स्तर अधिक रहा हो । यदि ऐसा हो कि कम वेतन पाने वाले श्रमिक भविष्य में इतना कम वेतन नहीं पायेंगे जितना कि वे अभी पा रहें है तो हो सकता हें कि इनमें से कुछ श्रमिक अधिक समय तक रोजगार में न रह पायें । वे सभी श्रमिक जो अब काम करने के योग्य नहीं रह गये है उन पर भी हो सकता है कि नयी मजदूरी व्यवस्था लागू नही की जाये क्योंकि मांग और का सिद्धान्त उद्योग में बचे हुये श्रमिकों से यह अपेक्षा करता है कि वह अधिक कार्य कर अनवरतता बनाये रखें। यदि किसी उद्योग में श्रमिकों की मांग अधिक अनमनी है तो उस उद्योग में निकाले जाने वाले श्रमिकों की संख्या भी कम होगी। इन निजी उद्योगों से जितने श्रमिक निकाले जायेंगे, राष्ट्रीय लाभांश पर उतना ही बुरा प्रभाव पडेगा।

राष्ट्रीय लाभांश में न्यूनतम घाटे की विधियाँ -

इसके लिए कई तरीके अपनाकर घाटे को कम किया जा सकता है। कम वेतन पाने पाने वाले निकाल गये कुछ श्रमिकों को राज्य द्वारा नियंत्रित संस्थाओं में काम पर लगाया जा सकता है। 'परन्तु लोगों की महानता के लिए दबाव से नौकरी में लगाये गये श्रमिकों की समस्या सबसे अधिक सन्तोषजनक होती हैं। ऐसी स्थिति में सरकार कभी-कभी तटस्थ रह जाती है। ऐसे में सरकार को चाहिए कि वह इन बेरोजगार श्रमिकों के लिए किसी प्रशिक्षण की व्यावस्था करें ताकि वह अपनी आय को पुन: प्राप्त कर सकें। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि राष्ट्रीय' न्यूनतम समय मजदूरी को संगठित राज्य नीति के साथ लागू किया जाये तो वह लम्बी अवधि में राष्ट्रीय हितों के विरूद्ध नहीं होगी।

20.6 भारत मे न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता -

भारत में कम मजदूरी की दरों को देखते हुये आवश्यकता है की मजदूरी का न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जाये । अपने देश में अधिकतर मजदूर असंगठित है तथा नियोक्ताओं द्वारा अत्यधिक कम वेतन देकर इनका शोषण किया जा रहा है। औद्योगिक झगडों की समस्या, मजदूरों का खराब जीवन स्तर, अकुशलता तथा उनका ऋण में डूबे रहना आदि सभी समस्याएं मजदूरों को कम वेतन मिलने के कारण ही उत्पन्न हेती हैं । अत: यह अत्यधिक आवश्यक है कि सुगठित सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने कें लिए श्रमिकों कौ सन्तोषजनक मजदूरी मिले। भारत में कम्युनिस्टों का उदय इसी 'काम करने वाले वर्ग की गरीबी के कारण ही हुआ। यदि हमे इन क्रतिकारी विचारधाराओं की चपेट में आने से पूरे समाज को बचाना है तो मजदूरी की ओर ध्यान देना ही होगा । नियोक्ता तथा- कर्मचारियों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बंध बनाये रखने के लिए उत्पादन की क्षमता का उच्चतर स्तर पर लिये जाने के लिए भी संतोषजनक न्यूनतम मजदूरी आवश्यक हैं।

श्रमिक तथा उसके परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के पर न्यूनतम मजदूरी तय की जाये, यह समस्या सभी देशों में रही है । क्योंकि श्रमिक अपनी क्षमता' के अनुसार

न्यूनतम मजदूरी नहीं तय करना चाहते । न्यूनतम मजदूरी तय करने में नियोक्ता' की भी कुछ अपनी राय हैं जैसे,

1. मजदूरी में बढ़ोतरी से श्रमिक अधिक शराब पीने लगते हैं ।
2. ज्ञान में वृद्धि से उनके अन्य वस्तुओं की आपूर्ति में वृद्धी होती है।
3. आय मे वृद्धि के साथ मंहगाई में भी वृद्धि होती हैं।

20.7 न्यूनतम मजदूरी कानून के उद्देश्य -

(1) कठोर परिश्रम से बचाव - न्यूनतम मजदूरी हेतु कानून बनाने का उद्देश्य विभिन्न उद्योगों में कार्यरत कम वेतन पाने वाले मजदूरों के वेतन में बढौतरी करना है। यदि दल उद्योग या फैक्ट्री में लगातार गिरावट आ रही है या वहाँ पर कर्मचारियों की अधिक संख्या होने से भुगतान की समस्यायें है तो दूसरे उद्योगों में कार्यरत मजदूरों के वेतन के अनुपात से इस फैक्ट्री के मजदूरों का वेतन तय करना उचित रहेगा। इससे यह भी हो सकता है कि श्रमिक दूसरे उद्योगों में अपने लिये कोई रोजगार खोजने का प्रयास करें, जिससे विभिन्न उद्योगों में मजदूरों का उनकी आवश्यकता के अनुसार वितरण हो सके। श्रमिकों की उत्पादन क्षमता असंतोषजनक मजदूरी से काफी प्रभावित होती है। यदि वेतन में कमी होती है, तथा श्रमिक का शोषण होता है, तो भी श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में कमी आती है । न्यूनतम मजदूरी व्यवस्था का एक गुट उद्देश्य यह भी होता है कि वह मजदूरों को शोषण से बचाये तथा उनकी उत्पादन क्षमता बनाये रखे।

उत्तर प्रदेश लेबर इन्वायरी कमेटी ने अपने अनुमानों के आधार पर बताया है कि न्यूनतम मजदूरी तय करने से उत्पादन बढता है तथा कम वेतन पाने वाले श्रमिकों में आपस में जो मजदूरी का अन्तर होता है वह भी कम होता है।

(2) जिन उद्योगों में श्रमिक असंगठित होते है वहाँ पर उनका शोषण अधिक होता है तथा मजदूरी भी कम मिलती है इन असंगठित मजदूरों के हितों की रक्षा हेतु ही कई देशों में न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को लागू किया गया है । सरकार का हस्तक्षेप इस संदर्भ में तभी होता है जब कि मजदूरों के सामूहिक प्रयासों से भी न्यूनतम मजदूरी कानून को वहाँ मान्यता नहीं मिल पाती । जीविकोपार्जन हेतु न्यूनतम वेतन व्यवस्था का प्रयोग संगठन को विकास हेतु प्रेरित करने के लिए भी किया जा सकता है।

(3) उद्योगों में हर समय शांति बनी रहे, ऐसा नहीं होता है। कभी-कभी आन्तरिक तनावों के कारण फैक्ट्री की कार्य प्रणाली काफी होती है, जिससे उस समुदाय के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पडता है । जिन उद्योगों में मजदूरी की न्यूनतम दरों से सम्बन्धित विवादों का तय करने के लिए मध्यस्थता करने वाली मशीनरी (Arbitration Machinery) होती है, वहाँ पर इनका निस्तारण इस मध्यस्थता करने वाले कोर्ट के द्वारा सुलझा लिये जाते है।

20.8 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

1928 में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने न्यूनतम वेतन की समस्या की तरफ ध्यान दिया था । इस संस्था ने न्यूनतम वेतन हेतु एक ड्राफ्ट तैयार किया तथा अपने सदस्य

देशों से कहा कि जिन उद्योगों में मजदूरों को कम वेतन मिल रहा है वहाँ पर न्यूनतम मजदूरी लागू करवाने हेतु किसी मशीनरी का विकास करें ।

भारत में इस सम्बन्ध में विचार विमर्श "स्टैन्डिंग लेबर कमेटी" की तीसरी-चौथी मीटिंग में हुआ । उसके पश्चात् 1943, 1944 तथा 1945 में हुयी श्रम संघों की कान्फ्रेंस में भी बातचीत हुयी, जिसके फलस्वरूप 11 अप्रैल 1946 को न्यूनतम मजदूरी बिल अस्तित्व में आया । इस बीच में देश में संवैधानिक परिवर्तन होने से इन बिल को पारित होने में काफी समय लगा तथा मार्च 1948 में यह बिल पास हो सका।

1948 में पारित यह बिल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत पर प्रभावी था । यह विभिन्न प्रकार के उद्योगों जिनकी सूची एक्ट के साथ लगायी गयी थी, पर लागू होता था। इसके साथ ही केन्द्र तथा राज्य सरकारों को यह हक भी दिया गया कि वह जिन अन्य उद्योगों में इन न्यूनतम मजदूरी कानून को लागू करना चाहें, उनमें लागू कर सकती है। इस एक्ट में भाग एक साथ विभिन्न व्यवसायों की सूची संलग्न की गयी थी। भाग द्वितीय में कृषि तथा उससे सम्बन्धित रोजगारों की सूची थी । यह एक्ट केवल नियमित कर्मचारियों पर ही ' लागू नहीं होता था, बल्कि अनियमित कर्मचारी, ऐसे कर्मचारी जिन्हे किसी दूसरे के द्वारा कोई सामान तैयार करने या बेचने के लिए सामग्री दी गयी है, आदि भी इसके अन्तर्गत आते थे।

परन्तु यदि राज्य में किसी उद्योग में मजदूरों की संख्या 1000 से कम है, तो आवश्यक नहीं था, कि न्यूनतम मजदूरी दरें तय ही की जायें।

यह एक्ट मजदूरी दर निर्धारण में निम्न बातों पर ध्यान देता था -

(अ) मजदूरी की न्यूनतम समय दर (ब) न्यूनतम पीस (Piece) दर (स) एक निश्चित समय की मजदूरी दर (द) विभिन्न व्यवसायों में ओवर टाइम की दरें।

मजदूरी की न्यूनतम दरों में निम्न पक्ष भी समाहित थे,

(अ) मजदूरी हेतु बेसिक दरें तथा जीवित रहने हेतु आवश्यक भत्ते ।

(ब) मजदूरी हेतु बेसिक दरें, बिना जीवित रहने हेतु आवश्यक भत्तों के साथ, तथा मजदूरों को कन्शेशनल दरों पर दिये जाने वाले सामान का मूल्य।

(स) इनक्लूजिव दरें (Inclusive Rate) एक्ट में यह भी कहा गया था कि मजदूरी का भुगतान नकद राशि में किया जाये।

20.8.1 अधिनियम की कमियां

इस एक्ट के प्रथम भाग में जो उद्योगों के सूची लगायी गयी है वह संकीर्ण है तथा उसमें ऐसे बहुत से उद्योगों को छोड़ दिया गया है, जिनमें लोगों के बहुत कम वेतन मिल रहा है। इसलिए यह एक्ट अपने उद्देश्यों की पूर्ति उचित तरीके से ही नहीं करता है।

इसमें राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि वह जिन उन्य उद्योगों का इस सूची में सम्मिलित करना चाहे, सम्मिलित कर सकते है। जिसके कारण मजदूरों में काफी असंतोष उभरा क्योंकि कुछ राज्यों में कुछ उद्योगों को इस सूची में सम्मिलित कर लिया गय जबकि कुछ राज्यों में इन्ही उद्योगों को इस सूची में सम्मिलित नहीं किया गया ।

इस एक्ट के अनुसार न्यूनतम मजदूरी दर तो तय की जानी है परन्तु कभी-कभी ये न्यूनतम दरें अधिकतम दरें बनकर रह जाती है क्योंकि इनमें, नियमित सुधार की व्यवस्था नहीं है।

इस कानून में मूल मजदूरी का तय करने के सिद्धान्त दिये गये है, परन्तु कभी-कभी विभिन्न राज्यों के महंगाई भत्तों तथा समय मजदूरी में अन्तर होता है। इसके अलावा सरकार इस मजदूरी से प्रभावित होने मजदूरों से सलाह लिये बिना उनकी मजदूरी तय कर देती है।

20.8.2 न्यूनतम मजदूरी का क्रियान्वयन -

एक या दो राज्यों के कुछ उद्योगों को छोडकर बाकी सभी सरकारों ने इस एक्ट के 'पार्ट एफ' के अनुसार मजदूरी की दरें निर्धारित कर दी । कुछ राज्यों में इस मजदूरी में मंहगाई भत्ते की दरें सम्मिलित है, कुछ में नहीं । एक राज्य से दूसरे राज्य में, तथा एक उद्योग से दूसरे उद्योग की मजदूरी दरों में जो विभिन्नता है उसे समय-समय पर दूर करने का प्रयास किया गया है। 1957 के बाद विभिन्न उद्योगों हेतु "वेज बोर्न" भी गठित किये गये है। यही बोर्ड श्रमिकों के लिए म'मजदूरी की दरें तथा महंगाई भत्ते तय करते हैं।

20.9 भारत मे बोनस की समस्या -

भारत सरकार ने श्री एम. आर. माहेर की अध्यक्षता में बोनस कमीशन नियुक्त किया था । इस कमीशन की मुख्य संस्तुति यह थी, कि बोनस प्रतिष्ठान में कार्यरत कर्मचारी का यह लाभांश है, जो प्रतिष्ठान ने कमाया है । दूसरे शब्दों में यह कम्पनी की प्रयोजना मे मजदूरों की हिस्सेदारी है । बोनस रिव्यू कमेटी ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट सितम्बर 1974 में दी थी, जिसमें न्यूनतम बोनस 8.33 प्रतिशत तथा अधिकतम बोनस 20 प्रतिशत देने की अनुशंसा की। परन्तु इसमें उन्हीं कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया जिनका वेतन 2500 रुपया है। जबकि पूर्व में ये 1600 रुपये वेतन पाने तक हो सीमित था। जो लोग 1600 रु के मध्य वेतन पाते है उनके बोनस की गणना यह मानकर की जायेगी की उनका वेतन 1600 रूपये प्रतिमाह है।

मंहगाई हेतु क्षतिपूर्ति -

आंकडे बताते है कि वर्तमान मूल्यों के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों को कुल मिलने वाले वेतन का इंडेक्स नम्बर 1971-72 के 100 पाइण्ट से बढकर 1987-88 में 544.6 पाइण्ट हो गया। जबकि इसी अवधि में उपभोक्ता मूल्य इंडेक्स केवल 38.2 पाइण्ट बढा। दूसरे शब्दों में कर्मचारी को मिलने वाले वेतन में इस अवधि में प्रतिवर्ष 2.26 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुयी । यह दर 1971-72 की प्रतिव्यक्ति एन. एन. पी. से भी ज्यादा थी, जो कि उस समय लगभग 1.7 प्रतिशत थी । इस प्रकार के उतार चढाव से जीवन स्तर महंगा हो गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को काफी घाटा हुआ। जिसकी पूर्ति या तो अप्रत्यक्ष करों को बढकर की जा सकती है या सार्वजनिक उधारी से हो सकती है। ये सभी उन्नति के तरीके महंगाई को भी बढायेंगे।

रोजगार मे वृद्धि तथा मजदूरी नीतियाँ -

सार्वजनिक तथा नीति क्षेत्र, शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र ओर संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों के बीच प्रचलित मजदूरी दरों की विभिन्नता को कम करने के लिए उठाये गये सभी प्रशासकीय व कानूनी कदम बहुत प्रभावी नहीं होंगे, यदि रोजगार की इतनी वृद्धि दर नहीं होती कि वह पीछे के बेरोजगार लोगों को काम दे सके तथा अन्य श्रम शक्ति को भी अपने में समाहित करे सके। अत: मजदूरी नीति को रोजगार नीति के साथ चलना होगा । क्योंकि निगमित क्षेत्र में अधिक लोगों को रोजगार नहीं मिलता है, इसलिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का विकास किया जाये । इस दिशा में कृषि क्षेत्र बडा महत्वपूर्ण क्षेत्र हो सकता हैं। कृषि के क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी दरें अभी तक उन राज्यों में भी देय नहीं है जहाँ पर हरित क्रांति हो चुकी है। कृषि क्षेत्र मे हुयी उच्च उन्नति ने न केवल कृषि क्षेत्र के लोगों में अधिक क्रय शक्ति को बढाया बल्कि कृषि से जुडे हुये अन्य क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर बढाये है। इसके कारण इस क्षेत्र में मजदूरों की आवश्यकता बढी है तथा बाजारोन्मुखी शक्तियों के दबाव में न्यूनतम मजदूरी दरें भी लागू की जा रही है।

अत: आवश्यक है कि हम कृषि क्षेत्र के छोटे उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति तथा तकनीकों के क्षेत्र में सुधार करें । जिससें कृषि आधारित उद्योगों की बाजार में हिस्सेदारी बढ सकें।

20.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मार्शल, एफ. आर. कार्टर एण्ड किंग, ए. एम., लेबर इकोनॉमिक्स वेजेज एम्पलायमेंट एण्ड ट्रेड यूनियनिज्म, इरिविन ओरेजे लिमिटेड, जॉर्ज टाउन, ओन्टेरियों, 1976.
2. सिंह, आर. आर., लेबर इकोनॉमिक्स, श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, 1971
3. इण्डियन लेबर इयर बुक 1987.
4. दत्त, आर, एण्ड सुन्दरम, के. पी. एम. इण्डियन इकोनॉमी, एस. चान्द एण्ड कम्पनी लि, नई दिल्ली, 1991.

मिनिस्ट्री ऑफ लेबर, इम्पलायमेंट एण्ड रिहेविलिटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डियन, रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन लेबर, 1969.

NOTES